संस्कृत कोष

उद्भव और विकास

डॉ॰ बालमुकुन्द द्विवेदी

संस्कृत कोष
उद्भव और विकास

(Sanskrit Dictionary : Origin and Development)

लेखक

डा० बालमुकुन्द द्विवेदी
एम० ए०; पी०एच०डी०

प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
शासकीय महाविद्यालय, अमरपाटन
सतना (म० प्र०)

स्मृति प्रकाशन
१२४, शहराराबाग, इलाहाबाद-२११००३

[अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा की सन् १९७५ में पी० एच० डी० उपाधि हेतु स्वीकृत प्रवन्ध एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग प्रकाशन योजनान्तर्गत स्मृति प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित]

संस्करण	प्रथम, १९७९ ई०
प्रकाशक	स्मृति प्रकाशन, १२४ शहराराबाग, इलाहाबाद-३
मुद्रक	रोहित प्रिंटर्स, १६/३४, स्टैनली रोड, इलाहाबाद-२
मूल्य	पैंतालिस रुपये मात्र

रु० ४५-०० मात्र

प्रस्तावना

संस्कृत वांग्मय की विभिन्न धाराओं का विकास जिस प्रकार प्रगति पथ की ओर उत्तरोत्तर उन्मुख होता रहा है, उसी प्रकार कोष साहित्य की भी एक अजस्र प्रवाहिनी धारा अनादि काल से इस देश में प्रवाहित रही है। वैदिक काल से ही कोष की उपयोगिता और आवश्यकता पर बल दिया जाता रहा है। इसीलिये कोष को भी वेद के षडंगों में गणना कर ली गई है। निघण्टु और निरुक्त में कोष-साहित्य का आद्य रूप दृष्टिगोचर होता है, उसके बाद तो भारतीय मनीषियों ने शताधिक कोषों का प्रणयन कर कोष की परम्परा को और भी अधिक बद्धमूल किया। १८वीं शती के पूर्व तक प्रायः सभी कोष हस्त लिखित ही मिलते हैं। विद्वानों के द्वारा सुरक्षित रहते हुए भी शनैः शनैः उनकी मौलिकता विच्छिन्न होने लगी थी, परन्तु कालान्तर में मुद्रण सौविध्य के कारण उनका प्रकाशन द्रुतगति से होने लगा। भारत के विभिन्न स्थानों से अनेक कोषों के प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित होने लगे। अद्यावधि प्रकाशित कोषों की न तो कोई व्यवस्थित तालिका है और न उन पर समीक्षात्मक टिप्पणी ही है। यत्र तत्र विखरे हुए कोषों के मौलिक रूप, टीकायें अनुवाद आदि की परिचयात्मक सामग्री का नितान्त अभाव अनुभव किया जा रहा था। अमरकोष को छोड़कर अन्य अनेक महत्वपूर्ण एवं वृहद् कोषों का अध्ययन अद्यतन विस्मृति के गर्त में डूबा हुआ था। कोषों के मौलिक स्वरूप के अतिरिक्त उन पर लिखी गई व्यापक टीकायें अधिक महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करती हैं। परन्तु अद्यावधि इन आभावों पर मनीषियों का बहुत कम ध्यान आकर्षित हुआ था।

प्रस्तुत प्रबन्ध 'संस्कृत कोषों की परम्परा, उद्भव और विकास' उपर्युक्त अभावों की पूर्ति का एक लघुतम प्रयत्न है। प्रबन्ध की पूर्णता, सफलता और उपयोगिता तो विद्वज्जनाश्रित है। इस प्रबन्ध में प्रकाशित चार सौ कोषों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। उनमें कुछ प्रमुख एवं विशिष्ट कोषों की शब्द संकलन प्रणाली, व्युत्पति प्रदर्शन पद्धति स्वरूप तथा टीका आदि की समालोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत की गई है। तात्पर्य यह कि उपलब्ध तथा प्रकाशित संस्कृत कोषों की समग्र सामग्री का केन्द्रीभूत यह प्रबन्ध कोष साहित्य के भावी अध्येताओं का एक सफल मार्ग दर्शन करेगा यही एक बलवती आकांक्षा है।

वर्तमान में देश के अनेक स्थानों पर कोष विषयक महत्त्वपूर्ण प्रोजेक्ट चल रहे हैं। केन्द्रीय शासन की "डिक्शनरी प्रोजेक्ट" योजना 'डेकन कालेज पूना' के तत्वावधान में गत १९५० से चल रही है। इस शतवर्षीय योजना का उद्देश्य है कोष के अध्ययन को गति देना, उसे सार्वजनीन बनाना, उसके द्वारा शिक्षा देने को समग्र सामग्री का एकीकरण करना, कोष के द्वारा ही अनेक विषयों का सर्वांगीण तथा व्यापक अध्ययन आदि। डा० डी० डी० कुलकर्णी (पूना) ने अपने सतत् परिश्रम और अध्यवसाय से अनेक प्राचीन कोषों का प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित कराया है। राजस्थान के जयपुरस्थ पुरातत्वान्वेषण मन्दिर में भी इसी प्रकार के उल्लेखनीय कार्य हो रहे हैं। इनके अतिरिक्त बड़ौदा विश्व-विद्यालय ने कई कोषों के नवीनतम संस्करण सरल एवं सुबोध टीकाओं के साथ प्रकाशित कराया है। डा० मधुकर मंगेश पाटकर ने १९४७ में 'A History of Sanskrit Lexicography, लिखकर बम्बई विश्वविद्यालय से पी० एच-डी० प्राप्त किया है। इसी प्रकार डा० गोमती प्रसाद शुक्ल ने (अमरकोष में भारतीय संस्कृति का स्वरूप) विषयक महत्वपूर्ण प्रबन्ध लिखकर १९७१ में सागर विश्वविद्यालय से पी० एच-डी० की उपाधि प्राप्त किया है। तात्पर्य यह कि उपर्युक्त सभी कार्य कोष के किसी एक विशिष्ट शाखा के अध्ययन में सूचक हैं, परन्तु इस शोध सामग्री में समग्रता और सर्वांगीणता के सन्निवेश का एक नवीनतम् प्रयास है।

प्रस्तुत प्रबन्ध ५ अध्यायों में विभक्त है और प्रत्येक अध्याय के विषयानुरूप अनेक खण्ड हैं अध्यायों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—**प्रथम अध्याय** में संस्कृत वांग्मय के कोषों के उद्भव और उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है। वैदिक वांग्मय के कोष का महत्व प्रतिपादित करते हुए निरुक्त की प्रक्रिया पर विचार किया गया है और परवर्ती कोष साहित्य पर उसके प्रभाव का संक्षिप्त उल्लेख है। **द्वितीय अध्याय** में संस्कृत कोषों का सामान्य परिचय, निघण्टु के बाद उपलब्ध महत्वपूर्ण कोष अमरकोष के पूर्व एवं परवर्ती कोषों का उल्लेख किया गया है। **तृतीय अध्याय** में कोषों की पद्धति, प्रणाली, शब्द चयन क्रम के साथ उनकी टीकाओं और टीकाकारों की चर्चा की गई है। **चतुर्थ अध्याय** में कोषगत सांस्कृतिक विशेषताओं का अमरकोष के विशेष सन्दर्भ में मूल्यांकन किया गया है। **पंचम अध्याय** में संस्कृत कोषों की परम्परा पर पाली प्राकृत आदि भाषाओं में लिखे गये कोषों का परिचय दिया गया है। इसके उपसंहार में कोष के अध्ययन की महत्ता प्रतिपादित करते हुए प्रबन्ध की उपलब्धियों को प्रस्तुत किया गया है। परिशिष्ट में अद्यावधि प्रकाशित समस्त कोषों की सूची दी गई है। अन्त में सन्दर्भ ग्रन्थों की तालिका दी गई है।

इस गुरुतर शोधकार्य की पूर्णता का श्रेय मेरे कतिपय गुरुजनों को है, जिन्होंने समय-समय पर सत्परामर्श देकर मेरे कार्य को गति प्रदान की है। मेरे पूज्य गुरुवर्य प्रोफेसर श्री एस० एन० पन्त जो इस प्रबन्ध के निर्देशक हैं यथा-समय अपना बहुमूल्य समय देकर विषयगत समस्याओं का निराकरण करते रहे हैं। बार-बार लिखने और पढ़ने की प्रबल प्रेरणा के स्रोत रहे हैं, जिनके सहयोग से यह कार्य परिपक्वावस्था तक पहुँच सका। मैं उनका आजीवन आभारी हूँ इसके अतिरिक्त मैं गुरुदेव डा० गोमती प्रसाद शुक्ल को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने मुझे संस्कृत कोषों पर कार्य करने की प्रेरणा दी और समय समय पर सत्परामर्श देकर इस कार्य में सहयोगी भी रहे। मेरे अन्य गुरुवर डा० ज० प्र० मिश्र भी शतशः धन्यवादार्ह हैं जो इस दुर्गम मार्ग के मार्गदर्शक रहे। मेरे कतिपय स्नेही मित्रवर्ग भी कम सम्मान के पात्र नहीं हैं जिन्होंने यथा-समय कार्य करने का समुचित उत्साह प्रदान किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध की अपेक्षित सामग्री के संकलन में राष्ट्रीय पुस्तकालय कलकत्ता डेकन कालेज पूना, वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, भण्डारकर औरिएण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट पूना, ठा० रणमतसिह महाविद्यालय पुस्तकालय रीवा, शासकीय संस्कृत महाविद्यालय रीवा के पुस्तकालयाध्यक्षों तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं के सौजन्य और सहयोग का मैं आभार प्रदर्शित करता हूँ। अन्त में मैं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ, जिनकी आर्थिक सहायता से इस कार्य की चरम परिणत हुई। किं बहुना—

दृष्ट्वा प्रबन्ध मम बालिशत्वं तथा क्षमिष्यन्त इतीव सन्तः :
निरीक्ष्य लोके मृदुबालचापलं यथा क्षमन्ते गुरवः पदे पदे ॥

शासकीय महाविद्यालय — विनयावनतः
अमरपाटन (सतना) — बालमुकुन्द द्विवेदी

विषय सूची

१ | कोष-उद्भव-आवश्यकता उपयोगिता

प्रत्येक शब्द अर्थापेक्षी होता है। उदहरणार्थ गो शब्द के उच्चारण मात्र से गाय का पूर्ण मूर्त्त रूप मस्तिष्क में प्रतिबिम्बित सा हो जाता है। उसका आकार प्रकार, रंग, गुण, सींग, पूंछ आदि से समन्वित गतिशील जीव का बोध हो जाता है। तात्पर्य यह कि अतीव लघु आकार वाला गौ शब्द अपने अन्तर में कितना व्यापक अर्थ समाहित किए रहता है। इसी प्रकार नाना शब्दों का प्रयोग भी कम वैचित्र्य नहीं रखता। अतः शब्द और अर्थ अन्योन्याश्रित होते हैं। संसार की भाषाओं में कोई ऐसा शब्द नहीं है जिसका कोई न कोई अर्थ न हो। वैसे भाषा वैज्ञानिकों ने ऐसे वाक्यों का प्रयोग किया है जिसका उपयोग नहीं होता है लेकिन शब्दों का अर्थ अवश्य होता है। कालिदास ने भी शब्द और अर्थ का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध बतलाया है।[१] इस सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि 'कोष' शब्द भी अपने आप में अर्थ सापेक्ष्य है।

कोष शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में हमें प्राप्त होता है। ऋग्वेद में कोष शब्द लगभग पांच स्थानों में प्रयुक्त हुआ है। प्रथम मण्डल में कोष[२] शब्द का प्रथमतः सायण ने मेघ[३] अर्थ, दूसरे स्थान में 'मध्य भाग में'[४] प्रयोग किया है। और एक अन्य स्थान में आयुध[५] आदि के रखने के स्थान को कोष कहा गया है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में कोष शब्द द्युलोक और पृथ्वी लोक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है[६] और इसी तरह से ऋग्वेद के छठवें मण्डल में कोष

---

१. वागार्थाविव संपृक्तौ वागार्थ प्रतिपत्तये
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ। रघु० १।१

२. श्चोतन्ति कोशा उव वो रथेष्वा। ऋ० १।८७।२

३. कोशा : मेघनामैतत्। वो यष्माकं रथेष्वासक्त
मेघाश्चोतन्ति जले मुच्चवन्ति। सायण

४. रथे कोशे हिरण्यये। ऋ० ८।२०।८
रथे कोशे कोशवद्वेष्टिते मध्यदेशे। सायण

५. "कोश आयुधादीना कोशस्थाने रमणशीले रथे"। ऋ० ८।२२।६

६. "द्यौर्भूमिः कोश आसीत्"। ऋ० १०।८५।७.

चक्र का मध्य भाग [१] अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मैक्डानेल ने यहां कोष शब्द का अर्थ चुराकर रखने का स्थान लिया है। [२]

वैदिक साहित्य के बाद लौकिक संस्कृत में भी कोष शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया गया है। अमरकोष में कोष का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है। एक स्थान में कोष का प्रयोग सोना चांदी अर्थ में हुआ है, [३] दूसरे स्थान में कोष शब्द का प्रयोग फूल की बिना खिली हुई कली, तलवार की म्यान और खजाना [४] अर्थ में हुआ है। रघुवंश में भी कोष का प्रयोग कई स्थानों में खजाना [५] अर्थ में हुआ है। शिवराज विजय में भी कोष शब्द प्रयुक्त हुआ है जो कि फूल की पंखुड़ी [६] अर्थ में हुआ है। श्री हेमचन्द्राचार्य ने भी अपने समस्त कोषों में कोष शब्द का प्रयोग किया है। अभिधान चिन्तामणि में कोष शब्द ३ स्थानों में आया है, जिसका अर्थ खजाना [७] तलवार [८] की म्यान आदि किया है। अनेकार्थ संग्रह में भी कोष का प्रयोग खजाना [९] अर्थ में हुआ है, बाणभट्ट ने भी कादम्बरी में इसी अर्थ [१०] में कोष का प्रयोग किया है। खजाना अर्थ में कोष शब्द का प्रयोग अन्य ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। [११] जिस प्रकार द्रव्य इत्यादि के संग्रह को अर्थकोष कहा जाता है, उसी प्रकार

---

१. "कोश आयुधादीनां कोशस्थाने रमणशीले रथे" ऋ० ८।२२।९

२. "द्यौर्भूमिः कोश आसीत्"। ऋ० १०।८५।७

१. "पूषणश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽवपद्यते नो अस्य व्यथते पविः"। ऋ० ६।५४

२. ऋ० सू० संग्रह पृ० २५०

३. "स्यात्कोषश्च हिरण्यं च हेमरूप्ये कृताकृते। अमर २।९।९१

४. "कोषो स्त्री कड़मले खड्गपिधाने अर्थोशदित्ययोः। अमर ३।३।२२१

५. "प्रातः प्रमाणभिमुखाय तस्मैस विसमयः कोषगृहेनियुक्ताः। रघु० ५।२९

६. "रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्, भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पंकज श्री इत्थं विचिन्वतिकोषगते द्विरेफे हाहन्त हन्त नलिनी गजयोज्जहार/ शि० वि० २।१

७. अचि० ३।३७८

८. अ० चि० ३।४४७

९. अनेकार्थ संग्रह हेमचन्द्र पृ० ५५०

१०. "कोषस्तपसः" "कादम्बरी पूर्वभाग पृ० ९५

११. कालिदास का भारत पृ० २६० भगवत शरण उपाध्याय

शब्द के संग्रह को शब्द कोष कहा जाता है। शब्द का संग्रह जो क्रमिक कोष के मानदण्ड के अनुसार किया जाय उसे ही कोष कहते हैं, क्योंकि शब्दों का संग्रह काव्य में भी होता है, लेकिन वे शब्द क्रम से नहीं होते हैं अतः कोष नहीं कहलाते। इसी प्रकार द्रव्य का ऐसा संग्रह जो खजाना में ही किया जाय उसे ही अर्थकोष कहते हैं, अन्य धन जिसका संग्रह नहीं होता है, वह कोष नहीं होता है। किसी प्रकार के पदार्थों और विशेषतः शब्दों तथा उनके अर्थों आदि के संग्रह को कोष कहते हैं। इसी अर्थ में इसे संस्कृत में अभिधान और निघण्टु भी कहते हैं। अभिधान तो प्रायः उसी अर्थ में प्रचलित है जिसमें 'कोष' जैसे वाचस्पत्यम् अभिधान, अभिधान चिन्तामणि आदि। निघण्टु मुख्यतः किसी विशिष्ट विषय की शब्दावली का सूचक है जैसे वैदिक निघण्टु वैद्यक निघण्टु आदि।[1]

इस प्रकार शब्द कोष का तात्पर्य क्रमिक शब्दों के संग्रह से होता है जिसके अध्ययन से शब्दों के विभिन्न अवयवों और विभिन्न अर्थों का ज्ञान होता है।

संस्कृत साहित्य में शब्द कोष में शब्दों का संग्रह विभिन्न प्रकार से किया गया है। कुछ में तो शब्दों का ऐसा संग्रह जिसमें केवल शब्दों का पर्याय अर्थात एक शब्द के अनेक नाम दिए गए हैं जैसे निघण्टु। और दूसरे प्रकार में शब्दों का ऐसा संग्रह है जिसमें शब्दों के अनेक अर्थ दिए होते हैं अर्थात् एक शब्द के अनेक अर्थ देने का प्रयास किया गया है। पूर्व में बताया जा चुका है कि शब्द और अर्थ का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इसी सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत कोषों में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि शब्द और अर्थ ही मुख्य है और इसी शब्द और अर्थ में ध्वनि और पद इत्यादि आश्रित रहते हैं। किसी कोष में शब्द के माध्यम से सम्बधित शब्द के अधिकाधिक अर्थों का प्रयोग किया गया है और किन्हीं २ कोषों में शब्द के माध्यम से शब्द के अनेक पर्यायों का प्रयोग किया गया है, अर्थात् सम्बन्धित शब्द के कितने पर्याय हो सकते हैं, दूसरे शब्दों में अमुक नाम अमुक अर्थ में कितने प्रकार से प्रयुक्त हो सकता है। शब्द के पर्याय में भी विभिन्न अर्थ ही झलकते हैं, अर्थात शब्दों के पर्याय का उद्देश्य एक शब्द के अनेक नामों से है, फिर भी पर्याय होते हुए भी विभिन्न अर्थों का बोध तो होता ही है, जैसे अमरकोष में देवता के २६ पर्याय[2] बताए गए हैं, लेकिन समस्त नाम अलग अलग अर्थ से अभि-

---

१. कोषकला रामचन्द्र वर्मा पृ० २.

२. अमर १।७,८,९

हित हैं अमरा न म्रियन्त इति[१], निर्जराः जराया निष्क्रान्ता, देवः दीव्यन्ति[२] इति देवाः, त्रिदशा तृतीया यौवनाख्या दशा सदा येषाम्।[३] अमरा कहने से देवता के उस स्वरूप का ध्यान आता है जो देवता कभी नहीं मरते, निर्जरा कहने से यह प्रतीत होता है कि जो वृद्धावस्था को कभी नहीं प्राप्त होते। इसी प्रकार त्रिदशा से भी यह बोध होता है कि वे देवता जिनको हमेशा तीसरी दशा अर्थात यौवनावस्था प्राप्त रहती है। निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि कोष शब्द का तात्पर्य ऐसे शब्दों के संग्रह से है जिससे शब्द के अर्थ की ही प्रतीति होती है। दूसरे शब्दों में कोष चाहे समानार्थक हो अथवा अनेकार्थक हो दोनों का उद्देश्य ही भिन्न अर्थों का प्रगट करना ही है।

उद्भव—भारतीय भाषाओं में वेद सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं आद्यग्रन्थ हैं। वेदों के निर्माण के पश्चात् वेदों को सुरक्षित रखने के लिए प्रत्येक वैदिक परिवार विभाग के अनुसार मन्त्रों, देवताओं, ऋषियों और विनियोगों द्वारा इसे कंठस्थ रखते थे। आज भी उसी परम्परा के अनुकूल कुछ परिवारों के द्वारा वेद कंठस्थ किया जाता है। कुछ समय के पश्चात् मन्त्रों, देवताओं, ऋषियों और विनियोगों आदि के माध्यम से कंठस्थ करने की परम्परा में व्यतिक्रम उत्पन्न होने लगा। इस व्यतिक्रम को देखते हुए ऋषियों ने वेद को सुरक्षित रखने के लिए प्रातिशाख्य, अनुक्रमणी और बृहद्देवता[४] आदि ग्रन्थों का निर्माण किया।

जब जन भाषा वैदिक भाषा से दूर हट गई तो वैदिक भाषा से लोग अपरिचित से होने लगे थे लेकिन वेद का पाठ पूर्ववत् चालू रखने का विशेष प्रयत्न किया गया और यह पाठ नियम युक्त स्वरघातों के ही माध्यम से होना चाहिए दूसरे प्रकार से करने पर उसमें अशुद्धि के भय से दोष का भागी होने का डर था। इस भय को दूर करने के लिए प्रातिशाख्यों की रचना हुई। प्रमुख प्रातिशाख्यों कुछ प्रातिशाख्य, अथर्वप्रातिशाख्य, बाजसनेयी प्रातिशाख्य तथा ऋक्तंत्र व्याकरण[५] आदि हैं। प्रतिशाख्य के कारण ही इनका नाम प्रातिशाख्य पड़ा प्रातिशाख्यों का मूल उद्देश्य अपनी अपनी संहिताओं का परम्परागत उच्चारण सुरक्षित रखना था इसके अतिरिक्त पद, नाम, आख्यात उपसर्ग निपात आदि के

१. सुधा व्याख्या पृ० ५
२. सुधाव्याख्या पृ० ५
३. सुधा व्याख्या पृ० ५
४. वै० सा० और संस्कृति गैरोला पृ० १६३
५. भा० वि० तिवारी पृ० ५११

द्वारा मंत्रों को सुरक्षित रखना ही था। इसी प्रकार से वेद के मंत्रों को सुरक्षित रखने के लिए अनुक्रमणी का निर्माण हुआ, अनुक्रमणी में वैदिक मंत्रों की क्रमबद्ध सूची है। उसमें विभिन्न मंत्रों से सम्बद्ध देवताओं विभिन्न मंत्रों के छंदों विभिन्न शाखाओं से सम्बद्ध अनुवादकों वर्गों सूक्तों और विभिन्न मन्त्रों के मंत्र, मध्यम तथा तार आदि स्वरों की व्यवस्था के लिए नियम है। मन्त्र पाठ का क्रम और मन्त्रों के विशुद्ध अर्थ बोध के लिए अनुक्रमणी का विशेष महत्व है।

वेदार्थ ज्ञान के लिए प्रातिशाख्य भी जब उपयुक्त न हो सके तो ऋषियों ने वेदार्थ ज्ञान के लिए दूसरे ग्रन्थों का निर्माण किया जिसके क्रम में अनुक्रमणी के पश्चात् वृहद्देवता आता है। वृहद्देवता भी संख्या में पर्याप्त थे चारों वेदों की अनेक शाखाओं के पृथक्-पृथक् वृहद्देवता लिखे गए लेकिन आज केवल एक ही वृहद्देवता उपलब्ध होता है जो प्रमुख रूप से ऋग्वेद की माण्डूकेय शाखा से और गौण रूप से शाकल शाखा से सम्बद्ध है। जिसके रचयिता महर्षि शौनक[1] थे, वृहद्देवता में मुख्य रूप से देवताओं का महत्व प्रतिपादित किया गया है और साथ ही अन्य अनेक विषयों का उल्लेख किया गया है। उदाहरण के लिए उपसर्ग, लिंग, संज्ञा, सर्वनाम, आशय, अन्वय, शब्दविग्रह समास, वर्ण लोप, भावप्रधान क्रिया आदि व्याकरण विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

इस प्रकार वृहद्देवता का भी उद्देश्य मात्र वेद के अर्थ का ज्ञान कराना था दूसरे शब्दों में वेदों को जीवित रखने के लिए ही वृहद्देवता का निर्माण हुआ था, लेकिन वृहद्देवता के निर्माण से भी वेदार्थ का पूर्णज्ञान और वेद की रक्षा होने में कुछ कठिनाई प्रतीत होने लगी। ऋषियों के सामने समस्या उपस्थित हुई कि हम किस माध्यम से वेद को सुरक्षित रख सकते हैं। व्याकरण, प्रातिशाख्य, वृहद्देवता अनुक्रमणी से वेदों की रक्षा होने में संदेह उपस्थित होने लगा अथवा इन्हीं विषयों में परिवर्तन की आवश्यकता दिखाई पड़ने लगी। फलतः कोष साहित्य के निर्माण की आवश्यकता प्रतीत होने लगी, क्योंकि कोष शब्दों को सुरक्षित रखने में समर्थ हो सकता है। कोष के निर्माण का सूत्रपात प्रारम्भ हो गया।

प्राचीनकाल में कोष का स्वतन्त्र रूप से कोई अस्तित्व नहीं था। कोष को भाषा शास्त्र या शब्द शास्त्र के अन्तर्गत परिगणित किया जाता था इसीलिए व्याकरण, कोष, अनुक्रमणी वृहदेवता आदि विषय एक दूसरे से मिले हुए थे और इन समस्त का उद्देश्य वेदार्थ ज्ञान ही था। वेदार्थ ज्ञान और वेद के मौलिक रूप की रक्षा के ही उद्देश्य से इन समस्त विषयों पर लोगों ने काफी श्रम करके

---

१. वै० सा० और सं० गैरोला पृ० १६४

वेद की रक्षा की। यहाँ तक कि जो लेखक प्रातिशाख्या अनुक्रमणी वृहद्देवता की रचना की संभवतः वही कोष की भी रचना की।

प्राचीनकाल के वैदिक ऋषि वेद के वास्तविक अर्थ को जानते थे इसी से वैदिक ऋषि को मंत्रदष्ट्रा कहा गया है,[1] लेकिन ऋषियों के मंत्रबोध में ह्रास होने लगा। लोगों में धर्म के प्रति उदासीनता दिखाई देने लगी, धर्म के महत्त्व को लोग भूल से गए तब वैदिक मंत्रों के अर्थज्ञान के लिए कोष साहित्य का प्रणयन हुआ। प्राचीन काल में कोष भाषा को जीवित रखने के साथ ही सृजन-शक्ति में उत्साह बढ़ाते थे।

वैदिक साहित्य का अति प्राचीन कोष निघण्टु मिलता है, इसमें ऋग्वेद के कुछ शब्दों का संग्रह किया गया है। निघण्टु में वैदिक साहित्य के बिखरे हुए समस्त शब्दों को शीर्षक के अनुसार एकत्र किया गया है। उस समय की आवश्यकता को देखते हुए यह कार्य अत्यन्त सराहनीय माना जाता है। वैदिक काल कोष वृहद्देवता, अनुक्रमणी और प्रातिशाख्य से भिन्न था तथापि इनका एक कार्य होने से इनको एक ही श्रेणी में लोगों ने स्वीकार किया और अधिकतर एक ही व्यक्ति व्याकरण से लेकर सभी प्रकार के उपर्युक्त ग्रन्थों, जो वेदार्थ ज्ञान में सहायक होते थे का निर्माण किया करते थे। वैदिक कोष निघण्टु की रचना से केवल वेदों के मंत्रों का अर्थज्ञान सरल तो न हुआ वरन वैदिक साहित्य की रक्षा में वे अवश्य सहायक हुए। यास्क ने निघण्टु के पश्चात् 'निघण्टु पर 'निरुक्त' लिखा। निरुक्त से वेदार्थ ज्ञान सरल हुआ। कोष साहित्य के विकास में निरुक्त का विशेष सहयोग रहा है और यही कोष का आद्य स्वरूप है। निरुक्त के पश्चात् साहित्य में उत्तरोत्तर बृद्धि हुई।

आवश्यकता—किसी भी साहित्य की सम्पन्नता उसके शब्द समूह से लगाई जा सकती है। शब्द के ही माध्यम से वर्तमान ही क्या अतीत का भी सही चित्रण किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में शब्द भण्डार के ही द्वारा किसी देश और विश्व का भी सांस्कृतिक चित्रण आंका जा सकता है। शब्द समूह के ही माध्यम से वर्तमान का भूत से सामंजस्य किया जा सकता है। जिस तरह देश का अर्थकोष उस देश की आर्थिक सम्पन्नता बतलाता है उसी प्रकार शब्द-कोष भी उस देश के बौद्धिक विकास की सूचना देता है।

निरुक्तकार यास्क ने ज्ञान प्रशंसा और अज्ञात निन्दा का ज्ञान कराते हुए श्रुति बचन उद्धत किया है जो मनुष्य समस्त वेद अर्थात् समस्त ज्ञान और विज्ञान का अध्ययन करने के पश्चात भी अर्थतत्व अर्थात् प्रतिभा की सिद्धि नहीं करता है उसका समस्त अध्ययन उसी प्रकार निरर्थक है जैसे वेद शास्त्रों के भार को

---

१. **"ऋषयोर्मन्त्रद्रष्टारः।"**

ढोने वाले गर्दभ का जो व्यक्ति अर्थतत्व का ज्ञान कर लेता है। ज्ञान प्रतिभा की सिद्धि कर लेता है। वह समस्त सुखों का उपभोग करता है और ज्ञान अग्नि के द्वारा समस्त दोषों को नाश कर अभीष्ट की सिद्धि करता है।[1]

वैदिक ऋषियों ने अर्थतत्व की अतिसूक्ष्मता और दुर्बोधता पर अत्यधिक विचार किया और वे इस निकर्ष पर पहुँचे कि अज्ञानी व्यक्ति वाक्तत्व अर्थतत्व को देखता हुआ भी नहीं देखता है, सुनता हुआ भी नहीं सुनता है, वह प्रतिभा का प्रतिक्षण दर्शन करते हुए भी नहीं करता है, उसकी अनुभूति करते हुए भी साक्षात् अनुभूति नहीं करता है। इसके विपरीत ज्ञानी व्यक्ति प्रतिभा प्रति क्षण साक्षात्कार करता है, अनुभूति रखता है अर्थतत्व का ज्ञान प्राप्त करता है, प्रतिभा पतिव्रता स्त्री के तुल्य उस आत्म तत्वज्ञ व्यक्ति को अपना स्वरूप प्रगट करती है।[2]

विद्वानों का निष्कर्ष यही है कि वाक्तत्व की सफलता यह है कि अर्थतत्व का ठीक ज्ञान हो जाय। अर्थतत्व वाक्तत्व का शरीर है, वाक्तत्व आत्मा है। इस प्रकार अर्थतत्व का विशेष महत्व है। अर्थतत्व के बिना सब निरर्थक है। शब्द समूह जो इधर-उधर बिखरे हैं जिनका किसी प्रकार से उपयोग नहीं होता है, जिनके अर्थ से लोग दूर हैं ऐसे शब्द मृत बताए गए हैं तथा प्रयोगभाव में भूगर्भ में छिपी हुई सम्पत्ति के समान निरुपयोगी हैं।

संस्कृत साहित्य का शब्द भण्डार बहुत विपुल है। इस भाषा में नए नए प्रयोगों से कोटिशः शब्दों का हजारों वर्षों में विकास हुआ जो शब्द अपने भाषा की सम्पत्ति को अक्षुण्ण बनाए हुए अन्य भाषाओं के विकास में महती सहायता प्रदान करने में सक्षम हैं किसी भी भाषा के शब्द भण्डार का उपयोग ही उसके विकास का कारण होता है और उपयोग से तात्पर्य उसके वास्तविक अर्थतत्व के ज्ञान से है और अर्थतत्व का ज्ञान शब्द के वाच्यार्थ भवार्थ और तात्पर्यार्य के प्रक्रिया से ही सम्भव होता है। भर्तृहरि ने अर्थ निश्चिय के लिए निम्न साधनों का उल्लेख किया है—१—संयोग, २—विप्रयोग, ३—साहचर्य, ४—विरोधिता, ५—अर्थ, ६—प्रकरण, ७—लिंग, ८—अन्य शब्द का साहचर्य, ९—सामर्थ्य १०—औचित्य, ११—देश, १२—काल, १३—व्यक्ति

---

१. "स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति योऽर्थम्।
योऽर्थज्ञ इत् सबलं भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूत पप्मा नि० १।१८

२. उतत्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम्
उतो त्वस्य तन्वं विसस्मे जायेव पत्य उशती सुवासाः ऋ० १०।७१।४.

इत्यादि ।[1] लेकिन इन उपर्युक्त प्रकारों से केवल शब्दों के उस अर्थ का ज्ञान होता है जिसका विशेष अर्थ होता है । अर्थज्ञान के लिए मुख्य रूप से संकेत ग्रहण आवश्यक है और जब तक शब्दों का संकेत ग्रहण न हो तब तक उसकी उपयोगिता नहीं होती है, क्योंकि यह स्पष्ट हो चुका है कि शब्द विभिन्न संकेतों से विभिन्न प्रकार के अर्थ को प्रतिभासित करता है वही शब्द दूसरे संकेतों में दूसरे प्रकार का और भिन्न संकेतों में भिन्न प्रकार के अर्थ का बोध कराता है । विद्वानों का कहना है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी नियत वासना के अनुसार ही अर्थ का स्वरूप निश्चित करता है[2] अर्थात् एक ही शब्द का अर्थ मनुष्य अपनी क्षमता के अनुसार अलग-अलग लगाता है, अर्थ में साम्यता नहीं होती है । वक्ता कुछ दूसरे भावों से शब्दों को कहता है लेकिन श्रोता कुछ दूसरे भावों से उस शब्दों को ग्रहण करता है और यही नहीं विभिन्न श्रोता विभिन्न भावों से युक्त होते हैं । अतएव इस प्रकार की विभिन्नता को समाप्त करने हेतु शब्दों के अर्थों में एकरूपता के लिए तथा वास्तविक अर्थतत्व के ज्ञान के लिए संकेत ग्रहण करना अत्यावश्यक हो गया है बिना संकेत ग्रहण के शब्द का वास्तविक अर्थज्ञान सम्भव नहीं है । विद्वानों ने अर्थज्ञान के लिए संकेतों को कई प्रकार से बताया है जिनमें व्याकरण, उपमान, कोश, आप्त वाक्य व्यवहार, वाक्यशेष, विवरण और प्रसिद्ध शब्द के सानिध्य से संकेत ग्रहण होता है ।[3]

व्याकरण शब्दों के विभिन्न अवयवों की व्युत्पत्ति तो देता है, साथ ही यौगिक शब्दों का संकेत ग्रहण करता है लेकिन रूढ़ शब्दों का संकेत ग्रहण व्याकरण के द्वारा सम्भव नहीं है । व्याकरण के अतिरिक्त अन्य जो संकेत ग्रहण के साधन बताए गए हैं वे भी सभी प्रकार के शब्दों का यथार्थ संकेत ग्रहण नहीं कर कर सकते हैं । केवल कोष ही एक ऐसा माध्यम है, जो कि सभी प्रकार के शब्दों का संकेत ग्रहण कर सकता है, इसी आवश्यकता की पूर्ति हेतु संस्कृत

---

१. संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्य विरोधिता
अर्थः प्रकरणं लिंगं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः
सामर्थ्यमौचिती देशः कालो व्यक्तिः स्वरादयः
शब्दार्थस्यान्नवच्छेदे विशेष समृति हेतवः ।

२. प्रतिनियत वासना वसेऽनेव प्रति नियताकारोऽअर्थः
तत्वतस्तु कश्चिदपि नियतो नाभिधीयते—/वाक्य० २, १३६.

३. शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानं कोशाप्त वाक्याद् व्यवहारतश्च ।
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धयपदस्य वृद्धा ।

कोषों का प्रणयन हुआ है। दूसरे शब्दों में इसी प्रकार की आवश्यकता विद्वानों के समक्ष उपस्थित हो चुकी थी, जिससे कोषों का निर्माण किया गया।

कोष ही एक ऐसा अर्थज्ञान का साधन है जो किसी भी समय किसी भी प्रकार के शब्दों का विभिन्न अर्थ देते हुए सर्वांगीणता को प्राप्त है। क्योंकि उपर्युक्त समस्त अर्थज्ञान के बताए गए साधनों में सभी साधन भिन्न-भिन्न प्रकार से अर्थज्ञान में सक्षम है, कोई संयोग के द्वारा अर्थज्ञान कराता है, तो कोई वियोग, साहचर्य विरोधिता, अर्थ प्रकरण आदि के माध्यम से तथा कोई आप्त वाक्य व्यवहार आदि के द्वारा रूढ़ और योग रूढ़ शब्दों के अर्थज्ञान में सहायक होता है। लेकिन कोष ही एक ऐसा अर्थज्ञान का साधन होता है, जो कि समस्त प्रकार से अर्थज्ञान में सहायक होता है।

कोष की उपयोगिता—कोष साहित्य के इतिहास को देखने से पता चलता है कि कोष साहित्य का अस्तित्व लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व का है दूसरे शब्दों में कोष ईसा से पूर्व एक हजार वर्ष अस्तित्व में आ चुके थे। इन तीन हजार वर्षों में सौ से भी अधिक कोष लिखे गए। कोष की तुलना में कोई ग्रन्थ नहीं मिलते। आखिरकार प्रश्न यह उठता है कि इन समस्त कोषों का ऐसा क्या उपयोग है जिससे इनकी संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई। विनयपिटक[1] में महावग्ग नामक एक प्रकरण है जिसमें तात्कालीन भारत की शिक्षा प्रणाली का अच्छा पता लगता है। कई बार अध्ययन करने के बाद एक शिष्य ने अपने उपाध्याय से पूछा कि शिक्षा समाप्त होने में अभी कितने दिन बाकी हैं। उपाध्याय ने उत्तर में कहा कि तक्षशिला के चारों तरफ एक योजन भूमि में जड़ी बूटियों के सिवाय जितने व्यर्थ पौधे मिलें उन सबको जमा करो। बेचारे विद्यार्थी ने नियत स्थान के प्रत्येक पौधे की समीक्षा की, परन्तु उसे कोई भी व्यर्थ पौधा न मिला। अतः कहा जा सकता है कि संसार में ऐसी वस्तु नहीं है जिसका कि कहीं न कहीं उपयोग न होता हो। यहाँ तक कि विष का भी उपयोग होता है। इस सन्दर्भ में कोष की भी उपयोगिता अवश्य है। आज के युग में कोष का क्या उपयोग है, इसको निम्न शीर्षकों से समझा जा सकता है।

(१) **विद्यार्थियों के लिए कोष का उपयोग**—विद्यार्थियों के लिए कोष का अत्यधिक उपयोग है। आज के युग में विद्यार्थी वर्ष भर का समय अपनी परीक्षा पास करने के लिए नहीं लगाते हैं। विद्यार्थी वर्ष भर आर्थिक सामाजिक, एवं राजनैतिक विषयों में भटकता रहता है और परीक्षा निकट आने पर कोष के ही

---

१. निबन्ध संग्रह, पृ० ५०

माध्यम से परीक्षा हेतु तैयारी करते हैं। अच्छे विद्यार्थी सदैव कोष का अध्ययन करते हैं और विद्यार्जन साथ-साथ अधिकाधिक अंक प्राप्त कर लाभान्वित होते हैं। कोष के माध्यम से शिक्षक भी उच्च कक्षाओं में पढ़ाने हेतु तैयारी करते हैं और कोष में वर्णित सामग्री का भरपूर सहयोग लेते हैं।

(२) **शोधार्थियों के लिये कोष का उपयोग**—इस विकासशील युग में उपयोग प्रत्येक विषय पर शोधकार्य हेतु बहुत से शोधार्थी कार्यरत हैं। शोधकार्य करते समय शोधार्थी चाहे वह किसी विषय का क्यों न हो वह कोष के ही माध्यम से प्रमाणित विषय का उल्लेख करता है। दूसरे शब्दों में कोष के अध्ययन से ही शब्दों के विकास और महत्व को शोधार्थी समझ सकता है।

(३) **अध्येताओं के लिए कोष का उपयोग**—वर्तमान युग में कोष का उपयोग अध्येताओं के लिए भी अत्याधिक है। यदि किसी समय की सामाजिक स्थिति को देखना हो तो तत्कालीन कोष का सहारा लेना पड़ेगा क्योंकि उस समय में निर्मित कोष अपने शब्दों के माध्यम से यह बताता है कि उस समय में समाज की स्थिति शिक्षा पद्धति, समाज का विकास तथा समाज में प्रचलित रीति-रिवाज कैसे थे, इत्यादि समस्त बातों की जानकारी तत्कालीन कोष के ही माध्यम से प्राप्त होती है। उसी प्रकार से राजनीति वेत्ताओं के लिए अगर किसी काल की राजनैतिक स्थिति का ज्ञान करना होता है तो उसके लिए तत्कालीन कोष ही सामग्री देता है। वैसे विस्तृत जानकारी इतिहास के द्वारा भी होती है, लेकिन आंतरिक सूक्ष्म दृष्टियों का ज्ञान कोष के ही माध्यम से सम्भव है। इसी प्रकार आर्थिक दृष्टि से भी कोष की उपयोगिता कम नहीं है। अगर किसी काल के मुद्रा, आर्थिक विकास, अर्थ के साधन इत्यादि सूक्ष्म आंतरिक बातों का ज्ञान करना हो तो तत्कालीन कोष से ही उपलब्ध हो सकता है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी कोष साहित्य का महत्त्व कम नहीं है। अगर किसी समय के ऐतिहासिक आंतरिक वस्तुओं का पता लगाना हो तो तत्कालीन कोषों में वर्णित शब्दों के माध्यम से ही यह पता लगाया जा सकता है।

धार्मिक दृष्टि से भी कोष का महत्व अत्यधिक है, क्योंकि तत्कालीन कोषों में वर्णित धर्म के विकास ह्रास आदि की जानकारी हमें कोष ही देता है, क्योंकि धर्म के विकास और ह्रास का प्रभाव साहित्य में अत्यधिक पड़ता है और अनेक धर्मों में सम्बन्ध के लिए भी कोष हमें पूर्ण जानकारी देता है और इसी तरह से आध्यात्मिक दृष्टि से विकास और ह्रास में कोष का विशेष योग-दान रहता है। किस समय कौन से दर्शन का जन्म हुआ और उसके पश्चात्

किस दर्शन का विकास और ह्रास हुआ इत्यादि। समस्त बातों की जानकारी रचे गये क्रमिक कोषों के शब्दों की तुलना से प्राप्त होती है। इस प्रकार कोषों का उपयोग अध्येताओं के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(४) **भाषा शास्त्रियों के लिये**—कोष के ही माध्यम से भाषा वैज्ञानिकों को भाषा की उत्पत्ति, भाषा का विकास, अन्य भाषाओं का एक दूसरे से सम्बन्ध तथा भाषा परिवर्तन आदि के समस्त नियम प्राप्त होते हैं। भाषा वैज्ञानिक कोष के माध्यम से ही भाषा के प्राचीनतम स्वरूप को समझकर मौलिक रूप का दिग्दर्शन कराते हैं। आज भाषा विज्ञान पर करीब दो सौ वर्षों से इतना शोधकार्य किया गया जो कि कोष के ही माध्यम से सम्भव हो सका। समय के अनुसार भाषा परिवर्तित होती रहती है। उदाहरणार्थ वैदिक काल से आज तक के भाषा में परिवर्तन को देखा जा सकता है। कोष के ही द्वारा कोष के मौलिक और परिवर्तित स्वरूप को समझा जा सकता है। कोष के ही द्वारा भाषा के अन्य अंग ध्वनि इत्यादि के परिवर्तन का सहज ही पता लगाया जा सकता है।

(५) **देश के लिए कोष की उपयोगिता**—आज देश के लिए कोष की उपयोगिता अत्यधिक है। हमारे देश में पाश्चात्य शासन था। विदेशियों ने हमारी संस्कृति को नष्ट करना चाहा। हमारी भाषा को बदला जिस देश की संस्कृति नष्ट की जाती है वहां पहले उस देश की भाषा बदली जाती है। विदेशियों ने हमारे ऊपर अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शासन किया। आज हम स्वतन्त्र हुए हम अपनी भाषा से देश का कार्य कर रहे हैं। उनकी भाषा के शब्दों का हमारी भाषा में क्या अर्थ होता है, इसकी जानकारी हमें कोष ही देता है। इसीलिए आज हमारे देश में शासन ने स्वतन्त्र रूप से अनुवाद अकादमी का निर्माण किया है। देश के लिए कोषों की महान उपयोगिता है। देश के लिए प्रत्येक विषय पर मान्य कोष होता है। कोई शब्द किस विषय में किस अर्थ में प्रयुक्त होगा यह जानकारी कोष के ही द्वारा प्राप्त होती है।

(६) **संस्कृत भाषा से निःसृत अन्य भाषाओं के लिए कोष की उपयोगिता**—भारतीय भाषाओं में सबसे प्राचीन भाषा संस्कृत भाषा ही है और संस्कृत भाषा से अन्य भारतीय भाषाओं का जन्म हुआ है। अन्य भाषाओं का अध्ययन संस्कृत भाषा से ही सम्भव है। संस्कृत भाषा के अध्ययन से तात्पर्य यहां संस्कृत कोषों से ही है। कोषों के माध्यम से भाषा के अध्ययन में यह पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है कि अमुक भाषा में प्रयुक्त शब्द का विकास कैसे हुआ, और इसका प्राचीन स्वरूप क्या था और आज उसका कलेवर क्या है। अतः यह स्पष्ट होता

है कि संस्कृत भाषा के कोषों से यह पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है कि भाषाओं के शब्द और अर्थ का क्या इतिहास है तथा भाषा का विकसित रूप कैसे था।

कोषों की इतनी प्रचुर उपयोगिता देखते हुए ही आज भी कोषों की संख्या में अधिकाधिक वृद्धि हो गई है। सर्वप्रथम कोषों की उपयोगिता वेदार्थ ज्ञान के लिए थी, जिसका स्वयं यास्क ने उल्लेख किया है।[1] निरुक्त के अध्ययन के बिना वेदार्थ का ज्ञान नहीं होता है। और वेदार्थ के ज्ञान के बिना स्वर और संस्कार का ज्ञान नहीं होता है। अतः वेदार्थ का ज्ञान आवश्यक है और वेदार्थ के ज्ञान से मनुष्य स्वर और संस्कार का ज्ञान कर सकता है।

इस प्रकार से कोषों की उपयोगिता मनुष्य मात्र के लिए अत्यधिक है। मनुष्य कोषों के ही माध्यम से अपने को अपने देश, समाज और विश्व को समझ सकता है तथा कोष के माध्यम से ही आचार, विचार, सदाचार, चिन्तन, मनन आदि सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों की ओर अग्रसर हो सकता है। विद्वानों के लिए तो कोषों की महती उपयोगिता है। दूसरे शब्दों में कोषों के ही समुचित अध्ययन से मनुष्य विद्वान बनता है। जिस प्रकार से राजा को अर्थ कोष की महान आवश्यकता होती है[2] उसी प्रकार विद्वानों के लिए कोषों की महती उपयोगिता होती है। बिना अर्थ कोष के राजा महान क्लेश प्राप्त करता है और बिना शब्द कोष के विद्वान महान संकट को प्राप्त होता है। कोष से भली प्रकार से युक्त व्यक्ति बिना परिश्रम ही महान ज्ञान प्राप्त करता है।

अतः आज के युग में कोषों की महती उपयोगिता है। कोषों का अध्ययन अध्यापन छोटी कक्षाओं से लेकर विश्वविद्यालयों तक है। विद्वानों के समक्ष कोषों की अत्यधिक उपयोगिता दृष्टिगोचर होती है। इसीलिए छोटे बच्चों को सबसे पहले कोषों का ज्ञान कराया जाता है।

वैदिक वाङ्मय में कोष

कोष विद्या का इतिहास अतीव प्राचीन है। सर्वप्रथम वैदिक साहित्य में ही कोष के अध्ययन की रूपरेखा दृष्टिगोचर होती है। वैदिक साहित्य से

---

१. "अथापिइदम् अन्तरेण मन्त्रेष्वर्थ प्रत्यय न विद्यते। अर्थम अप्रतियतो नात्यन्तं स्वर संस्कारोददेशः। तद् इदं विद्यास्थानि, व्याकरणस्य कात्स्र्थ, स्वार्थ साधकं च।

२. कोशश्चैव महीपानां कौशश्च विदुषामपि।
उपयोगो महान्यस्मात क्लेशस्तेन विना भवेत ॥

तात्पर्य वेद, आरण्यक, ब्राह्मण, उपनिषद् आदि ग्रन्थों से है। वेद भारतीय संस्कृति के सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रमाणिक ग्रन्थ है। वेद न केवल भारतीय भाषाओं के ही अपितु विश्व की निखिल भाषाओं के आद्यग्रन्थ हैं। जब विश्व में अनेक देशों का अस्तित्व ही नहीं था, तब भारत में आर्य संस्कृति का आविर्भाव हो चुका था, और उस समय भारत की सभ्यता और संस्कृति चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी और इसी सभ्यता के आधार पर भारत अनेक देशों में अग्रगण्य था। यहाँ के लोगों का मानसिक स्तर ऊँचा था। लोगों में किसी प्रकार का मत-भेद नहीं था। स्वच्छन्द विचरण करते हुए आर्य लोग अनार्यों पर विजय प्राप्त करके ज्यों-ज्यों भारत के विभिन्न भागों में फैले, त्यों-त्यों वहाँ की सभ्यता और संस्कृति का स्पष्ट प्रभाव उनकी रचनाओं में पड़ता गया।

वैदिक साहित्य को जीवित रखने की परम्परा पहिले बिलकुल भिन्न थी, प्रत्येक आर्य परिवार के लिए यह आवश्यक था कि शाखानुकूल वैदिक ऋचाओं को कंठस्थ करे, प्रत्येक दिन उसका स्मरण करे तथा अपने परिवार के अन्य लोगों को भी कंठस्थ करावें। इसीलिए वेद का नाम श्रुति भी अत्यधिक प्रचलित हो गया था। इस प्रकार की परम्परा दीर्घकाल तक चलती रही, लेकिन कालान्तर में इस परम्परा में विघ्न दिखाई देने लगा, उसी समय लोगों के सामने यह समस्या उत्पन्न हुई कि वैदिक साहित्य को कैसे जीवित रखा जाय, आवश्यकतानुसार वेद संहिता रूप में पुस्तक-बद्ध होने लगे, जिससे आर्य संस्कृति और सभ्यता भारतवर्ष के भावी पीढ़ियों के लिए अनुपम देन हो गई।

आर्यों की सभ्यता, संस्कृति, समाज तथा भाषा के जानने का एक मात्र साधन वेद है, धर्म के विकास का पूर्ण निरूपण वेदों के अध्ययन से किया जा सकता है। आर्यों की भाषा का मूल स्वरूप वेदों के द्वारा जाना जा सकता है। आर्यों का धर्म, देश की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक स्थित का स्वरूप क्या था, इत्यादि बातों का अनुमान वैदिक ऋचाओं से ही लगाया जा सकता है। वैदिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि वैदिक काल में आर्य और अनार्य दो ही जातियां थीं[1] शतपथ ब्राह्मण (काण्व शाखा ४।१।६) में आर्य जाति के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य आदि की गणना की गई है। आर्य शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद १।५१।८, १३०।८, १५६।५ के मन्त्रों में किया गया है। अथर्ववेद (१६।३२।८) में शूद्रार्यों शब्द का प्रयोग हुआ है जो शूद्र और आर्य का द्योतक है। इस प्रकार वेद भारतीय इतिहास के

---

१. वैदिक साहित्य और संस्कृति वाचस्पति गैरोला पृ० १६

जन्मदाता हैं, विश्व के प्राचीन ग्रन्थ भारतीय धर्म के कामनीय कल्पद्रुम आर्य संस्कृति के प्राणदाता हैं।

अध्यात्म क्षेत्र में भी वेदों का महत्व कम नहीं था। आध्यात्मिक तत्वों से युक्त सामग्री उपनिषदों में भरी पड़ी है। दर्शन शास्त्र का बीज ऋग्वेद के पुरुष एवं नासदीय सूक्तों से प्राप्त होता है। समग्र ऋग्वेद जिसमें प्राकृतिक देवताओं की उपासना है, आर्यों का आदि ग्रन्थ होने के कारण तथा आज तक उसकी तुलना में कोई ग्रन्थ न होने के कारण महत्वपूर्ण है।

वैदिक साहित्य का अध्ययन भाषाशास्त्र की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है। भाषा विज्ञान की उत्पत्ति उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भाग में हुई। जिसमें सबसे महत्वपूर्ण योगदान संस्कृत भाषा का है, जब तक यह नहीं माना गया था कि समस्त भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा है उसके पहले लोगों में बहुत मतभेद था। योरोपीय भाषा विद् ग्रीक भाषा को ही मूल भाषा मानते थे। कुछ लोग लैटिन भाषा को ही आद्य भाषा मानकर इसी से समग्र भाषाओं की उत्पत्ति मानते थे।[1] ईसाई लोग हिब्रू (याहूदी भाषा) को मूल भाषा मानते थे लेकिन संस्कृत भाषा के इतिहास और अन्य भाषाओं के उत्पत्ति के लिए परिवर्तित स्वरूप देखकर एक स्वर से संस्कृत भाषा को अन्य समस्त भाषाओं की जननी स्वीकार किया। इस स्थिति में एक दो शब्दों का उदाहरण जानना यहाँ पर आवश्यक है।

१—फारसी भाषा में तारा को सितारा कहते हैं और अंग्रेजी में star। स्टार में दोनों शब्द वैदिक संस्कृत के स्तृ शब्द के समान्तर हैं ऋग्वेद में अनेक स्थानों में तृतीया वहुवचनान्त स्तृभिः पद का व्यवहार तारा अर्थ में प्राप्त होता है। सितारा और स्टार की प्रकृति स्तृ शब्द के प्रथमा के वहुवचन स्तारः से ही अधिक प्रभावित है।

२—बहन के लिए फारसी में 'हमशीरा' शब्द प्रयुक्त होता है और अंग्रेजी में में सिस्टर। संस्कृत में इन दोनों के लिए मूल दो शब्द हैं समशीरा और स्वसृ हमशीरा का मूल समक्षीरा है। संस्कृत के सकार को फारसी में हकार होता है जैसे सप्त हफ्त, सप्ताह, हफ्ताह के आदि क का लोप हो गया, ष का श हो गया। इसी प्रकार 'सिस्टर' स्वसृ से बना।

३—ऊँट को फारसी में 'शुतर' कहते हैं अंग्रेजी में 'कैमल', लेकिन इन दोनों के मूल अलग-अलग हैं। संस्कृत में ऊंट को उष्ट्र और कमेलक कहते हैं। उष्ट्र

---

१. वैदिक साहित्य और संस्कृति (बल्देव उपाध्याय, शारदा मन्दिर काशी) पृ० ८

के उ और ष का विपर्यास होकर शुतर शब्द बनता है, इसी प्रकार केमल का सम्बन्ध क्रमेल से है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि वेद (संस्कृत) का क्षेत्र विस्तृत है। संस्कृत भाषा सभी भाषाओं की जननी है। सभी भाषाओं के शब्दों का सम्बन्ध इसमें निहित है। अब यह प्रश्न विचारणीय है कि किस आवश्यकता की पूर्ति के उद्देश्य से वेदों की रचना हुई।

आवश्यकता

वैसे तो बहुत से विद्वान वेद को अपौरुषेय मानते हैं। ऋग्वेद से यह सिद्ध होता है कि सर्वहुत् नामक यज्ञ से ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद की उत्पत्ति हुई।[1] लेकिन आज के युग में यह मत अधिक प्रचलित हो गया है कि वेदों का निर्माण आर्यों ने किया है। वेदों का निर्माण आर्यों ने कब किया, इस बात को लेकर विद्वानों में मतभेद है, लेकिन क्यों ? किया गया यह प्रश्न कुछ सिद्धान्तों पर आधारित है। किसी साहित्य का सृजन मानसिक अभिव्यक्ति के द्वारा होता है। और मानसिक अभिव्यक्ति विशेष परिस्थितियों में होता है वेदों का निर्माण एक व्यक्ति के द्वारा नहीं हुआ। वेदों के निर्माण में बहुत से आर्यों ने सहयोग दिया, जो कि कई पीढ़ियों के अनवरत श्रम का परिणाम था। कालान्तर में वह संहिता के रूप में बद्ध किये गये। आर्य लोग कहाँ से आये इस बारे में लोगों में मतभेद है। कुछ लोग आर्यों की मूल भूमि उत्तरी ध्रुव के कटिबंध[2] प्रदेश को तथा कुछ लोग हिमालय[3], कश्मीर और सप्तसिन्धु[4] को ही आर्यों का आदि निवास मानते हैं। कुछ लोगों की राय में आर्यों का मूल देश[5] पंजाब और गंधार देश था। वस्तुतः आर्यों का मूल निवास भारत था वे कहीं से नहीं आए।[6] अगर कहीं से आए होते तो वेदों में इसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष उल्लेख अवश्य होता। दूसरी बात यह है कि आर्यों का प्रचीनतम ग्रन्थ वेद है जो प्राचीनतम ग्रन्थ है। जो भारत में ही उपलब्ध हैं। अगर आर्य भारत के बाहर से आए होते तो यह भारत में कहाँ उपलब्ध हो सकता था।

---

१. तस्माद्यज्ञात सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुः तस्माद् अजायतः। पुरुष सूक्त। ७

२. लोकमान्य तिलक का मत, संस्कृत सा० का इतिहास वा० गैरोला पृ० ५

३. मलूषरूनी कामत, संस्कृत सा० का इतिहास, वा० गैरोला पृ० ६

४. डा० अविनाशचन्द्र गुप्त, –वही–

५. –वही–

६. संस्कृति के चार अध्याय, उदयाचल राजेन्द्र नगर पटना–४ पृ० २२.

'हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आये थे नहीं। "प्रसाद"। इस प्रकार आर्यों का मूल निवास विवादास्पद है। इस पर विद्वान एकमत नहीं हैं। अत: आर्य कहीं से भी आए हों लेकिन यह बात निर्विवाद है कि वेदों की रचना इन्होंने की। किसी भी साहित्य का सृजन मानसिक अभिव्यक्ति के द्वारा जो कि घटनाविशेष से सम्बन्धित रहता है, होती है वेदों का निर्माण आर्यों ने किया जिसमें सहयोग बहुत सी जातियों ने दिया।

सर्वप्रथम मनुष्य एक स्थान में था जो कि एक ही जाति का था लेकिन जब विभिन्न भागों में फैला तो विभिन्न जातियों की श्रेणियों में विभक्त हो गया। जिसकी संख्या तीन से लेकर डेढ़ सौ[1] तक गिनाई गई है। उन्हीं जातियों में आर्य सेमटिक, मंगोल और हब्शी आदि हैं। इन जातियों में विद्वेष की भावना जन्म से ही थी। वैदिक युग में अब सर्वप्रथम सप्तसिन्धु की सीमा पर आर्यों का सामना अनार्यों से हुआ तो उस समय बहुत से अनार्य नष्ट हो गए। आर्य और अनार्य में भेद के कारण आर्य लोग अपने से उच्च और अनार्यों को नीचा समझने लगे, फलस्वरूप आर्य लोग अनार्यों का सामाजिक वहिष्कार भी किया, तथा विवाह भोजन आदि में सम्मिलित नहीं किया[2] शत्रुता बढ़ती गई, इसी घटना से प्रभावित होकर आर्यों ने अनार्यों से पृथकता दिखाते हुए वेदों की रचना की।

वैदिक साहित्य के मूलग्रन्थ—वैदिक साहित्यि के मुख्य ग्रन्थ वेद हैं जो चार हैं—१—ऋग्वेद, २—यजुर्वेद,—३—सामवेद, ४—अथर्ववेद। इन्हीं चार वेदों को पुस्तक-बद्ध करने पर संहिता कहने लगे। ऋक संहिता, यजुः संहिता, सामसंहिता और अथर्व संहिता। प्रत्येक वेद के चार भाग हैं। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्। संहिता मंत्रों का वह भाग है जिसमें देव स्तुति वर्णित है। जिसको विभिन्न युगों में पढ़ा जा सकता है ब्राह्मण ग्रन्थों में मंत्रों की विधि भाग की व्याख्या है, आरण्यक ग्रन्थों में बानप्रस्थ जीवन बिताने वाले बीतराग मनस्वियों के कर्म विधान प्रतिपादित हैं। उपनिषद् ग्रन्थों में अध्यात्म तत्व की गुत्थियों को सुलझाया गया है इसके अतिरिक्त वेदों की अनेक शाखाएँ हैं। ऋग्वेद की पाँच शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शाखायन और माण्डूकेय शाखाएं हैं। यजुर्वेद की शुक्ल और कृष्ण शाखाएं तथा शुक्ल की माध्यन्दिन और काण्व तथा कृष्ण यजुर्वेद की चार शाखाएं हैं। तैत्तरीय मैत्रायणी, काठक और कठ ६ शाखाएं हैं और इसी प्रकार सामवेद की कौथुक और राणायणीय शाखाएं हैं तथा अथर्ववेद की पैम्पलाद और शौनक ६ शाखाएं हैं।

---

१. **संस्कृत साहित्य का इतिहास, गैरोला, पृ० ११**

२. –वही–

उपर्युक्त वैदिक साहित्य के अतिरिक्त वेद की पूर्णता उसके षड अंगों से है १—शिक्षा, २—कल्प, ३—व्याकरण, ४—निरुक्त, ५—छन्द, ६—ज्योतिष।[1] षड् वेदांगों के पूर्व वैदिक साहित्य को पूर्व वैदिक साहित्य और षड् वेदांगों को उत्तरवैदिक साहित्य कहा गया है। इस युग में विद्वानों ने विषय-विचार शैली की दृष्टि से नये साहित्य को जन्म दिया। अध्येता ने वेदों के सम्पूर्ण अंगों[2] को अच्छी तरह समझ गए थे और वेदों का तात्पर्य षडंगों से ही स्वीकार किया था। पाणिनि शिक्षा में वेद भगवान के शिक्षा नासिका, कल्प हांथ, व्याकरण मुख, निरुक्त कान, छन्द पैर और ज्योतिष आँखें हैं।[3]

इस प्रकार के पुरुष वेद उपर्युक्त षड् अंग हैं। इन षड् अंगों की अलग-अलग विशेषताएँ हैं। हाँ इतनी बात जरूर है कि प्रत्येक अंग के रहने पर ही शरीर की शोभा है। जैसे—शरीर से कोई अंग छिन्न-भिन्न हो जाय तो शरीर की जैसी शोभा होती है ठीक उसी प्रकार वेद पुरुष के समस्त अंगों से उसकी शोभा होती है। उसके किसी भी अंग के अलग होने से उसकी शोभा नहीं होती है। उपर्युक्त समग्र सामग्रियों से पूर्ण ही वैदिक साहित्य है, वैदिक साहित्य कहने से इसका बोध वेद से ही होता है। वेद का अर्थ है—जानना। प्राचीन काल में वेद के अर्थ को संकुचित करके केवल मन्त्र और ब्राह्मण को ही वेद कहा गया है[4] विद्वानों ने इस प्रकार से यही कह कर इसके क्षेत्र को सीमित कर दिया था, लेकिन कालान्तर में वेद का अर्थ केवल चार वेदों तक ही सीमित रखा गया। ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् आदि विषय वेद की मर्यादा के अन्तर्गत होते हुए भी अलग माने गए हैं। वेद शब्द चार धातुओं से निष्पन्न होता है १—विद् ज्ञाने। २—विद् सत्तायाम्, ३—विद् लृ लाभे और ४—विद् विचारणे। वेद शब्द का प्रयोग सभी ग्रन्थों में मन्त्र संहिताओं के रूप में किया गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेद शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है कि 'जिनसे सभी मनुष्य सत्य विद्या को जानते हैं, अथवा प्राप्त अथवा विचारते

---

१. शिक्षा कल्पोऽव्याकरणं निरुक्तं छन्दसां च पः
ज्योतिषाऽयनं चैव वेदांगानि षडैव तु ॥

२. वैदिक साहित्य और संस्कृति, वा० गौरोला, पृ० १२६

३. छन्द : पादौ तु वेदस्य, हस्तौ अल्पोऽथ पष्यते,
ज्योतिषामयन चक्षु निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्,
तस्मात् सागंमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीपते ॥ पाणिनीय शिक्षा ॥

४. "मन्यब्राह्मणयोर्वेद नामधेयम्

हैं, अथवा विद्वान होते हैं, अथवा सत्य विद्या के लिए जिनमें प्रयुक्त होते हैं, वे हैं वेद ।[1]

वेद शब्द का व्याकरण निष्पन्न शास्त्रीय अर्थ है ज्ञान, क्योंकि वेद शब्द की व्युत्पत्ति ज्ञानार्थक विद् धातु से है । इस प्रकार वेद से हम यही समझते हैं कि वेद वह है जिससे ज्ञान प्राप्त होता है । ज्ञान शब्द व्यापक अर्थ में है जैसे इतिहास भी एक ज्ञान है । लेकिन ज्ञानार्थक प्रतिपादक 'वेद' शब्द से इतिहास भूगोल इत्यादि का ज्ञान अभिप्रेत नहीं है । वेद कहने से ही उस ज्ञान का बोध होता है जो ईश्वरीय ज्ञान को सर्वप्रथम ऋषियों, महर्षियों ने खोजा था ।

इस प्रकार वेद से तात्पर्य ईश्वरीय ज्ञान से है । यह ईश्वरीय ज्ञान सबको नहीं प्राप्त होता है । यद्यपि ईश्वरीय ज्ञान वेद में समाविष्ट है, फिर भी इस ज्ञान को प्राप्त करना सबके लिए सुगम नहीं है । उस ज्ञान को प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है क्योंकि जब वह ज्ञान वेदों में निहित है, तब दूसरे प्रकार का परिश्रम करना उचित नहीं प्रतीत होता है क्योंकि जिस ज्ञान के लिए मनुष्य निरन्तर प्रयत्नशील रहता है अगर वह वेदों में है तो उसे प्राप्त करना आवश्यक है ।

वैदिक वांङ्मय का सृजन विशेष परिस्थितियों में बहुत पूर्व हुआ जिसको कि आर्यों ने प्रत्येक परिवार के विभाग के अनुसार बहुत दिनों तक कंठस्थ किया जब इस परम्परा में ह्रास होने लगा फलस्वरूप वैदिक साहित्य को संहिता बद्ध किया गया । जब वैदिक साहित्य पुस्तकों में समाविष्ट हो गया तब इस बात की आवश्यकता प्रतीत हुई कि वास्तव में जो वेदों में लिखा है उसका वास्तविक अर्थ क्या है, क्यों इसको पढ़ा जाय इसके पढ़ने से क्या लाभ होगा, इत्यादि प्रकार की समस्याएँ सामने आने लगीं । समस्याएँ आती गईं लोग वैदिक मन्त्रों को याद करते थे लेकिन उसके वास्तविक अर्थ को भी जानने की कोशिश करने लगे । यास्क ने भी लिखा कि जो मन्त्रों को कंठस्थ कर लिया है और उसका फल पाठमात्र में ही मानता है, बाद में नहीं । इस प्रकार से इससे अच्छा याद करने से उसके फल जानना भी आवश्यक हो जाता है, अर्थविज्ञान से रहित शब्द ज्ञान प्रतिभा की व्युत्पत्ति का साधन नहीं है, जिस प्रकार अग्नि के अभाव में शुष्क इन्धन अग्नि को प्रज्वलित नहीं कर सकता, उसी प्रकार अर्थतत्व की उपेक्षा करके समस्त शब्द तत्व का अध्ययन प्रतिभा को कभी भी

---

१. **"विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विदन्ति अथवा विदन्ते लभन्ते विदन्ति विचारयन्ति सर्वे मनुष्याः सत्यविद्या यैर्येषु वा तथा विद्यांसश्च भवन्ति ते वेदाः ।"। स्वामी दयानन्द सरस्वती ।।**

प्रदीप्त नहीं कर सकता है।[1] जिसमें आत्म तत्वज्ञ की महत्ता को स्वीकार किया है वह ज्ञानी व्यक्ति ही आत्म तत्वज्ञ हो सकता है।[2] इस दिशा में नागेश का कथन भी प्रभावशील है।[3]

इस प्रकार अर्थतत्व ही मुख्य है। अर्थतत्व पर ही ध्यान अत्यधिक जाता है। अर्थतत्व के लिए कौन-कौन माध्यम हो सकते हैं अर्थात किन किन प्रकारों से अर्थतत्व जाना जा सकता है इत्यादि समस्त बातों को ही ध्यान में रखकर वैदिक साहित्य और लौकिक साहित्य में वेदांगों का प्रचार हुआ। अब प्रश्न यह सामने आता है कि जब प्राचीन समय वेदों को कंठस्थ करने की परम्परा थी तो बाद में जब संहिताबद्ध किया गया तो क्या सांकेतिक भाषा से काम नहीं चल सकता था। हाँथ या आँख के इशारे तथा अन्य सांकेतिक भाषाओं से भी काम चलाया जा सकता था। इस प्रश्न के उत्तर में यास्क ने संक्षेप में यह कहा है कि भावों या विचारों को अधिक से अधिक सरल तथा सुस्पष्ट रूप में शब्दों के माध्यम से ही प्रकट किया जा सकता है।[4] संकेत या शारीरिक चेष्टाओं द्वारा बहुत थोड़ी बातें प्रगट की जा सकती हैं।

इत्यादि समस्त बातों को स्वीकार करते हुए दण्डी ने यहाँ तक कहा है कि अगर संसार में शब्द नामक ज्योति प्रदीप्त न हुई होती तो यह सारा संसार घोर अज्ञानान्धकार से आच्छादित रहता।[5]

इस प्रकार उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि शब्दों के अर्थ ज्ञान अति आवश्यक हैं, वैदिक साहित्य के अर्थ ज्ञान के लिए वेदकाल में ही व्याकरण शास्त्र का निर्माण हो चुका था इसीलिए षड् वेदांगों में व्याकरण को भी रखा गया। व्याकरण का कार्य कठिन वेद शब्दों की व्याख्या करना। शब्दों की व्युत्पत्ति के उद्देश्य से ही व्याकरण शास्त्र का निर्माण हुआ। वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति के लिए जिन ग्रन्थों का निर्माण हुआ उनका नाम प्रातिशाख्य ग्रन्थ है

---

१. यद् गृहीतमविज्ञातं निगदंनैव शक्यते
अग्नाविव शुष्कैधो न तज्जलिर्कार्हिचिद् ॥ निरुक्त १।१८

२. उत त्वः पश्यन ददर्श वाचमुचत्वः ऋणवन्न ऋणोत्थेनाम्
उतो त्वस्मै तन्वं विसस्मे जायेव पत्यं उशती सुवासाः ऋ० १०।७१।४

३. अर्थपरिज्ञानफलाहिवाक्। सम्यक् ज्ञानं हि प्रकाशनमर्थस्य।
अर्थो हि वाचः शरीरम् (उद्योत)

४. अणीयस्त्वाच्च शब्देन संज्ञाकरणं व्यवहारार्थं लोके। निरुक्त १।१

५. इदम् अन्धतमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयम्
यदि शब्दाह् वयं ज्योतिर आसंसारान्ने दीप्यते। काव्यादर्श १।४

प्रतिशाख्य ग्रन्थ संख्या में अनेक थे लेकिन कुछ ही आज उपलब्ध हैं जिनमें ऋक् प्रतिशाख्य(पार्षद सूत्र) शुक्ल यजुः प्रतिशाख्य, सामप्रतिशाख्य, अथर्व प्रतिशाख्य, तैत्तरीय प्रतिशाख्य हैं ।

वैदिक साहित्य के अर्थज्ञान के लिए जिन प्रतिशाख्यों का निर्माण हुआ वे सम्पूर्ण वैदिक साहित्य के अर्थज्ञान में सहायक नहीं हो सके । आवश्यकतानुकूल वैदिक कोष निघण्टु में कठिन वैदिक शब्दों का संग्रह किया गया, एक ही अर्थ के बोधक कई शब्दों का संग्रह निघण्टु में है जिससे वैदिक साहित्य का अर्थज्ञान सरल हो गया । इस वैदिक कोष निघण्टु के रचयिता कश्यप हैं जो वैदिक काल में ही इस कोष की रचना की थी । भगवान कश्यप वेद के उपज्ञाता थे इस बात को व्यास जी ने स्पष्ट किया है[१] निघण्टु में भी वृषाकपि[२] शब्द संगृहीत किया गया है जिससे यह बात और स्पष्ट हो जाती है कि निघण्टु के कर्त्ता भगवान कश्यप ही हैं यास्क ने बताया कि पहले कल्प में वेद मन्त्र आकाश में विखरे हुए थे अर्थात ईश्वर के अनादि निःश्वास रूप यह वेद राशि नादात्मक वीचि तरंगों में दिव्य आकाश मण्डल में लहरा रहीं थी इनको कृतधर्मा महर्षियों ने पाया । इन विकीर्ण मन्त्रों को एकत्र कर निघण्टु बनाकर अध्ययन अध्यापन द्वारा विस्तार किया गया । पहले इन्हें ब्राह्मण ग्रन्थों में समाम्नाय किया गया ब्राह्मण ग्रन्थ भी पहले समाम्नाय थे । ज्ञान में पर्याप्त न हुए तब इन्हें निरुक्तादि ग्रन्थों में समाम्नाय किया गया ।[३]

निघण्टु

प्राचीनकाल में शब्द संग्रह रूप कोष ग्रन्थों को 'निघण्टु' कहा करते थे ।[४] सबसे प्राचीन उपलब्ध निघण्टु 'वैदिक निघण्टु' ही है । यास्काचार्य ने वैदिक

---

१. वृषोहि भगवान धर्मोख्यातो लोकेषुभारत 'निघण्टुक पदाख्याने विद्धिमां वृषमुत्तमम् । कविर्षराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृषउच्यते । तस्माद वृषाकपि प्राढु कश्यपो मां प्रजापति ।—महाभारत मो पर्व अ० ३४२ से ८६,८७

२. ,, ,, निघण्टु अध्याय ५ खण्ड ६ पद १६

३. "साक्षात्कृत धर्माण ऋषयोवमूवुस्तेऽवरेभ्यः असाक्षात्कृत धर्मेभ्यो उपदेशेन मन्त्रान सम्प्रादु : उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरेभ्यो विम्लग्रहणाय इमं ग्रन्थं समाम्नासिष्णु वेद बेदांगानि च "निरुक्त प्रथम अध्याय षष्ठ पाद २०.

४. निरुक्तम् छज्जूराम शास्त्री भूमिका पृ० १३ ।

'निघण्टु को समाम्नाय शब्द से संबोधित किया है। आम्नाय समाम्नाय शब्दयो-र्वेद एव प्रसिद्धि''। यद्यपि समाम्नाय शब्द वेद वाचक है। निघण्टु में संग्रहीत शब्द वेद के हैं। यद्यपि निघण्टु के शब्द वेदों से अलग होकर अपने मूल समुदाय से अलग हो गए हैं फिर भी उनकी गणना वेदों में की जाती है, क्योंकि वेदार्थ के लिए वे सुगम हैं जिस प्रकार यूथ परिभ्रष्ट गो का गोत्व नहीं समाप्त होता है अर्थात् उसकी गणना गो में ही की जाती है, और वह गो के गुण रूप से भिन्न नहीं होती है। उसी प्रकार वेद से अलग शब्द समूह निघण्टु को भी "यूथ परिभ्रष्ट गवादिन्याय" से[१] वेद ही कहा जाएगा।

यास्कत्वार्थ ने इसी समाम्नाय को निघण्टु कहा है।[२] जो शब्द अब तक किसी ने भी मंत्रों से अलग संग्रह नहीं किए हैं किन्तु मन्त्रों में ही स्थित है और जो दूसरे निरुक्तों में संग्रह किए गए हैं, अथवा पंचाध्यायी रूप में जो पठित हैं उन सब वैदिक शब्दों को निघण्टु कहते हैं। अयास्काचार्य लिखते हैं कि ये शब्द निघण्टु क्यों कहे जाते हैं[३] उत्तर में लिखते हैं "निगमा इमे भवन्ति" निगम होने से ये शब्द निघण्टु होते हैं।

निरुक्त सिद्धान्त के अनुसार शब्दों का तीन प्रकार से विभाग किया गया (१) प्रत्यक्ष वृत्ति (२) परोक्ष वृत्ति (३) अति परोक्ष वृत्ति। जिनमें धातु और प्रत्यय आदि का विभाग स्पष्ट रूप से प्रतीत हो जाता है उसको प्रत्यक्ष वृत्ति शब्द कहते हैं, जैसे—पाचकः, कारकः, हाकः आदि शब्द प्रत्यक्ष वृत्ति शब्द हैं, जिन शब्दों में धातु प्रत्यय आदि का विभाग उतना स्पष्ट नहीं होता है उनको परोक्ष वृत्ति शब्द कहते हैं और जहाँ धातु प्रत्यय आदि का विभाग प्रतीत नहीं होता है, सर्वथा कल्पना से प्रतीत होता है उनको अति परोक्ष वृत्ति कहते हैं।[४]

उपर्युक्त तीनों प्रकार के शब्दों में प्रत्यक्ष वृत्ति का निर्वचन करने में सरलता होती है। परोक्षवृत्ति का भी निर्वचन सरलता से हो सकता है। लेकिन अति-परोक्षवृत्ति का निर्वचन में अत्यन्त कठिनता उठानी पड़ती है। इसलिए उसको पहले प्रत्यक्षवृत्ति और फिर परोक्ष वृत्ति बनाकर फिर अतिपरोक्ष, इससे शब्दों का अवयवार्थ स्पष्ट हो जाता है। निघण्टु शब्द अतिपरोक्ष है, उपर्युक्त प्रक्रिया के आधार पर उसका निर्वचन किया गया है। निघण्टु का परोक्ष वृत्ति 'निगन्तु'

---

१. निरुक्तम आचार्य विशेश्वर पृ० ५
२. तमिमं समाम्नायं निघण्टव इत्याचक्षते निरुक्तम १।१
३. निघण्ट्व : कस्मात।
४. निरुक्तम आचार्य विश्वेश्वर पृ० ७

है और निगम उसका प्रत्यक्ष वृत्ति रूप है निघण्टु के शब्द निश्चित रूप से वेदार्थ का ज्ञान कराने वाले हैं। इसीलिए वे निगम कहलाते हैं।[1] यह 'निगम' शब्द का अर्थ और धातु प्रत्यय का विभाग स्पष्ट होने से वह "प्रत्यक्ष वृत्ति' रूप है। उससे परोक्ष वृत्ति रूप और उसका अर्थ सरलता से समझ लिया जाता है। फिर उसके द्वारा उसके अतिपरोक्षवृत्ति रूप निघण्टु शब्द का अवयवार्थ भी स्पष्ट रूप से समझ में आ जाता है। इसलिए 'अतिपरोक्षवृत्ति' शब्दों के निर्वचन में इस प्रक्रिया का अवलम्बन किया जाता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार निघ (टु नि उपसर्गपूर्वक गम धातु से, 'सिन्तनि गमि-मसि-सचि-घाव, शिम्यस्तुन्।' उणादि (१–६९) सूत्र से तुन् प्रत्यय होकर ग के स्थान में घ तथा त के स्थान में ट रूप वर्ण विकार के बाद निघण्टु शब्द बनता है।

उपर्युक्त प्रकार से 'निघण्टु' शब्द की व्युत्पत्ति गम् धातु से की गई है। दूसरी व्युत्पत्ति हन्[2] धातु से बताते हुए लिखते हैं कि "नघण्टु" शब्द सम् तथा 'आ' उपसर्गों के साथ 'हन्' धातु से निष्पन्न होगा। यहाँ हन् धातु से व्युत्पत्ति करने का तात्पर्य यह है कि निघण्टु के शब्द मर्यादा पूर्वक अर्थात एक विशेष क्रम और विशेष नियम के अनुसार आहत, या पठित है। इस प्रकार इस दशा में सम् आङ् उपसर्ग पूर्वक हन् धातु से आंणादिक तुन् प्रत्यय करने पर समाहन्तु और फिर सम् आँग उपसर्ग के स्थान पर नि उपसर्ग तथा ह के स्थान पर घन्तु के स्थान पर न्टु और निघण्टु बनता है।

इस प्रकार से यास्क ने उपर्युक्त प्रकार से क्रमशः गम्, हन् धातु का आश्रय लेकर निघण्टु शब्द की व्युत्पत्ति दी। आगे तीसरी व्युत्पत्ति ही धातु के द्वारा देते हैं। उसका तात्पर्य यह होता है कि निघण्टु में वेदों के चुने हुए कुछ ही शब्द संकलित किए गए हैं। यद्यपि वेदों में बहुत शब्द हैं उन सबका संकलन नहीं किया गया है, उनमें से कुछ ही चुने हुए शब्द लिए गए हैं। इसीलिए वैदिक कोष का नाम निघण्टु रखा गया है "यद्वा समाहृता भवन्ति" जिसकी व्युत्पत्ति सम् आङ् पूर्वक हृ धातु से ओंणादिक तुन् प्रत्यय करके समाहर्त्तु रूप बनाकर सम् और आङ् उपसर्गों के स्थान पर नि उपसर्ग का तथा ह के स्थान पर ह त के स्थान पर ट और र् के स्थान पर ण् का आदेश करके निघण्टु शब्द बनाया जाता है।

---

१. **निघण्टवः कस्मात् ? निगमा इमे भवन्ति । छन्दोभ्यः समाहृत्य समाम्नाताः। ते निगन्तव एव सन्तो निगमनात् निघण्टव उच्यन्ते इति औपमन्यवः।"**
२. **"अपि वा हननाद् एव स्युः समाहता भवन्ति"।**

इस तरह निघण्टु शब्द की तीन व्युत्पत्तियाँ यास्क ने बताई जिसमें प्रथम प्रकार की व्युत्पत्ति जो गम् धातु से निष्पन्न होती है उस व्युत्पत्ति के कर्त्ता "औपमन्यम्"[1] बताए जाते हैं।

इस प्रकार वैदिक कोष निघण्टु वैदिक शब्दों का समुच्चय किया गया है, जो कि वेदार्थ के लिये सहायक है। उपर्युक्त तीनों व्युत्पत्तियों का मुख्य आधार वेदों के अर्थ ज्ञान में सहायक ही है।

निघण्टु का स्वरूप

निघण्टु में कुल पाँच अध्याय हैं जिसमें कुल १८८३ शब्दों का संग्रह किया गया है। जिन शब्दों का संग्रह किया है उनमें—

प्रथम अध्याय

१.	पृथ्वी नामानि	२१	१०.	मेघ नामानि	३०
२.	हिरण्य नामानि	१५	११.	वाङ नामानि	५७
३.	अन्तरिक्ष नामानि	१६	१२.	उदक् नामानि	१००
४.	साधारणानि	६	१३.	नदी नामानि	३७
५.	रश्मि नामानि	१५	१४.	अश्व नामानि	२६
६.	विक्र नामानि	८	१५.	उपयोजनानि	१०
७.	रात्रि नामानि	२३	१६.	ज्वन्मति कर्माणः	११
८.	उषो नामानि	१६	१७.	ज्वलतो नामानि	११
९.	अह्नामानि	१२			

द्वितीय अध्याय

१.	कर्म नामानि	२६	१२.	क्रुध्यतिकर्माणः	१०
२.	अपत्य नामानि	१५	१३.	क्रुध्य नामानि	११
३.	मनुष्य नामानि	२५	१४.	गति कर्माणः	१२२
४.	बाहु नामानि	१२	१५.	विप्र नामानि	२६
५.	अंगुलि नामानि	२२	१६.	अन्तिक नामानि	११
६.	कान्ति कर्माणः	१८	१७.	संग्राम नामानि	४६
७.	अन्न नामानि	२८	१८.	व्याप्ति कर्माणः	१०
८.	अति कर्माण	१०	१९.	बाघ कर्माणः	३३
९.	बल नामानि	२८	२०.	वज्र नामानि	१८
१०.	घन नामानि	२०	२१.	ऐश्वर्यकर्माणः	४
११.	गो नामानि	९	२२.	ईश्वर नामानि	४

१. "इति श्रौपात्यवः" निरुक्त।

तृतीय अध्याय

१.	बाहु नामानि	१२	१७.	स्तोतृ नामानि	
२.	ह्रस्व नामानि	११	१८.	यज्ञ नामानि	२४
३.	महन्नामानि	२५	१९.	ऋत्विक् नामानि	१८
४.	गृह नामानि	२२	२०.	या च कर्माणः	१७
५.	परिचरण कर्माणः	१२	२१.	दान कर्माणः	१०
६.	सुख नामानि	२०	२२.	अध्येषणा कर्माणः	४
७.	रूप नामानि	२०	२३.	स्वपिति कर्माणौ	२
८.	रूप नामानि	१६	२४.	कूप नामानि	१४
९.	प्रसस्य नामानि	१६	२५.	स्तेन नामानि	१४
१०.	प्रजा नामानि	११	२६.	अन्तर्हित नामानि	६
११.	सत्य नामानि	६	२७.	दूर नामानि	५
१२.	सर्वपद समाम्नायः	९	२८.	पुराण नामानि	६
१३.	पश्यति कर्माणः	८	२९.	नव नामानि	६
१४.	द्वयमाः		३०.	उत्तराणि नामानि	२६
१५.	अर्चति कर्माणः	४४	३१.	द्यावापृथ्वी नामानि	२४
१६.	मेघाविनामानि	२४			

चतुर्थो अध्याय

१.	द्विषष्टि पदानि	३.	त्रयोस्त्रिंशच्छतं पदानि
२.	चतुरुत्तरमशीतिः पदानि		

पंचमो अध्याय

१.	त्रीणि पदानि	४.	द्वात्रिंशत् पदानि
२.	त्रयोदश पदानि	५.	षट् त्रिंशत् पदानि
३.	षटत्रिंशत् पदानि	६.	एक त्रिंशत पदानि

निघण्टु में कुल पाँच अध्याय हैं प्रथम ३ अध्यायों को नैघण्टुक काण्ड कहते हैं। जिसमें कुल १३४१ पद हैं, जिस प्रकार की शैली इसमें है, उसी प्रकार की शैली अमरकोष में दिखाई देती है। इन तीनों अध्यायों में कुछ ऐसे शब्द भी हैं जो वैदिक साहित्य में दिखाई नहीं पड़ते [1] लेकिन अधिकांश वैदिक साहित्य नष्ट हो जाने से यह हम नहीं कह सकते कि ये शब्द वैदिक साहित्य में नहीं थे, इस नैघण्टुक काण्ड में प्रथम अध्याय में ४१५ द्वितीय में ५१६, तृतीय में ४१० पदों को मिलाकर १३४१ पद हैं। इस काण्ड में समानार्थक शब्द

---

१. निरुक्त ७।१६

जिसको एकार्थक शब्द भी कहते हैं। इसमें एक ही अर्थ के बहुत शब्दों का संग्रह है अर्थात एक एक ही शब्द के अधिक पर्यायों का उल्लेख किया गया है, और इसी प्रकार एक अर्थ का प्रतिपादन करने वाली समस्त धातुओं का एक जगह संग्रह किया गया है अर्थात वेद में इतने शब्द या इतनी धातुएँ इस अर्थ में प्रयुक्त होती हैं।

निघण्टु का दूसरा काण्ड नैगम काण्ड कहलाता है, इसमें २७८ पद हैं। ये किसी के पर्याय नहीं हैं। सभी शब्द स्वतन्त्र हैं, इस काण्ड को एकपदिक काण्ड भी कहते हैं। इसमें अस्पष्टार्थक शब्दों का संग्रह है जिनके प्रकृति प्रत्यय आदि के विषय में पर्याप्त सन्देह है, इसीलिए यास्क ने इस अध्याय के प्रारम्भ में व्याख्या करते हुए लिखा है कि "अब जो अनेकार्थक एक शब्दों के प्रकरण हैं उनकी क्रम से व्याख्या करेगें और जिनमें संस्कार अर्थात प्रकृति प्रत्यय आदि का विभाग का ज्ञान नहीं होता है, इस प्रकार की शब्दों की क्रमशः व्याख्या करेगें। इसे नैगम काण्ड अथवा एकपदिक काण्ड कहते हैं।[1] इस अध्याय में निघण्टु का चौथा अध्याय आता है। निघण्टु का तीसरा काण्ड दैवत काण्ड कहलाता है, तीसरे काण्ड में केवल पंचम अध्याय मात्र आता है। इस काण्ड की व्याख्या निरुक्त के ६ अध्यायों (७-१२) में की गई है। इस काण्ड में देवताओं के रूप तथा स्थान का निर्देश है।

निघण्टु तथा निरुक्त का परस्पर सम्बन्ध बोधक विवरण—

निघण्टु				**निरुक्त**
१. नैघण्टुक काण्ड	१ अध्याय)		१.	अध्याय (भूमिका)
(गौः अपारे)	२ अध्याय)	१३४१	२	अध्याय
	३ अध्याय)	पद	३	अध्याय
२. नैगम काण्ड	४ अध्याय			
(ज़हां ऋषीसम्)				
(क)	१ खण्ड—६२ पद		४	अध्याय
(ख)	२ खण्ड ८४ पद		५	अध्याय
(ग)	३ खण्ड—१३२ पद		६	अध्याय
	२७८			पूर्व षटक

१. **"अथ यान्यनेकार्थान्येक शब्दानि तान्यतोऽनुक्रमिष्यामः अववगत संस्कारांश्च निगमान्। तदेकपदिकमित्याचक्षते ॥ निरुक्त चतुर्थ अध्याय। पाद प्रथम।**

३. दैवत काण्ड ५ अध्याय
(अग्नि देवपत्नी)

(क)	१ खण्ड	३ पद	७ अध्याय देवता विषयक विशिष्ट भूमिका के साथ
(ख)	२ खण्ड	१३ पद	८ अध्याय
(ग)	३ खण्ड	३६ पद	९ अध्याय
(घ)	४ खण्ड	३२ पद	१० अध्याय
(च)	५ खण्ड	३६ पद	११ अध्याय
(छ)	६ खण्ड	३१ पद	१२ अध्याय
			उत्तर षटक

निघण्टु का महत्व

निघण्टु वैदिक शब्दों का कोष या संग्रह ग्रन्थ है यास्क ने इसी निघण्टु नामक ग्रन्थ में व्याख्या प्रस्तुत करके 'निरुक्त' नामक ग्रन्थ की रचना की है। निरुक्त का अर्थ ही है कि अर्थ की जानकारी के लिए स्वतन्त्र रूप से जिन पदों का संग्रह किया गया है, वही निरुक्त कहलाता है।[1] निघण्टु की रचना कोष रचना के अभी तक ज्ञात प्रयासों में प्रथम है। भारत में तो यह कोष साहित्य के आरम्भ का द्योतक है। साहित्य में जितने बिखरे हुये शब्द हैं उन्हें एकत्र करके सजा देना उस प्राचीन काल के लिए एक नवीन वस्तु ही थी। वैदिक साहित्य को संहिता रूप में आना और उसके बाद विषय का परिज्ञान और अनुशीलन करने का एक मात्र आधार निघण्टु ही है। निघण्टु ने तत्कालीन स्थिति विषय ज्ञान में मोड़ उत्पन्न कर दिया था लोगों को यह आधार सा बन गया था कि वैदिक साहित्य का ज्ञान नितान्त आवश्यक हो गया है। क्योंकि जब तक वस्तु की स्थिति न मालूम हो तब तक उसका मापदण्ड कैसे किया जाय और वैदिक साहित्य का मापदण्ड तो उसके विषय परिज्ञान से ही संभव था जो कि उस समय निघण्टु ने किया। निघण्टु ने वैदिक साहित्य का मूल्यांकन किया वैसे तो निघण्टु में सभी वैदिक संहिताओं के सभी शब्दों का समुच्चय नहीं किया गया फिर भी जो क्रमबद्ध संग्रह किया गया है वह तत्कालीन सिद्धान्त में अग्रणी होने से अत्यन्त श्रेष्ठ माना गया है।

१· **"अर्थाऽवबोधेनिरपेक्षतया पदजातं यत्र उक्तं तद् निरुक्तम"** **(सायणाचार्य)**

निघण्टु के व्याख्याकार

निघण्टु की व्याख्याओं में मुख्य यास्क की ही व्याख्या है जो निरुक्त नाम से विश्रुत है। जिसका विवेचन आगे स्वतन्त्र रूप से किया जायगा। दूसरी व्याख्या देवराज यज्वा की प्राप्त होती है। इनके पितामह का नाम था देवराज यज्वा और पिता नाम यज्ञेश्वर था इनके नाम से ही स्पष्ट होता है कि दक्षिण भारत के निवासी थे। कुछ लोगों के अनुसार ये रंगेशपुरी के पास ही किसी ग्राम के निवासी थे। इन्होंने निघण्टु के पदों को व्याकरण की कसौटी में कसकर रखा है। जिसके लिए इन्होंने पाणिनि भोज के व्याकरणों से सहायता ली है। इन्हीं सभी शब्दों के व्याख्या में आचार्यों के नाम भी लिये हैं। व्याख्या के पहले इन्होंने छोटी सी भूमिका दी है, जिसमें अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के नाम का उल्लेख किया है,१. स्कन्द स्वामी, २. वेद भाष्य-स्कन्द स्वामी भवस्वामी राहदेव, श्री निवास माधव देव, उव्रट भट्‌ट भास्कर मिश्र, भरत स्वामी, ३. पाणिनि व्याकरण, ४. उणादिवृत्ति ५. निघण्टु व्याख्यायें–क्षीरस्वामी[1] अनन्ताचार्य, ६. भोजराज का व्याकरण ७. कमल नयन का निखिल पद संस्कार इत्यादि। देवराज के उद्धरण अमरकोष टीका (अमर कोषोद्धारन) में ज्यों के त्यों उपलब्ध होते हैं। अतः उपरोक्त आचार्यों की निघण्टु व्याख्या से तात्पर्य अमर व्याख्या से ही प्रतीत होता है। अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार देवराज ने नेघण्टुक काण्ड की ही व्याख्या अधिक विस्तार से की है।[2] इस प्रकार देवराज ने निघण्टु की व्याख्या प्रस्तुत की थी। देवराज बहुत बाद के थे, राजा भोज के बाद इनका होना ठीक बैठता है। भोजराज का समय १२वीं शती के आसपास है, अतः देवराज १२वीं शती के बाद के हैं। निघण्टु की व्याख्या जो अधिक विश्रुत है, वह निरुक्त है।

निरुक्त प्रक्रिया वैशिष्ट्य

वैदिक वांग्मय का एक मात्र कोष प्राचीन काल में निघण्टु ही प्राप्त होता है। निघण्टु में वेदों के कठिन शब्दों को निकाल कर केवल संगृहीत किया गया था, उससे भी वेदार्थ ज्ञान में कठिनता मालूम होती थी। इस कठिनता को भी दूर करने के लिए यास्काचार्य ने उसी निघण्टु की व्याख्या लिखी जिसे निरुक्त कहा गया। वैदिक शब्दों की व्युत्पति करने वाला एकमात्र प्राचीन ग्रन्थ निरुक्त है, इसमें निघण्टु में आये हुए वैदिक शब्दों की व्युत्पत्ति बड़े ही रोचक

---

१. "इदं क्षीरस्वामी अनन्ताचार्यादि कृतां निघण्टु व्याख्यां क्रियते"

२. "विरचयति देवराज नेघण्टुक काण्ड निर्वचनम्।–६

ढंग से बतलाई गई है। यह अर्थ का बोध कराने के कारण षड् वेदांगों में अपना विशेष महत्व रखता है। निरुक्त एक और कठिन वैदिक शब्दों का व्युत्पत्ति बोधक ग्रन्थ होने से निघण्टु के विषय को अपने में समा लेता है और दूसरी ओर व्याकरण शास्त्र का सर्वस्व, मीमांसक[1] ग्रन्थ होने के कारण कहा गया है। यास्क का कहना है कि प्रत्येक शब्द किसी न किसी धातु के साथ अवश्य सम्बन्ध रखता है। प्रत्येक शब्द व्युत्पन्न है, अर्थात किसी न किसी धातु से बने हुए हैं। निरुक्त का यह विशिष्ट विषय है कि शब्दों को धातुज मानकर उसकी व्याख्या करना निरुक्त यद्यपि षडवेदांगों में चौथा स्थान प्राप्त करता है, लेकिन अपनी विशेषताओं के कारण ही षड्वेदांगों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है, निरुक्त यद्यपि निघण्टु में आये वैदिक शब्दों का व्याख्या ग्रन्थ है तथापि उसमें व्याकरण शास्त्र, भाषा विज्ञान, साहित्य समाज शास्त्र, और इतिहास आदि विषयों की प्राचीनतम जानकारी प्राप्त करने के लिए पर्याप्त सामग्री विद्यमान है। भाषा विज्ञान का उदय ३०००वर्ष पहले निरुक्त से ही होता है यों तो भाषा विज्ञान का प्रसार १०० वर्ष के भीतर ही हुआ है और वह भी संस्कृत भाषा यूरोप में प्रचार हो जाने पर समाज शास्त्र का वीजारोपण निरुक्त से ही दिखाई देता है। यास्क ने यद्यपि शब्दों की व्युत्पत्ति की है परन्तु उन शब्दों की व्युत्पत्ति से यह पता चलता है कि तत्कालीन सामाजिक स्थिति और सामाजिक विचार कैसे थे यास्क ने "दुहिता" शब्द की व्युत्पत्ति की है दूरे हिता दुहिता अर्थात कन्या पिता से दूर रहने पर ही पिता की भलाई करती है। उपर्युक्त बातों से स्पष्ट होता है कि निरुक्त में सभी प्रकार के शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त होता है। मुख्य रूप से व्याकरण और भाषा विज्ञान का मुख्य स्थान है।

निरुक्त की गणना वेदांगों में चौथे स्थान में होती है। यहाँ एक शंका उत्पन्न होती है कि निरुक्त की गिनती वेदांगों में नहीं होनी चाहिए क्योंकि वह स्वतन्त्र ग्रन्थ नहीं है। वह तो निघण्टु ग्रन्थ की व्याख्या है। स्वतन्त्र नहीं प्रस्तुत निघण्टु को ही वेदांग माना जाना चाहिए, वही वेदार्थ ज्ञान में सहायक है, सायण ने इसका शंका समाधान निरुक्त के दो लक्षण मानकर किया। पहले लक्षण में बताया कि निरुक्त का ही तात्पर्य है कि अर्थ की जानकारी के लिए स्वतन्त्र रूप से जो पदों का संग्रह है वही निरुक्त कहलाता है।[2] इस लक्षण से निघण्टु का भी निरुक्त मान लिया गया है। गवादि देव पत्न्यन्त शब्द समुदाय रूप निघण्टु में इतने नाम पृथ्वी के हैं इतने नाम सुवर्ण के हैं इस

---

१. "तदिदं विद्यास्थानम् व्याकरणस्य कात्स्र्न्यम्।"

२. "अर्थाऽवबोधे निरपेक्षतया पद जातं यत्र उक्तं तन्निरुक्तम्।"

प्रकार परनिरेपेक्षतया पदार्थ ज्ञान कराया गया है। दूसरा लक्षण है उनका "एकैकस्य पदस्य संभाविता अवयवार्था निःशेषेण उच्यन्ते तदपि निरुक्त" इस लक्षण से निघण्टु व्याख्या रूप यास्ककृत शास्त्र भी निरुक्त सिद्ध हुआ, क्योंकि यास्क के निघण्टु व्याख्यान में ही निर्वचन द्वारा एक-एक पद के संभावित अवयवार्थ (प्रकृति प्रत्ययार्थ) साकल्पेन बताए गए हैं। उदाहरणार्थ हिरण्य शब्द को लीजिये—'हिरण्यं कस्माद् ह्रियते आयम्यमानम् इति वा, ह्रियते जनाज्जनम् इतिवा, हितरमणं भवति, इतिवा हृदय रमणं भवति वा, हर्यतेर्वा स्यात् प्रेप्साकर्मण:। सोने को संस्कृत में हिरण्य कहते हैं, निघण्टु में भी सोने के नामों में हिरण्य शब्द आया है[1] स्वर्ण 'शब्द के लिए हिरण्य शब्द का प्रयोग क्यों हुआ इस बात को निरुक्तकार ने अनेक निर्वचनों द्वारा समझाया है।' हिरण्य शब्द किस कारण अथवा किस धातु से बनता है इसको देने के लिए हिरण्य शब्द का निर्वचन करते हैं। १—सोने का तार खींचते समय विस्तारित किया जाता हुआ, दूर तक ले जाया जाता है, अथवा २ – व्यवहार पें एक आदमी से दूसरे आदमी के पास ले जाया जाता है। इन दोनों अर्थों में 'हृ हरणे' धातु से हिरण्य शब्द बनता है, ३—हितकर तथा रमणीय होता है, ४—अथवा हृदय को लुभाने वाला होता है, इन अर्थों में हितपूर्वक 'रम' अथवा हृदय पूर्वक रम धातु से लोप, आगम वर्ण विकार आदि द्वारा हिरण्य शब्द की सिद्धि होती है अथवा ५—'हर्यगतिकान्त्योः धातु की अनेकार्थ सिद्धान्त के अनुसार इक्षार्थक मानकर हर्य धातु से "हर्यतेः कन्यन् हिरच्चे उणादि ५-७३२ सूत्र से 'कन्यन् प्रत्यय तथा धातु को 'हिरच्चे' आदेश होकर 'हिरण्य' शब्द सिद्ध होता है।[2] इस प्रकार निरुक्त को भी वेदांग मानना ही पड़ेगा क्योंकि वह व्याख्येय निघण्टु ग्रन्थ का तात्पर्य बताता है, उसके विपरीत कुछ भी नहीं कहता। महाभाष्यकार पतंजलि ने पस्पशान्तिक में व्याकरण शास्त्र का विवरण करते हुये केवल सूत्रों को ही नहीं, उनका व्याख्यान, उदाहरण, प्रत्युदाहरण आदि सबको ही व्याकरण कहा है। निघण्टु ग्रन्थ का व्याख्यान होते हुए भी निरुक्त एक स्वतन्त्र निर्वचन शास्त्र है। यद्यपि इसका उद्भव प्रथमतः वेदार्थ के लिये ही हुआ है, तथापि वह केवल वेदार्थ ज्ञान में ही नहीं, अपितु समस्त संस्कृत वांग्मय के अर्थज्ञान में उपयोगी है। निर्वचन शब्दों का ही हुआ करता है, इसलिए निर्वचन प्रक्रिया बतलाने के लिये उदाहरण रूप में किन्हीं शब्दों को लेना ही था। यास्क ने निघण्टु में प्रयुक्त शब्दों को ही अपने निर्वचन का आधार बनाया,

---

१. **इति पंचदश हिरण्य नामानि १।२ निघण्टु**
हेम, चन्द्रम्, रुक्मम, श्रयः, हिरण्यम् श्रादि।

२. **निरुक्तम् श्राचार्य विश्वेश्वर टीका पृ० १७७, १७८**

क्योंकि निघण्टु वैदिक शब्दों का ही संग्रह है, और वेदार्थ ज्ञान के लिये ही निरुक्त शास्त्र की उत्पत्ति हुई है। इसलिए निरुक्त के द्वारा निघण्टु शब्दों की व्याख्या के साथ वेदार्थ ज्ञान भी हुआ और निर्वचन शास्त्र का भी निरूपण हुआ। अतः पृथक निर्वचन शास्त्र होने के कारण निरुक्त को वेद का स्वतन्त्र अंग मानना ही उचित है। निघण्टु व्याख्यान होने मात्र से उसे व्याख्यान कहना उचित नहीं।

निघण्टु को निरुक्त नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमें शब्द निर्वचन प्रक्रिया नहीं बताई गई है। निरुक्त शब्द का जो अर्थ होता है वह निघण्टु से नहीं उचित बैठता है। अतः निघण्टु को निरुक्त नहीं माना जा सकता है। अब बात यह स्पष्ट होती है कि निघण्टु जब निरुक्त नहीं है, तो उसको वेदांग नहीं माना जायेगा, इसका उत्तर यह है कि निघण्टु को वेदांग मानने की आवश्यकता ही क्या है। वेदांगों में न गिन से क्या उसका वेदार्थ ज्ञानोपकारकत्व नष्ट हो जायगा, अगर ऐसी बात है तो इतिहास, पुराण, ब्राह्मण आदि भी ज्ञानोपयोगी वेदार्थ के लिये नहीं माने जायेंगे। लेकिन ऐसी बात नहीं है निघण्टु वेदांगों में न होते हुये भी वेदार्थ ज्ञान के लिए आवश्यक है। अतः निघण्टु का अध्ययन निरुक्त के ज्ञान के लिए भी आवश्यक है क्योंकि निघण्टु के ही शब्दों को निरुक्त में निर्वचन किया गया है।

निरुक्त का लक्षण

निरुक्त में यह बताया गया है कि कौन सा शब्द किस विशिष्ट अर्थ में क्यों रूढ़ि है। सम्पूर्ण शब्द राशि नाम, आख्यात्, निपात और उपसर्ग इन चार स्कन्धों में रहती हैं।[1] नाम संज्ञा को कहते हैं, जिन पदों में भाव की प्रधानता हो वह 'आख्यात्' है, तथा जिनमें सत्व की प्रधानता हो वह नाम है[2] ''जिन पदों के अर्थों में साध्यभाव (क्रिया) की प्रधानता हो वे 'आख्यात हैं'' 'आख्यात्' शब्द की व्युत्पत्ति भी कोषकारों ने यह की है कि जहाँ प्रधान रूप से क्रिया और गौण रूप से द्रव्य का कथन हो वह आख्यात है[3] 'आख्यात' शब्दों में प्रधान रूप से क्रिया की प्रतीति होती है।

जिनमें 'सत्व' अर्थात द्रव्य की प्रधानता हो वे 'नाम' शब्द हैं। नाम शब्दों की द्रव्य प्रधानता के कारण ही वृहद्देवताकार ने नाम शब्दों के स्वरूप को

---

१. तद्यानि चत्वारि पद् जातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च तानीमानि भवन्ति। निरुक्त—१।

२. भाव प्रधानम आख्यातम्। सत्व प्रधानानि नामानि। निरुक्त

३. आख्यायतै प्रधान भावेन क्रिया अप्रधान भावेन द्रव्यं यत्र तद् आख्यातम्।

निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है अर्थात जिस शब्द के उच्चारण करने से द्रव्य की प्रधान रूप से प्रतीति हो उसे व्याकरण में विद्वान लोग 'नाम' कहते हैं इसी प्रकार जिस शब्द से भिन्न अर्थों में आठ विभक्तियां प्रयुक्त होती हैं और वचन तथा लिंग की दृष्टि से अन्तर पाया जाता है[1] उसे आचार्य 'नाम' कहते हैं। इसी प्रकार यास्क ने उपसर्ग और निपात को भी गार्ग्य, शाक टायन और औदुम्बरायण के मतों को प्रदर्शित करते हुये अपना स्वतन्त्र मत दिया है।

इसी मत को कात्यायन ने भी प्रकट करते हुये लिखा है कि नाम और निपात जिसमें होते हैं उसे निरुक्त कहते हैं।

"नाम धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे"

निरुक्त में (१) वर्णागम्, (२) वर्ण विपर्यय, (३) वर्ण विकार (४) वर्ण-नाश (५) धातु का उसके अर्थातिशय से योग[2] इन समस्त विषयों का प्रतिपादन किया गया है।

निरुक्त प्रत्येक नाम का निर्वचन करता है, जैसे अग्नि शब्द है इसका आख्यातज निर्वचनक्रम है "अग्निः अग्रणी भवति" इसी प्रकार 'ओंकार' शब्द का निर्वचन किया गया है। 'आपृधातु'से ओंकार बना[3] स्मृतियों में भी बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ बिना निरुक्त के निर्वचन के समझ में नहीं आता है जैसे "मांसभक्षयिताऽमुत्र यस्यमांसमिहाद्म्यह। एतन्मांसस्यमां सत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः। इति मांसस्य निर्वचनम्।" मांस का निर्वचन कोत्स ने भी किया है "मांसम् माननं वा मानसम् वा मनौयस्मिन् सीदन्ति वा। मनु ने वृषली शब्द का निर्वचन करके स्त्री बताया "श्राद्धमुक् वृषली कल्पम्" लेकिन यास्क ने वृषली शब्द का निर्वचन करके व्यभिचारिणी स्त्री बताया है "वृषलो वृषशीलो भवति वा वृषाशीलो वा। इसी प्रकार महाभारत शब्द का निर्वचन यास्क ने भी किया है।[4]

---

१. शब्देनोच्चारितेनेह येन द्रव्यं प्रतीयते। तदक्षरविधौयुक्त नामेत्याहुर् मनीषिणः अष्टौ यत्र प्रयुज्जते नानार्थषु विभक्तयः तन्नम कवयः प्राहुर्भदे-वचन लिंगयोः बृहद्देवता १।४२, ४३.

२. वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगः तदुच्यते पंचविधं निरुक्तम्।

३. सर्वमाप्नोति इति ओंकारः।

४. महत्वाद् भारतत्वाच्च महाभारमुच्यते।
निरुक्तमस्ययो वेद सर्व पाप प्रमुच्यते।

यास्क ने स्वयं निरुक्त का प्रयोजन बताते हुए लिखा है १ अध्याय के ४ पाद में सब नामों को सवनामों का आख्यातज बताया है, जिसका तात्पर्य यह है कि सब नामों के आख्यातज होने से जो अतिपरोक्ष वृत्ति नाम है उसका निर्वचन निरुक्त के द्वारा हो सकता है, (२) दूसरे प्रयोजन में बताया कि निरुक्त से मन्त्रों के अर्थों का परिज्ञान प्राप्त करना मालूम होता है। तीसरे प्रयोजन में बताया कि मन्त्रों के अर्थ का ज्ञान से सम्बन्ध ही निरुक्त तथा चौथे प्रयोजन में बताया कि निरुक्त से देवता नाम ज्ञान का निरूपण।

निरुक्त का परिचय

निरुक्त व्याख्या ग्रन्थ है निघण्टु पाँच अध्याय तीन काण्डों में विभक्त है। प्रथम तीन अध्यायों को नैघण्टुक काण्ड कहते हैं, चौथे अध्याय को नेगम तथा पंचम अध्याय को देवता काण्ड कहते हैं। इसी निघण्टु पर यास्क ने निरुक्त लिखा है। यास्क के निरुक्त में कुल चौदह अध्याय (परिशिष्ट के दो अध्यायों को जोड़कर) हैं, जो दो षटक (१) पूर्व षटक् और उत्तर षटक् के नाम से अभिहित हैं—प्रारम्भ के ६ अध्याय जिसमें निघण्टु के नैघण्टुक काण्ड और नेगम काण्ड सम्मिलित है पूर्व षटक के नाम से कहे जाते हैं और बाद के ६ अध्याय जो षटक् कहलाता है इससे यह पता चलता है कि परिशिष्ट को दो अध्याय यास्क रचित नहीं है। कुछ भी हो परिशिष्ट के ? दो अध्यायों को यास्करचित मानना ही होगा। निरुक्त के प्रथम अध्याय में कुल षष्ट पाद हैं। यास्क निरुक्त का प्रारम्भ करते हुए लिखते हैं कि "ऊँ समाम्नाय:[१] समाम्नाय:" अर्थात् समाम्नाय संकलित हुआ जिसकी व्याख्या करनी चाहिए। निरुक्त के प्रथम अध्याय में ग्रन्थ का महत्व विरोधियों का खण्डन सारमूत सिद्धान्त का प्रतिपादन आदि की व्याख्या है। निरुक्त के प्रथम अध्याय में निम्न बातों की व्याख्या है (१) निघण्टु[२] शब्द की व्याख्या, लक्षण आदि (२) पदों के भेद[३] (३) ६ भाव[४] के विकार (४) शब्दों में धातुण सिद्धान्त (५) उपयोगिता यास्क का कहना है कि नाम धातुओं से बने हैं।

---

१. निरुक्त १–१

२. निरुक्त प्रथम अध्याय प्रथम पाद

३. निरुक्त "तद्यान्येतानि चात्वारि पद जातानि नामाख्याते च, उपसर्ग निपाताश्चतानीभानि भवन्ति" प्रथम अध्याय प्रथम पाद।

४. "षड् भाव विकारा भवन्ति"। निरुक्त प्रथम अध्याय प्रथम पाद।

दूसरा अध्याय :—दूसरे अध्याय में कुल ७ पाद हैं। प्रथम पाद तक यास्क के निरुक्त की भूमिका है दूसरे अध्याय के दूसरे पाद से निघण्टु की व्याख्या प्रारम्भ होती है। प्रथम पाद का प्रारम्भ हुआ है "अथ[1] निर्वचनम्" इससे लोगों को यह शंका होती है कि 'अथ' शब्द का प्रारम्भ ग्रन्थ प्रारम्भ करने के लिए किया गया है। इसलिए यास्क द्वारा द्वितीय अध्याय से ही निरुक्त प्रारम्भ होता है। दूसरी बात यह कि जिस मुख्य उद्देश्य से निरुक्त की रचना हुई उस मुख्य 'निघण्टु' शब्दों की व्याख्या भी दूसरे अध्याय के दूसरे पाद से प्रारम्भ होती है। इससे यह प्रतीत होता है कि प्रथम पाद ग्रन्थ प्रारम्भ करने की भूमिका और दूसरे पाद से व्याख्या जो नियमानुकूल ठीक ही है तथा प्रथम अध्याय यास्क रचित या तो नहीं है अगर है भी तो बाद में जोड़ा गया है। लेकिन यह कथन सर्वथा भिन्न है क्योंकि यास्क ने प्रत्येक अध्याय में प्रथम अध्याय की भूमिका की ओर संकेत किया है और लिखा है कि "पूर्वमेव व्याख्यात:" अत: इससे सिद्ध होता है कि प्रथम अध्याय यास्क रचित ही है और पहले ही लिखा गया है। चाहे भले ही दूसरे अध्याय के आरम्भ "अथ" शब्द का प्रयोग हुआ हो। यद्यपि निरुक्त निघण्टु का भाष्य है फिर भी उसमें कहीं शब्दों को छोड़ दिया गया है। सर्वप्रथम पृथ्वी के २१ नामों में केवल गो शब्द का ही निर्वचन किया गया है, बाकी छोड़ दिया गया है।

द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद में निघण्टु के गिनाए गए १५ हिरण्य नाम[2] की व्याख्या की गई, इसके बाद अन्तरिक्ष[3] नाम की व्याख्या की गई। चतुर्थ पाद में आदित्य[4] नाम की व्याख्या तथा पंचम पाद में १५ रश्मि नामों में रश्मि की व्याख्या की गई है। वृत्र शब्द की व्याख्या में बताया कि निरुक्त कारों के मत में वृत्र को मेघ कहते हैं।[5] २।१६। षष्ठ पाद के प्रारम्भ में २३ रात्रि नामों का उल्लेख किया गया है और रात्रि के निर्वचन में "प्ररभयति भूतानि नक्तं चारीणि" "नक्त (रात्रि) में करने वाले जीवों को प्रसन्न करती है, इसी पाद में उषा[6] के १६ नामों का भी वर्णन बड़े अच्छे ढंग से किया गया है तथा दिनों के १२ नामों का वर्णन करते हुए लेखन ने स्वयं अपनी प्रतिभा

---

१. "अथ निर्वचनन् निरुक्त अध्याय २, पाद २।
२. "हिरण्य नामानि उत्तराणि पंचदश" निरुक्त अध्याय २ पाद ३।
३. "अन्तरिक्ष नामानि उत्तराणि षोडश" निरुक्त २।३।
४. साधारणात्युत्तराणि षड् दिवश्चादित्यश्च निरुक्त २।४।१३।
५. निरुक्त २।४।१६।
६. निरुक्त २।६।१६।

को प्रगट किया है "उपाहरन्ति अस्मिन कर्माणि"। द्वितीय अध्याय के सप्तम पाद में ५७ वाक् नामों का उल्लेख किया तथा दूसरे अध्याय के अन्त में निघण्टु के प्रथम अध्याय के अन्तिम पाद जिसमें ११ धातु जलना अर्थ में है का उल्लेख कर द्वितीय अ० समाप्त किया।

निरुक्त के तृतीय अध्याय के प्रथम द्वि० पाद के २६ कर्मनाम १५ अयत्य नाम तथा अन्य नामों का उल्लेख के साथ ही १८ वज्र नामों को बताते हुए निघण्टु के द्वि० अध्याय को समाप्त करते हैं। यहां कुछ नामों की व्याख्या छोड़ दी गई है। तीसरे पाद में बहुकाम[1] और ह्रस्वनाम का निर्वचन किया गया है। चतुर्थ पाद में एकार्थ में अनेक शब्द और अनेकार्थ में एक शब्द का विवरण किया गया है। अनवगत संस्कार हुए शब्दों का भी इसमें वर्णन किया गया है। चतुर्थपाद में "अर्चति कर्मणों उत्तरे धातवः" पूजा के कर्म में इसमें मेधावियों[2] के नाम की भी गणना की गई है "विप्रधी मेधावी" उसका निर्वचन "मतौ धीयते इति मेधा" किया गया है।

दूसरा नेगम काण्ड

इसमें एकार्थ में अनेक शब्द और अनेकार्थ में एक शब्द बताया गया है। जैसे "विस्तीर्ण हि तमज्ञानमृषिः संक्षेपतौ ब्रबीत इत्थं हि विदुषां लोके समासव्या सधारणम्।" नेगम में एक पदादि और अनवगत संस्कार पदों का वर्णन किया गया है। यथा "शब्द रूपः पदार्थश्च व्युत्पत्तिः प्रकृतर्गुणः" कहीं पर एक के भी दो पद किए गए हैं जैसे पुरुषादः एक शब्द और पुरुषान दनाय" जैसे तित उ[3] शब्द का नेगम परिवयन हुआ तुनवद्वा, तुनवद्वा, तुन्नवद्वा। एकार्थ में अनेक शब्द जैसे "अरितिद्यौरदितिरन्तक्ष ६"। पंचम पाद में वाराह शब्द आया है। यह अनवगत संस्कार अनेकार्थ है मेघ को भी वाराह शब्द से उच्चरित कहते हैं, वरं उदकं आहारं यस्य स वराहः। इन्द्र को भी वाराह कहते हैं वरं वरं मूलं वहति उद्यच्छति वाराहः। "उर्वशी" यह शब्द भी अनवगत है यह अप्सरा के अर्थ का वाचक है, उस महान अस्याः वराः कामः सेयं वसति सतीत्युच्यते। अप्सरा का अर्थ है अप्सारिणी भवति अपः प्रति नित्यमेन सरति तस्य प्रियमुदकं तस्मादप्सरा इति"। और शब्दी में "निचुम्पुणः वृक। इत्यादि शब्द भी अनेकार्थ और अनवगत हैं। अनवगत में जोष, कितव, दूढ्य, शब्द, अमरः, सोमानं आदि है। जिसका अर्थ व्याख्या किया गया है।

---

१. बहुनामानि उत्तराणि द्वादशं निरुक्त ३।३।१३।

२. मेघाविनामान्युत्तराणि चतुर्विंशतिः" निरुक्त ३।४।१९।

३. तितउ परिपवनं भवति ततवद्वा तुन्नवद्वा तितमात्र तुन्नमितिवा' निरुक्त ४।२।९.

दैवत काण्ड

वेद की सम्पूर्ण शाखाओं में जो गुणवाचक पद हैं उनकी व्याख्या निघण्टु और निगम एक पद में की गई है। अवशिष्ट पद जिनमें देवताओं की स्तुति की गई है वे दैवत काण्ड में बताए गए हैं। "तद्यानि नामानि प्राधान्य स्तुतिनां तद्दैवतम् जिन नामों में देवता की प्रधानतया स्तुति दिखाई गई है उसे यास्काचार्य ने दैवत काण्ड कहा है" यद्यपि प्रथम दो काण्डों में भी देवताओं का भी विवेचन है परन्तु देवताओं का स्पष्टीकरण नहीं है इसलिए दैवत काण्ड के स्पष्ट देवताओं का विवेचन है। इसीलिए इस काण्ड को दैवत काण्ड कहते हैं।

स्तुति के मन्त्र त्रिविध हैं (१) परोक्ष कृत्त, (२) प्रत्यक्ष कृत, (३) आध्यात्मिक।

परोक्षकृत मन्त्र में सभी विभक्तियां तया प्रथम पुरुष के एक वचन में आख्यात आता है, प्रत्यक्ष कृत मन्त्रों में सर्वनाम और मध्यम-पुरुष आख्यात है, जैसे त्वमिन्द्र ! बलादधिविन इन्द्रमृघोणहि" "हे इन्द्र तुम सबसे अधिक बलवान हो, तुम तेज को वर्षण करने वाले हो।" जिन मन्त्रों में देवता निर्देश नहीं हैं वे मन्त्र जिस यज्ञ में विनियोग किए गए हैं उस यज्ञ के देवतात्मक वे मन्त्र हैं "यद्दैवतः स यज्ञो वा यज्ञांग व तद्दैवता भवन्ति" निरुक्तकार ने तीन देवता माने हैं— "तिस्त्र एव देवता इति नैरुक्ताः "अग्निः पृथ्वी स्थानों, वायुर्वेन्द्रोवान्तरिक्ष स्थानः, सूर्यो द्यूः स्थानः। "पृथ्वी का अग्नि, आन्तरिक्ष का इन्द्र, द्यूस्थान का सूर्यदेवता है।

दैवत काण्ड के समाप्त के साथ निरुक्तकार कहते हैं कि "जो केवल यज्ञ करते हैं अहिंसा व्रतपालन नहीं करते हैं, ब्रह्म विद्या पर ध्यान न देकर केवल यज्ञ कार्य में लगे रहते हैं वे धूम रात्रि, पितृलोक, चन्द्रलोक, वायु आदि में घूमकर दक्षिणायन पथ द्वारा पृथ्वी में जन्म मरण के बन्धन में पुनः जकड़े रह जाते हैं। इस प्रकार निरुक्त का विषय संक्षेप में समाप्त हुआ, निघण्टु वैदिक कोष है, उसी की व्याख्या निरुक्त में की गई जो वेदार्थ के लिए महान उपयोगी है।

निरुक्त की शैली

निरुक्त में छोटे-छोटे वाक्यों तथा समास रहित शब्दों का प्रयोग हुआ है। इसकी शैली महाभाष्य से मिलती जुलती है, निरुक्त के शब्द बहुत स्थानों पर सन्देहास्पद तथा आधुनिक विद्वानों के लिए क्लिष्ट है। कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनका बाद में दूसरा अर्थ लिया गया है जैसे "कर्म" शब्द का तात्पर्य है अर्थ।

जैसे "गतिकर्माधातुः" की गति अर्थवाला धातु। इसी प्रकार उपेक्षा का अर्थ है समीप जाकर परीक्षा करना, देखना आदि पीछे चलकर दूसरा अर्थ तिरस्कार हो गया। आशीर्वाद का अर्थ है 'कामना-'अग्रे— । इस प्रकार कितने ही शब्द अज्ञात और प्रत्याशित अर्थों में प्रयुक्त हैं। कहीं-कहीं भिन्न रूपावली क्रियाओं का प्रयोग किसी दूसरे अर्थ में किया है, जैसे—अप्रथयिष्यत = अप्रथयत्। उप-पिपादायेक्रवत = उपपादयेत। शाकटायन ने शब्दों को तोड़ मरोड़ कर व्युत्पत्ति की है। गार्ग्य को इस पर आपत्ति है लेकिन यास्क का कहना है कि शाकटायन की निरुक्ति अनुगतार्थ है इसलिए अमान्य नहीं है। अनन्वित अर्थ में शब्द का संस्कार करने वाला पुरुष निन्दनीय होता है शास्त्र नहीं (सेषा पुरुषगर्ह न शास्त्र गर्हा) निरुक्ति तथा पद का अन्वय होना ही न्याय है।

इस प्रकार निरुक्त की शैली अत्यन्त रोचक है निरुक्तकार नए शब्द के आने पर स्वयं प्रश्न करते हैं कि अमुक शब्द क्या है। इसकी क्या व्याख्या होनी चाहिए छोटे-छोटे वाक्यों में सुबोध शब्दों की व्याख्या अच्छी तरह से समझाई गई है जैसे नदी शब्द की व्याख्या है "नद्यः कस्मात् नद्यः भवन्ति शब्दवत्यः। नद् धातु से, जिसका अर्थ है शब्द करना।

निरुक्त के कर्त्ता

इस निरुक्त के कर्त्ता वेद प्रतिष्ठापक महर्षि प्रवर श्री यास्काचार्य हैं। यास्क ने निरुक्तकारों के नाम गिनाए हैं, जिससे निरुक्त की परम्परा बहुत प्राचीन मालूम होती है। जैसे औपमन्यव, औदम्बरायण, वार्ष्यायणि, गार्ग्य आग्रायण, शाकपूर्णि, और्णवाम, तैटिकि, गालब, स्थौलाष्ठी, विक्रौष्टुकि, कास्थक्य तेरहवा स्वयं यास्क इसके उत्तर में चमीचरा ताटवलाक्ष्, शाकटायन, कौसृव्य, शाकल्य इत्यादि निरुक्तकार हुए जिन्होंने अपना-अपना निघण्टु बनाकर उसी में अपनी-अपनी व्याख्या लिखी विलुप्त निघण्टुओं के प्रमाण यास्कीय तिरुक्त महा-भाष्य और अनेक वैदिक भाष्यों में मिलते हैं। प्राप्त निरुक्त यास्क रचित है इसमें किसी को भी सन्देह नहीं है। सन्देह इसमें है कि यास्क रचित 'निरुक्त' भी है और यास्क रचित 'निघण्टु' भी है। कुछ लोगों का कहना है कि यास्क पहले निघण्टु की रचना की है, फिर उसी पर भाष्य लिखकर निरुक्त लिखा है दुर्गाचार्य, स्कन्द माहेश्वर, जर्मन पण्डित रोथ, प्रो० कर्मकर आदि विद्वान "निघण्टु" को यास्ककृत नहीं मानते हैं। उनका अभिप्राय यह है कि यह निघण्टु बहुत पहले की रचना है और अज्ञात नामा ऋषि इसके बनाने वाले हैं।

(१) मधुसूदन सरस्वती अपने महिम्न स्तोत्र की व्याख्या में लिखा है कि पाँच अध्यायों वाला निघण्टु यास्क का ही बनाया है।

(२) सायणाचार्य ने लिखा है "पंचाध्याय रूपे काण्डत्रयात्मके एतस्मिनग्रन्थे परनिरपेक्षया पदार्थस्योक्तत्वात् त्रस्य ग्रन्थस्य निरुक्तत्वम् तद् व्याख्यानश्य" समाम्नायः समाम्नातः इत्यारम्भ तस्यास्तस्यास्ताद्‌मा व्यमनुभवति इत्यन्तेः । द्वादशमिरध्यायेः यास्को निर्ममे ।" अर्थात पाँच अध्यायों वाला निघण्टु भी निरुक्त है उसकी व्याख्या यास्क ने की है ।

(३) जहाँ-जहाँ निरुक्त की पाण्डुलिपि मिली है वहाँ-वहाँ निघण्टु भी साथ-साथ मिला है । इसके अलावा स्कन्दमाहेश्वर दुर्ग आदि निरुक्त के टीकाकार निरुक्त के प्रथम अध्याय कोष अध्याय मानकर व्याख्या करते हैं ।

(४) भारतीय वांग्मय के इतिहास में यह निर्विवाद है कि निरुक्त और निघण्टु यास्करचित हैं ।

(५) स्वामी दयानन्द सरस्वती ने निघण्टु की भूमिका में यह लिखा है—'यह ग्रन्थ (निघण्टु) ऋग्वेदी लोगों के पठितव्य १० ग्रन्थों में है विशेषकर वेद और सामान्य लौकिक ग्रन्थों से सम्बन्ध रखता है, यह मूल और इसका भाष्य निरुक्त यह दोनों ग्रन्थ यास्क ने बनाए हैं ।'

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि निरुक्त और निघण्टु दोनों यास्क रचित हैं लेकिन इस विषय पर अगर गहराई से देखा जाय तो यह कल्पना निराधार मालूम होती है और 'निघण्टु' नामक वैदिक कोष के कर्त्ता या तो महर्षि कश्यप थे या तो कोई दूसरे ऋषि थे, कारण यह कि निरुक्त के कर्ता यास्क ने अगर स्वयं 'निघण्टु' की रचना किए होते तो जिस तरह निरुक्त में अपने बारे में 'यास्क प्रणीत' अमुक अध्यायं समाप्तं लिखा है उसी प्रकार से निघण्टु में भी अपने बारे में उल्लेख जरूर करते अतः निघण्टु यास्क रचित न होकर किसी ऋषि द्वारा प्रणीत है । निघण्टु और निरुक्त की रचना अलग-अलग लेखकों ने की इसके पुष्टि में निम्न बातें प्रमाणिकता को प्राप्त करती हैं ।

(१) **विषय**—प्रोफेसर कर्मकर का कहना है कि 'निघण्टु' और निरुक्त के विषय में अन्तर है 'निघण्टु में (२।१६४) तलित् के दो अर्थ दिए गए हैं । यास्क उसमें अन्तिम को ही उचित अर्थ स्वीकार करता है यदि वह निघण्टु का बनाने वाला होता तो 'तलित्' का बघार्थ न करता । अतः निरुक्त यास्क रचित तो है लेकिन निघण्टु यास्क कृत नहीं है ।

(२) **भाषा**—'निघण्टु' और निरुक्त के भाषा में पर्याप्त अन्तर दीख पड़ता है अगर 'निरुक्त' की रचना ७०० ई० पू० हुई होगी तो निघण्टु की रचना ११०० ई० पू० हुई होगी । कारण कि समय के अनुसार जो भाषा में परिवर्तन हुआ करता है यह दोनों में कम से कम ४०० वर्ष का अन्तर दिखाई पड़ता है, अतः इससे भी सिद्ध होता है कि निघण्टु और निरुक्त के कर्ता अलग-अलग व्यक्ति रहे होंगे ।

(३) **उद्देश्य**--निघण्टु के अध्ययन से यह पता चलता है कि 'निघण्टु' में केवल वैदिक शब्दों को एकत्रित करके सजाया गया है और यह बताया गया है कि अमुक शब्द के इतने नाम हैं, जो वेदों में प्राप्त होते हैं लेकिन निरुक्त जो हैं उसी की व्याख्या है और उसका उद्देश्य पाठकों के उन शब्दों या पदों को ज्ञान कराना है। अतः इन बातों से यह सिद्ध होता है कि 'निघण्टु' और निरुक्त की रचना अलग-अलग व्यक्तियों ने की है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि निरुक्त 'निघण्टु' दोनों स्वतन्त्र ग्रन्थ हैं। इसके लिए अलग-अगल विद्वानों ने अपना प्रयास किया। निरुक्त, निघण्टु का ही भाष्य है। अतः निरुक्त उतना स्वतन्त्र विषय न होकर निघण्टु पर ही आधारित है इसके साथ ही साथ निरुक्त में लेखक ने उसके स्वतन्त्र विषय पर ध्यान देकर ही प्रथम अध्याय और द्वितीय अध्याय के प्रथम पाद तक उसमें विषय लिखा है। अतः उपर्युक्त बातों से सिद्ध होता है, कि निघण्टु (वैदिक कोश) है और उसकी रचना ऋषि या भगवान कश्यप ने की है, तथा उसी परम्परा को कायम करते हुए यास्क ने निरुक्त की रचना की है।

समय—इतिहास के अनुसार यास्क का समय ७०० ई० पूर्व है अतः यही समय निरुक्त का भी हो सकता है।

निरुक्त में अलंकारिक शब्द--निरुक्त में अलंकारिक शब्दों का प्रयोग हुआ है जिससे पता चलता है कि जिस अलंकार शास्त्र का विकास ईसा के पाँचवीं छँठवीं शदी से होकर २१वीं शती तक चरमोत्कर्ष रूप में थी उसका बीजारोपण यास्क के समय में अर्थात ७०० ई० पू० ही हो चुका था। निरुक्त में अपना उपमा अलंकार का प्रयोग बहुत स्थानों में किया गया है, यद्यपि अलंकार शब्द निरुक्त में पारिभाषिक अर्थ में उपलब्ध नहीं होता है, परन्तु यास्क ने 'अलंकरिष्णु' शब्द का प्रयोग अलंकृत करने के शील वाले व्यक्ति के अर्थ में अवश्य किया है। यह शब्द इसी अर्थ में शतपथ ब्राह्मण (३।५।१।३६) तथा छान्दोग्य उपनिषद् (८।८।५) में भी उपलब्ध होता है, परन्तु निघण्टु में वैदिक उपमा के द्योतक बारह निपातों (अव्ययों) का उल्लेख किया गया है इसी प्रसंग में यास्क ने उपमा के अनेक भेद तथा गार्ग्य नामक वैयाकरण द्वारा उपमा के लक्षण का वर्णन अपने ग्रन्थ में किया है। गार्ग्य निरुक्तकार यास्क से भी प्राचीन आचार्य **थे** उनका ''उपमा का लक्षण इस प्रकार है[1] ''उपमा यत अतत् तसृद्दश-मिति'' अर्थात उपमा वहाँ होती है जहाँ एक वस्तु दूसरी वस्तु से भिन्न होते हुए भी उसी के सदृश हो। दुर्गाचार्य ने इसकी व्याख्या

१. निरुक्त ३।१३.

व्याख्या करते हुए स्पष्ट लिखा है कि 'उपमा वहाँ होती है जहाँ स्वरूपतः भिन्न होते हुए भी कोई वस्तु किसी अन्य वस्तु के साथ गुण की समानता के कारण सदृश मानी जाय।''[1] गार्ग्य का यह भी उल्लेख है कि उपमान को उपमेय की अपेक्षा गुणों में श्रेष्ठ तथा अधिक होना चाहिए। इसके विपरीत भी उदाहरण दिए गए हैं जहाँ हीन गुण वाले उपमान से अधिक गुणवाले उपमेय की तुलना की गई है और इस प्रसङ्ग में ऋग्वेद में उदाहरण भी दिए गए हैं काव्य प्रकाशकार ममाट ने (१० वीं) में उपमा की परिभाषा लिखा है ''साधर्म्युपमा भेदे''[2] इस प्रकार इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि निरुक्त-कार यास्क ने भी ७०० ई० पू० में उपमा जैसे अलंकार की कल्पना की थी। यास्क ने पाँच प्रकार की उपमा का वर्णन अपने ग्रंथ में किया है। उपमा[3] के द्योतक निपात—इव, यथा, न, चित, नु और आ हैं। इन वाचक पदों के प्रयोग होने से यास्क के अनुसार कर्मोपमा होती है ''भ्राजन्तो अग्नयो यथा'' (ऋ० वेद-१।५०।३) अग्नि के समान चमकते हुए यह कर्मोपमा का उदाहरण हैं। भूतो-पमा वहाँ होती है जहाँ उपमिति स्वयं उपमान बन जाता है। रूपोपमा समता रखता है सिद्धोपमा में उपमान स्वतः सिद्ध रहता है और एक विशेष गुण या कम के द्वारा अन्य वस्तु से बढ़कर रहता है वत् प्रत्यय के जोड़ने पर यह प्रत्यय निष्पन्न होती है 'ब्राह्मणवत्' वृषलवत्। अन्तिम भेद अर्थोपमा है जिसका दूसरा नाम लुप्तोपमा है यह पिछले अलंकारिकों का रूपकालंकार है। इस उपमा के उदाहरण हैं सिंहः पुरुषः। तथा काकः पुरुषः यास्क के अनुसार सिंह तथा व्याघ्र पूजा के अर्थ में तथा श्वा और काक निन्दा के अर्थ में प्रयुक्त है।

इस प्रकार उपर्युक्त व्याख्यान से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिन अलं-कारों का विकास ६ वीं शदी से लेकर १६ वीं शदी तक का हुआ उसका बीजा-रोपण यास्क ने कर दिया था अर्थात यास्क काल में ही उपमा जैसे अलंकारों का शास्त्रीय विवेचन हो चुका था।

निरुक्त की व्याख्याएँ

यास्क का निरुक्त वेद के षड् अंगों में एक अंग का स्वतन्त्र रूप से विवेचन करता हुआ बहुत समय से चला आ रहा है। लेकिन इस निरुक्त की दो एक व्याख्याएँ प्राप्त होती हैं। इसका कारण यह है कि निरुक्त स्वयं भाष्य ग्रन्थ है

---

१. दुर्गाचार्य निरुक्त टीका ३।१३

२. काव्य प्रकाश १०।१

३. निरुक्त ३।१३।१८.

निरुक्त की व्याख्याएँ पतंजलि से पूर्व प्रारम्भ हो चुकी थीं[1] सबसे प्राचीन निरुक्त वार्तिक नामक भाष्य प्राप्त होता है।

निरुक्त वार्तिक

सबसे प्राचीन निरुक्त वार्तिक नाम का भाष्य मिलता है, दुर्ग ने यास्क के त्रिविध निर्वचनों के पुष्टि में वार्तिककार को निम्न शब्दों में उद्धृत किया है।

"अपि प्रोक्तं वार्तिककारेण।"
"यावताम् एव धातूनां लिंगं रूढ़िगतं भवेत्"।
अर्थस्चाप्याभिधेयस्थम् तावद्भिर् गुणविग्रहः।

इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों में इनके मतों को उद्धृत करते हैं। वार्तिकारेणाप्युक्तम्

"निगमवशाद् बहवर्थ भवति पदं तद्धितस् तथा धातुः।
उपसर्ग गुण निपाता मंत्रगताः सर्वथा लक्ष्याः

निरुक्त ८।४ की व्याख्या में पहले तो दुर्ग ने यह कहा कि प्राचीन नैरुक्त शाकपूणि ने अपने निरुक्त में, अपने निघण्टु में पठित शब्दों के क्रम का प्रयोजन भी बताया था उसके बाद अपने इस कथन की पुष्टि में वार्तिककार को उद्धृत किया[2]। निरुक्त भाष्य ११,१३ में भी वह लिखता है "निरुक्त समयस्तु सर्वा एव गणा मरुतः। उक्तं च वार्तिकेः—

"मध्यमा वाक् स्त्रियः सर्वाः पुमान् सर्वश्च मध्यमः।
गणाश्च सर्वे मरुतः गणभेदाः पृथक कृते।

यह श्लोक वृहद्देवता में कुछ पाठान्तर से मिलता है। प्रो० राजवाड़े ने यहाँ एक सम्भावना व्यक्त की है कि दुर्ग के समय में वृहद्देवता का ही दूसरा नाम निरुक्त वार्तिक रहा होगा।[3] लेकिन उनकी यह सम्भावना सत्य नहीं मालूम पड़ती है। क्योंकि निरुक्त वार्तिक के नाम से कुछ अन्य श्लोक मण्डनमिश्र रचित स्फोटसिद्धि की गोपालिका नामक टीका में भी उद्धृत हैं जो न तो वृहद्देवता में कहीं मिलते हैं और न मिलने की सम्भावना ही की जा सकती है॥" यथोक्तं निरुक्त वार्तिक एव—

---

१. "निरुक्तं व्याख्यायते" महाभाष्य ४।३।६६
२. "शाकपूणिस्तु पृथ्वीनामभ्य एव उपक्रम्य स्वयम् एव सर्वत्र क्रम प्रयोजनमाह॥
३. वृहद्देवताकारान नान्यो वार्तिककारः "राजवाड़े कृत टिप्पणियां दुर्ग भाष्य, आनन्दाश्रम संस्करण, भा० पृ० २२१.

"असाक्षात्कृत धर्मभ्यस्ते परेभ्यो यथाविधि
उपदेशेन सम्प्रापुर मन्त्रान् ब्राह्मणम् एव च ।1।
अर्थोऽयम् अस्य मन्त्रस्य ब्राह्मणस्यायम् इत्यपि
व्याख्यैवात्रोपदेशस्स्याद् वेदार्थस्य विवक्षितः ॥२॥

यथोक्तम्

अशक्तास्तूपदेशेन ग्रहीतुम अपरे तथा
वेदम् अभ्यस्तवन्तयते वेदांगानि च मत्नतः ।३।

व्याख्यातं च

विल्मं मिल्यम् इति त्वाह विभक्तयर्थं विवक्षया ।
उपायोहि विभम्त्यर्थम् उपेयं वेदगौचरम् ।४।
अभ्यासेन हि वेदार्थो भास्यते दीप्यते स्फुटम् ॥५॥

यथोक्तम्

प्रथमा प्रतिभानेन द्वितीयास्तूपदेशतः
अध्यासेन तृतीयास्तु वेदार्थन् प्रतिपेदि रे ॥६॥

निरुक्त वार्तिक के नाम से उद्धृत इन ६ श्लोकों में निरुक्त के "साक्षात्कृत" धर्माण कृषयोबभूवुः——भासनम् इति[1] वा। इस स्थल की बड़ी ही सरल एवं स्पष्ट व्याख्या उपलब्ध है। अतः इन श्लोकों से यह अनुमान करना सरल है कि यास्क निरुक्त की बड़ी विस्तृत एवं विवेकपूर्ण व्याख्या इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में की गई होगी जो आज दुर्भाग्यवश अनुपलब्ध है।

दुर्गभाष्य :—

सबसे प्राचीन टीकाओं में दुर्गभाष्य माना जाता है। दुर्ग का समय डा० लक्ष्मण स्वरूप ने १३ वीं शताब्दी ईस्वी पश्चात के आस पास माना है।[2] लेकिन स्कन्द स्वामी ने अपने हेतुओं से[3] यह प्रमाणित किया है कि दुर्ग स्कन्द से पहले हो चुके हैं तथा इनका समय प्रथम शताब्दी ईस्वी पश्चात् मानना चाहिए। सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि स्कन्द ने अपनी टीका के प्राचीन भाष्यकारों के प्रसंग में दुर्ग का बिना नाम लिए ही दुर्ग की व्याख्या का खण्डन किया है तथा उसे "अपव्याख्यानम्" कहा है। इन स्थलों में जिस व्याख्या या मत का खण्डन किया है कहीं-कहीं अक्षरशः दुर्ग की व्याख्या से मिलता है

१. निरुक्त 1।२०
२. डा. लक्ष्मण स्वरूप निरुक्त भूमिका पृ० ५०
३. स्कन्दभाष्य तृतीय भाग की भूमिका पृ० ८१-९७

जैसे निरुक्त १।६ ऋच्छन्तीव खे उदगन्ताम्'' में दोनों की तुलना की गई है अतः दुर्ग स्कन्द से पूर्व माने गए हैं।

दुर्गाचार्य का भाष्य बहुत विस्तृत है तथा अनेक स्थानों में दार्शनिक चिंतनों एवं शास्त्रार्थों से परिपूर्ण है। दुर्ग ने अन्त में यह लिखा है ''कृण्वार्थायां निरुक्त वृत्तौ जम्बूमार्गाश्रम निवासिनः आचार्य भगवद् दुर्ग सिंहस्य कृतौ।''

स्कन्द तथा महेश्वर की टीकाएं

लगभग छठीं शताब्दी पश्चात् स्कन्द स्वामी ने निरुक्त पर अपनी टीका लिखी थी। यह स्कन्दस्वामी हरिस्वामी के गुरू थे जिसने ६३८ ईस्वी पश्चात शतपथ पर भाष्य लिखा था। यास्कीय निघण्टु के व्याख्याकार देवराज यज्वा ने अनेक बार स्कन्दस्वामी को उद्धृत किया। स्कन्दस्वामी ने ऋग्वेद में भी भाष्य लिखा था।[1] इस टीका में १२ वीं शताब्दी के पश्चात के महेश्वर नामक किसी विद्वान की टीका भी सम्मिलित है। डा० सरूप का विचार है कि महेश्वर ने थोड़े बहुत संशोधन के साथ स्कन्दस्वामी की वृत्ति का एक दूसरा संस्करण प्रस्तुत किया। इसीलिए स्कन्दस्वामी जिनका समय पंचम शताब्दी ई० पश्चात का अन्त अथवा षष्ठ शताब्दी का प्रारंभ माना जाता है कि इस टीका में सातवीं अथवा आठवीं शताब्दी के विद्वानों के उद्धरण भी मिल जाते हैं। जैसे भामह (६५० ई० प०) का काव्यालंकार, भर्तृहर (६५१ ई० प०) का वाक्यपदीप तथा कुमारिल भट्ट (७०० ई० प०) का तंत्र वार्तिक यहाँ उद्धृत हैं। इन पुस्तकों का उद्धरण देने वाला महेश्वर ही है न कि स्कन्द स्वामी।

श्रीनिवास कृत व्याख्या

निघण्टु के भाष्यकार देवराज यज्वा ने निरुक्त २।७ के निर्वचन ऋंगं-श्रयतेः वा श्रृणातेर वा शाम्नातेर्वा के विषय में लिखा है श्रृंग श्रयतेः इत्यत्र स्नातेर् वा इति निर्वचनस्य पाठः श्री निवासीये व्याख्याने दृष्टः।[2] इसी प्रकार निघण्टु २।३।१ की व्याख्या में पुनः श्रीनिवास का नाम लेता है इससे स्पष्ट पता लगता है कि किसी श्रीनिवास नामक विद्वान ने भी इस निरुक्त की व्याख्या की है।

निरुक्त के आधुनिक संपादक अनुवाद एवं व्याख्याता एवं आलोचकों में सर्व प्रो० रोथ ने जर्मन भाषा में एक विस्तृत भूमिका के साथ निरुक्त का अनुवाद प्रस्तुत किया था, जिसका इंग्लिश अनुवाद प्रो० मेकीशान ने किया

१. निघण्टु निर्वचन १।१७।११

पं० सत्यव्रत समाश्रमी ने 'निरुक्तालोचन' लिखा डा० लक्ष्मण सरूप ने निरुक्त का इंगलिश अनुवाद १६२१ में लन्दन से प्रकाशित कराया तथा १६२७ में ही इन्होंने पंजाब विश्वविद्यालय से प्रकाशित किया। १६३५ में प्रो० वी० के० राजवाड़े ने निरुक्त का मराठी अनुवाद प्रस्तुत किया। डा० सिद्धेश्वर वर्मा इटिलाजीज आफ यास्क नामक पुस्तक लिखी इसके अतिरिक्त राजाराम आर्य पं० चन्द्रमणि वेदालंकार पं० सीताराम शास्त्री आदि की व्याख्यायें प्रमुख हैं।

निरुक्त का कोष साहित्य पर प्रभाव

निरुक्त निर्वचन शास्त्र का आद्य ग्रन्थ है। निरुक्त और निर्वचन दोनों पर्याय हैं। गोपथ ब्राह्मण में 'निरुक्त' का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा गया है कि "ओकारं पृच्छामः···किं निरुक्तम्···आये रोंकारः सर्वमाप्नोति इत्यर्थः।'[1] इसी प्रकार छान्दोग्य में सर्वाएष् आत्मा हृदि, तस्य तदेव निरुक्तम् हृदि+अपम् इति। तस्माद हृदयम्" ।[2] कहकर यहां भी निरुक्त को निर्वचन अर्थ में किया गया है। किन्तु निरुक्त और निघण्टु में यह अन्तर है कि निघण्टु में शब्दों को संगृहीत किया गया है और निरुक्त में उन्हीं शब्दों की निरुक्ति (व्याख्या) दी गई है। इस तरह निरुक्त, निरुक्ति निर्वचन समानार्थी शब्द हैं। निर्वचन का तात्पर्य है 'खोलकर कहना' अर्थात यह बताना कि अमुक नाम इस वस्तु का क्यों है? उदाहरणार्थ नाम शब्दों के तीन भेद हैं—योगिक, योगरूढ़ और रूढ़। अवयवार्थ के सम्बन्ध से जिसका अर्थ मिल जाये उसे यौगिक कहते हैं जैसे पाचक, इसके दो अवयव हैं पच्+अक्। इन अवयवों का अर्थ पच्—पकाना,अक—वाला, दोनों का सम्बद्ध अर्थ "पकाने वाला"। अवयवार्थ के बिना ही शब्द का अर्थ प्रसिद्ध हो उसे रूढ़ कहते हैं जैसे 'पर्व' इसका अर्थ लोक प्रसिद्धि से निकलता है। जिसमें दोनों उपर्युक्त धर्मों का मेल हो वह योग रूढ़ है—जैसे 'पंकज'—'पंक' का अर्थ है कीचड़ और 'ज' का तात्पर्य उत्पन्न होने वाला। इस प्रकार 'पंकज' का तात्पर्य 'कीचड़ में उत्पन्न होने वाला, यानी 'कमल'।[3]

यह सभी मानते हैं कि योगिक और योगरूढ़ शब्दों का निर्वचन होता है। 'रसोइये' का नाम 'पाचक' क्यों? सभी कहेंगे कि पकाने वाला होने से। 'पंकज' का अर्थ 'कमल' क्यों? 'कीचड़' में उत्पन्न होने से। पर रूढ़ शब्द का निर्वचन सभी नहीं मानेगें। प्रत्येक व्यक्ति भिन्न अर्थ करेगा।

---

१. गोपथ ब्राह्मण १।१।१४—३०

२. छान्दोग्य ८।३।३

३. निरुक्त पं० राजाराम भूमिका पृ० ७

यौगिक और योगरूढ़ शब्दों का निर्वचन व्याकरण से जाना जाता है, किन्तु रूढ़ शब्दों का निर्वचन निरुक्त से ही जाना जा सकता है।

निरुक्त का मूल सूत्र निघण्टु है। निरुक्त उस पर भाष्य है। निघण्टु वेदार्थ ज्ञान के लिए लिखा गया था, निघण्टु और निरुक्त वैदिक काल की रचनायें हैं। अतः षड् वेदांगों में निरुक्त (कोष) व निघण्टु, कोष साहित्य के सर्व प्रथम ग्रन्थ हैं। इन्हीं निरुक्त और निघण्टु से प्रभावित होकर कालान्तर में कोष साहित्य का विकास हुआ। निरुक्त का कोष साहित्य पर निम्न प्रभाव परिलक्षित होता है।

निघण्टु का उद्देश्य मात्र वेदार्थ ज्ञान था। इसीलिए ऋग्वेद के कुछ ही शब्दों का पर्याय संग्रह क्रम से निघण्टु में किया गया। जिससे किसी शब्द का अर्थ इसलिए ज्ञात होता था कि यह शब्द अमुक पर्याय में आया है, अतः इसका अर्थ यही होगा। उदाहरणार्थ निघण्टु में गौः इत्यादि २१ पृथ्वीवाचक शब्दों का संग्रह है।[१] इन शब्दों में से कोई शब्द यदि कहीं ऋग्वेद में मिलता है तो उसका अर्थ इसलिए 'पृथ्वी' लगाया जायगा क्योंकि निघण्टु में मिलता है तो उसका अर्थ इसलिए 'पृथ्वी' लगाया जायगा क्योंकि निघण्टु में पृथ्वी के पर्यायों में इसका उल्लेख किया गया है। लेकिन 'गौ' का वास्तविक अर्थ क्या होता है। यह निघण्टु से नहीं निरुक्त से जाना जा सकता। 'गौ' यह पृथ्वी का वाचक है, क्योंकि वह दूर तक फैली है। और क्योंकि उस पर प्राणी चलते हैं अथवा 'गा' धातु से 'ओ' प्रत्यय होकर गौ शब्द बनता है, इत्यादि[२]

इस प्रकार 'निघण्टु में संगृहीत शब्दों की व्याख्या निरुक्त में की गई। 'निघण्टु' मात्र शब्दों की उपस्थित करता है और निरुक्त उसके अवयवार्थ को खोलकर रख देता है, जिससे अर्थ एवं व्युत्पति अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। निघण्टु एक विशेष उद्देश्य से लिखा गया। किन्तु वह उसकी पूर्ति नहीं कर सका, उसकी पूर्ति में निरुक्त सहायक सिद्ध हुआ।

'निघण्टु' और 'निरुक्त ' के पश्चात ही कोष साहित्य का विकास हुआ। सभी कोषों पर निरुक्त का प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है। निघण्टु और निरुक्त का प्रभाव जिन कोषों पर जिस प्रकार से पड़ा, उसका विवरण संक्षेप में नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१. 'इति एकविंशति पृथ्वी नामानि'—निघण्टु १।१

२. 'गौरित पृथिव्यानामधेयम्, यद्दूरं गताभवति। यच्चास्यां धूतानि गच्छन्ति। कांतेर्वोकारो नामकरणः अथापि पशुनामेह भवत्यंतस्मादेव। निरुक्त २।२.

सर्वप्रथम कोष निरुक्त के पश्चात लिखे गए कोषों में प्राप्त होने वाला अमरकोष है जिसमें शब्दों का संग्रह काण्डों व वर्गों के आधार पर किया गया है वर्गों के नाम विषय के अनुसार हैं और उनमें विषय से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह है, जैसे भूमिवर्ग में भूमि से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह व स्वर्ग में स्वर्ग से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह है। अमरकोष पर निरुक्त का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। निघण्टु के समान ही अमर कोष में शब्दों का कोई अर्थ मात्र इसलिए मान लिया जायगा कि पर्यायों के संग्रह में वह शब्द प्रयुक्त किया गया है। उस शब्द की व्याख्या क्या है, क्यों उसका नाम अमुक ही है आदि बातों का ज्ञान इस कोष से नहीं जाना जा सकता है। निरुक्त व्याख्या ग्रन्थ है किन्तु अमरकोष मूल ग्रन्थ है। बाद में अमरकोष की पचासों व्याख्यायें निरुक्त से प्रभावित होकर हुई। व्याख्या से ही उसके अवयवार्थ की पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए पृथ्वी शब्द को ही लिखिए। अमरकोष में पृथ्वीवाचक २७ शब्दों को संगृहीत किया गया है।[१] जिससे मात्र यह ज्ञात होता है कि २७ नाम पृथ्वी के हैं। उसकी व्युत्पत्ति का ज्ञान नहीं होता है। किन्तु अमरकोष की व्याख्या 'सुधा' से कि पृथ्वी के २७ नामों का अलग-अलग क्या अर्थ होता है, किस धातु इत्यादि से यह शब्द बना है, जैसे भूरिति। भवति कर्तरि विवप् (३।२।१७८)।[२]

इन व्याख्याओं का महत्वपूर्ण योगदान यह रहा है कि इन्होंने शब्दार्थ प्रक्रिया को सरल बना दिया।

निरुक्त का एक और प्रभाव कोषों पर दृष्टिगोचर होता है निरुक्त शब्दों के संग्रह के साथ ही शब्दों की व्युत्पत्ति अर्थ और प्रयोग भी बताता है। मनुष्य सदैव से संक्षिप्त मार्ग का अनुसरण करता आया है इसी कारण से यह प्रथा कि एक व्यक्ति शब्दों का संग्रह करे और दूसरा उनकी व्याख्या करके उनको स्पष्ट करे कालान्तर में कष्टसाध्य होती गई। परिणाम स्वरूप विद्वानों में आगे चलकर कोषों की रचना दोनों पद्धतियों का सम्मिश्रण करके किया। अर्थात् निघण्टु और निरुक्त से भिन्न तीसरे मार्ग का अनुसरण कुछ कोषों में किया गया। प्रकारान्तर से इसे भी निरुक्त का प्रभाव माना जा सकता है। निरुक्त से प्रभावित होकर निम्न कोषों में शब्दों के साथ ही उनके विभिन्न अर्थों का उल्लेख किया गया। इस प्रकार के कोषों में शाश्वत कृत "अनेकार्थ समुच्चय" सर्व प्रथम है इसके बाद लिखे गए कोषों में महाक्षपणक द्वारा लिखित "अने-

---

१. अमरकोष २,३

२. सुधा व्याख्या पृ० १४१.

कार्थ ध्वनिमंजरी'', अजयपाल का 'अनेकार्थ कोष' मेदिनीकृत नानार्थ संग्रह व हेमचन्द्र का अनेकार्थ संग्रह आदि उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक युग में तो निरुक्त की परम्परा का पूर्ण पालन किया जाता रहा है। सभी कोषों में शब्दों का अर्थ सहित संग्रह है। इन कोषों में तारानाथ तर्क वाचस्पति का 'वाचस्पत्यम्' राजाराधाकान्त देव का ''शब्द कल्पद्रुम्'' आदि प्रमुख है।

शब्दार्थ ज्ञान के लिए आधुनिक युग में एक भाषा का दूसरे भाषा से सम्बन्ध निरूपित करते हुए द्विभाषिक रचना की गई है। इनके माध्यम से शब्दों का वास्तविक अर्थ कई भाषाओं में जाना जा सकता है। द्विभाषिक शब्द कोषों में मोनियर विलियम्स, मैक्डानेल, कीथ, रांथवोटलिंग, बी० एस० आप्टे, ग्रेञ्ज हागृन आदि द्वारा प्रस्तुत संस्कृत अंग्रेजी शब्दकोष मुख्य है। इसी प्रकार आवश्यकतानुसार संस्कृत-मराठी, संस्कृत-हिन्दी, संस्कृत-बंगाली, संस्कृत-उड़िया, संस्कृत-गुजराती आदि शब्दकोषों का निर्माण हुआ है।

सामान्यतः निघण्टु और निरुक्त के बाद लिखे गए सभी कोषों पर इनका स्पष्ट प्रभाव है। मुख्य बात तो यह है कि कोष लिखने की प्रेरणा और विचार निघण्टु और निरुक्त से ही प्राप्त होते हैं।

वेदार्थ में निरुक्त का एक विशेष स्थान है। वेदों की व्याख्या का प्रारम्भ निरुक्त से ही हुआ है। निरुक्त के पूर्व वेदों की व्याख्या नहीं की गई थी। निरुक्त से दिशा निर्देश प्राप्त कर आधुनिक कोषकारों ने कोषकला को सजाया संवारा यास्क ने निरुक्त में ऋग्वेद के कुछ ही शब्दों की व्याख्या की थी। लेकिन आज के युग में ऐसा कोई भी वैदिक शब्द नहीं बचा है, जिसकी व्याख्या कई तरह से न की गई हो। वैदिक साहित्य के समग्र शब्दों का संग्रह 'वैदिक पदानुक्रम कोष' में श्री विश्वबन्धु शास्त्री ने किया। निरुक्त के द्वारा शुरू किए गए कार्य की यह सुखद परिणति है।

यास्क ने निर्वचन प्रारम्भ करने के पूर्व व्याकरण के अंगों का उल्लेख किया है।[1] और धातु, प्रकृति[2], प्रत्यय, समास[3] और लिंग के आधार पर शब्दों की व्युत्पत्ति करने की प्रतिज्ञा किया है। तात्पर्य यह कि निरुक्तकार ने शब्द निर्वचन, पद-विभाग, समास प्रकृति-प्रत्यय लिंग विभेद आदि साथ किया है।

---

१. निरुक्त २।२

२. अथापि प्रकृतय एवकेष भाष्यन्ते निरुक्त २।२

३. ''अथ तद्धित समासेष्वेकपर्वसु वानेक पर्वसु च पूर्व पूर्वमपरपरं प्रतिभज्य निर्व्रूयात्। निरुक्त २।२

आगे के कोषों में भी इस पद्धति का पूर्णरूपेण अनुसरण किया गया है, अनेक कोषकारों ने कोष में उपर्युक्त सभी अंगों के शब्दार्थ प्रस्तुत किया है।[1] आधुनिक युग में सभी कोष भी शब्दों की व्युत्पत्ति, लिंग प्रकृति-प्रत्यय के जानकारी के साथ लिखे गए हैं। "शब्द कल्पद्रुम्" और "वाचस्पत्यम्" इसके उदाहरण हैं।

इस तरह निरुक्त जिस उद्देश्य के लिए लिखा गया था उसकी पूर्ति परवर्ती कोषों ने किया। शब्दों की रक्षा के साथ-साथ उनके अर्थों को स्पष्ट करके वे वेदार्थ-ज्ञान में सहायक हुए।

कोष और व्याकरण

भारतीय वांग्मय अत्यन्त प्राचीन है। वेद साहित्य भारतीय ग्रन्थों के आद्य ग्रन्थ हैं। वेद की पूर्णता उसके षडंगों[2] से होती है। उन षड अंगों में क्रमशः प्रथम शिक्षा, द्वितीय कल्प, तृतीय व्याकरण, चतुर्थ निरुक्त (कोष,) पंचम छन्द, षष्ट ज्योतिष हैं। इन्हीं समस्त अंगों से वेद पूर्ण हैं। इनमें से किसी एक भी के अभाव में वेद अपूर्ण माना जाता है अर्थात उपर्युक्त समस्त अंगों से युक्त वेदों का विषय है दूसरे शब्दों में वेद के अन्तर्गत उपर्युक्त छः विषय समाविष्ट हैं वेद सर्वज्ञान मय है[3]। वेद के समस्त अंगों की उत्पत्ति वेद के ही साथ प्रारम्भ हुई।

व्याकरण की उत्पत्ति वेद से प्रारम्भ हुई। ऋग्वेद में ही व्याकरण जैसी व्युत्पत्ति दिखाई पड़ती है, जैसे—

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः"। ऋ० १।१६४।५०
"ये सहांसि सहसा सहन्ते"। ऋ० ६।६६।९
"पूर्वीरश्नन्तावश्विना"। ऋ० ८।५।३१
"स्तोतृभ्यो मंहते मधम"। ऋ० १।११।३
धान्यमसि धिनुहि देवान्। यजु० १।२०
"केतपूः केतं नः पुनातु यजुः। ११।७
"येनदेवाः पवित्रेणात्मानं पुनेत सदा"। सा०उ० ५।२।८
"तीर्थैस्तरन्ति"। अथर्ववेद १८।४।८
"यददः सं प्रयतीरहावनदताहते। तस्मादा नद्यो नाम स्थः"। अथर्ववेद ३।१३।१
"तदाप्नोदिन्द्रोवोयतीस्तस्मादापो अनुष्ठान"। अथ० ३।१३।२

---

१. "स्त्री पुनपुंसक जेयो अमर—३
२. "शिक्षा कल्पोऽथ व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां चयः।
ज्योतिषामयनं प्रोक्तं वेदांगानि षडैव तु॥
३. "सर्वज्ञानमयो हिसः"। मनु० २।७ मेघातिथि की टीका॥

ऋग्वेद में कुछ ऐसे पद प्रयुक्त हुए हैं जो कि व्याकरण के सूत्र के समान हैं। महाभाष्यकार ने उन पदों की व्याख्या करके प्रगट कर दिया है कि व्याकरण जैसी व्युत्पत्तियाँ ऋग्वेद के अन्तिम चरण से ही प्रारम्भ हैं, यथा

चत्वारि ऋंगा, त्रयो अस्य पदा द्वे शीर्षे, सप्त हस्तासो अस्य
त्रिधा बद्धोवृषभो रोरवीति महोदेवो मर्त्या आ विवेश ॥

"चत्वारि ऋङ्गाः।[1] चत्वारि ऋङ्गाणि चत्वारि पद जातानि नामाख्यातोपसर्ग निपाताश्च" इत्यादि प्रकार से व्याख्या[2] की गई है। इसी प्रकार चत्वारि वाक्[3] चत्वारि वाक्परिमिता पदानि। चत्वारि पद जातानि नामाख्यातोपसर्ग निपाताश्च[4] इसी प्रकार इस तरह के ५ मन्त्रों[5] को उद्धृत करके पतन्जलि ने यह सिद्ध कर दिया कि वैदिक काल में ही व्याकरण शास्त्र का उदय हो चुका था यहाँ तक कि वेद में प्रयुक्त "सप्त सिन्धवः" ऋ० ८।६६।१२ को "सप्तविभक्तयः" लिखा है। व्याकरण शास्त्र का उदय वेदकाल में हुआ है इसका और प्रमाण यजुर्वेद के उस मन्त्र से प्राप्त होता है, जिसमें जिस व्याकरण पद जिस धातु से निष्पन्न होता है, उसका मूल अर्थ में प्रयोग किया गया है।[6] अतः प्रमाणों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि व्याकरण शास्त्र का विवेचन अर्थात वैदिक काल से ही प्रारम्भ हो चुका था, लेकिन कालान्तर में जिस व्याकरण का जन्म पाणिनि ने दिया उस व्याकरण और वैदिक व्याकरण में विशेष अन्तर था। मोटे तौर पर वैदिक काल में ही व्याकरण शास्त्र की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी।

वेदों के पश्चात अन्य वैदिक साहित्य में क्रमशः व्याकरण का स्वरूप अत्यधिक विकसित होने लगा। शुक्ल यजुर्वेदीयमाध्यन्दिन वाजसनेयी शाखा के "शतपथ ब्राह्मण' में एक वचन और बहुवचन तथा छान्दोग्य उपनिषद् में स्वर ऊष्म स्पर्श आदि वर्ण विभाजक संज्ञाओं का उल्लेख हुआ है।[7] सामवेद

---

१. ऋग्वेद ४।५८।३
२. पतन्जलि महाभाष्य अध्याय १ पाद १ आन्हिक १
३. ऋग्वेद। १।१६४।४५
४. पतन्जलि महाभाष्य १।१।१
५. उतत्वः ऋ० १०।७१।४, सक्तुमिव तितउना। ऋ० १०।७१।२, सुदेवोवसि ऋ० स० ८।६८।१२
६. दृष्टवारूपे व्याकरोत् सत्यानृते प्रजापतिः यजुर्वेद १६।७७
७. व्याकरण शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास, रमाकान्त मिश्र पृ० ४

संहिता के मन्त्रो में महर्षिगण व्याकरण निर्दिष्ट पदचतुष्ठय का उल्लेख करके आराध्य देवताओं की स्तुति करते थे। "सर्वेस्वरा ऐन्द्रस्यात्मानः" अतः व्याकरण का उदय वेदों में स्थित स्वरों के ही कारण हुआ। अतः यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि व्याकरण शास्त्र का उदय वैदिक काल में हो चुका था व्याकरण की व्युत्पत्ति लिंग वचन धातु आदि के ही आधार पर मन्त्रों का निर्माण किया गया था।

यद्यपि वैदिक काल में व्याकरण के सूक्ष्म बीज दिखाई देने लगे थे, लेकिन केवल इस बात से पता लगाया जा सकता है कि व्याकरण जैसी व्युत्पत्तियाँ वैदिक काल में दिखाई देती हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि व्याकरण शास्त्र का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन वैदिक काल से प्रारम्भ हो चुका था और न ही इसके लिए कोई स्पष्ट प्रमाण ही उपलब्ध होते हैं। वैदिक काल में प्रत्यय[1], धातु उपसर्ग[2] समासघटित पूर्वोत्तर पदों[3] का विभाग पूर्णतया निर्धारित हो चुका था। सर्वप्रथम वाल्मीकीय रामायण में हनुमान के लिए वाक्पटु का प्रमाण प्राप्त होता है[4]। इसी समय से प्रगट होता है कि व्याकरण शास्त्र का पठन-पाठन प्रारम्भ हो चुका था और हनुमान जैसे वाक्पटु सिद्ध हो चुके थे। हनुमान के पिता वायु थे। वायु भी शब्द शास्त्र विशारद थे।[5]

इस प्रकार व्याकरण शास्त्र का अध्ययन अध्यापन बहुत प्राचीन-काल से ही प्रारम्भ हो गया था। कुछ वैयाकरणों का नाम तो प्राप्त होता है लेकिन उनका व्याकरण शास्त्र नहीं प्राप्त होता है। ऐसी दशा में यह मानना पड़ेगा कि पाणिनि से पूर्व व्याकरण शास्त्र विषय पर काम हो चुका था जिन वैयाकरणों ने व्याकरण शास्त्र की ओर दृष्टिपात किया था उनमें से कुछ का नाम तो पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी में दिया और कुछ का नाम निरुक्तकार यास्क ने भी लिया है। पाणिनि के पूर्व वैयाकरणों के नाम इस प्रकार से हैं।

---

१. वाजिनी वती। ऋ० पद० १।३।१०
२. सम् जग्मानः ऋ० पद० १।६।७ प्र तिरन्ते। प्र तिरन्ते। ऋ०पद० १।११३।१६
३. रुद्रवर्तिनी इति रुद्र वर्तनी। ऋ०पद० १।३।३ पति लोकम् ऋ०पद० १०।८५।४३
४. नन व्याकरणं कत्स्नमनेन बहुधा श्रतम। बहुव्याहरतानेन न किंचिद पेमाषितम्। किष्किन्धा काण्ड ३।२९
५. वायु पुराण २।४४.

आपिशलि पाणिनीय अष्टाध्यायी ६।१।६२, काश्यप १।२।२५ और ८।४। ६७ गार्ग्य ७।३।६६ और ८।३।२०, तथा ८।४।६७, चाक्रवर्मन ६।१।१३०, गालब ६।३।६१ और ७।३।६६ तथा ८।४।६७, शाकल्य १।१।१६ और ६।१। १२७ तथा ८।३।१६ शाकटायन ८।३।१२ और ८।४।५०, सैनक ५।४।११२ स्फोटायन ६।१।१२३, भारद्वाज ७।२।६३। इसके अतिरिक्त भी कुछ आचार्यों का उल्लेख अन्यत्र प्राप्त होता है, लेकिन पाणिनीय अष्टाध्यायी में उल्लिखित नहीं हुए जिनमें मुख्य रूप से-महेश्वर, २—बृहस्पति (न्याय मंजरी पृ० ४१८), ३—इन्द्र[1]. ४—वायु, ५—भरद्वाज[2], ६—भागुरि, ७—षौष्कर-सादि ८—चारायण, ६—काशकृत्स्न, १०—शन्तनु, ११—माध्यन्दिन, १२—रौढ़ि, १३—शौनकि, १४—गौतम, १५—यान्द्र ।[3]

उपर्युक्त वैयाकरणों में कुछ निरुक्तकार बताए हैं। यास्क ने १४ निरुक्तों का भेद बताया है।[4] तथा निरुक्तकारों में औपमन्यव, औदुम्बरायण, वार्ष्याणि, गार्ग्य, आग्रायण, शाकपूर्णि, और्णवाम तैटिक, गालव, स्थौलष्ठी, विक्रौरिर्थक, कास्थक्य, तेरहवां यास्क वाद में शाकटायन ताटवलाक्ष, कौत्सल, शाकल्य मुख्य रूप से नाम लिया है।

रामायण में नव व्याकरण का उल्लेख प्राप्त होता है।[5] इन्हीं सब प्रमाणों के आधार पर वोपदेव ने आठ शाब्दिकों का नाम उल्लेख किया है।[6] वोपदेव १३वीं शती के हैं, जिस कारण बाद के भी शाब्दिकों का उल्लेख किया है। पाणिनि से पूर्व वैयाकरणों में जिन दस वैयाकरणों का उल्लेख किया है। पाणिनि से पूर्व वैयाकरणों में जिन दस वैयाकरणों का उल्लेख पाणिनि ने किया है संभवतः उन्हीं का व्याकरण शास्त्र प्राप्त था और अन्य जिनका नाम अलग से प्राप्त होता है उनका व्याकरण नहीं प्राप्त था। अगर प्राप्त होता तो पाणिनि अवश्य उल्लेख करते।

पाणिनि

पाणिनि से पूर्व व्याकरण के कोई ग्रन्थ नहीं प्राप्त होते हैं। पाणिनि स्वयं दस व्याकरण के आचार्यों का तो उल्लेख किया है परन्तु उनके ग्रन्थ का कोई

---

१. तेतरीय संहिता ६।४।७
२. ऋक्तन्त्र पूर्व वृष्ठ ५८
३. व्याकरण शास्त्र का इतिहास युधिष्ठिर मीमांसक।
४. निरुक्त चतुर्दश प्रभेदम्
५. सोऽयं नव व्याकरणार्थ वेत्ता। रामायण उत्तराकाण्ड ३६।४७
६. ऐन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः
पाणिन्यमरजेनेन्द्रा जयन्त्यष्ठादि शाब्दिका ॥

पता नहीं है। आचार्य पाणिनि के समय तक व्याकरण शास्त्र की आवश्यकता प्रतीत होने लगी थी। वेद के अतिगूढ़ मन्त्रों की व्याख्या के लिये व्याकरण शास्त्र आवश्यक हो गया था। यों तो सभी साहित्य के शब्द अपने में अर्थ सापेक्ष्य होने के कारण सीमित हैं। संस्कृत वांग्मय का बृहद शब्द भंडार अपनी-अपनी व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थ सापेक्ष्य है। शब्दों के व्युत्पत्ति के उद्देश्य से ही व्याकरण शास्त्र का प्रणयन किया गया है "व्याकरण" शब्द का ही अर्थ होता है कि ऐसा शास्त्र जिसमें शब्दों की व्युत्पत्ति अर्थ है और प्रयोग बताया गया हो।[1] अन्य स्थान में "जिस तन्त्र से साधु शब्द का ज्ञान होता है, उसे व्याकरण कहते हैं।"[2]

अतः पाणिनि के व्याकरण बद्ध कर देने से भाषा का ह्रास रुक गया। विकास जितना होना था वह तो हो ही गया था।

पाणिनि के अष्टाध्यायी में चार हजार सूत्र हैं तथा यह आठ अध्यायों में विभक्त है, जिसमें प्रत्येक में चार पाद हैं। अष्टाध्यायी के अध्ययन से तत्कालीन समाज संस्कृति सभ्यता का ज्ञान प्राप्त होता है। प्रस्तुत विषय में डॉ० बासुदेवशरण अग्रवाल "पाणिनि कालीन भारतवर्ष" पर बृहद शोध पूर्ण कार्य किया है।

पाणिनि के पश्चात् पाणिनि के अष्टाध्यायी पर कात्यायन ने वार्तिक लिखा संभवतः पाणिनि के १०० वर्ष के अनन्तर कात्यायन का समय बैठता है। कात्यायन के ही भांति पतंजलि ने महाभाष्य लिखा जो कि कात्यायन के १०० वर्ष के बाद संभवतः माने जाते हैं। व्याकरण शास्त्र में जिन त्रिमुनियों का संकेत प्राप्त होता है। उन में पाणिनि कात्यायन और पतंजलि ही हैं। पतंजलि के पश्चात् व्याकरण शास्त्र का विकास रुक गया। अब व्याकरण लिखने वाले विद्वान सामने नहीं आए। व्याख्या लिखने लगे व्याकरण शास्त्र की वास्तविक गति वहीं रुक जाती है। अब व्याख्या काल प्रारम्भ हो जाता है। व्याख्या-काल में जिन वैयाकरणों का नाम प्राप्त होता है, उनमें वामन, जयादित्य, चान्द्र आदि मुख्य रूप से आते हैं। व्याख्या काल के पश्चात् प्रक्रिया काल आता है। इसमें व्याकरण को सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। इसमें विमल सरस्वती की रूपमाला सबसे मुख्य है।[3] इस प्रकार पाणिनि के अनन्तर

---

१. "व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्।"

२. "लघुसिद्धान्त कौमुदी, महेश सिंह कुशवाहा भूमिका।"

३. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ० ८५

व्याकरण शास्त्र की गति मन्द पड़ जाती है। दूसरे रूप में व्याकरण लिखा जाने लगा। कुछ सम्प्रदायों ने अपना सम्प्रदाय बनाकर व्याकरण शास्त्र पर विचार किया।[1]

कोष और व्याकरण

कोष और व्याकरण दोनों वेद के षड् अंगों में आते हैं, जिसमें व्याकरण का नाम पहले और कोष का नाम बाद में आता है। व्याकरण को वेद पुरुष का मुख बताया गया है।[2] मुख होने के कारण यह वेदांगों में मुख्य है। कोष वेदांगों में श्रोत्र है मुख व्याकरण है। कोष श्रोत्र है मुख और श्रोत्र दोनों इन्द्रियां हैं। दस इन्द्रियों में से मुख और श्रोत्र दोनों मुख्य हैं और दोनों का एक दूसरे से सम्बन्ध होता है। मुख का कार्य है भक्षण करे या ग्रहण करे अर्थात ग्रहणीय और अग्रहणीय का विचार हो जाने के बाद मुख ग्रहण करता है। ग्रहणीय और अग्रहणीय का विचार अन्य शरीरांग करते हैं। श्रोत्र का काम है सभी ग्रहणीय और अग्रहणीय का श्रवण करें अर्थात सभी वस्तुओं को जानें। जहां एक ओर व्याकरण सभी शब्दों को अपने में आत्मसात करता है वहीं दूसरी ओर कोष उन सबकी जानकारी रखता है। अतः कोष और व्याकरण एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। यह कहना विशेष अनुचित न होगा कि व्याकरण और कोष का कार्य लगभग एक ही है।

2345

कोष और व्याकरण शब्द के अर्थ को बताते हैं। दोनों का कार्य कुछ अलग अलग आगे हो जाते हैं, लेकिन दोनों का उद्देश्य एक ही होता है अर्थज्ञान, वैसे शब्द के साथ अर्थ जुड़ा हुआ होता है अर्थात् किसी शब्द में अप्रत्यक्ष रूप से अर्थ लगा हुआ होता है। कालिदास ने इस मत को सर्वप्रथम शंकर और पार्वती को एक, शब्दार्थ की भांति मानकर लिखा है।[3] पतंजलि ने लिखा है कि पाणिनि और कात्यायन ने जो शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को स्वीकार करते हैं, वह सम्बन्ध नित्य है[4] इसी बात को स्वीकार करते हुए भर्तृहरि ने शब्दार्थ के

---

१. चान्द्र, सम्प्रदाय, जैनेन्द्र सम्प्रदाय, शाकटायन सम्प्रदाय, हेम सम्प्रदाय आदि।

२. "मुखं व्याकरणंतस्य ज्योतिषनेत्रमुच्यते
निरुक्तं श्रोत्रमुद्दिष्टं छन्दसां विधितिः पदे ॥

३. वागार्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तए ।.जगतः पितरौ बन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।
रघुः ।१।१

४. सिद्धे शब्दे अर्थ सम्बन्धेच । नित्यो ह्यर्थवतामर्थैरभिसम्बन्धः महाभाष्य अ० १

सम्बन्ध को नित्य बताया[१], अर्थात शब्द के साथ अर्थ नित्य है। विद्यमान है। बिना अर्थ के शब्द संभव नहीं लेकिन किन तन्त्रों से उस अर्थ को ग्रहण किया जाय। यह कैसे जाना जाय कि अमुक शब्द का अर्थ है और किस कारण अमुक अर्थ हो गया है। पाणिनि का इस विषय में कहना है कि लोक व्यवहार के कारण ही अर्थ का ज्ञान होता है।[२] पतंजलि ने इसकी व्याख्या में लिखा है कि शब्दों का प्रयोग और उनसे अर्थज्ञान लोक व्यवहार के द्वारा होता है।[३] व्याकरण शास्त्र लौकिक प्रयोग में धर्म और अधर्म की व्यवस्था करता है अर्थात साधु और शिष्ट प्रयुक्त शब्दों के प्रयोग से धर्म होता है और असाधु के प्रयोग से अधर्म।

शब्दबोध के ज्ञान की आवश्यकता होती है अर्थात अमुक शब्द का अमुक अर्थ होगा अथवा अमुक शब्द अमुक अर्थ बोध कराता है। इस शब्द से इस अर्थ का बोध होता है और इस शब्द का यह अर्थ है। इस बृत्ति ज्ञान को शक्तिग्रह भी कहते हैं।

शक्तिग्रह किन किन प्रकारों से होता है अर्थात् किन प्रकारों से शब्द के अर्थ का ज्ञान होता है। इसके लिए बताया गया है कि शक्ति का ज्ञान आठ प्रकार से होता है।[४]

(१) व्याकरण, (२) उपमान, (३) कोष, (४) आप्तवाक्य, (५) व्यवहार, (६) वाक्यशेष, (७) विवरण, (८) ज्ञातपद के साहचर्य से।

उपर्युक्त आठ प्रकारों में यहाँ केवल व्याकरण और कोष पर ही विचार किया जायगा।

व्याकरण

शक्ति ग्रहण अर्थात् शब्दार्थ बोध के लिए व्याकरण मुख्य है व्याकरण के ही द्वारा शक्तिग्रहण संभव है। एक स्थान पर भर्तृहरि ने अर्थ दो प्रकार का बताया है।

---

१. नित्या शब्दार्थ सबंधाः समाम्नातो महर्षिभिः
   सूत्राणां चानु तन्त्राणां भाष्याणांच प्रणेतृभिः ॥ वाक्य० १।२३

२. प्रधान प्रत्ययार्थ वचन मथंस्यान्य प्रमाणत्वात्।

३. यदि तर्हिलोक एष प्रमाणम। कि शास्त्रेणक्रियते ? अष्टाध्यायी १।३।५६
   लोकतोऽर्थ प्रयुक्ते शब्द प्रयोगे शास्त्रेण धर्म नियमः महा० भा० आ०१

४. 'शक्तिग्रहं व्याकरणोपमान कोषाप्तवाक्याद व्यवहरतश्च।
   वाक्यस्य शेषाद् विवृतिवदन्ति सानिध्यतः सिद्धपदस्यवद्धाः।
   (शब्दशक्ति प्रकाशिका, जगदीश—२०)

(१)**अपोद्वार पदार्थ**[१]—जहाँ कल्पना के द्वारा अपोद्धार विभाजन या विच्छेद हो उसको अपोद्धार हेलाराज ने बताया है[२]। व्याक्रिया या व्याकरण शब्द का जो योगिक अर्थ किया जाता है अर्थात् विभाजन। 'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्तेशद्धा अनेनेति व्याकरणम्।' यही अर्थ को अपोद्धार शब्द भी प्रकट करता है अर्थात् अपोद्धार भी वाक्य के अवयवों का बिच्छेद करना बताया है। वैयाकरणों का कहना है कि वाक्य अखण्ड है, उसमें पदों को अलग करना (वाक्य विच्छेद) तथा एक पद में से प्रकृति और प्रत्यय को अलग करना पदविच्छेद अपोद्वार (विभाजन या विच्छेद) कहलाता है। अपोद्वार का तात्पर्य प्रकृति और प्रत्यय का अर्थ तथा वाक्य से प्राप्त विभिन्न पदों का अर्थ।

(२) **स्थित लक्षण**—जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि स्थित अर्थात् निश्चित, जिसका लक्षण या स्वरूप निश्चित रहता है वाक्य का अर्थ निश्चित होने से ही उसे स्थित कहा गया है। कुछ लोगों[३] के मत में पद ही स्थित लक्षण है। यह विचार उन सिद्धान्त वादियों का है जो पद को ही अर्थ साधन मानते हैं लेकिन सर्वप्रथम शक्ति का ज्ञान वाक्य से ही होता है।[४] बालक जब सर्वप्रथम अर्थ ग्रहण करता है, उस समय उसे वाक्य के द्वारा ही अर्थज्ञान होता है, मुख्य रूप से स्थित लक्षण प्रकार का ज्ञान लोक व्यवहार के ही द्वारा होता है, स्थित लक्षण प्रकार का ज्ञान जब लोक व्यवहार से ही होता है, तब उस व्याकरण की विशेष आवश्यकता नहीं होती, कुछ व्याकरण से युक्त होता हुआ भी व्याकरण के नियमों से बंधा नहीं होता है, लेकिन अपोद्धार पदार्थ का ज्ञान बिना व्याकरण संभव नहीं है, क्योंकि व्याकरण ही अन्वय व्यतिरेक पद्धति का प्रयोग करके यह प्रकृति या धातु संज्ञा शब्दार्थ प्रत्यय आदि का ज्ञान, धातु, लकार, गण, आदि का ज्ञान अपोद्धार के ही माध्यम से संभव है। अर्थात् वाक्य रूप का अर्थ लोक व्यवहार कराता है, जिसे स्थित लक्षण की आवश्यकता होती है और वाक्य के खण्ड प्रयोग, प्रत्यय और उसके समस्त अवयवों का विस्मृत ज्ञान अपोद्धार के ही माध्यम से होता है। वैसे यह निश्चित रहता है कि वाक्य का केवल एक ही अर्थ होगा जो व्युत्पत्तियुक्त रहता है, वही केवल प्रचलित नहीं रहता, वरन कभी लोक व्यवहार में प्रयुक्त

---

१. 'अपाद्धारपयार्था ये ये चार्थाः स्थित लक्षणाः वाक्य पदीय १।२४

२. 'अपोध्रियन्त कल्पनाबुद्या निष्कृष्यन्ते' हेलाराज का० पृ०१.

३. पदस्फोटवादी

४. 'प्रथमशक्तिग्रहं वाक्य एव; वैयाकरण सिद्धान्त लघु मंजुषा, नागेश पृ० १७

व्युत्पत्तियुक्त अर्थ से भिन्न भी अर्थ होता है, इसीलिए पाणिनि लोक व्यवहार जो कि लोक प्रसिद्धि और लोक व्यवहार से अर्थ उपस्थित होता है, उसे भी बताया है[1] इसीलिए विश्वनाथ ने बताया कि शब्दों की व्युत्पत्ति अन्य रूप से होता है और उसका प्रयोग विभिन्न रूप से होता है।[2]

अतएव व्याकरण के द्वारा शब्दों के विभिन्न अवयवों का ज्ञान मूल रूप की प्राप्ति होती है। अमुक शब्द में कौन कौन से बाह्याडम्बर लगे हैं तथा इसका मूल रूप क्या था इत्यादि बातों की क्या आवश्यकता थी कि इसके मूल रूप में इस प्रकार के आडम्बरों से जकड़ देना इत्यादि बातों की जानकारी अपोद्धार पदार्थ के द्वारा होती है, यही मुख्य जो व्याकरण माना जाता है जैसे राम शब्द है। इसके प्रथमा विभक्ति में रामः बनता है तो इसमें कैसे राम बनता है। क्या आवश्यकता थी रामः बनाने की इत्यादि बातों की पूर्ण जानकारी अपोद्धार पदार्थ के ही द्वारा होती है। दूसरा प्रकार स्थित लक्षण है उसका व्याकरण से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता है। वह जो वाक्यार्थ लोक व्यवहार में प्रयुक्त होता है उसी को बताता है। व्याकरण के नियम प्रत्यय और उसकी सीमा में बहुत नहीं बंधा रहता, लेकिन अपोद्वार इन सबसे युक्त होता है।

कोष—कोष का मूल तात्पर्य खजाना है अर्थात् इकट्ठा किया हुआ को कोष कहते हैं। जैसे द्रव्य को इकट्ठा करने को द्रव्य कोष कहते हैं उसी प्रकार साहित्य क्षेत्र में शब्दों के संग्रह को शब्द कोष कहा गया है। यह कोष शक्ति ग्रह में आवश्यक होता है अर्थात् कोष के द्वारा ही शब्द के वास्तविक अर्थ का ज्ञान हो सकता है तथा कोष यह भी बताता है कि ऐसी अवस्था में इस शब्द का इस शब्द के स्थान पर प्रयोग किया जा सकता है।[3]

कोष भी दो प्रकार के पाए जाते हैं (१) एकार्थक या समानार्थक इस प्रकार के कोषों में एक शब्द के उसी अर्थ से सम्बन्धित नाम दिये जाते हैं। जैसे अग्नि के १५ नाम, विष्णु २० नाम, कामदेव के २४ नाम इत्यादि इस

---

१. योग प्रमाणेच तदभावं दर्शनस्यात
प्रधान प्रत्ययार्थ वेचनमर्थस्यान्ब प्रेमाणत्वात ॥ अष्टाध्याय १,२,५५,५६.

२. अन्यद्धि शब्दानां व्युत्पत्तिनिमित्तमन्यच्च प्रवृत्ति निमित्तम्। सा० द० २.५

३. आण्डेन रिचार्डस् पृ० २०७

प्रकार के कोष जिसमें शब्दों के पर्याय दिये जाते हैं, उन्हें एकार्थक या समानार्थक कोष कहते हैं, इस प्रकार के शब्दों में जो एक अर्थ में अनेक शब्द हैं ये शब्द कौन अधिक है और कौन कम प्रचलित है इसका ज्ञान लोक व्यवहार ही कराता है। (२) दूसरे प्रकार के कोष को अनेकार्थक कोष कहा गया है इसमें एक शब्द के अनेक अर्थ दिये जाते हैं। इसीलिए इस प्रकार के कोष कहे जाते हैं। अतः शक्ति ग्रह कोष के ही माध्यम से होता है, चाहे वे एकार्थक हों चाहे अनेकार्थक हों। इसके अतिरिक्त लोक व्यवहार में जो शब्द प्रयुक्त होते हैं उन समस्त शब्दों को भी कोष बनाता है। यहां कोष और व्याकरण में भिन्नता हो जाती है। लोक व्यवहार कराने वाले शब्द व्याकरण से निष्ट नहीं होते लेकिन लोक व्यवहार वाले शब्द कोषयुक्त होते हैं।

यह बात स्पष्ट हो गई कि कोष और व्याकरण दोनों शक्तिग्रह अर्थात शब्दार्थ का ज्ञान कराते हैं, लेकिन इन दोनों में कुछ अन्तर है––

१. व्याकरण वेदांग में कोष से पहले आता है तथा वेद शरीर का मुख है तथा कोष वेदांग में व्याकरण के बाद माना जाता है और वेद शरीर का श्रोत्र है।

२. व्याकरण शब्दों की व्युत्पत्ति प्रकट करके अर्थ देता है अर्थात अमुक शब्द का अमुक अर्थ इसलिए होता है कि व्युत्पत्ति यह इस प्रकार से है। शास्त्र शब्दों के वास्तविक अर्थ को बताते हुए उसकी व्युत्पत्ति देते हुए उसके विभिन्न प्रयोग को बताता है। जैसे कामदेव के अर्थ में मन्मथ शब्द आता है। व्याकरण शास्त्र पहले यह बताएगा कि यह किस प्रकरण का रूप है और इसमें सु और जस् प्रत्यय लग जाने पर इसका क्या रूप बनेगा। मन्मथ का अर्थ बताया गया है मन को मथने वाला (मथ्नातीतिमन्मथः)[1] और इसके साथ ही व्याकरण यह बताता है कि मन्मथ के कितने नाम मन्मथ, कामदेव, रतिपति, मनोभव, मार, इन सबका प्रयोग कहां किन का होगा अर्थात सभी शब्द एक ही अर्थ में नहीं प्रयुक्त हो सकते हैं। उनका प्रयोग अलग अलग होगा लेकिन कोष यह बताएगा कि कामदेव के इतने नाम प्राप्त होते हैं। इनका प्रयोग क्या है, अर्थात इन सब नामों का कहां कैसे प्रयोग होगा वहां कोष अलग हो जाता है।

३. व्याकरण शास्त्र शब्दों को जन्म अर्थात संस्कार देकर ग्रहण करता है शब्दों को जो अव्याकृत होते हैं उन सबकी व्याकृत करके ही ग्रहण करता है

---

१. क्षीरस्वामी अमरटीका १।१।२५

और बताएगा कि इसका लोक में यह प्रयोग होगा और वेद में यह प्रयोग लेकिन कोष यह नहीं बताता कि कौन सा शब्द व्याकृत है और कौन सा शब्द अव्याकृत है। समस्त शब्दों को ग्रहण करता है। १६ वीं शदी का रघुनाथ पंडित का राज व्यवहार कोष में समस्त अव्याकृत शब्द ग्रहण किए गए हैं।[1]

४. जिस प्रकार से कोष में समानार्थक और नानार्थक शब्दों का विभाग किया गया है लेकिन व्याकरण शास्त्र में इस प्रकार का विभाग नहीं किया गया है। संस्कृत कोष में जो समानार्थक शब्दों को दिया गया है। उन समानार्थक शब्दों का अर्थ व्याकरण के सहायता बिना नहीं जाना जा सकता है अर्थात व्याकरण और कोष दोनों शक्तिग्रह कराते हैं। फिर भी जिन शब्दों को कोष बताता है उसका अन्तिम प्रमाणिक शक्तिग्रह व्याकरण ही कराता है जैसे अमरकोष में कामदेव के १६ नामों को बताया गया है। सामान्य पाठक यहाँ १६ नामों को ही समझेंगे लेकिन यह नहीं समझेगें कि १६ नाम जो दिए गए हैं उनका क्या अर्थ होगा। व्याकरण यह बताएगा कि मन्मथ का अर्थ है मन को मथने वाला मदन का अर्थ है हर्ष को उत्पन्न करने वाला, मार का अर्थ है स्वास्थ्य मार डालने वाला, इत्यादि इस प्रकार की जानकारी व्याकरण ही देता है।

अतः इन सबसे स्पष्ट है कि व्याकरण और कोष एक ही उद्देश्य वाले हैं फिर भी जहाँ कोष सामाग्री इकट्ठा करता है वहीं व्याकरण उसका प्रयोग करता है। इसलिए दोनों एक होते हुए भी व्याकरण शास्त्र भाषा को संस्कार मुक्त बनाया प्रकृति प्रत्यय आदि के द्वारा भाषा को परिमार्जित किया। दूसरी बात यह कि व्याकरण शास्त्र शब्दों को व्यावहारिक बनाते हुए उसके मूल रूप को परिर्वातित किया। व्याकरण एक ऐसा शास्त्र है जिसका एक अपना अलग अस्तित्व है और अपने में सर्वांग पूर्ण है। विचार की अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा ही होती है तथा विचार और भाषा के तारतम्य को बांधने वाली विद्या व्याकरण है। संस्कृत व्याकरण शास्त्र में अलग अलग विभाग हैं, जितना महान हमारा व्याकरण है उतना अन्य भाषाओं का नहीं।

प्राचीन काल से इन्द्र और बृहस्पति ने विकसित किया तथा बाद में पाणिनि, पतंजलि और कात्यायन ने व्याकरण के क्षेत्र में वह काम किया जो आज भारतीयों के लिए गौरव की चीज होते हुए निधि स्वरूप हो गई है।

---

१. प्रस्तुत कोष राजव्यवहार कोष में संस्कृत शब्द से भिन्न शब्द उर्दू के भी ग्रहण किये गये हैं और उनको संस्कृत भाषा में लिखा गया है। जैसे शराब खाना। ३।९५, फीलखाना ५।३४, सुलतानढवा ७।९६ इत्यादि।

द्वितीय अध्याय

संस्कृत कोषों का परिचय

•

प्राचीन एवं प्रमाणिक कोष

संस्कृत कोषों का प्रणयन तीन कालों में हुआ है :—

(१) पूर्व अमरकाल
(२) अमरकाल
(३) पश्चात् अमरकाल

पूर्व अमरकाल

अमरसिंह के पूर्व लिखे गये कोषों में सर्वप्रथम संस्कृत साहित्य के कोष निघण्टु का नाम उल्लेखनीय है। जो अमरकोष के लगभग १२० वर्ष पहले लिखा गया होगा। निरुक्त की रचना लगभग ७०० ई० पू० में हुई।[१] यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि निघण्टु की रचना टीका (निरुक्त) से लगभग २०० वर्ष पूर्व हुई होगी। अतः निघण्टु ६०० ई० पू० की रचना सिद्ध होती है। अमरकोष की रचना तीसरी और चौथी शती में हुई। अमरकोष का चीनी भाषा में अनुवाद छठी शती में हो चुका था।[२] कुछ लोग अमरसिंह को विक्रम संवत के प्रवर्तक विक्रमादित्य के नवरत्नों में मानते हैं।[३] ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर विक्रमादित्य का समय प्रथम शती ई० स्वीकारा गया है। अतः यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि अमरकोष की रचना पहली और छठी शताब्दी के बीच में हुई। कुछ लोग अमरकोष की सांस्कृतिक सामग्री के आधार पर अमरकोष को चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय का मानते हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय को भी विक्रमादित्य कहा जाता था।

---

१. निरुक्तम् डा०क० द्विवेदी भूमिका पृ० १८
२. मैक्समूलर का मत अमरकोष मणि प्रभा व्याख्या प्रस्तावना पृ०
३. धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह शंकुवेतालभट्ट छटखर्पर कालिदासः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः संभाया रत्नानि वैवर चिर्नवविक्रमस्य ॥

कुछ भी हो अमरकोष छठी शती के पूर्व की रचना है। इस प्रकार अमरकोष और निघण्टु के बीच में लगभग १२०० वर्ष का अन्तराल रहा है।

निघण्टु के पश्चात् और अमरकोष के पूर्व बहुत से कोष लिखे गये, लेकिन उनमें से अधिकांश कोषों का पता मात्र चलता है। वे आज उपलब्ध नहीं हैं, क्योंकि प्राचीन ग्रन्थ बहुत समय तक हस्तलिखित थे। अठारहवीं शती के उत्तरार्ध प्रकाशन प्रारम्भ हुआ है अमरकोष का ही प्रकाशन सर्वप्रथम १६७५ ई० में रोम से हुआ था। और इसके पश्चात ही समस्त उपलब्ध कोषों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ होगा। कुछ कोष उपलब्ध नहीं हैं और उनके बाद के कोषों में या तो उनका उल्लेख प्राप्त होता है या उनसे उद्धरण दिये गये हैं। उदाहरणार्थ अमरकोष के टीकाकार सर्वानन्द ने १।१२ में लिखा है कि अमरसिंह ने अमरकोष के लिए व्याद्रि, वररुचि से सामग्री ली है।[1] पुरुषोत्तम देव ने 'हारावलि' में अमरकोष के पहले लिखे गए निम्नांकित कोषों का उल्लेख किया है।[2]

१.	शब्दार्णव	वाचस्पति
२.	उत्पलिनी	व्यादि
३.	संसारावर्त	विक्रमादित्य

किन्तु मेदिनीकर ने निम्नांकित कोष और कोषकारों को प्राचीन बताया है।

१.	उत्पलिनी	७.	शाश्वत कृत कोष
२.	शब्दार्णव	८.	वोपालित
३.	संसारावर्त	९.	रन्तिदेव
४.	नाममालाख्या	१०.	गोवर्धन
५.	भागुरि कृत कोष	११.	रभसपाल
६.	वररुचिकृत कोष	१२.	रुद्र

---

१. अन्यतन्त्राणि व्याडिवररुचिप्रभृतीनां तन्त्राणि, समाहृत्य एकीकृत्य। अतएव सम्पूर्णमिदं, यतस्त्रिकाण्डोत्पलिन्यादीनि नाममात्र तन्त्राणि, व्याडिवररुच्यादि प्रणीतानि तु लिंग मात्र तन्त्राणि।

२. शब्दार्णव, उत्पलिनी, संसारावर्त इत्यपि
कोषा वाचस्पति व्याडि विक्रमादित्यस्य निर्मिता॥

(हारावलि पुरुषोत्तम देब)

१३. अमरदत्त
१४. गंगाधर
१५. वाग्भट्ट
१६. माधव
१७. धर्म
१८. तारापाल
१९. वामन
२०. चन्द्र
२१. विक्रमादित्य
२२. गौमिरचितकोष
२३. पाणिनि पदानुशासनादि[1]

इनमें मेदिनीकर के पूर्व कोषकारों का उल्लेख है जिनमें बहुत से कोषकार अमरसिंह के पूर्व के भी हैं और बहुत से बाद के भी हैं। शब्दकल्पद्रुमकोष राजा राधाकान्त देव के प्रथम खण्ड की प्रस्तावना में निम्न प्राचीन एवं प्रमाणिक कोषों का उल्लेख किया गया है—

१. भौग्रीन्द्र
२. कात्यायन
३. साहसांक
४. वाचस्पति
५. व्याडि
६. विश्वरूप
७. मंगल
८. शुमांक
९. वोपालित
१०. भागुरि

केशवकृत कल्पद्रुकोष की प्रस्तावना में भी प्राचीन कोषकारों में से १. व्याडि, २. कात्य, ३. भागुरि, ४. रत्नकोष, ५. माला, ६. वाचस्पति, ७. धन्वन्तरि आदि का स्मरण किया गया है।

---

१. उत्पलिनी शब्दार्णवर्त नाममालाख्यान्।
भागुरिवररुचि शाश्वत वोपालित रन्तिदेव हरकोषान्॥
उमरशुभांक हलायुध गोवर्धन रभसपाल कृत कोषान्।
रुद्रामरदत्ताजय, गंगाधर धरणि, कोषांश्च॥
हारावल्यभिधानं त्रिकाण्ड शेष च रत्नमालां च।
अपि बहूदोष विश्वप्रकाश कोषं चसुविचार्य॥
वाग्भट माधव वाचस्पति धर्म व्याडितारपाला ख्यान्।
अपिविश्वरूप विक्रमादित्य नार्मालिंगानि सुविचार्य॥
कात्यायन वामन चन्द्रगोभिरचितानि लिंगे शास्त्राणि॥
पाणिनि पदानशासन पुराण काव्यादिकं च सुनिरूप्य।
षट्शतगाथा कोष प्रणयन विख्यात् कौशलेनाऽयम्
मेदिनिकरेण कोषः प्राणकर सूनुनो रचितः॥
(मेदिनी कोष उपसंहार पृ० १८७)

उपर्युक्त कोषों में से कुछ कोष जैसे शाश्वत कृत 'अनेकार्थ समुच्चय' और अन्य भी अमरकोष के बाद की रचनायें हैं ।[१] उनका विवरण उपलब्ध कोषों के परिचय के साथ दिया जायगा । यहां जो अमरकोष से पूर्व लिखे गए थे उन्हीं की चर्चा की जायगी ।

१. **व्याडि**---श्री हेमचन्द्राचार्य ने अपने अभिधान चिन्तामणि की स्वोपज्ञ टीका में व्याडि के कोष उत्पलिनी के बड़े-बड़े उद्धरण दिये हैं, जिससे प्रतीत होता है कि इनके कोष में शब्दों और उनके अर्थों का संकलन किया गया था, इस कोष में अमरकोष के समान समानार्थक शब्दों का ही चयन था ।[२]

२. **कात्य**---कात्य नामक कोषकार का उल्लेख अमरकोष के प्रसिद्ध टीकाकार क्षीरस्वामी ने अपनी टीका में किया है । इनके कोष का नाम नाममाला था । कहीं-कहीं अमरकोष और नाममाला में रोचक साम्य मिलता है, जैसे----

नाममाला 'छुद्रछिद्र समोपेतं चालनं तितऊ पुमान् ॥

अमरकोष चालनं तितऊ पुमान् ।

इनका कोष नानार्थक और समानार्थक दोनों पद्धतियों पर आधारित था ।[३]

३. **भागुरि**----भागुरि के मत का निर्देश तथा उनके ग्रन्थ के उद्धरण अनेक परवर्ती कोषों में उपलब्ध होते हैं । इनके कोष का नाम 'त्रिकाण्ड कोष' था । इन्होंने तीन काण्डों वाले कोष की रचना की थी, जो अमरकोष से सर्वथा भिन्न था । सायण ने अपने माधवीया धातुवृति में लिखा है 'भागुरि' 'वर्षाभू' शब्द को ह्रस्व उकारान्त ही मानते थे ।[४] नानार्थार्णव संक्षेप में केशव स्वामी ने भागुरि के मत का उल्लेख किया है । भागुरि का कोष समानार्थक था ।[५]

१- कल्पद्रु कोष प्रस्तावना XXV

२. कल्पद्रु कोष प्रस्तावना XII

३. कल्पद्रु कोष प्रस्तावना XIII

४. तथाँ भागुरिरपि ह्रस्वान्तं मन्यते । यथाच
भार्यामिकस्य वर्षाम्बी, ऋगी स्याद मदगुरस्यतु
शिलीगण्डपदस्यामि कच्छपस्य डुलिः स्मृता ।
(माधवीया धातु वृत्तिः पृ० ४२)

५. कल्पद्रु कोष प्रस्तावना XIV

४. **रत्नकोष**--कहीं-कहीं रत्नकोष नामक कोष के भी उद्धरण प्राप्त होते हैं। लेकिन इस कोष के लेखक का कोई परिचय नहीं प्राप्त होता है। सर्वानन्द ने रत्नकोष के बारे में मात्र इतना लिखा है कि 'रत्नकोष के परिच्छेदों का वर्गीकरण लिंग के आधार पर था।' यह कोष कई परिच्छेदों में विभक्त था तथा समानार्थक पद्धति पर लिखा गया था।[1]

५. **माला या अमरमाला**--प्राचीन कोषों में माला या अमर माला दोनों नामों का उल्लेख मिलता है। इस कोष का पूर्ण नाम संभवतः अमरमाला ही था। कोषकारों ने माला नाम से उसे संक्षिप्त कर लिया होगा इसके लेखक अमरदत्त थे। सर्वानन्द ने अपनी अमरटीका में करीब ३० से भी अधिक उद्धरण अमरमाला से दिए हैं। हलायुध ने अपने कोष 'अभिधान रत्नमाला' का आधार नाममाला नामक कोष को ही माना है।[2] उन्होंने नाममाला की गलतियों को भी स्पष्टतः निर्दिष्ट किया है।[3] इनका कोष समानार्थक पद्धति पर लिखा गया था।

६. **वाचस्पति**---इनके कोष का नाम 'शब्दार्णव' था जिसमें समानार्थक शब्दों का संकलन था। एक नाम के अनेक रूपों को देने की शब्दार्णव की अपनी विशेषता थी। चन्द्रमा का वाचक संस्कृत, शब्द 'चन्द्र' है। लेकिन शब्दार्णव में 'चन्द्र' बताया गया है और इसी तरह इस कोष में सूर्य अर्थ में मार्त्तण्ड और मार्त्ताण्ड दोनों रूपों को स्वीकार किया गया है।[4]

७. **धन्वन्तरि**—'धन्वन्तरि निघण्टु' नामक कोष प्राचीन चिकित्सा का अत्यन्त उपयोगी कोष है। इस कोष के प्रणयनकर्त्ता धन्वन्तरि विक्रमादित्य के नवरत्नों में माने जाते हैं। इनका कोष अमरसिंह के पूर्व का यह उपलब्ध है। धन्वन्तरि अमरसिंह के पूर्व हुए इसके दो प्रमाण हैं एक तो यह कि इनकी

---

१. **कल्पद्रुकोख प्रस्तावना** XIV
२. **अभिधान रत्नमाला १।१**
३. CF. Hata II 120
द्रप्सं द्रध्यधनं स्यात यन्माला तथा एतच्चद्रप्सं।
शरमिति भागुरि पाठे शरेमिति शुद्धा मालाकृदभ्रान्ता॥
४. **'हिमांशुश्चन्द्रमाश्चन्द्रः शशीचन्दो हिमद्युतिः'**
पदचन्द्रिका प्रथम भाग पृ० (१०७)

गणना विक्रमादित्य के नवरत्नों में अमरसिंह के पहले की जाती है[१] दूसरे यह कि अमरकोष के टीकाकार क्षीरस्वामी ने स्पष्ट लिखा है कि अमरसिंह ने अपने वनौषधिवर्ग के लिए धन्वन्तरि निघण्टु से सामग्री ली है। उन्होंने यह भी संकेत किया है कि अमरसिंह ने 'वैद्यक निघण्टु' में लिखे 'बालपत्र' को बालपुत्र समझने की भूल की है।[२] धन्वन्तरि बालपत्र को खादिर का पर्याय बताया है और अमरसिंह ने खादिर का पर्याय 'बाल तनय' लिखा है।[३]

कुछ लोगों का कहना है कि इस कोष की रचना धन्वन्तरि के किसी छात्र ने की थी। प्रमाण में निम्न श्लोकानयार्ध उद्धृत किया जाता है—

'द्रब्यावलि समादिष्टा धन्वन्तरि मुखोदगता ॥'

लेकिन यह मत समाचीन नहीं प्रतीत होता। इस कोष की रचना धन्वन्तरि ने ही की थी, और वे प्राचीन कोषकारों में अत्यन्त विश्रुत थे। स्वयं उन्होंने प्रथमाध्याय में लिखा है—

अहं हि धन्वन्तरिरादि देवोजरारुजा मृत्युहरो मराणाम्।
शैल्यंग मंगैरपदेरुपेतं प्राप्तोऽस्मि गांभूय इहोपदेष्ट्म् ॥

यह इस बात का अकाट्य प्रमाण है कि 'धन्वन्तरि निघण्टु' की रचना 'धन्वन्तरि' ने की थी और वे अमरसिंह के समकालीन थे।[४]

इस कोष का प्रथम प्रकाशन सन् १८९६ में पूना के आनान्दाश्रम प्रेस से हुआ था। इसके संम्पादक हरिनारायण आप्टे थे। अमरकोष के पूर्व के प्राचीन कोषों में यही एक उपलब्ध कोष है। यह कोष आज अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इसमें प्राचीन औषधियों के नामों को बताया गया है। इस कोष में कुल सात वर्ग हैं—

१. गुडुच्यादि प्रथमोवर्ग:

२. शत पुष्पादिको द्वितीयोवर्ग:

३. चन्दनादि तृतीयो वर्ग:

४. करवीरादि चतुर्थो वर्ग:

---

१. 'धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह......रत्नानि वैर्नवविक्रमस्य।

२. बालपत्रोयवास: खदरिश्चेति द्वयर्थेषु धन्वन्तरिपाठम्
दृष्ट्वा बालपुत्र भ्रान्त्या ग्रन्थकृद्बालतनय मांहि।

३. बाल तनयो खादिरो दन्तधावन: ॥ अमरकोष २।४।४९

४. 'राजनिघण्टु सहितो धन्वन्तरि निघण्टु' प्रस्तावना पृ० २

५. आम्रादि पंचमो वर्गः

६. सुवर्णादि षष्ठो वर्गः

७. मिश्रकादि सप्तमो वर्गः

८. **महाक्षपणक**—महाक्षपणक अनेकार्थ मंजरी और अनेकार्थ ध्वनि मंजरी नामक कोषों की रचना की थी। इनके समय के बारे में लोगों में मतभेद है। कुछ लोग इन्हें अमरसिंह के पूर्व और कुछ लोग बाद का मानते हैं। महाक्षपणक निश्चय ही कालिदास के समकालीन हुए थे तथा अमरसिंह के पूर्ववर्ती थे। विक्रम के नौ रत्नों महाक्षपणक का भी उल्लेख अमरसिंह के पहले किया गया है।

९–विक्रमादित्य–संसारावर्त कोष के लेखक विक्रमादित्य के ये वही विक्रमादित्य माने जाते हैं जिन्होंने विक्रम संवत् का प्रवर्तन किया था। महाक्षपणक, धन्वन्तरि, अमरसिंह आदि विद्वान इन्हीं के नवरत्न थे। पुरुषोत्तम देव ने अपने 'हारावलि' में इनका उल्लेख किया है।

प्राचीन कोषकारों से उपरिलिखित नाम ही महत्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त कुछ प्राचीन वैयाकरणों का उल्लेख भी कोषकार के रूप में हुआ है। प्राचीन काल में कोष और व्याकरण को शब्दार्थ ज्ञान का एक ही साधन मानते थे। इसलिए अधिकांशतः कोषकार और वैयाकरण एक ही व्यक्ति हुआ करते थे। इस संदर्भ में वैयाकरणों में शाकटायन व पाणिनि का नामोल्लेख आवश्यक है।

शाकटायन—शाकटायन व्याकरण के महान पण्डितों में माने जाते हैं। संस्कृत व्याकरण शास्त्रों का इतिहास में श्री युधिष्ठिर मीमांशक ने इनके कोषकार होने का प्रमाण दिया है।

पाणिनि––पाणिनि की अष्टाध्यायी की प्रसिद्धि भारत में ही नहीं वरन् विश्व में भी है। अष्टाध्यायी के साथ ही इन्होंने 'द्विरूप कोष' लिखा था। इण्डिया आफिस लायब्रेरी लन्दन में इस कोष की हस्तलिखित प्रति प्राप्त है जो ७८९० पृष्ठों की है। कोष ६ पत्रों में पूर्ण है और इसके अन्त में लिखा है इति श्री पाणिनि मुनिनाकृतं द्विरूपकोष सम्पूर्णम्।[1]

अमरकोष का परिचय

अमरकोष संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ है, इसमें ऐसे शब्दों का यथाक्रम उल्लेख किया गया है जो भारतीय जीवन में प्रत्येक क्षण के व्यवहार के लिए आवश्यक होते हैं।

---

१. **संस्कृत व्याकरण शास्त्रों का इतिहास पृ० १६५**

अमरकोष के नाम

अमरकोष के अलावा जिन नामों का उल्लेख अमरकोष के लिए किया गया है उनमें एक नामलिंगानुशासन है, जिसका उल्लेख स्वयं लेखक ने सर्व-प्रथम किया है :-

समाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तै प्रतिसंस्कृतैः
सम्पूर्णमुच्यते वर्गैर्नामलिंगानुशासनम् । इति अमर १।१।२

इसके अतिरिक्त ग्रन्थ के प्रत्येक काण्ड के समाप्ति में–'इति अमर सिंह कृतौ नामलिंगानुशासने' अतः 'नामलिंगानुशासन' इसका दूसरा नाम है । तीसरा नाम त्रिकाण्ड कोष–इसमें कुल तीन काण्ड होने से तथा रघुनाथ चक्रवर्ती ने इस ग्रन्थ की व्याख्या त्रिकाण्डचिन्तामणि नाम से और रमानाथ ने इस ग्रन्थ की व्याख्या त्रिकाण्ड विवेक नाम से किया । इस प्रकार इस कोष का दूसरा नाम त्रिकाण्ड कोष हुआ । इस कोष में देवभाषा शब्द संग्रह होने के कारण कुछ लोगों ने इसे देवकोष भी कहा है । अमरसिंह का लिखा होने से इस कोष का नाम अमरकोष भी पड़ा । वस्तुतः अमरकोष नाम से ही यह ग्रन्थ अधिक प्रचलित है ।

अमरकोष का काण्ड के आधार पर परिचय

प्रथमकाण्ड

वर्ग	श्लोक संख्या	वर्ग	श्लोक संख्या
१– स्वर्गवर्ग	७१	६– शब्दादिवर्ग	२५।।
२– व्योमवर्ग	१।।	७– नाट्यवर्ग	३८
३– दिग्वर्ग	३५	८– पातालिभोगिवर्ग	११
४– कालवर्ग	३१	९– नरकवर्ग	३।।
५– धीवर्ग	१७	१०– वारिवर्ग	४३
		कुल	२७६।। श्लोक

द्वितीय काण्ड

१- भूमिवर्ग	१८	६- मनुष्य वर्ग	१३९।।
२- पुरवर्ग	२०	७- ब्रह्मवर्ग	५७।।
३- शैलवर्ग	८	८- क्षत्रियवर्ग	११९।।
४- वनौषधिवर्ग	१६९।।	९- वैश्यवर्ग	१११
५- सिंहादि वर्ग	४३	१०- शूद्रवर्ग	४६।।
		कुल	७३३।। श्लोक

तृतीय काण्ड

१- विशेषनिघ्नवर्ग	११२॥	४- अव्यय वर्ग	२३
२- संकीर्ण वर्ग	४२॥	५- लिंगादि संग्रहवर्ग	४६
३- नानार्थवर्ग	२५७		

कुल ४८१ श्लोक

२ श्लोक मंगलाचरण को मिलाकर कुल १४६४ श्लोक हैं

इस प्रकार से अमरकोष का यह बाह्य रूप का परिचय रहा । आन्तरिक रूप के परिचय के अन्तर्गत उल्लिखित शब्दों का ज्ञान आवश्यक हो जाता है। प्रथम काण्ड के अन्तर्गत स्वर्ग वर्ग में देवताओं का उल्लेख किया गया है जिनमें आदित्य, विश्वदेवा, वसु, रुद्र, अनिल, विष्णु, शिव, बुद्धा,[1] आदि देवताओं का उल्लेख किया गया है । व्योम वर्ग में अन्तरिक्ष[2] का उल्लेख किया गया है। द्विवर्ग में दिशाओं का उल्लेख है । काल वर्ग में समय, तिथि रात दिन का उल्लेख प्राप्त होता है । र्घी वर्ग में बुद्धि सम्बन्धी विषयों का विवेचन किया गया है । शब्दादि वर्ग में शिक्षा साहित्य, वेद व्याकरण, धर्म का उल्लेख प्राप्त होता है । नाट्य वर्ग के अन्तर्गत नाट्य शास्त्र तथा सम्बन्धित गीत, संगीत, वाद्य, रस इत्यादि का विवेचन है । पातालिभोगि वर्ग के अन्तर्गत पृथ्वी के नीचे पाताल और वहां रहने वाले सर्प जल जीव जन्तु इत्यादि का विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है । नरक वर्ग में नरक तथा सम्बन्धित योनियों का एवं नरक में दुख इत्यादि का वर्णन किया गया है । प्रथम काण्ड के अन्तिम वारिवर्ग में पानी, समुद्र जल की तरंगें तथा कमल इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

अमरसिंह से क्रमपूर्वक इन सबका उल्लेख किया है । द्वितीय अध्याय (काण्ड) में तो इन्होंने भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति के भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक व्यवस्थाओं का क्रमशः उल्लेख किया है।

द्वितीय काण्ड के भूमिवर्ग में भारतवर्ष की सीमा[3] भारतवर्ष के पर्वत नदी, समुद्र पुरवर्ग में नगर, ग्राम, बाजार, माकान शैलवर्ग में पर्वतों का इसी प्रकार वनौषधि में वनस्पति, लता, औषधि, जड़ी बूटियों का सिंहादि वर्ग में जंगली सिंह इत्यादि जानवरों तथा मनुष्य वर्ग में मनुष्य के स्वभाव, जाति अंग

---

१. अमर १।१।१३

२. अमर १।२।१

३. अमरकोष २।२।६

उम्र तथा स्त्रियों के आभूषण वस्त्र, इत्यादि का क्रमपूर्वक उल्लेख किया है। इसके पश्चात् अगले चार वर्गों में क्रमशः ब्रह्म, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र जातियों का उल्लेख किया है। वर्ण व्यवस्था का आधार इन्हीं वर्गों में सन्निहित है। क्षत्रिय वर्ग में राजा, राजा का अंग, राज्य, राज्य के आय के साधन, राजनैतिक व्यवस्था आदि समस्त बातों का उल्लेख किया गया है। वैश्य वर्ग में व्यापार से सम्बन्धित समस्त चीजों के उल्लेख के साथ साथ व्यापारिक समस्त उपकरणों का उल्लेख किया है।

शूद्र वर्ग में शूद्रों की संज्ञा बताई गई है। शूद्रों को निम्न जातियों में माना गया है। ऋग्वेद में भी शूद्रों के उत्पत्ति पैर[1] से बताई गई है। इसीलिए अमरकोष में शूद्र को जघन्यज[2] कहा गया है।

अमरकोष के तृतीय काण्ड में कुल ५ वर्ग हैं, जिसमें विशेष्यनिघ्न वर्ग में विशेषण शब्दों का संकलन है, संज्ञाओं का संग्रह पिछले दो वर्गों में किया जा चुका है। इस वर्ग में जिस लिंग अथवा बचन में विशेष्य रहेगा उसी वचन या लिंग में विशेषण होगा। इसीलिए इसका नाम विशेष्यनिघ्न रखा गया हैं। सकीर्ण वर्ग में उन्हीं शब्दों का संग्रह है जिनका अर्थ लिंग आदि सभी संकीर्ण है। इस प्रकार के शब्दों में प्रकृति प्रत्यय और अर्थ आदि के द्वारा लिंग का निर्देश माना जाता है। इसी प्रकार नानार्थ वर्ग में नानार्थक शब्दों का संकलन किया गया है। इसे अनेकार्थक वर्ग भी कहते हैं। अव्यय वर्ग में कुछ अव्ययों के नामों का संकलन किया गया है। लिंगादि संग्रह वर्ग में लिंगविधान करने वाले नियमों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है।

अमरसिंह का समय

भारतवर्ष अध्यात्मवादी देश है। इसलिए यहाँ के विद्वानों में लोकेषणा का भाव बहुत ही न्यून रहा इसी से यहाँ के बहुत से लेखकों का परिचय उनके ग्रन्थों से नहीं पाया जाता है। बाणभट्ट, कल्हण, और माधवाचार्य आदि कतिपय विद्वानों को छोड़कर कतिपय भारतीय विद्वानों का परिचय जनश्रुति पर आधारित है जो कि पूर्ण रूप से प्रमाणिक नहीं माना जा सकता है। अमरसिंह का आत्मश्लाघा लेशमात्र नहीं था, जिस कारण से वे अपने कृति में अपने जन्म और जीवन के सम्बन्ध में कोई भी जानकारी नहीं दी। प्रत्येक काण्ड समाप्ति में अपना नाम केवल दिया है।[3] इसके साथ ही ग्रन्थ समाप्ति

१. ऋग्वेद १०।१२५
२. अमरकोष २।१०।१
३. इत्यमरसिंहविरचिते 'नामलिंगानुशासना' परपर्याय के अमरकोषों प्रथम स्वरादिकाण्डः समाप्तः।

में भी एक श्लोक में अपना नाम और अपने कृति का नाम मात्र दिया है।[1] अनेक टीकाकारों ने अमरसिंह को भी कालिदास के समकालीन मानकर प्रथम शदी से लेकर चौथी शदी तक निरूपित किया है। विक्रम के नवरत्नों में अमरसिंह को स्वीकार किया जाता है।

'धन्वन्तरि क्षषणकामरसिंह शंकुबेतालभट्ट घटखर्पर कालिदासा;
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः समायां रत्नानि वैवररुचिर्नवविक्रमस्य।

विक्रम के नवरत्नों में धन्वन्तरि इत्यादि का कोई क्रम नहीं रखा गया है, क्योंकि उपर्युक्त सभी कवि भिन्न भिन्न काल में हुए। शकु, वररुचि, घटखर्पर और अमरसिंह ये चार नाम आपस में सामन्जस्य रखते हैं। लेकिन अन्य पांच नाम भिन्न प्रतीत होते हैं। साथ ही इतिहास वेत्ताओं का कहना है कि विक्रमादित्य के नवरत्नों में से ये रत्नमालाकलित मालूम पड़ती है। डा० राजवली पाण्डेय ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए बताया कि अमरसिंह ईसा पूर्व प्रथम सदी विद्यमान संवतसर के प्रवर्तक विक्रमादित्य के सभापण्डित थे, अतः इनका समय ईसा पूर्व प्रथम शदी हो सकता है।

षष्ठ शतक में उज्जयिनी के निवासी गुणराज के अमरकोष का अनुवाद चीनी भाषा में किया, अतः इनका समय षष्ट शती से पूर्व होना चाहिए। अमर सिंह चन्द्रगोभी से निश्चित पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं। अमरकोष में प्रगतजानु के प्रज्ञ, ऊर्ध्वजानु के उध्वर्ज्ञुः तथा संहतजानु के लिए संज्ञ शब्द निर्दिष्ट किए गए हैं।[2] इन तीनों शब्दों की सिद्धि पाणिनीय व्याकरण के सूत्रों-प्रसंभ्यांजानुनोर्ज्ञु (५।४।१२९) तथा उर्ध्वाद विभाषा (५।४।१३०) से ही हो सकती है। चान्द्र व्याकरण के मत में इन तीनों का रूप क्रमशः होगा प्रज्ञ, उर्ध्वज्ञ, तथा संज्ञ (४।४।१२९।१३०) चान्द्र व्याकरण यदि अमरसिंह इन रूपों से परिचित होते तो निश्चय ही इन सबका उल्लेख यहाँ अवश्य करते।

खुराणाः स्यात् खुरणसः प्रज्ञुः प्रगतजानुकाः
ऊर्ध्वज्ञुरुर्ध्वजानुः स्यात् संज्ञुः सहजानुकः ! अमर २।६।४७

अतः अमरसिंह चन्द्रगोभी से पूर्ववर्ती सिद्ध होते हैं सत्यकेतु विद्यालंकार का अभिमत है कि प्रसिद्ध कोष नामलिंगानुशासनम् का लेखक अमरसिंह भी

---

१. इत्यमरसिंह कृतौ नाम लिंगानुशासने
सामात्य काण्डस्तृतीयः सांग एव समर्थितः। अमर ३।५।४७

२. अमर २।६।४७

गुप्तकाल (चतुर्थशती) में उत्पन्न हुआ। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था उनका अमरकोष अद्यावधि संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए नितान्त आवश्यक है। अमरसिंह की गणना भी चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नों में की जाती है। डा० रमाशंकर भी इसी मत को स्वीकार करते हैं। उनका कहना है कि अमरकोष के रचयिता, अमरसिंह, प्रखरबुद्धि वैद्य धन्वन्तरि और बौद्ध दार्शनिक वसुबंधु तथा दिंगनाग भी संभवतः इसी काल में हुए।[1]

अमरसिंह ने एकाक्षर नाममाला नामक भी एक ग्रन्थ लिखा था। लेकिन प्रमाणिक तौर पर अमरसिंह के अमरकोष के अतिरिक्त अन्य किसी ग्रन्थ का पता अब तक नहीं लग पाया है। सांख्यकारिकाकार ईश्वर कृष्ण के पूर्ववर्ती होने के कारण ई० चतुर्थ शताब्दी ही कोषकार का बहुसम्मत स्थिति काल प्रतीत होता है। डा० रामजी उपाध्याय के अनुसार अमरसिंह गुप्तकाल चौथी शती के हैं। गुप्तकालीन उद्योग धन्धों का उल्लेख अमरकोष के मनुगय वर्ग में (१३१-१३६) किया गया है। कोषगत परिमाणों तथा गुप्तकालीन परिमाणों में समानता दिखाई पड़ती है। अतः इनका समकालीन होना न्यायसंगत है।[2]

इस प्रकार अमरसिंह चतुर्थ शती के थे। इस मत को स्वीकार करने वाले बहुत से विद्वान हैं। अनेक इतिहासकार चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) ३७५ ई० का समकालीन अमरसिंह को मानते हैं। कालिदास अमर, एक ही काल के रत्न थे। अमरकोष में वर्णित, धर्म, देवी, देवता, सामाजिक परम्परा, वर्णाक्रम व्यवस्था, शिक्षा साहित्य, कला कौशल, उद्योग धन्धे और गुप्तकालीन स्वर्ण युग के परिचायक हैं। अतः अमरसिंह की स्थितिकाल चौथी शती है।

धर्म

अमरसिंह के जिस प्रकार स्थितिकाल के सम्बन्ध में लोग मतैक्य नहीं है, उसी प्रकार से धर्म के बारे में भी विद्वानों की राय एक संगत नहीं है कुछ लोग इन्हें बौद्ध मानते हैं, कुछ लोग जैन स्वीकार करते हैं, लेकिन जैन टीकाकार ही जैन कहते हैं। अन्य विद्वान जैन नहीं मानते हैं। अमरसिंह बौद्ध थे इसमें बहुत विद्वान एकमत हैं अमरसिंह बौद्ध थे इस प्रमाण की पुष्टि नीचे तर्कों से दी जा रही है।

---

१. प्रा० भा० इतिहास पृ० २०६

२. प्रा० भा० सा० भूमिका पृ० ७३२

१. अमरसिंह बौद्ध थे क्योंकि 'अमरानिर्जरादेवास्त्रिदशाविविधाः सुरा[१] आदि कहकर विश्वेश्वर ब्रह्मा विष्णु आदि के नाम गणना के पूर्व 'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धः[२] 'का वर्णन कर मंगलाचरण से अस्पष्ट अंश' यस्य ज्ञानदया, सिंधो' को स्पष्ट कर दिया है ।

अमरकोष के आद्य टीकाकार भट्ट क्षीरस्वामी ने अपने टीका में 'यस्य ज्ञान दयासिंधो[३] की विवेचना में' ग्रन्थारमेऽमीप्सितसिद्धि हेतु जिनमनुसृत्यं[४] इत्यादि से कोषकार को बुद्ध का अनुयायी होने का संकेत किया गया है ।

२. बुद्ध भगवान पीपल के पेड़ के नीचे सम्यक् सम्बुद्ध हुए थे और बौद्ध लोग इस पेड़ को बोधिद्रुम कहते हैं, उसका उल्लेख अमरसिंह भी करते हैं ।[५] अतः अमरसिंह बौद्ध धर्मावलम्बी थे ।

३. बौद्धों के यहां लिपिरिकाचार्य आदि बड़े बड़े महात्माओं की समाधि होती थी जिसे एड्डुक कहते थे । अमरसिंह ने भी एड्डुक[६] का उल्लेख किया है, जिस कारण इन्हें बौद्ध कहा जा सकता है ।

४. टीकाकार वन्द्यघाटीय सर्वानन्द ने भी ग्रन्थकार का बौद्ध होने का संकेत अपनी टीका में किया है ।

५. अमरकोषोद्घाटन की भूमिका में 'ओक्' महोदय ने नानार्थ वर्ग में उल्लिखित 'धर्मराजोजिनयनो' (३।३।३९) में जिन शब्दों को पूर्वनियात होने से कोषकारकों ने बौद्ध माना है ।

परवर्ती टीकाकारों, इतिहास लेखकों तथा उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर हम अमरसिंह को बौद्ध धर्मावलम्बी मानते हैं । परन्तु यह स्पष्ट देखना है कि क्या उपर्युक्त तर्कों के ही आधार को हमें मान लेना चाहिए या नहीं ? क्या उपर्युक्त तर्क युक्तिसंगत हैं ? अमरसिंह एक परम वैदिक पुरुष थे अमरकोष के आद्योपान्त अध्ययन से उनकी परम बैदिकता सिद्ध हो जाती है ।

---

१. अमर १।१।७
२. अमर १।१।१३
३. अमर १।१।१
४. क्षीरस्वामी टीका पृ० १
५. अमर २।२।४
६. अमर १।१।२८-२९

१. बुद्ध का नाम ब्रह्मा विष्णु और शंकर देवता के पूर्व लिया गया इस कारण अमरसिंह बौद्ध थे। यह तर्क कोई युक्ति संगत नहीं है क्योंकि बुद्ध धर्म के देवता एक मात्र बौद्ध माने जाते हैं इसलिए लेखक ने सोचा होगा कि बुद्ध के ही नामों का उल्लेख पहले कर दिया जाय बाद में अनेक देवताओं का उल्लेख किया जायगा।

इसी तरह भट्ट क्षीरस्वामी जो अमरसिंह को बौद्ध बताया हो सकता है भट्टक्षीर स्वामी की दृष्टि उन पर बौद्ध के रूप में ही रही हो।

२. बुद्ध भगवान पीपल के पेड़ के नीचे सम्यक् सम्बुद्ध हुए थे पीपल बृक्ष को बोधि द्रुम कहा गया है, जिसका उल्लेख अमरसिंह ने किया है। इस आधार पर बुद्ध मतानुयायी अमरसिंह हुए। इसी तरह उन्होंने भगवान विष्णु के नामों का उल्लेख किया और बुद्ध का तो केवल नाम मात्र लिया है। विष्णु के नाम विष्णु का शंख, गदा, तलवार, चिन्ह, अश्व, रथ, सारथि आदि का उल्लेख[1] किया है, तो इस आधार पर वैष्णव कहा जा सकता है। इसी प्रकार अगर नाम मात्र लेने से जिसका नाम लिया जाय वह उस धर्म का हो जाय तो ब्यास जी ने अग्निपुराण में बुद्ध जी का नाम[1] लिया है तो वे क्यों नहीं हुए।

३. विष्णु के २४ अवतारों में भगवान बुद्ध माने गए हैं, दस अवतारों में भी बुद्ध[2] का नाम आता है, अतः बुद्ध का उल्लेख बौद्ध धर्म का प्रतीक न होकर बल्कि अवतारों के नामों के उल्लेख के निमित्त किया है।

४. कोई बौद्ध धार्मिक प्रचार न करके अन्य धर्म का प्रचारक पुस्तक या कोष क्यों लिखेगा। धार्मिक लेखक का उद्देश्य होता है कि ग्रन्थ के द्वारा अपने धर्म का प्रचार करना, जैसे अश्वघोष ने सौन्दरानन्द और बुद्धचरित जैसे महाकाव्यों में अपने धर्म का प्रचार किया है।

इन समस्त तर्कों के साथ ही साथ अन्त में यह निर्णय लिया जा सकता है कि अमरसिंह एक बौद्ध लेखक तो थे ही परन्तु उन्होंने अपने कृति को बौद्धपरक बनाने की कोशिश नहीं की है, उन्होंने अपने कृति को मनुष्य परक बनाते हुए यह सोचा था कि ये भी कृति न तो धर्म के ही लिए होगी न तो जैन और न अन्य किसी धर्म या वर्ण के लिए होगी वरन धर्म और वर्ण व्यवस्था के संकीर्णता में न बंधकर सर्वतोमुखी सर्वहिताय या सर्वजनहिताय हेतु उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की है। धर्म आदि के बंधन में बांधने की कोशिश नहीं की है वैसे उनका धर्म बौद्ध रहा होगा।

---

१. अग्नि पु० 'सुगतः स्थागत'

२. मत्स्य कूर्म बराहश्च नृसिंह वामनस्तथा
रामो रामश्च कल्की बुद्ध दशस्मृता।

पाण्डित्य

अमरसिंह की रचना अमरकोष पाण्डित्यपूर्ण है इन्होंने लिंगानुशासन के श्लोकों की प्रायः पाणिनि सूत्र के आधार पर लिखा है अर्थात् सभी शब्द शुद्ध परिष्कृत एवं व्याकरण की कसौटी में कसे हुए हैं इसीलिए इनके लिए कहा गया है 'अमरसिंहस्तु तु पापीयान्, सर्वभाष्यमचूचुरत' इस श्लोकार्थ के कारण भाष्यचौर्य का दोष लगाया जाता है, लेकिन यह बात विरोधी जनोंद्वारा ईर्ष्या पूर्वक कही गई है, इस बात के कथन से अमरसिंह की विद्वता ही प्रकट होती है, क्योंकि उपर्युक्त कथन के ही आधार पर अमरकोष का यह 'समाहृत्या-न्तन्त्राणि संक्षिप्ते प्रतिसंस्कृतः' १।१।२ वाक्य कहा गया है।

भानुजी दीक्षित ने 'गौतमएचार्कबन्धुश्च' की टीका में यद्यपि 'वेदविरुद्धा-र्थानुष्ठातृत्वाज्जिनशाक्यौ, नरकवर्गेवक्तुमुचितो, तथापि देव विरोधित्वेन बुद्धयुपारोहादत्रैवीक्तौ अर्थात् वेदविरुद्ध अर्थानुष्ठान के कारण 'जिन और शाक्य' की यद्यपि नरकवर्ग में कहना उचित था तथापि देवविरोधी होने के कारण और बुद्धिस्थ होने के कारण से यहीं पर कहे गए हैं, ऐसा कहा है, लेकिन इस कथन के आधार पर जिन भगवान बुद्ध की गणना दस अवतारों में मानी गयी है उन भगवान बुद्ध के लिए नरकवर्ग 'देवविरोधित्वेन' इन शब्द का प्रयोग करना नितान्त अनुचित प्रतीत होता है।

संस्कृत के कुछ कोषों में केवल नामार्थक शब्दों का संग्रह किया गया है तथा कुछ कोषों में केवल साधारण अर्थों का संग्रह किया गया है। साधारण शब्दार्थवाचक कोषों में लिंगादि का विवरण नहीं है। कुछ तो ऐसे कोष हैं जिनमें साधारण सर्वविध शब्दों को भरकर उन्हें अत्यन्त दुरूह कर दिया गया है। लेकिन अमरकोष ही एक ऐसा कोष है जिसमें एकार्थक और नानार्थक शब्दों का संग्रह किया गया है तथा लिंगबोध का ज्ञान भी अमरकोष के द्वारा कराया गया है इसके लिए प्रारम्भ में ही कोषकार ने लिखा है—

'स्त्रीपुंनपुंसकंलज्ञ थं ? तद्विशेषविधेः क्वचित्
मेदास्थानाय न द्वन्द्वो नेकशेषो न संकरः

कोषकार ने लिंगभेद का ख्याल पहले किया है, जिस कारण पाठकों को अध्ययन में विशेष लाभ प्राप्त होता है। तीनों लिंगों को बतलाने के लिए त्रिषु शब्द यत्र तत्र प्रयुक्त हुए हैं। स्त्रीलिंग और पुलिंग जानने के लिए द्वयो पुलिंग

के लिए पुमान् पुंसि, स्त्रीलिंग जानने के लिए स्त्रियाम[1] शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यह अमरसिंह के पाण्डित्य का ही परिचायक है। अमरसिंह के कोष में व्याकरण के अनुकूल लिंग निर्देश पाणिनीय परम्परा के अनुकूल किया है।

कोष और व्याकरण एक दूसरे के पूरक हैं कोष में पर्याय तथा अर्थों का विवेचन किया जाता है तथा व्याकरण में व्युत्पत्ति के साथ साथ अर्थों का विवेचन किया जाता है। अतः कोष और व्याकरण की प्रक्रिया एक ही प्रकार की सिद्ध होती है। कोषकार और वैयाकरण दोनों का एक ही उद्देश्य समस्त के अंग प्रत्यंगों के छान बीन करके उनको प्रयुक्त करना। इस प्रकार दोनों का सम्बन्ध एक दूसरे पर आश्रित है इसीलिए किसी ने कहा है—

'अष्टाध्यायी जगन्माता अमरकोषो जगत्पिता' एकलाइन में कोषकार वैयाकरण होने के साथ साथ अन्यान्य शास्त्रों का अध्ययन करके समस्त सामग्री को इकट्ठा किया था अमरकोष के प्रथम काण्ड के दिग्वर्ग तथा काल वर्ग में ज्योतिष शास्त्र की सामग्री भरी पड़ी है। चन्द्र सहित सातों बार की गणना, तथा मेष वृष इत्यादि १२ राशियों की गणना[2] समय दिन रात्रि पक्ष, ग्रहण मुहूर्त्त क्रतु अयन आदि का उल्लेख किया है, १२ माह[3] संवतसर षट ऋतु आदि का उल्लेख क्रम पूर्वक किया गया है। इसके साथ ही कल्प, मन्वन्तर और कल्पान्त की भी चर्चा की गई है, अतः स्पष्ट होता है कि अमरसिंह को ज्योतिष विषय का ज्ञान था। इसी प्रकार घी वर्ग में ज्ञान विषयक चर्चा शब्दादि वर्ग में वेद वेदांग पुराणस्मृति का उल्लेख करके इन समस्त शस्त्रों को अध्ययन का स्वरूप दिखलाते हैं। नाट्य वर्ग में नाट्यशास्त्र सम्बन्धी समस्त वस्तुओं का उल्लेख करके नाट्यशास्त्र के जनक आचार्य भरत का अनुकरण दिखलाई पड़ता है। इसी तरह वनौषधि वर्ग आयुर्वेद के समस्त सामग्री से युक्त दिखाई देता है मनुष्य वर्ग में मनुष्य के दैनिक आहार-व्यवहार और मनुष्य के समस्त अवयवों का चित्र स्पष्ट किया है। इसी तरह ब्रह्मादि चारों वर्गों में वर्ण, आश्रम, राजा, राजनीति, धर्म, दर्शन, आर्थिक उन्नति के साधन, उद्योग धन्धा, भोजन सामग्री का विस्तृत वर्णन किया है जो बहुत ही पाण्डित्य-पूर्ण दिखाई देता है।

इस प्रकार अमरकोष बहुत ही विद्वत्ता तथा पाण्डित्य से युक्त है अमरसिंह ने उस समय के समस्त शास्त्रों षड् वेदांगों ५२ स्मृतियों तथा अन्य शास्त्रों का अध्ययन करके अमरकोष की रचना की जिसकी झलक स्पष्ट रूप

---

१. अमर १।१।३-४-५.
२. अमर १।२।२७
३. अमर १।४।१२.

से दिखाई पड़ती है। भारतीयों के लिए अमरसिंह का लिखा अमरकोष, अमर देन सिद्ध हुआ।

अमरसिंह का आधार अमरकोष लिखने का क्या था ? इस प्रश्न का उत्तर उनका कोष ही देता है अर्थात् कोष में जो सामग्री दी गई है उन समस्त सामग्री की छान बीन अच्छे ढंग की कोषकार ने कर ली थी जैसे अमरकोष के प्रथम काण्ड के दिग्वर्ग तथा काल वर्ग में ज्योतिष की समग्र सामग्री दिखाई देती है, जिससे स्पष्ट होता है कि कोषकार को ज्योतिष विद्या का अच्छा अध्ययन था इसी तरह घी वर्ग में ज्ञान विज्ञान आदि की सामग्री के द्वारा ज्ञान विज्ञान का आधार अमरकोष में दिखाई देता है। नाट्य वर्ग में नाट्य-शास्त्र की निखिल सामग्री से स्पष्ट होता है कि नाट्यशास्त्र के जनक आचार्य भरत के ही आधार को ग्रहण किया गया है। स्वर्ग और नरक वर्गों में स्वर्ग स्थानीय देवता तथा नरक वर्ग में नरक की योनियों का उल्लेख किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि अमरसिंह का धर्मशास्त्र का भी बहुत अच्छे ढंग का अध्ययन था तथा धर्म पर आस्था थी।

द्वितीय काण्ड में तो भूमिवर्ग से लेकर शूद्र वर्ग तक समस्त मानवों की कोटियाँ, मानव का भूमि से सम्बन्ध, कृषि कार्य का विकास, कृषि के उपकरण, कृषि के साधन आदि समस्त अवयवों का स्पष्ट चित्र उपस्थित किया है। जिससे स्पष्ट होता है कि कृषि कार्य का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था पुरवर्ग में तो ग्राम नगर, प्रासाद, भवन, महल आदि का वर्णन किया है जिससे स्पष्ट होता है कलाओं का अच्छा परिज्ञान था। शैलवर्ग में पर्वतों गुफाओं, चट्टानों, वर्णन किया गया है। वनौषधि वर्ग में जंगली जानवर, औषधिवृक्ष जड़ी बूटियाँ आदि का ज्ञान अमरसिंह को था।

मनुष्य वर्ग में मनुष्य उनकी स्त्री मनुष्य के स्वभाव, पत्नी का स्वभाव, लड़की लड़का, पति, पत्नी की दैनिक आवश्यकताएँ, जाति, परिवार, बन्धु रोग, शरीर के समस्त अवयव आदि का बहुत ही अच्छे ढंग का वर्णन किया गया है, जिससे स्पष्ट होता है कि अमरसिंह को गार्ह्यस्थ जीवन के साथ ही उससे सम्बन्धित समाज शास्त्र, जीव शास्त्र इत्यादि का अध्ययन रहा होगा जिस आधार पर उन्होंने यह कोष लिखा है।

इसी तरह ब्रह्म, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि चार वर्णों का भी उल्लेख किया गया है। इनके लिए अलग से उपर्युक्त क्रमशः चार वर्ग लिखे गए हैं। ब्रह्म वर्ग में ब्राह्मण, वेद, पुराण, यज्ञ, यन्त्र याज्ञिक देवताओं के उल्लेख से स्पष्ट वर्ग में राजा, मन्त्री, राजा के कर्त्तव्य, धर्म, नीति, अंग, शक्ति, सेना

आदि का वर्णन बड़े ही ढंग से किया गया है, जिसमें स्पष्ट होता है कि राजनीति का अच्छा ज्ञान अमरसिंह को था। इसी प्रकार वैश्य वर्ग में व्यापार, व्यापारिक वस्तुएँ, उद्योग धन्धे, वाणिज्य करने वाली जातियाँ, वाणिज्य के तरीके आदि का उल्लेख किया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि अमरसिंह वाणिज्य शास्त्र का भी समुचित अध्ययन किये थे।

इस प्रकार अमरकोष की रचना में जिन शास्त्रों का आधार लिया है उनमें धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, ज्योतिषविज्ञान; आयुर्वेद विज्ञान, व्याकरण शास्त्र, नाट्यशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र के साथ भूगोल गणित, इतिहास आदि मुख्य हैं।

इसके साथ ही अमरकोष के रचना में जिन कोषकारों का आधार लिया गया है उनमें अमरपूर्व कोषकार व्याडि, कात्य, भागुरि, रत्नकोष माला या अमरमाला, वाचस्पति, धन्वन्तरि, महाक्षपणक, आपिशील, शाकटायन पतन्जलि, पाणिनि आदि कोषकार मुख्य हैं। इसको स्वयं कोषकार स्वीकार करता है।[1]

अमर पूर्व प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि हुए जिन्होंने व्याकरणशास्त्र की अष्टाध्यायी नामक पुस्तक लिखी जो कि व्याकरण शास्त्र के लिए अनुपम देन है। अमरसिंह ने पाणिनि के अष्टाध्यायी के आधार पर ही शब्दों का संकलन किया है जैसे प्राच्य और उदीच्य[२] देश का उल्लेख अमरसिंह ने किया, इसी तरह पाणिनि भी प्राच्य[३] उदीच्य देश का उल्लेख किया है। पाणिनि ने नदियों में सिंधु (४।६।६३), शरावती (६।३।१२०), विपाशा(४।२।७४),चर्मण्वती (८।२।१२), इत्यादि का संकेत दिया है अमरसिंह ने भी विपाशा[४] शरावती, सिंधु[५] चर्मण्वती का उल्लेख किया है। इसी तरह पाणिनि के अष्टाध्यायी में कुमारी कन्या के लिए कुमार्या वपसि ६।२।६५ अमरकोष में कन्या कुमारी २।६।८ और जो कन्या स्वयं वर का चुनाव कर ले उसकी पाणिनि ने पतिवरा शब्द कहा है ३।२।४६ और अमरसिंह ने उसके लिए पतिवरा ही २।६ ७ कहा है आदि आदि।

---

१. **समाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः**
सम्पूर्णमुच्यते वर्गैर्नामलिगानुशासनम् अमर १।१।२.

२. **अमर २।१।७**

३. **बहुवचपूमः प्राच्य भरतेषु। अष्टाध्यायी २।४।१६**

४. **अमर १।१०।३३**

५. **अमर १।१०।३४-३५.**

इसी प्रकार व्याकरण में कनीन शब्द की व्युत्पत्ति कन्या शब्द से की गई है पाणिनि ने कन्यायाः कनीन चै'' ४।१।११६ कहा है । अमरकोष में इसके लिए कानीनः कन्यकाजातः[१] अर्थात क्वांरी स्त्री के पुत्र को कनीन कहा जाता था । मनु ने बारह प्रकार के पुत्रों में कानीन भी कहा है ।[२] कन्या को कनीन आदेश बताया गया है । वैसे कनीन की मूलप्रकृति कन्या नहीं हैं, इसका प्रयोग वेद में मिलता है, जारः कनीनां पतर्जनीनाम्'' ऋ० १।६६।४ पारसियों के धर्मग्रन्थ अवेस्ता में कन्या के लिए कइनीन शब्द का प्रयोग मिलता है यह वैदिक कनीना का अपभ्रंश है, अतः यह सिद्ध होता है कि कन्या अर्थ में कनीना शब्द का प्रयोग होता था और उसी का अपभ्रंश कइनीन बना । पाणिनीय अष्टाध्यायी में विवाहित स्त्री के लिए जाया (३।२।५२) पत्नी (४।१।३३) का प्रयोग हुआ है । अमरकोष में भी इसी अर्थं जाया, पत्नी[३] का प्रयोग हुआ है । भोज्य पदार्थों में अष्टाध्यायी में शालि ५।२।२ व्रीहि ६।२।३८, यवक ५।२।३ आदि अन्नों का उल्लेख किया गया है । अमरकोष में भी शालि (२।९।२४) वीहि (२।९।२१) यावक (२।९।१८) का उल्लेख किया गया है । अष्टाध्यायी में किसान की कृषीवल (५।२।१२) हल (३।२।१८३) (४।४।८१) का उल्लेख किया गया है । अमरकोष में भी किसान को कृषीवल (२।९।६) हल को हल (२।९।१३) प्रयुक्त किया गया है ।

इस प्रकार उपर्युक्त शब्दों के संकलन को देखने से यह स्पष्ट होता है कि पाणिनि के अष्टाध्यायी में प्रयुक्त शब्द, अमरसिंह के कोष में प्रयुक्त हुए हैं अर्थात जो भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक सामग्री का उल्लेख पाणिनि अपने अष्टाध्यायी में किया है । उन सामाग्री के शब्द जो अमरकाल तक थे (अर्थात पाणिनि कालीन बहुत कुछ सामग्री अमरकाल तक लुप्त हो चुकी थी परन्तु इसके बावजूद जो सामाग्री अमरकाल तक थी) उसका उल्लेख अमरसिंह ने पाणिनि के ही आधार पर किया है ।

अमरसिंह कालिदास दोनों समकालीन थे। पहले कालिदास ने ग्रन्थों की रचना की है और बाद में अमरसिंह ने कालिदास के बताए गए शब्दों का अनुकरण किया है । कालिदास ने जो भारत की सीमा बताई है उसमें हिमालय पर्वत[४] के

---

१. अमर २।६।२४

२. मनु ९।१।७२

३. अमर २।६।६

४. कुमारसंभव १।१

दक्षिण स्मित भूभाग को भारत वर्ष बताया है। हिमालय पर्वत उस समय मुख्य पर्वत था आज भी भारत वर्ष का मुख्य पर्वत हिमालय है। अमरसिंह ने भी हिमालय का उल्लेख किया है।[१] हिमालय पर्वत को ही कैलास पर्वत कहा गया है कालिदास ने हेमकूट और कैलास को एक माना है।[२] कालिदास ने गन्धमादन[३] पर्वत को कैलास पर्वत के आसपास ही बताया है अमरकोष में भी गन्धमादन[४] पर्वत का उल्लेख हिमालय के बाद किया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि अमरसिंह का भी दृष्टिकोण यही है कि गन्धमादन पर्वत हिमालय के आसपास ही था।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कालिदास ने जो भारत की सीमा पर्वत नदी, सागर, काल, ऋतु का उल्लेख किया है उन्हीं सब आधारों को अमरसिंह ने भी अपने कोष में लिया है। अमरसिंह इन सब ग्रन्थों के अलावा वैदिक संहिताओं का भी काफी अध्ययन करके वैदिक देवताओं का उल्लेख अग्नि, विष्णु, आदित्य वसु विश्वेदेवा आदि का उल्लेख किया है अतः वेदों का भी आधार था।

शब्द चयन का क्रम

संस्कृत साहित्य के कोषों में शब्द-चयन का क्रम एक सा नहीं है। कोई कोषकार तो एक ओर से जो ही शब्द ध्यान में आये उन्हीं के पर्यायों को गिनाने लगा है तो कोई क्रमानुसार 'अ' वर्ण से लेकर ज्ञ तक के अक्षरों को क्रम पूर्वक जिस अक्षर को जितने शब्द प्रयुक्त होते हों उन सभी को एक साथ ही गिनाया है। कुछ कोषों के शब्द चयन का क्रम विषय के आधार पर है अर्थात जिस विषय के शब्दों को बता रहा है उसी विषय के शब्दों को एक स्थान पर बताया है चाहे वह किसी भी वर्ण से प्रारम्भ होता है।

अंग्रेजी और हिन्दी के कोषों में शब्द चयन का क्रम एक सा ही है तथा अंग्रेजी और हिन्दी के शब्दों के संकलन का उद्देश्य संस्कृत के कोषों से भिन्न है जैसे अंग्रेजी और हिन्दी के कोष वर्णमाला (Alphabatical) क्रम अनुसार 'अ' A अक्षर से लेकर ज्ञ Z तक के अक्षरों के शब्दों का उल्लेख करके उन शब्दों

---

१. अमर २।३।३
२. अभिज्ञान शाकुन्तल ७
३. विक्रमोर्वशी पृ० ८७
४. अमर २।३।३

के अर्थ को देते हैं न कि शब्दों के पर्याय को लेकिन संस्कृत कोषों में शब्दों के पर्यायों को भी गिनाया गया है और अर्थों को भी बताया गया है।

अमरकोष में शब्दों के चयन का क्रम विषय के अनुसार किया गया है जैसे प्रथमकाण्ड में स्वर्ग वर्ग में देवताओं का नाम, व्योम वर्ग में अंतरिक्ष का नाम, दिग्वर्ग में दिशा, काल वर्ग में काल, पक्ष, तिथि, अयन, नक्षत्र इत्यादि घी वर्ग में ज्ञान, साहित्य, शब्दादि वर्ग में शास्त्रों का तथा उससे सम्बधित विषयों का उल्लेख, नाट्य वर्ग में नाट्यशास्त्र से सम्बन्धित बिषय, पातालिभोगि वर्ग में पाताल में रहने वाले जीव जन्तु, नरक वर्ग में नरक से सम्बन्धित विषय और इसी प्रकार वारिवर्ग में नदी, तथा जलस्थ जन्तुओं के नामों का उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार अमरकोष में शब्द चयन का भ्रम वर्गानुसार है अर्थात वर्ग से सम्बन्धित सभी शब्दों को उसी ही वर्ग में उल्लिखित किया गया है। विशेष रूप से वर्गों का विभाग इसीलिए किया गया कि वर्ग से सम्बन्धित शब्दों को ही एकत्रित किया जायगा।

अमरकोष की टीकाएं

अमरकोष के लोकप्रियता का प्रमाण यह भी है कि इसकी सर्वाधिक टीकाएं उपलब्ध होती हैं। अमरकोष की शताधिक टीकाएं विश्रुत हैं। संस्कृत साहित्य में शायद ही ऐसा कोई ग्रन्थ होगा जिसकी इतनी टीकाएं लिखी गई हों। इन्हीं सब कारणों से अमरकोष संस्कृत साहित्य में अमर हो गया।

टीकाकारों का व्यक्तित्व, पाण्डित्य सम्प्रदाय आदि

अमरकोष

१. अमरकोषोद्‌घाटन-भट्टक्षीरस्वामी

परिचय—अमरकोष के आद्यटीकाकार क्षीरस्वामी हैं, जिन्होंने 'अमरकोषोद्धघाटन' नाम की अमरकोष की टीका की है। क्षीरस्वामी ने अपने क्षीर तरंगिणी के भ्वादि तथा अदादिगण के अन्त में अपने पिता का नाम स्वयं ईश्वरस्वामी बताया है।[1] ये काश्मीर के निवासी प्रतीत होते हैं क्योंकि अमरव्याख्या के आरम्भ में शंकर की प्रशस्त स्तुति है। इनके ग्रन्थ क्षीर तरंगिणी के अन्त में कश्मीर के राजा जयसिंह के समय में उसकी प्रतिलिप किए जाने का उल्लेख है। अज धातु की व्याख्या में 'यजु काठकम्' लिखकर इन्होंने कठशाखा के प्रति अपना अनुराग प्रदर्शित किया इस याजुष शाखा का

---

१. **संस्कृत शास्त्रों का इतिहास बलदेव उपाध्याय पृ० ३३६**

मुख्य क्षेत्र काश्मीर होने से क्षीरस्वामी को काश्मीरी मानना उचित है।[1] देवराज यज्वा ने निघण्टु पर भाष्य लिखने पर भोज और क्षीरस्वामी का उल्लेख किया है भोजकाल ई० सन् १०१८-१०६० है क्षीरस्वामी को कश्मीरी मानना उचित है।[2] देवराज यज्वा ने निघण्टु पर भाष्य लिखने पर भोज और क्षीर स्वामी का उल्लेख किया है भोजकाल ई० सन् १०१८-१०६० है क्षीर-स्वामी का समय ११वीं शताब्दी का अन्तिम भाग हैं। इन्होंने ई० सन् ८८०-६२० काल के राज शेखर का नाम अपनी टीका में लिया है। गणराज महोदधि' में बर्द्धमान ने क्षीरस्वामी का नाम लिया है, जो ई० सन् ११४० में हुए थे। क्षीरस्वामी ने उपाध्याय, गौड़ श्रीभोज व्याडि, मालाकार, और कात्य आदि कई विद्वानों के वचन अपने ग्रन्थ में उद्धृत किए हैं। ये बहुत जगह 'अमरकोषोद्घाटन' नामक अमरकोष की टीका में ग्रन्थकार क शब्दों का विवेचन भी किए हैं—जैसे---'स्त्री दाराद्यैर्यद्विशेष्यं' (३।१।२) 'अत्र स्त्रीदाराद्यम्' इति युक्तः पाठ' ये भागुरि तथा मालाकार आदि की भी अपनी टीका में भ्रान्ति आदि बतलाए गये हैं।[3]

टीका—क्षीरस्वामी की यह टीका अत्यन्त पाण्डित्य पूर्ण हैं जिसमें अमर-कोष के प्रत्येक शब्द का विवेचन मार्मिकता से किया गया है क्षीरस्वामी की यह टीका व्याकरण सम्मत व्युत्पति से युक्त है। क्षीरस्वामी तन्त्रशास्त्र के विशेष पण्डित सिद्ध होते हैं।[4] इन्होंने 'संहितासु' कहकर वैष्णव संहिताओं से आवश्यक बचन उद्धृत किए हैं। विष्णु भगवान की गदा की संज्ञा 'कौमोदनी' है क्योंकि स्वयं उनका नाम कुमोदक है (विष्णोः कुमोदकः शौदिः इति दुर्ग-बचनात) इतिदुर्गवचनात इसका संहिताओं में निर्दिष्ट नाम 'कौपोदक' है क्योंकि वह गदा कूपोदक से उत्पन्न मानी गयी है। आयुर्वेद के वे तो प्रकाण्ड ज्ञाता थे उनकी वनौषधि वर्ग की टीका उदाहरण स्वरूप है।

क्षीरस्वामी ने अमर की कुछ त्रुटियों का भी उल्लेख किया है ---

१. 'खादिर शब्द के पर्याय के लिये अमर ने बालतनय नाम दिया है, धन्वन्तरि ने अपने निघण्टु में (१।१२५) इसके लिए बाल पत्र पर्याय दिया है परन्तु अमरसिंह ने बालपत्रकों बालपुत्र समझकर बालतनय देने की

---

१. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास बलदेव उपाध्याय पृ० ३३६
२. अमरकोष मणिप्रभा व्याख्या भूमिका पृष्ठ १३
३. सं० शास्त्रों का इतिहास बल्देव उपायधाय पृष्ठ ३३७
४. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३३८

गलती की है।[1] द्वयर्थेषु धन्वन्तरि पाठमदृष्ट्वा बालपुत्र भ्रान्त्या ग्रन्थकृद् बालतनयमाह।[2]

२. इसी प्रकार की त्रुटि 'दन्ती के लिए उपचित्र पर्याय देते समय की गई है।[3] इस प्रकार क्षीरस्वामी ने अमरकोष की टीका बड़े ही छान बीन करके की है, साथ ही अपना परिचय अनेकानेक ग्रन्थों के ज्ञाता के रूप में दिया है।

२. **टीका सर्वस्व**----इसके टीकाकार सर्वानन्द हैं। इसकी रचना का उल्लेख ग्रन्थ में कालवर्ग की व्याख्या में इस प्रकार से किया गया है। 'इदानी चैकाशीतिवर्षाधिक सहसेवक पर्यन्तेन शकाब्द कालेन (१०८१तक) षष्टिवर्धाधिक द्वचत्वारिंशच्छतानि कलिसन्ध्यायाभूतानि (४२६०')[4]। इस प्रकार सर्वानन्द की उपाधि वन्धद्याटीय है जो डा० हरप्रसाद शास्त्री के अनुसार वन्द्योपाध्याय मानी जाती है। सर्वानन्द का समय ११५९ई० बैठता है। सर्वानन्द बंगाली ब्राह्मण थे बंगाल के निवासी थे पिता का नाम आर्तिहर था।[5] इन्होंने अपने टीका में प्राचीन कोषकार अजय, पुरुषोत्तमदेव, भागुरि, रमस, रुद्र, वररुचि, शाश्वत, वोपालित, व्याडि हड्डचन्द तथा हलायुध प्राचीन कोषकारों का उल्लेख किया है।[5]

टीका----यह टीका क्षीरस्वामी के समान ही प्रामाणिक एवं पाण्डित्य पूर्ण है। बंगाली कोषकारों में संभवतः ये प्रथम कोषकार हैं जिनकी व्याख्या का प्रभाव वहां के कोषकारों के ऊपर विशेष पड़ा। इन्होंने अपनी व्याख्या में क्षीरस्वामी तथा अमरकोष के शब्दों को एक साथ प्रस्तुत करके की है। जैसे ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त वाडब शब्द की व्युत्पत्ति क्षीरस्वामी ने लिखी है 'वाडव इवातृप्तः' इस व्युत्पत्तिको क्षीरस्वामी के सर्वानन्द ने कल्पना जन्यभान-व्युत्पत्ति दी है। वडवायां भवः---भवः वाडब, । वडवा----ब्राह्मणी 'बडवा कुम्भदास्यश्च स्त्री विशेषो द्विजांगना' (इति रमसः) यह व्युत्पत्ति अधिक औचित्यपूर्ण है।[6]

---

१. **अमरक्षीर स्वामी पृ० ९३**
२. **द्वयर्थउपचित्रा दन्ती पृश्निपर्णाचिति (अ० द्व० २६०)**
दन्या द्रवन्ती भ्रान्त्या ग्रन्थकृदुपचित्रमाह (पृ० १०३).
३. **अमर टीका सर्वस्व १।४।२१**
४. **संस्कृत शास्त्रों का इतिहास ३३९**
५. **संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४०**
६. **संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४०**

३. **कामधेनु**----कामधेनु नामक टीका के टीकाकार सूभूतिचन्द्र हैं। सूभूतिचन्द्र बौद्ध थे। तिब्बती भाषा में इसका अनुवाद विद्यमान है तथा तिब्बत के नागौर बौद्धमठ में इस टीका का अपूर्ण संस्कृत हस्तलेख प्राप्त होता है। लिखने का समय ३१३ नेपाली सं० ११६१ ई० है। मद्रास की पत्रिका में इस व्याख्या का दूसरा अपूर्ण हस्तलेख वर्णित है, जिसमें सुभूति ने सरस्वती कण्ठाभरण तथा शृंगार प्रकाश का निर्देश इस टीका में किया है, अतः ए १०६२ ई० के बाद सिद्ध होते हैं जो कि भोजराज का मरणकाल माना जाता है। शरणदेव ने अपनी दुर्गवृत्ति में (रचनामाल ११७२ ई०) इनका एक बचन उद्धृत किया है। इससे स्पष्ट होता है कि इनका समय १०६२ ई० से ११७२ के होना चाहिए। संभवतः १२ शती के प्रथम चरण में इनकी स्थिति काल माननी चाहिए।[1]

बृहस्पति की टीका पदचन्द्रिका में सूभूति के मतों का उल्लेख किया गया है। अमर के टीकाकार लिंगभट्ट ने अपनी टीका में सर्वानन्द के साथ ही साथ सुभूति का उल्लेख कम से कम ४३ बाद किया है, जिससे अवान्तरकालीन टीकाकारों पर सुभूति के प्रभाव का अनुमान लगाया जा सकता है।

चिन्हवाचक लक्ष्मण शब्द के विषय में सुभूति रमस से विरुद्ध हैं रमस इस शब्द में मकार को मध्यस्थित मानते हैं (लक्ष्मणम्) परन्तु सुभूति को मकारहीन शब्द अभीष्ट है (लक्षमणम्) खेलने के अर्थ में 'कुर्दर' को सुभूति ह्रस्व मानते हैं। क्षीरस्वामी दीर्घ मानते हैं (कूर्दन)। पुलिन शब्द के अर्थ के विषय में अमर का विषय है—तोयोत्थितं तत पुलिनम्। इस पर सुभूति का कथन है जो द्वीप क्षणभर के लिए तोय से मुक्त होता है वह पुलिन है। यह मत स्वामी के विरुद्ध है।[2]

सुभूतिचन्द्र बंगाली टीकाकार थे।[3] कामधेनु[4] नामक टीका की लिपि तिब्बती है। इस टीका का उल्लेख पदचन्द्रिका टीका बृहस्पति बहुत स्थानों में किया है तथा टीका का वैशिष्ट्य भी उसी से प्राप्त होता है।

४. **बृहस्पति (पदचन्द्रिका)**—टीका के प्रारम्भ में लेखक ने अपना परिचय दिया है। लेखक का नाम बृहस्पति पिता का नाम गोविन्द तथा माता का नाम

१. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४१
२. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४२
३. मणिप्रभा व्याख्या भूमिका पृ० १६
४. कल्पद्रुकोष भूमिका-१८

सुखायि देवी। बंगाल के राढा नगर के निवासी गौड के राजा ने उन्हें पण्डित सार्वभौम की पदवी दी।[1] इनका दूसरा नाम या उपनाम राय मुकुटमणि था प्रायः रायमुकुटमणि नाम से ही प्रख्यात थे।[2] पदचन्द्रिका की रचना काल १४३१ ई० है। इनके दो भाईयों का विश्राम और राम का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[3] इन्होंने अमर के पूर्व १६ टीकाओं के सार को ग्रहण कर सह टीका की थी जिसका स्वंय उल्लेख करते हैं।

इयं षोडशटीकार्थ सारमादाय निर्मिता
अतोऽमिलिखितौऽर्थोऽस्यां न हेयः सहसाबुधैः[4]

रायमुकुट ने अपने टीका में अनेक प्राचीन कोषकार और टीकाओं का उल्लेख किया है तथा उनके उद्धरण अपने टीका में उद्धत किए हैं। भाषा विज्ञान के आधार पर 'चन्द्रमा का अर्थ हैं' 'मास' जो स्वतः चन्द्रवाची है यदि आहलादे से निष्पन्न चन्द्र आहलादक अर्थ का वाचक है और पहले 'मस' के विशेषण रूप में प्रयुक्त होता था जो पीछे स्वयं पृथक होकर संज्ञा शब्द बन गया है। इस तथ्य का पता व्याडि के उत्पलिनी से चलता हैं—'माः शब्दों पीह चन्द्रे सम्मतो बहुदश्वनाम्' इसका समर्थन क्षीरस्वामी ने किया है। (पदचन्द्रिका पृ० १०६) इस प्रकार मेदिन, शब्दार्णव, सुभूति सर्वधर, सर्वानन्द वोपालित, व्याडि, कौमुदी, नामनिधान, नाममाला, अमरमाला आदि प्राचीन कोषों का उद्धरण इस टीका में प्राप्त होते हैं। इसके साथ ही साथ प्राचीन काव्यों में भारवि, माघ कुमारसंभव और पाणिनि के जाम्बवती काव्य इत्यादि का उद्धरण प्राप्त होता है।[5] रायमुकुट ने रौचिः, दीप्ति, आतय आदि शब्दों (पृ० १३२-१३३) के अर्थ के छानवीन के निमित्त प्राचीन कोशों तथा काव्यों का गंभीर अनुशीलन कर अपना अपना मत दिया है। रायमुकुट ने शब्दों के वर्तिनी (Spelling) में भी बहुत छानवोन की है, जैसे पाठ ब्रह्मसुर्विश्वकेतुः स्यात्।[6] इसमें पहले कामदेव और बाद में अनिरुद्ध के नाम दोनों के मध्य में आने वाले ये नाम किसके हैं रिश्वकेतु के स्थान में रिश्यकेतु पाठ मिलता है इन दोनों में कौन सा पाठ ठीक है। रायमुकुट ने ऋष्यकेतु एरिश्यकेतु अथवा रिष्यकेतु) के

---

१. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४२
२. कल्पद्रु कोष भूमिका पृ० १८
३. कल्पद्रु कोष भूमिका पृ० १८
४. पदचन्द्रिका प्रारम्भ का ९वां श्लोक
५. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४३
६. अमर १, २१

लिए साम्बुपुराण का वचन उद्धृत करते हैं जिससे अनिरुद्ध की ध्वजा में मृग की स्थिति सिद्ध होती है, फलतः अनिरुद्ध वाचक सिद्ध होता है।[१]

५. भानुजी दीक्षित व्याख्यासुधा (रामाश्रयी)—भानुजी दीक्षित प्रसिद्ध बैयाकरण भट्टाजी दीक्षित के पुत्र के इस टीका का नाम 'व्याख्या सुधा' है लेकिन रचयिता के नाम से रामाश्रयी भी कहलाती है, क्योंकि भानुजी दीक्षित बाद में सन्यास ग्रहण करने के कारण उस समय उनका नाम रामाश्रय हो गया था तथा इसी कारण उनके टीका को लोग रामाश्रयी कहने लगे। इसकी एक अपूर्वहस्तलिखित प्रति उपलब्ध हुई है। १६४६ ईश्वी की, जो लेखक की सम सामयिक प्रति है[२] सुधा व्याख्या की रचना महीधर राज्य के अधिपति बघेल वंशोद्भव की कीर्तिसिंहदेव की आज्ञा से ईसवीय १७वीं शती में की गई थी। प्रत्येक काण्ड के अन्त में भी जिसका उल्लेख किया गया है[३] यह टीका वहुत ही विस्तृत तथा प्रत्येक शब्द की व्युत्पत्ति देती है जो कि बहुत ही पाण्डित्यपूर्ण है इसके अनेक ग्रन्थों वैयाकरणों कोषकारों काव्यकारों एवं टीकाकारों आदि के उद्धरणों के द्वारा पाण्डित्यपूर्ण विवेचन प्रस्तुत किया गया है, साथ ही पूर्ववर्ती टीकाकारों की यथास्थान समालोचना की गई है।

६. भरत मल्लिक—बंगाल के गौरांग मल्लिक के पुत्र भरत मल्लिक या भरतसेन ने भी अमरकोष पर मुग्ध बोधिनी नामक टीका की। यह टीका बहुत ही विस्तृत तथा निर्देश ग्रन्थों से मण्डित टीका है और पाठान्तर अधिक है। यहाँ शब्दों की व्युत्पत्ति वोपदेव के व्याकरणानुसार दी गई है वोपदेव के ग्रन्थ कविकल्पद्रुम की टीका में दुर्गादास ने भरत की अमरटीका को अनेक बार उद्धृत किया है।[४] भरत मल्लिक का समय १७५० के लगभग माना जाता है।

७. नारायण शर्मन (अमरकोष पंजिका)—नारायण शर्मन ने अमर कोष पंजिका नामक टीका की है, जिसको पदार्थ कौमुदी भी कहते हैं, जिसका रचना काल १६१९ ई० है।[५]

---

१. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४४

२. इति श्री बघेलवंशोद्भव श्री महीधर विषयाधिप श्री कीर्तिसिंह देवाज्ञया श्री भट्ट.जी दीक्षित आत्मज श्री भानुजी दीक्षित विरचिताया भरटीकायां व्याख्यासुधायां तृतीयकाण्ड समाप्तिमागत्। पृ० ४६३.

३. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४५.

४. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४५

५. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४५

८. रामनाथ विद्यावाचस्पति (त्रिकाण्ड विवेक)—अमरकोष पर रामनाथ विद्यावाचस्पति ने त्रिकाण्ड विवेक नामक टीका की है, जो कि बहुत ही विद्वता पूर्ण है। टीकाकार का समय १६२३ ई० है।[1]

६. मथुरेश विद्यालंकार (सारसुन्दरी)—प्रस्तुत टीका मथुरेश विद्यालंकार ने सन् १६६६ ई० में की। इनके पिता का नाम शिवराम चक्रवर्तिन और माता का नाम पार्वती था। इसमें भी भूतपूर्व कई टीकाओं से उद्धरण उद्धृत किए गए हैं मथुरेश ने एक और ग्रन्थ लिखा है, जिसका नाम शब्द रत्नावली है। इसकी शब्द सूची पद्य में और क्रम अमरकोष जैसा ही है।[2]

१०. अच्युतोपाध्याय की व्याख्या प्रदीप।

११. महेश्वरकृत अमर विवेक जो १८४८ ई० में लिखी गई। इसका एक नाम शिशु बोधिनी भी है। यह बम्बई से प्रकाशित हुई हैं।

अमरपद विवृत लिंग्यसूरि—इसका रचनाकाल १४वीं शती का उत्तरार्द्ध है। इसका नाम नामलिंगानुशासन व्याख्या अमरकोष पदविवृत्त है। गवर्नमेण्ट मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी मद्रास में इसकी दो अपूर्ण प्रतियाँ हैं।

१३. जातवेद दीक्षित (अमरकोष बृहद वृत्ति या सुबोधिनी)—यह टीका १२वीं शदी के उत्तरार्द्ध में लिखी गई है। क्यूरेटर्स आफिस लाइब्रेरी त्रिवेन्द्रम में इसकी एक प्रति सुरक्षित है। इसकी पृष्ठ संख्या १३७७ है, लिपिदेवनागरी त्रिवेन्द्रम में ही इसकी एक पाण्डुलिपि ताड़पत्र पर है।

१४. बुधमनोहरा---स्वयं प्रकाश तीर्थ के शिष्य महादेव की बुध मनोहरा टीका जो केवल तृतीयकाण्ड मात्र है अमर पियूष से अधिक विस्तृत है। इसमें प्रत्येक पद की व्याख्या करते हुए व्यापक रूप से अर्थ प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है।

१५. शिखाटीका----नृसिहशेष ने अमरकोष की शिखाटीका की है। यह अमर के गूढ़ार्थों की प्रकाशिका है।

इस प्रकार अमरकोष की सैकड़ों टीकाएं उपलब्ध हैं जो कि भारत के विभिन्न संस्कृत पुस्तकालयों में सुरक्षित हैं।

उपर्युक्त टीकाओं के अतिरिक्त निम्न टीकाएं और प्राप्त होती हैं---

१.	बालबोधिनी	टीकाकार गोस्वामी
२.	अमरकौमुदी	नयना नंद रामचन्द्र

---

१. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास पृ० ३४५

२. शब्द कल्पद्रु कोष भूमिका पृष्ठ २०

३.	पदचन्द्रिका	रायमुकुट
४.	शब्दार्थ संदीपिका	नारायण विद्या विनोद
५.	सुबोधिनी	नीलकण्ठ
६.	अमरकोषमाला	परमानन्द
७.	गुरुबालप्रबोधिनी	मन्जु भट्ट
८.	अमरपदपारिजात	मल्लिनाथ
९.	बुधमनोहर	महादेव तीर्थ
१०.	अमरबोधिनी	मुकुन्द शर्मा
११.	त्रिकाण्डचिन्तामणि	रघुनाथ चक्रवर्ती
१२.	अमरकोषव्याख्या	राघवेन्द्र
१३.	वैशम्यकौमुदी	रामप्रसाद
१४.	अमरकोषव्याख्या	रामशर्मा
१५.	अमरवृत्ति	रामस्वामी
१६.	प्रदीपमंजरी	रामेश्वर शर्मा
१७.	अमर व्याख्या	लक्ष्मण शास्त्री
१८.	अमर बोधिनी	लिंगभट्ट
१९.	पदमंजरी	लोकनाथ
२०.	व्याख्यावृत	शंकराचार्य
२१.	अमरटीका	श्रीधर
२२.	अमरपद्ममुकुर	रंगाचार्य
२३.	वृहद्वृत्ति	,,
२४.	अप्पयदीक्षित	,,
२५.	गुरुबालप्रबोधिनी	भानु दीक्षित
२६.	मान्यभट्ट	,,
२७.	अमरकोष पद विवृत्ति	,,
२८.	मणि प्रभा	हर गोविन्द शास्त्री

इन समस्त टीकाओं के साथ अमरकोष का अनुवाद विश्व के अनेक भाषाओं में हुआ है ---

१. छठी शताब्दी में गुणराज नामक विद्वान ने चीनी भाषा में अमरकोष का अनुवाद किया था।[1]

---

१. मैक्समूलर का मत मणि प्रभा व्याख्या भूमिका पृ० ७

२. सतीश चन्द्र विद्यासागर ने तिब्बती में अनुवाद करके प्रकाशित कराया।
३. श्री अमरपद रत्न शास्त्री ने तेलगू में अमरकोष का अनुवाद किया है।
४. अमरकोष का उड़िया भाषा में अनुवाद 'अमरार्थ रत्न मालिका' नाम से जगमोहन सिंह देव ने किया।
५. नेपाली में इसका अनुवाद टिप्पणी सहित की—कुलचंद्र शर्मा ने।
६. अमरकोष का मराठी अनुवाद 'बालबोध' नाम से श्री गजानन चिन्तामणि ने किया।
७. अमरकोष के शब्दों का वर्णानुक्रमानुसार में अनुवाद पीताम्बर मुखोपाध्याय शर्मा द्वारा।
८. सानुवाद वृहद् अमरार्थ चन्द्रिका प्रसन्न कुमार भट्टाचार्य
९. अमरकोष की बंगाली अनुवाद पीताम्बर न्याय बागीस
१०. शब्दकल्प लतिका अनुवादक जगन्नाथ प्रसाद मलिक
११. अमरकोष गुजराती में अनुवाद टिप्पणी सहित अनुवादक धर्मचन्द्र केवल चन्द्र खण्डोला।
१२. अमरकोष का कन्नड़ में अनुवाद मद्रास सरस्वती निलय प्रेस से १८६६ में प्रकाशित हुआ।

अमरकोष की अन्य भाषाओं की व्याख्याएं निम्न प्रसिद्ध हैं----

१. अमरकोष----अमरार्थ चन्द्रिका बंगाली व्याख्या गोपीनाथ शिला।
२. अमरकोषाभिधान 'चन्द्रिका' बंगाली व्याख्या द्वारा चन्द्रमोहन भट्टाचार्य तर्करत्न।
३. अमरचन्द्रिका व्याख्या काली प्रपन्न विद्यारत्न।
४. अमरकोष बंगाली व्याख्या गुरुनाथ भट्टाचार्य
५. अमरकोष अंग्रेजी व्याख्या एच० टी० कूलब्रूक
६. अमरकोष अंग्रेजी व्याख्या ज्ञानेन्द्र चन्द्र चट्टोपाध्याय
७. अमरकोष अंग्रेजी व्याख्या महादेव शिवराम गौड़
८. अमरकोष कन्नड़ टीका
९. अमरकोष कन्नड़ टीका
१०. अमरकोष कन्नड़ व्याख्या सारस्वत तिरुवेंकटाचार्य
११. नाम लिंगानुशासनम् कन्नड़ व्याख्या सिद्धान्त सुब्रमन्या शास्त्री
१२. अमरकोष प्रकार कन्नड़ व्याख्या टिप्पणी सहित वासुदेव मूर्ति
१३. अमरकोष मलयालम् व्याख्या सहित कोट्टायम्

१४. अमरकोष मलयालम् व्याख्या सहित के० पी० टम्मान, जी० के० टामन जी० जे० कुर्यान
१५. अमरकोष मलयालम् व्याख्या सहित राम बेरियार ट्रिचर
१६. अमरकोष व्याख्या परमेश्वरी कन्नड़ टी० सी० परमेश्वरम्
१७. अमरकोष मलयालम् व्याख्या 'बालमित्रम्' वी० नारायण कुरूप कुन्नाम कुलम ।
१८. अमरकोष मलयालम् त्रिवेणी व्याख्या टी०सी० परमेश्वरम्
१९. अमरकोष सारार्थ बोधिनी सी० अच्युत वैरियर
२०. अमरकोष बालबोधिनी के० राना वैरियर
२१. अमरकोष मराठी व्याख्या—गोविन्द जे०हेल्वेकरा
२२. सार्थ लघु अमरकोष मराठी टीका गणेश पाण्डुरंग लोधी
२३. अमरकोष उड़िया व्याख्या बालबोधिनी
२४. अमरकोष उड़िया व्याख्या महेश्वरानन्द
२५. अमरकोष सिंहलीज व्याख्या टिप्पणी सहित डान० ए० डी० एस० देवरक्षिता
२६. नामलिंगानुशासनम् नामलिंगानुशासनम् दीपिका तमिल व्याख्या
२७. अमरकोष तमिल व्याख्या के वेंकटराम शास्त्री
२८. नामलिंगानुशासनम् गुरुबाल प्रबोधिका तेलगू व्याख्या कलानिधि तिरुवेंकटाचार्य ।
२९. अमरकोष टिप्पणी सहित व्याख्या दण्डि सूर्य नारायण शास्त्री
३०. अमरकोष प्रथम काण्ड नामदेव शास्त्री ।

संस्कृत कोषों का परिचय

कोष विद्या का सृजन वैदिक काल से प्रारम्भ हो गया था, वैदिक साहित्य के महत्वपूर्ण ग्रन्थ वेद हैं, वेद के षडंगो[1] में निरुक्त एक मुख्य ग्रन्थ है । यद्यपि निरुक्त व्याख्या परक ग्रन्थ है, फिर भी मौलिक ग्रन्थ के रूप में इसकी ख्याति है और इसकी अनेक टीकाएँ विश्रुत हैं, इसी कारण से यह वैदिक कोष निघण्टु की टीका होते हुए भी वेदांगों में गिना गया है ।

निघण्टु वैदिक शब्दों का समुच्चय है । वेद में प्रयुक्त कुछ शब्दों का मात्र संग्रह निघण्टु में किया गया है । कोष की दो पद्धतियाँ उपलब्ध होती है प्रथम

---

१. शिक्षा कल्पोऽथ व्याकरणं निरुक्तं छन्दसां च यः
ज्योतिषामयनं प्रोक्तं वेदांगानि षडेव तु ।।

प्रकार की पद्धति में शब्दों का संग्रह मात्र रहता है इसमें एक ही अर्थ के बोधक अनेक शब्दों का संग्रह किया जाता है। इस पद्धति को एकार्थक का समानार्थक कहा गया है। द्वितीय प्रकार की पद्धति में एक ही शब्द के कई अर्थों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार की पद्धति को अनेकार्थक कहा गया है। निघण्टु उपर्युक्त दोनों पद्धतियों में से मिश्रित पद्धति का है, क्योंकि इसमें एक नाम के अनेक समानार्थक असमानार्थक शब्दों को एक साथ परिगणन कराया गया है। सर्वप्रथम पृथ्वी के २१ नाम, हिरण्य के १५ नाम, अन्तरिक्ष के १६ नाम[१] इत्यादि।

निघण्टु के पश्चात् निरुक्त का काल आता है। निरुक्त व्याख्या परक ग्रन्थ है अर्थात् निघण्टु की व्याख्या निरुक्त में की गई है। दुर्गाचार्य ने निरुक्त की व्याख्या में बताया[२] कि निरुक्त के १४ भेद हैं, यास्क ने अपने निरुक्त में १२ निरुक्तकारों का उल्लेख किया है। (१) अग्रायण (२) औपमन्यव (३) औदुम्बरायण (४) और्णवाम (५) कात्थक्य (६) क्रोष्टिकि (७) गार्ग्य (८) गालब (९) तैटीकि (१०) वार्ष्यायणि (११) शाकपूरि (१२) स्थौलाष्ठीवि, तेरहवे निरुक्तकार यास्क को ही मानना चाहिए क्योंकि जब उन्होंने १२ निरुक्तकारों का उल्लेख किया तो १३ वें ये स्वयं सिद्ध होते हैं, लेकिन १४ वें निरुक्तकार कौन थे इसका पता नहीं लग सका। निरुक्तकार यास्क निघण्टु के व्याख्याकार थे, और इन्हीं का ही निरुक्त उपलब्ध है और शेष निरुक्तकारों का तो केवल नाम मात्र प्राप्त होता है।

निरुक्तकार यास्क के बाद निघण्टु के व्याख्याकार देवराज यज्वा का भी नाम आता है। देवराज यज्वा ने अपने टीका के उपोद्घात में निघण्टु के व्याख्याकारों में क्षीरस्वामी और अनन्ताचार्य के मतों का उल्लेख किया है 'इदं च निरीक्ष्य क्रियते। अनन्ताचार्य का नाम अतिरिक्त नहीं उपलब्ध होता परन्तु क्षीरस्वामी का कई स्थानों में उल्लेख किया गया है। क्षीरस्वांमी अमरकोष के प्रसिद्ध टीकाकार हैं, इन्होंने अमरकोष की अमरकोषोद्घाटन नाम की टीका लिखी है, इस टीका की निघण्टु भाष्य भी कहा गया है।[३] इसीलिए देवराज यज्वा का कहना है कि निघण्टु भाष्य के कर्त्ता अर्थात् अमरकोष के टीकाकार क्षीरस्वामी के व्याख्या को देखकर निघण्टु की व्याख्या लिखता हूँ।

---

१. निघण्टु प्रथम अध्याय।
२. "निरुक्तंचतुर्दशप्रमेदम्"।
३. सं० शा० का इति०-पृ० ३२३।

निघण्टु और निरुक्त के पश्चात संस्कृत भाषा में स्वतन्त्र रूप से कोष लिखे जाने लगे जो निरुक्त और निघण्टु से प्रभावित थे। मुख्य रूप से व्याकरण के समान कोषों की रचना होती थी। व्याकरण और कोष में बहुत मामूली अन्तर था, वैदिक काल में इसी रूप में प्रातिशाख्य लिखे गये थे और इसके बाद लौकिक संस्कृत में भी कोष लिखे गये।

इसके पश्चात् संस्कृत साहित्य में अनेक कोषकारों के उद्धरणों का उल्लेख प्राप्त होता है लेकिन उनकी कृतियों का पता नहीं चलता। दशवीं शती से विदेशी आमन्ताओं और शासकों का यहाँ प्राचुर्य हो गया था जो कि इस देश की संस्कृति तथा साहित्य तथा साहित्य को समूल नष्ट करने में लगे हुए थे, जितना संभव हो सका उतना नष्ट किया गया, फलतः यहाँ के अनेक मूल ग्रन्थ लुप्त हो गए। यथा समय उत्पन्न हुए आलोचकों के सन्दर्भों और उद्धरणों से अनेक प्राचीन लेखकों और कवियों का पता चलता है इन्हीं आधारों पर। आधुनिक अनुसंधान प्रक्रिया को प्रदान कर रहा है।

लौकिक संस्कृत में प्राचीन कोषकार के रूप में व्याद्रि का नाम लिया जाता है ऋक प्रातिशाख्य[1] १।३।३१ में शाकल्य और गार्ग्य के साथ व्याद्रि का कई स्थानों में उल्लेख किया गया है। शाकल्य और गार्ग्य का उल्लेख पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी में भी किया है जिससे प्रतीत होता है कि व्याद्रि ने कोई शब्दानुशासन अवश्य लिखा है लेकिन उपलब्ध नहीं है।

केशव ने अपने नानार्थार्णव संक्षेप में शाकटायन के अनेक कोष विषयक उद्धरण दिया है जिससे स्पष्ट होता है कि शाकटायन ने भी कोई कोष लिखा था[2] लेकिन वह भी अनुपलब्ध हैं।

भानुजीदीक्षित ने आदिशील नामक कोषकार का उद्धरण दिया है[3] लेकिन इनका भी कोष प्राप्त नहीं है। इसी तरह पाणिनि को भी कोषकार होने का संकेत प्राप्त होता है। पाणिनि ने जिस कोष को लिखा था उसका नाम कोष था। लन्दन की इन्डिया आफिस लायब्रेरी में द्विरूप कोष का एक हस्तलिखित प्रति है उनकी संख्या ७८९० है। यह कोष ६ पत्रों में पूर्ण है। ग्रन्थ के अन्त में 'इतिपाणिनि मुनिना कृतम द्विरूप कोषम् सम्पूर्णम् लिखा है पाणिनि प्रसिद्ध

---

१. व्या० शा० का इतिहास पृ० ९२
२. तदेव पृ० १२१
३. तदेव पृ० ९०-१०२
४. व्या० शा० का इतिहास पृ० १६५

वैयाकरण हुए, उन्होंने संस्कृत के समस्त शब्दों को व्याकरण के नियमों में बाँध दिया। अतः सिद्ध होता है कि पाणिनि केवल शब्दकार ही नहीं अपितु कोषकार भी थे। भागुरि नामक कोषकार ने त्रिकाण्ड नामक कोष लिखा है। युधिष्ठिर मीमांशक ने स्पष्ट रूप से लिखा है कि पुरुषोत्तमदेव कृत भाष्यवृत्ति कृष्टिधर कृत टीका और प्रभावृत्ति से विदित होता है कि भागुरिकृत कोष का नाम त्रिकाण्ड था, अमरकोष की सर्वानन्द विरचित टीका सर्वस्व में त्रिकाण्ड के अनेक बचन उतद्धृ हैं।

पतंजलिकृत कोष का भी संकेत मिलता है किन्तृ इनका कोई विशिष्टकोष ग्रन्थ आद्यावधि उपलब्ध नहीं है। वस्तुतः महाभाष्य ही इनका एक विशाल विश्वकोष है जो परवर्ती अनेक कोषों का आकर ग्रन्थ रहा है। अमरकोषकार के लिए किसी समालोचक का यह कथन नितान्त युक्तिसंगत प्रतीत होता है 'अमरसिंहो ही पापीयान् सर्वभाष्यमर्चूचुरत्'। अमरसिंह के पूर्व कोष साहित्य की ओर यद्यपि विद्वानों की दृष्टि गई थी, लेकिन उन्होंने इस ओर विशेष रुचि से काम नहीं किया। ऐसा कोष साहित्य के इतिहास देखने से स्पष्ट होता है क्योंकि बहुत से जिन कोषकारों के कोषों का नाम मालूम पड़ता है केवल अन्य पुस्तकों के उद्धरणों से उन्होंने अपने पुस्तक को या तो प्रकाश में लाया नहीं या ले आए तो तत्कालीन व्यवस्था के कारण वह सामने नहीं आ सकी।

अमरसिंह का अमरकोष संस्कृत साहित्य का वस्तुतः अमरकोष है। इसकी रचना के पश्चात संस्कृत कोष साहित्य में प्रतिस्पर्धा की भावना से कोषों का निर्माण हुआ है और करीब १५०० वर्षों में विश्रुत १०० कोषों का निर्माण विभिन्न कोषकारों ने किया। इससे स्पष्ट है कि यद्यपि कोषों का आरम्भ वैदिककाल से हुआ है लेकिन अमरकोष के प्रकाश में आने के पश्चात्, अमरकोष से प्रेरणा लेकर कोषकारों ने कोष साहित्य के विकास में विपुल प्रयत्न किया।

अमरसिंह कृत अमरकोष संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट कोष है, क्योंकि जिस प्रकार से संस्कृत के शब्दों का संग्रह अमरकोष में किया गया है वैसा अन्यत्र नहीं पाया जाता है। अंग्रेजी के कोषों में शब्दों का संग्रह वर्णक्रम से किया गया है। संस्कृत साहित्य में भी बहुत से कोषों का निर्माण इसी पद्धति से किया गया है, लेकिन अमरकोष की पद्धति इन प्रणालियों से भिन्न है, अमरसिंह ने शब्दों के संग्रह में वर्ग विशेष पर ध्यान दिया है स्वर्ग सम्बन्धी शब्दों का नाम स्वर्ग में, पृथ्वी सम्बन्धी शब्दों का नाम पृथ्वी वर्ग में इसी

तरह व्याम, दिक् काल, धी शब्दादि वर्ग में भी भिन्न भिन्न शब्दों का संग्रह किया गया है।

अमरसिंह की शब्द संकलन प्रक्रिया अतीव व्यापक है। उन्होंने स्वर्ग के विश्रुत देवताओं ब्रह्मा[१], विष्णु[२], और महेश[३] के साथ पृथ्वी की वनौषधियों के लघुतम तृण कुटकी[४] आदि का भी स्मरण किया है। इसी प्रकार विस्तृत विवेचना में जहाँ अमरसिंह ने ब्रह्माण्ड को अपने तेज से व्याप्त करने वाले सूर्यू[५] का उल्लेख किया है वहीं उन्होंने लघुकाय दीपक[६] का भी विवेचन किया है। इसी प्रकार अमरसिंह ने एक और एकार्थक शब्दों का संग्रह किया है और दूसरी ओर अनेकार्थक शब्दों का भी उल्लेख किया है। प्रथम द्वितीय और तृतीय काण्डों में एकार्थक शब्दों का संग्रह किया है और तृतीय के नानार्थ वर्ग में नानार्थक शब्दों का भी संग्रह किया है, विशेष रूप से एक ही शब्द के अनेक अर्थों का संग्रह करके एक महत्वपूर्ण कार्य किया है। उदाहरण के लिए नाना शब्द के ३ अर्थों नाता, उभय, विना पर विचार किया गया है। (१) विधाः (२) 'नाना विधं न सज्जेत', नानापक्षावमर्शः संशयः (३) 'नाना नारी निष्फला लोक यात्रा अर्थात् 'नारीविना लोक यात्रा निष्पला भवति इत्यादि।[७]

इस प्रकार अमरकोष में देखा जाय तो यह एकांगी होते हुए सर्वांगीण है, एक होते हुए भी अनेक है, प्राचीन होते हुये भी नवीन है, कालान्तर में इसकी उपयोगिता अत्यधिक बढ़ती ही जा रही है। इसका कारण स्पष्ट है, अमरसिंह ने समस्त शब्दों की क्रमशः वैज्ञानिक एवं सरल ढंग से संजोकर रखा है। एक बार ही अध्ययन करने पर यह मन को आकृष्ट कर लेता है। केवल अर्थज्ञान ही नहीं अपितु समग्र दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है यथा 'अमरा, निर्जरा देवाः' देव बोधक शब्दों में अमर निर्जर और देव[८] है। अमर अर्थात 'यस्य मृत्युः न स्यात्'।

---

१. अमरकोष १।१।१६, १७
२. अमरकोष १।१।१८-२१
३. अमरकोष १।१।३०-३४
४. अमरकोष २।४।८५
५. अमरकोष १।३।२८-३०
६. अमरकोष २।६।१३८
७. अमरकोष मणिप्रभा व्याख्या पृ० ५१०
८. अमरकोष १।१।७

अमरकोष का आज भाषाविज्ञान की दृष्टि से एक विशेष महत्व है क्योंकि कोष में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर यह पता लगाया जा सकता है कि प्राचीन-काल से अब तक कितना अर्थ परिवर्तन हुआ है। कितने नए शब्द और जुड़े हैं। शब्द निर्माण प्रक्रिया क्या थी। आदि कालान्तर में इसका क्या रूप अन्य भाषाओं में बना ? जैसे अमरकोष[1] में रात्रि वाचक दो शब्द 'नक्त रजनी' प्रयुक्त हुए हैं[2] नक्त शब्द के ही आधार पर अंग्रेजी भाषा में NIGHT शब्द बना है क्योंकि नाइट का अर्थ रात्रि के ही लिए किया गया है लेकिन इस शब्द में अनुच्चार्यमाण GH क्यों है।[3] इसका अर्थ संस्कृत में प्रयुक्त रात्रि वाची 'नक्त' से ही लगता है वैसे gh का उच्चारण 'घ' अक्षर से होता है लेकिन इसी वर्ण के प्रथम अक्षर के स्थान पर चतुर्थ अक्षर कुछ नियमों से हो जाता है।[4] अतः संस्कृत के 'क' के स्थान में 'घ' होना उचित ही है।

अमरकोष के पश्चात् संस्कृत साहित्य में कोषों की ओर विद्वानों की दृष्टि गई। जहां कोष लिखने की परम्परा समाप्त थीं वहीं अमरकोष की प्रेरणा से तथा प्रतिस्पर्धा की भावना से कोष लिखे जाने लगे। पंचम् शती से लेकर १९वीं शती तक एक ही परम्परा के आधार पर करीब १०० कोष लिखे गए विद्वानों ने अपने अपने दृष्टिकोणों के आधार पर कोषों में नई दिशाएं निर्माण की और कोष के क्षेत्र को व्यापक बनाया।

नीचे कोषकारों का नाम, कोषों का नाम तथा उनका प्रमाणित समय दिया जा रहा है जिनका क्रमशः परिचय आगे दिया जायेगा। यह विभाजन समय के आधार पर किया गया है और इसके आगे इन्हीं समस्त कोषों का विभाजन अर्थ के आधार पर फिर से किया जायगा। यहां जिन कोषों के नाम गिनाये जा रहे हैं, उनका क्रमशः परिचय आगे दिया गया है।

---

१. अमरकोष २।४।६

२. दोषा च नक्तं रजनीवपि २।४।६

३. वैं०सा० और सं० पृ०

४. वैं०सा० और सं०पृ०

क्रमांक	कोष का नाम	कोष के कर्ता का नाम	समय
१.	रभस	राभसपाल	५००से६००ई०
२.	अनेकार्थ समुच्चय	शाश्वत	६००ई०
३.	पर्याय रत्नमाला	माधवाकर	७००ई०
४.	अनेकार्थ ध्वनि मंजरी	महाक्षपणक	६२५ई०
५.	पर्याय मुक्तावली	हरिचरण सेन	
६.	अभिधान रत्नमाला	हलायुध	६५०ई०
७.	वैजयन्ती	अचार्य यादव प्रकाश	११००ई०
८.	शब्द चन्द्रिका	चक्रपाणिदत्त	१०६०ई०
९.	शब्द प्रदीप	सुरेश्वर	१०७५ई०
१०.	उत्पलिनी	शुभांक	११००ई०
११.	त्रिकाण्डशेष	पुरुषोत्तमदेव	
१२.	हारावली	पुरुषोत्तमदेव	
१३.	एकाक्षर कोष	पुरुषोत्तमदेव	
१४.	विश्वप्रकाश	महेश्वर	११११ई०
१५.	शब्दभेद प्रकाश	महेश्वर	११११ई०
१६.	शब्दभेद प्रकाश टीका	ज्ञान विमल ज्ञानी	१५६८ई०
१७.	नाममाला	धनन्जय	११२३ई०
१८.	अनेकार्थ कोष (नानार्थ कोष)	अजयपाल	११४०ई०
१९.	मखकोष	अजयपाल	११४०ई०
२०.	अभिधान चिन्तामणि	हेमचन्द्र	११४५-१२३२ई०
२१.	अनेकार्थ संग्रह	हेमचन्द्र	११४५-१२३२
२२.	निघण्टुशेष	हेमचन्द्र	११४५-१२३२
२३.	देशीनाममाला	हेमचन्द्र	११४५-१२३२
२४.	अभिधान चिन्तामणि टीका (व्युत्पत्ति रत्नाकर)	देवसागर ज्ञानी	१४३०-१६३०
२५.	अनेकार्थ संग्रह टीका (वैयाकरणा कौमुद)	महेन्द्र	११८५
२६.	धरणि कोष	धरणिधर	११५९
२७.	द्विरूपकोष	श्री हर्ष	१२वीं शती

क्रमांक	कोष का नाम	कोष कर्ता का नाम	समय
२८.	अमरकोष खण्डन	श्री हर्ष	१२वीं शती
२९.	नानार्थार्णव संक्षेप	केशवस्वामी	१२००-१३००
३०	नानार्थ शब्दकोष (मेदिनी कोष)	मेदिनीकर	१२०३-१२७५
३१.	हृदय दीपक	वोपदेव	१२५०
३२.	अब्यय संग्रह निघण्टु	सांकल्पमाला भट्ट	१३३०
३३.	एकाक्षर रत्नमाला	माधव	१३५०
३४.	अनेकार्थ तिलक (नानार्थ माला)	महीप	१४३४
३५.	द्रव्यगुण शतश्लोकी	त्रिमाला भट्ट	१३८३-१४९९
३६.	द्रव्यगुण शतश्लोकी टीका	कृष्णदत्त	१७००
३७.	शब्द रत्नमाला	बामन भट्ट बाण	१४००
३८.	नानार्थ रत्नमाला	इरुगपददण्डधिनाथ	१४००
३९.	एकाक्षर नाम मालिका	सुधाकलास	१३५०
४०.	मदन विनोद निघण्टु	मदनपाल	१३७५
४१.	राज निघण्टु	नरहरि	१३७५
४२.	भूरिप्रयोग	पद्मनामदत्त	१३७५
४३.	अभिधान तत्व	जातधर	१४३१
४४.	अनेकार्थ ध्वनि मंजरी	गदासिंह	१४३१
४५.	श्रुत शब्द समुच्चय	सोमेश्वर	१५५०
४६.	शीघ्रबोधिनी नाम माला	पुण्डरीक विट्ठल	१५६०
४७.	वर्णप्रकाश	कर्णपूर	१५५०
४८.	पंचवर्ग संग्रह (नाममाला)	शुभशील	१५००
४९.	उणादि नाममाला	शुभशील	१५००
५०.	रूप मंजरी नाम माला	रूपचन्द्र	१५८८
५१.	शारदीयाख्य नाममाला	हर्षकीर्ति	१६००
५२.	पारसीय प्रकाश	बिहारी कृष्णदत्त	१५५६-१६०५
५३.	द्विरूप ध्वनि संग्रह	भरत सेन	
५४.	श्री लोक नाममाला टीका	बल्लभज्ञानि	१५९८
५५.	शब्दार्णव	शहजीकीर्ति	१६३०

क्रमांक	कोष का नाम	कोष के कर्त्ता का नाम	समय
५६.	पथपथ्य विविध निघण्टु	काइयादेव	१६४८
५७.	सर्वरत्नावली	मथुरेश	१६००-१६५०
५८.	उक्ति रत्नाकर	—	
५९.	शब्द रत्नाकर	--	१६४१-१६१८
६०.	पारसी प्रकाश	वेदांगराय	१६४३
६१.	पंचतत्व प्रकाश	बेनीदत्त	१६४४
६२.	कल्पद्रुकोष	केशव	१६६०
६३.	राजव्यवहार कोष	रघुनाथ	१६७६
६४.	शिवकोष	शिवदत्त	१६७७
६५.	दब्दरत्न सन्वय	शहजी	१६८४-१७१२
६६.	उणादिनिघण्टु	वेंकटेश्वर	१६८४-१७१२
६७.	कोष कल्पतरु	विश्वनाथ	१७००
६८.	कविदर्पण निघण्टु	रामभद्रदीक्षित	१७००
६९.	यवनपरियत अनुक्रम	दलपति राय	१७६४
७०.	शब्दमुकुट महावर्ण	तारामणि	१७८५
७१.	वैदिक कोष	भास्कर राय	१८००
७२.	कोषावतंस	राघवअघ खण्डेकर	१८१०
७३.	पाईअलच्छी नाम माला	धनपाल	९७२
७४.	अनेकार्थ नाममाला	विनय सागर	
७५.	बिश्वलोचन कोष		
७६.	नाटक लक्षण रत्नकोष		

उपर्युक्त कोषों का नाम्ना परिचय क्रमशः प्रस्तुत किया गया है, जिसका मूल आधार कोषों का अध्ययन है। लगभग ८० कोषों का नाम (उन्नीसवीं शती) तक के उपलब्ध हुए जिनके अध्ययन के आधार पर ही उनका परिचय प्रस्तुत किया गया है। इसके अतिरिक्त जो कोष मूल रूप में नहीं प्राप्त हुए उनका परिचय विभिन्न रिसर्च संस्थाओं में प्राप्त सामग्री के आधार पर प्रस्तुत किया गया है ।

कोष के परिचय के साथ कोषकार के परिचय का भी ध्यान दिया गया है, लेकिन बहुत से कोषकारों का परिचय अप्राप्त होने के कारण उस पर अधिक

ध्यान नहीं दिया गया। मुख्य कोषकारों के परिचय का विशेष ध्यान दिया गया है साथ ही टीकाकारों का भी उल्लेख किया गया है।

विभिन्न कोषों में विभाग के आधार शब्दों और अर्थों का उल्लेख किया गया है जिसमें कुछ कोषों में अध्याय, काण्ड, वर्ग, प्रमंद इत्यादि विभागों का उल्लेख प्राप्त होता है। इन समस्त कोषों के विभाग को परिचय में विशेष ध्यान दिया गया है, जैसे पृथ्वी वर्ग में पृथ्वी से सम्बन्धित हो, पर्वत, प्रदेश इत्यादि का उल्लेख किया गया है। अन्तरिक्ष वर्ग में अन्तरिक्ष सम्बन्धित शब्दों का उल्लेख, स्वर्ग में स्वर्गस्थ देवताओं का उल्लेख इत्यादि किया गया है।

इसी प्रकार कुछ कोषों में शब्द विभाग अक्षर के आधार पर किया गया है जैसे पहले एक अक्षर के क्रम में जितने शब्द आते हैं उनका उल्लेख फिर दो अक्षर के शब्द बाद में तीन अक्षर के शब्द जैसे क एकम्, क द्वितीयम क तृतीयम्, क चतुर्थम इत्यादि क्रम का ध्यान दिया गया है। इसी प्रकार से उसके परिचय का भी ध्यान रखा गया है अर्थात् क्रम भंग नहीं किया गया है।

अनेकार्थ-(शाश्वत ६०० ई०)

कोष का परिचय—प्रस्तुत कोष में कुल ८०७ श्लोक हैं, जिनमें लगभग २००० शब्दों का संकलन किया गया है। सर्वप्रथम कोषकार 'श्री गणेशाय नमः'। 'ॐ नमः सरस्वत्यै' लिखकर दोनों में विद्या के अधिष्ठाता, गणानाम ईशः, देवताओं के स्वामी गणेश हैं जब कोई भी शुभ कार्य किया जाता है सर्वप्रथम गणेश की ही बन्दना की जाती है। परम्परानुसार कोषकार ने किया। इसके पश्चात अपने कार्य से सम्बन्धित देवों को नमस्कार किया जाता है। विद्या की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती का भी उल्लेख कोषकार ने किया है। इसके पश्चात् कोषकार आदि देव का नमस्कार कर लिखता है विष्णु भगवान आप लोगों की रक्षा करें।

'पाकोक्षीर्णसुवर्णवर्ग रुचिरच्छायं वसानोडम्बरं
भास्वत्कौस्तुभकान्ति कर्बुर परिभ्राजिष्णु वक्षस्थलः
शंखं चक्रमसिं गदाम् विरतं विभ्रच्चतुर्भिः करै
रारूढ़ो गरुडं नवीन जलदश्यामो हरिः पातु वः ॥

इस प्रकार उपर्युक्त श्लोक में कोषकार भगवान विष्णु के स्वरूप का उल्लेख करके रक्षा के लिए निवेदन करता है फिर इसके पश्चात लिखता है कि

पूर्ववर्ती आचार्यों के प्रसाद स्वरूप शब्द विस्तार को जानकर मैं शाश्वत 'अनेकार्थ समुच्चय' नामक कोष की रचना करता हूँ ।[१]

स्पष्ट अर्थ और पदावली वाले इस कोष की शिशुओं के बोध के लिए न कि विद्वानों के लिए बनाया है, अतः मनस्वी जन क्षमा करें[२] इस प्रकार लिखकर कोषकार ने अपनी विनयशीलता प्रकट की है । आगे कोषकार लिखता है कि यह कोष छात्रों के ज्ञान के लिए है, विद्वानों के सन्तोष के लिए है[३] किन्तु अधिक परे ज्ञान से गर्वित व्यक्तियों के लिए मैंने यह परिश्रम नहीं किया है । यह कोष प्रयुक्त और अप्रयुक्त दोनों प्रकार के शब्दों से बना है । अप्रसिद्ध शब्द को जानने के लिए तथा प्रसिद्ध शब्द को ग्रन्थ निर्माण के लिए ।[४] अतः इसमें उल्लिखि शब्द, अर्थ और लिंग के प्रति संदेह न करें' शब्द कोष की सहायता से विद्वान् लोग इसका निरीक्षण करेंगे ।[५]

इसके पश्चात कोषकार शब्दार्थों का परिगणन कराने लगे । इस कोष का नाम अनेकार्थ समुच्चय है । यह संस्कृत साहित्य का पहला कोष है जिसमें अनेकार्थक शब्दों का संकलन है । बाद में श्री हेमचन्द्र नेगी अनेकार्थ संग्रह नामक अनेकार्थक, कोष लिखा, जो इसके पश्चात् है ।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के अनेक अर्थ दिए गए हैं । एक ही शब्द के २ या ३ अर्थ और इससे भी अधिक अर्थ इस कोष में उपलब्ध होते हैं । जैसे शिव शब्द के ३ अर्थ हैं कल्याण शंकर और कील ।[६] अन्य कोष जो एकार्थक और समानार्थक होते हैं उसमें इस प्रकार के अर्थ नहीं दिए जाते बल्कि उसमें एक ही नाम के पर्यायों का उल्लेख किया जाता है, अन्य कोषों में शिव के कई नाम जैसे रुद्र, शंकर, महादेव, भूतनाथ इत्यादि प्राप्त होते हैं ।

---

१. पूर्वाचार्य प्रसादेन विदित्वा शब्द विस्तरम्
क्रियते शाश्वतेनायमनेकार्थ समुच्चयः ।।२।।
२. स्फुटार्थ पदविन्यासः शिशूनां प्रतिपत्तये
कृतो यं न प्रबुद्धानामतः क्षाम्यन्तु सूरमः ।।३।।
३. एष ज्ञानार्थमज्ञानां सन्तोषाय विजानताम्
श्रमो मम न तु ज्ञान लवगर्वित चेतसाम् ।।४।।
४. प्रसिद्धैर प्रसिद्धैश्च शब्दरेष विनिर्मितः
प्रसिद्धं ग्रन्थमप्रसिद्धैश्चवेदितुम् ।।५।।
५. अतः शब्दार्थ लिंगेषु कर्त्तव्योऽत्र न संशयः
शब्दकोषो मियोगेने विद्वज्जन निरूपितै ।।६।।
६. अनेकार्थ समुच्चय ।३।

इसी प्रकार इस कोष में बल, मधु, ध्रुव, शिखा, धन, राम पद्म, वसु, गोत्र इत्यादि २००० शब्दों के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है। इसमें अनेक शब्दों के अनेक अर्थों के साथ पर्यायों का भी उल्लेख है तात्पर्य यह कि एक ही शब्द के अनेक अर्थ दिए गए हैं और उस शब्द के पर्याय भी दिए गए हैं, जैसे बैदेही का पर्याय सीता, जानकी इत्यादि है और इसका एक अर्थ पिप्पली भी है। कहीं शब्दों के अनेक अर्थों को प्रकट किया गया है यथा राजीव के अनेक अर्थ हरिण, मछली और कमल है।[1] माधव के अर्थों में वसन्त, विष्णु वैशाख इत्यादि।[2]

इस प्रकार कोषकार ने अपनी प्रतिज्ञा[3] के अनुसार प्रस्तुत कोष में अनेकार्थक शब्दों का संकलन कर कोष साहित्य में एक विशिष्ट परम्परा का सूत्रपात किया, जो भविष्य में परवर्ती कोषकारों के लिए अनुकरणीय बना।

अनेकार्थ ध्वनिमंजरी (महाक्षपणक)

श्री महाक्षपणक ने अनेकार्थ ध्वनि मंजरी नामक कोष में अनेक अर्थों वाले शब्दों का उल्लेख किया है। यह कोष संस्कृत साहित्य में एक लघुकाय कोष है। इसमें कुल २२० श्लोक हैं। कोषकार महाक्षपणक कश्मीरी ब्राह्मण थे। जिसका उल्लेख वह स्वयं अपने कोष के अन्त में करते है 'इति श्री कश्मीराम्नाये महाक्षपणक विरचिते अनेकार्थ ध्वनि मंजरी पादाधिकार समाप्त।

कोष का प्रथम पद्य इस प्रकार है

'प्रबुद्धवर्ण मनेकार्थं शब्दमौक्तिकमुत्तमम्
कंठे कुर्वंति विद्वांसः श्रद्धधानाः दिवानिशम्।

इसके पश्चात् कोषकार अपने कोष में शब्द सागर स्वरूप वागात्मा को नमस्कार करते हैं और कहते हैं शब्द अनन्त सागर है उसकी व्याख्या कहाँ संभव है। इसलिए अपने अनुबोध के लिए मैं इस कोष की रचना करता हूँ और उस वागात्मा (शब्द ब्रह्म) को नमस्कार करता हूँ।

शब्दाम्भोधियतो न तो कुतोव्याख्या प्रवर्तते।
स्वानुबोधैंक मानाय तस्मै वागात्मने नमः ॥२॥

तृतीय श्लोक में कोषकार सरस्वती की बन्दना करते हैं और कहते हैं कि सरस्वती की अनुकम्पा से कवि जिस पद की रचना करते हैं वे चाहे प्रसिद्ध हों या व अप्रसिद्ध हों प्रमाण है और वे ही शुद्ध हैं।

---

१. राजीव हिरणों मत्स्यो राजीवं सरसीरुहम्। ४५६।
२. बसन्ते माधवो विष्णुः वैशाखे मासिमाधवः। ५५७।
३. अनेकार्थ समुच्चय।२।

'सरस्वत्या प्रसादेन कविर्बध्नाति यत्पदम्
प्रसिद्धमप्रसिद्धं वा तत्प्रमाणं च साधु च ।।३।।

इस भूमिका के अनन्तर कोषकार अपने मुख्य विषय की ओर आता है और शब्दार्थों को लिखना प्रारम्भ करता है—सर्वप्रथम शिव के अर्थों का उल्लेख किया गया है। अनेकार्थ समुच्चय में शाश्वत ने भी इसी अर्थ को लिखा है। इसके अनन्तर गौरी के नामों का उल्लेख किया है फिर हरि का नाम लिया है। इस कोष में मुख्यत: ३ विभाग हैं (१) प्रथम श्लोक से १०४ श्लोक तक एक विभाग और (२) १०५ से १८७ श्लोक तक दूसरा विभाग, (३) तीसरे विभाग में कुल ३४ श्लोकों की संख्या है।

अभिधान रत्नमाला (हलायुध भट्ट)

प्रस्तुत कोष 'अभिधान रत्नमाला' के लेखक हलायुध भट्ट हैं। कोषकार ने इस कोष का नाम अभिधान रत्नमाला दिया था जैसा कि इस कोष के प्रत्येक काण्ड की समाप्ति में लिखा है कि 'इति श्री भट्ट हलायुधकृतायाम् अभिधान रत्नमालायां स्वर्गकाण्ड प्रथमं समाप्तं' लेकिन यह कोष 'हलायुध कोष' नाम से ही अधिक प्रख्यात हुआ।

कोषकार ने सर्वप्रथम सरस्वती की वन्दना की है 'सभी प्राणियों में जो चैतन्य स्वरूप शब्द ब्रह्म है जिसका परिणाम यह तीनों लोक हैं, उस वाणी को नमस्कार है।[1] इसके पश्चात कोषकार अपने से पूर्व कोषकारों के नामों का उल्लेख किया है। अमरदत्त, वररुचि। भागुरि, वोपालित आदि के कोषों से अभिधान रत्नमाला नामक कोष की मैं रचना करता हूँ यह कोष रत्नमाला के समान ही कवियों के कण्ठ को भूषित करेगा।[2] कोषकार के अनुसार प्रस्तुत कोष में निम्न पाँच काण्ड हैं।

(१) स्वर्गकाण्ड १५५ श्लोक
(२) भूमिकाण्ड ४६७ श्लोक
(३) पाताल काण्ड ६३ श्लोक
(४) सामान्य काण्ड १०१ श्लोक
(५) अनेकार्थ काण्ड १०१ श्लोक

---

१. शब्दब्रह्म यदेकं यच्चैतन्यं च सर्वभूतानाम्
यत्परिणामस्त्रि भुवनमखिल इदं जयति सा वाणी ।।१।।
२. इयममरदत्त वररुचि भागुरिवोपालितादि शास्त्रेभ्य:
अभिधान रत्नमाला कविकण्ठ विभूषार्थ मुद्धृते ।।२।।

प्रथम स्वर्गकाण्ड में स्वर्गस्थ देव, ब्रह्मा, सरस्वती, शंकर, पार्वती, सप्त मातृका, चामुण्डा, विष्णु, चक्र शंख, मणि, लक्ष्मी, इत्यादि समस्त देव और उनके परिवारों का संग्रह है। इसी प्रकार भूमिकाण्ड भूमि, मृत्तिका, देश, क्षेत्र, धातृ, पुष्प, फल, वनस्पति, वृक्ष, लता, पशु, पक्षी, पुर, गृहं, वज्म, आभूषण इत्यादि के नामों का उल्लेख है। सामान्य काण्ड में सामान्य शब्दों का ही जैसे सूक्ष्म, शंका, समान, परिभव, एकान्त, समग्र अवतीर्ण आदि शब्दों का संग्रह है। पंचम काण्ड में एक ही शब्द के अलग अलग अर्थ बताए गए हैं जैसे श्वेत के रजत वर्त्म के नयन छेद इत्यादि अनेकार्थक शब्दों को प्रयुक्त किया गया है।

वैजयन्ती—अचार्य यादव प्रकाश

वैजयन्ती कोष, कोषकार आचार्य यादव प्रकाश का यह संस्कृत साहित्य का सबसे महान और महत्वपूर्ण कोष है। इस कोष में ४१०० श्लोकों में शब्दों का संग्रह किया है। सर्वप्रथम दस श्लोकों में कोषकार ने कोष की परिभाषा दिया है प्रथम श्लोक में पहले पूर्व गुरु को नमस्कार करते हैं जो ओंकार के तत्व के लिए वाच्य वाचक शक्ति स्वरूप और जो ब्रह्मज्ञान के कारण, ऐसे के गुरू को नमस्कार है।[1] और आगे कोषकार लिखते हैं, आठ प्रकार से लिंग युक्त और निलिंग शब्दों को वैजयन्ती नामक कोष में प्रकाशित कर रहा हूँ।[2] स्त्रीलिंग, पुलिंग, नपुंसक लिंग, संकीर्ण, नृस्त्री, नृपुलिंग नृनपुंसक लिंग इत्यादि।[3] इसके पश्चात् समास का भेद तथा नामों के पर्यायों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत कोष में दो भाग हैं–(१) पर्याय भाग (२) नानार्थ भाग जिनके काण्ड और श्लोक संख्या निम्न हैं।

१. पर्याय भाग

१--स्वर्गकाण्ड

(१) आदिदेव अध्याय श्लोक ६४
(२) लोकपाल अध्याय श्लोक ६०
(३) यक्षाध अध्याय श्लोक १४

---

१. ओंकारार्थाय तत्वाय वाच्य वाचक शक्तये।
ब्रह्मसंज्ञाय पूर्वेणां गुरुणां गुरुवे नमः ॥१॥

२. प्रकाश्याष्टविर्धलिग निर्लिग वचनानिच
वैजयंतीति विख्यातं क्रियते नामशासनम् ॥२॥

३. स्त्रीपुन्नपुंसकं लिंग संकीर्ण तच्च पंचधा
नृस्त्री नृषण्डण्षण्ड स्त्री त्रिल्लिग वाच्यलिंगकम् ॥३॥

२—अन्तरिक्ष काण्ड

(१) ज्योतिरध्याय श्लोक ६४
(२) मेघाध्याय श्लोक ६
(३) स्वर्गाध्याय श्लोक २५
(४) शब्दाध्याय श्लोक ४२

३—भूमिकाण्ड

(१) देशाध्याय श्लोक ६३
(२) शैलाध्याय श्लोक ४४
(३) बकाध्याय श्लोक २३५
(४) पशुसंग्रह अध्याय ७४
(५) मनुष्य अध्याय १२१
(६) ब्राह्मण अध्याय २४
(७) क्षत्रिय अध्याय श्लोक २२०
(८) वैश्य अध्याय श्लोक १४६
(९) शूद्र अध्याय श्लोक १४१

४—पाताल काण्ड

(१) सरीसृव अध्याय ६०
(२) जल अध्याय ४६
(३) पुर अध्याय १७०
(४) भूत अध्याय १४६

५—सामान्य काण्ड

(१) गण अध्याय ६४
(२) धर्म कर्म अध्याय ४२
(३) गुणाध्याय ५६
(४) अर्थवाल्लिंगाध्याय १४४

इस प्रकार कोष के पर्याय भाग में कुल पाँच काण्ड हैं जिनमें २४ अध्याय और श्लोक की संख्या ३२५४ है। प्रथम अध्याय में स्वर्ग तथा स्वर्गस्थेदवों का का उल्लेख है। लोकपालाध्याय में इन्द्र के सहित लोकपालों के नामों का पर्याय है। यक्ष अध्याय में यक्ष, किन्नर, रुद्र, वसु, आदित्य, विश्वदेवा, साध्य मरुद्गण, असुर, दानव, दैत्य, दैतेय आदि का उल्लेख किया गया है।

अन्तरिक्ष काण्ड के ज्योतिरध्याय में अन्तरिक्ष, दिशा, लोकपाल, द्वाद-

शादित्य, दिग्गज, चन्द्रमा उसकी कला और अन्य ग्रह नक्षत्रों के नामों का संग्रह किया गया है मेघाध्याय में मेघ, इन्द्रधनुष, विद्युत मेघध्वनि, आदि का तथा खगाध्याय में पक्षी, हंस, कादम्ब, बक, कुक्कुट सारस, चकोर आदि शब्दों का संग्रह किया गया है । शब्दाध्याय में शब्दों के गंभीर, मन्द, उच्च, संभाषण, बादन, बाणी आदि नामों का संग्रह किया गया है ।

भूमि अध्याय में द्वीप, देश, नगर, जनपदों का उल्लेख किया गया है । शैल अध्याय में पर्वतों का वन अध्याय में अरण्य पशु पक्षी (वन्य) वृक्ष आदि का उल्लेख किया गया है । पशु संग्रह अध्याय में पशुओं के भेदों तथा उनके नामों का उल्लेख किया गया है और मनुष्याध्याय में चारों वर्णों चारो आश्रमों मनुष्यों के विविध भेद स्वभाव आदि नामों के पर्यायों का संग्रह किया गया है । इसके पश्चात ब्राह्मण अध्याय में विप्रों के भेद संस्कारों के विविध नाम, ब्राह्मणों के आचरण, विद्या अध्ययन, अध्यापन के प्रकार आदि बातों से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह किया गया है । क्षत्रिय अध्याय में राजा तथा उसके अंग, राजनीति, राज्य आय के साधन, राजाओं के कर्म, सेना, सिंहासन, रानी, राजकुमारी, भतृका, राजकुमार, चेटी, विदूषक, प्रतीहारी आदि से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह है । वैश्य अध्याय में वैश्य की जाति, वणिक व्यापार तथा अनेक वस्तु के नामों का संग्रह किया गया है। शूद्र अध्याय में शूद्र के विभेद उनके कर्म वृत्ति आदि से सम्बन्धित शब्दों के पर्यायों का संग्रह है ।

पातालकाण्ड के सरीसृप अध्याय में पाताल के भेद उनमें रहने वाले जीव जन्तुओं के नाम आदि का संग्रह है । जल अध्याय में जल के पर्याय जल से उत्पन्न कमल के विभेद, नदी, सागर, आदि नामों का संग्रह पुर अध्याय में नगर, पुर, जनपद, साकेत, मथुरा, द्वारिका, वाराणसी, मिथिल आदि देशों के नामों का संग्रह है । भूत अध्याय में अन्य जीवधारियों के नामों का उल्लेख किया गया है ।

सामान्य काण्ड के गण अध्याय में गणों के नाम पशु, वृक्ष, मनुष्य इत्यादि के गणों के नामों का उल्लेख किया गया धर्म कर्म अध्याय में रूप, तत्व गुणोकर्ष, कला १६ भाग, कर्म क्रिया अनुष्ठान विधि निषेध, बंधन, संवाहन, उद्वेग आदि नामों का संग्रह किया गया है । इसी प्रकार गुणाध्याय में गुण, सत्य, रूप, रंग, स्वभाव षड्रस, मधुर, तिक्त, कषाय, अम्ल, कटु आदि के पर्यायों का तथा अर्थवल्लिंगाध्याय में गुण, क्रिया, द्रव्य, क्षपण, अधीर, गर्वित, क्रूर, नृशंस नास्तिक, पवित्र, इत्यादि शब्दों के पर्यायों का संग्रह है ।

कोष के प्रथम भाग में शब्दों के पर्यायों का उल्लेख किया गया है, इसी-

लिए इसे पर्याय भाग कहा गया है। इस कोष का दूसरा भाग नानार्थ भाग है, इस भाग में भी कई काण्ड और अध्याय हैं। जिसमें शब्दों के नाना अर्थों को बताया गया है, इसीलिए इसे नानार्थ या अनेकार्थ कहा जाता है। नानार्थ भाग का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

१. नानार्थ भाग

१—द्वयक्षर काण्ड

(१) पुलिंग अध्याय श्लोक संख्या ६९
(२) स्त्रीलिंग अध्याय श्लोक संख्या ४६
(३) नपुंसक अध्याय श्लोक संख्या ३७
(४) अर्थवदूलिंग अध्याय श्लोक संख्या २०
(५) नाना लिंग अध्याय श्लोक संख्या १०१

२—त्र्यक्षर काण्ड

(१) पुलिंग अध्याय श्लोक संख्या ८४
(२) स्त्रीलिंग अध्याय श्लोक संख्या २९
(३) नपुंसक लिंग अध्याय श्लोक संख्या ३९
(४) अर्थवद्लिंग अध्याय श्लोक संख्या २९
(५) नाना लिंग अध्याय श्लोक संख्या ९३

३—शेषकाण्ड

(१) पुलिंग अध्याय श्लोक संख्या ६०
(२) स्त्रीलिंग अध्याय श्लोक संख्या १९
(३) नपुंसक लिंग अध्याय श्लोक १८
(४) अभिधेयवद् लिंगाध्याय श्लोक संख्या १६
(५) नानालिंग अध्याय श्लोक संख्या ३९
(६) पर्याय संयोग न्याय प्रदर्शन श्लोक संख्या २४
(७) अनेकार्थ व्ययाध्याय श्लोक संख्या ३२
(८) अव्यय पर्याय अध्याय श्लोक संख्या २१
(९) लिंग संग्रह अध्याय श्लोक संख्या

इस भाग के द्वयक्षर काण्ड में दो अक्षरों के शब्दों तथा त्र्यक्षर काण्ड में तीन अक्षरों के शब्दों और उनके अर्थों का संयोजन किया गया है। अध्याय के अनुसार दोनों काण्डों में शब्द ग्रहण किये गए हैं पुलिंग अध्याय में पुलिंग शब्द, स्त्री लिंग अध्याय में स्त्रीलिंग के शब्द और उनके अर्थ इसी प्रकार अन्य

अध्यायों के अनुसार शब्दार्थ का ग्रहण किया गया है। शेष काण्ड समस्त के अध्यायों में अकारादि क्रम से चार अक्षरों के शब्दार्थ का ग्रहण किया गया है। सभी लिंगों में अध्याय के अनुसार अलग अलग चार अक्षरों के शब्दार्थ की चर्चा की गई है।

इस प्रकार इस भाग में शब्दों के विभिन्न अर्थों का उल्लेख है। इसीलिए इसे नानार्थ भाग कहा है; तथा स्त्रीलिंग, पुलिंग, नपुंसक लिंग इत्यादि अध्याय का विभाग करके लिंग के ही आधार पर शब्दों का उसके सम्बन्धित अध्याय में अर्थ सहित विश्लेषण किया गया है।

त्रिकाण्डशेष-श्री पुरुषोत्तमदेव

प्रस्तुत को त्रिकांड शेष अमरकोष के आधार पर लिखा गया है, जिसका उल्लेख स्वयं लेखक ने किया है।[1] अमर ने जिन अनेक अलौकिक शब्दों का परित्याग कर दिया था प्रचलन के कारण पुरुषोत्तम ने उनका भी संग्रह इस कोष में किया है।[2] पुरुषोत्तम देव के द्वारा लिखित तीन कोषों का पता चला (१) त्रिकाण्ड शेष (२) हारावली (३) एकाक्षर कोष। इनका परिचय क्रमशः दिया जा रहा है—लेखक ने त्रिकाण्ड शेष में सर्व प्रथम मंगलाचरण में वाणी की वन्दना की है।

'जयंति संतः कुशलं प्रजानां नमोमुणीन्द्राय सुरास्मृताः स्थ
स्तुता सिवाग्देविदयस्वमार्तविधेहि विघ्नाधिप मंगलानि'

इसके पश्चात कोषकार ने मुख्य विषय लिखना प्रारम्भ किया है। प्रस्तुत कोष में निम्न काण्ड वर्ग एवं श्लोक हैं।

प्रथम काण्ड

(१) स्वर्गवर्ग श्लोक संख्या ७६
(२) व्योमवर्ग श्लोक संख्या ८
(३) दिग्वर्ग श्लोक संख्या १२
(४) कालवर्ग श्लोक संख्या १३
(५) धीवर्ग श्लोक संख्या ३
(६) शब्दादिवर्ग श्लोक संख्या ७

---

१. **वर्गक्रमस्तथानाम लिंगयोस्तूपदेशता।**
परिभाषादिकं सर्वमत्राप्यमरकोषवत् ॥३॥

२. **अलौकिकत्वादमरः स्वकोषे न यानि नामानि समुल्लिलेख।**
विलोक्य तैरप्यधुना प्रचारम् अयं प्रयन्तः पुरुषोत्तमस्य ॥२॥

(७) नाट्यवर्ग श्लोक संख्या ११
(८) पाताल भोगिवर्ग श्लोक संख्या ८
(९) नरकवर्ग श्लोक संख्या १
(१०) वारिवर्ग श्लोक संख्या ३०

द्वितीय काण्ड

(१) भूमिवर्ग श्लोक संख्या २४
(२) पुरवर्ग श्लोक संख्या ७
(३) शैल वर्ग श्लोक संख्या ७
(४) वनौषधि वर्ग श्लोक संख्या ४३
(५) सिंहादिवर्ग श्लोक संख्या ४३
(६) मनुष्यवर्ग श्लोक संख्या ४४
(७) ब्रह्मवर्ग श्लोक संख्या ३१
(८) क्षत्रियवर्ग श्लोक संख्या ६२
(९) वैश्यवर्ग श्लोक संख्या ३६
(१०) शूद्रवर्ग श्लोक संख्या १९

तृतीय काण्ड

(१) विशेष्यनिघ्न वर्ग श्लोक संख्या २८
(२) संकीर्ण वर्ग श्लोक संख्या ३०
(३) नानार्थ वर्ग श्लोक संख्या ४६७
(४) अव्यय वर्ग श्लोक संख्या ६
(५) लिंगादि संग्रह वर्ग श्लोक संख्या २४
(६) काण्ड समाप्ति श्लोक संख्या १

कुल काण्ड ३ वर्ग २७ और सम्पूर्ण श्लोक संख्या १०३८ है। सर्वप्रथम कोषकार ने स्वर्ग वर्ग में स्वाहा मुक आदि के ५ नाम ३ आदित्य इसके पश्चात बुद्ध, लोक नाथ, बुद्ध भेद तारा आदि के २१ मणिभद्र के चार, मैत्रेय, विष्णु तथा उनके परिवार के नामों का संग्रह किया गया है। ततः शिव उनका परिवार और उनसे सम्बन्धित नामों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार आगे इन्द्र के परिवार और उनसे सम्बन्धित नामों का संग्रह किया गया है।[1] व्योम वर्ग में दिवप्राल, षड् आकाश, विद्युत, तिथि चन्द्रमा की कला इत्यादि का

---

१. त्रिकाण्ड कोष स्वर्गवर्ग

उल्लेख किया गया है।[1] दिग्वर्ग में आस्त्यादि नव, नव बृहस्पति, शुक्रादि सात, मंगल चार बुध दस, शनैश्चरादि पांच, राहु आदि तीन[2] इत्यादि नामों का संग्रह किया गया है। काल वर्ग में वास्त्रादि के चार दिन के उषा, प्रभात यों, गो सर्ग आदि के ३ रात्रि आदि, निःसंपात, अर्धरात्रि, उच्चंद्र, अपररात्रि, एक पौर्णमासी दो चतुर्दशी।[3] इत्यादि शब्दों का नाम्नः उल्लेख है।

घी वर्ग में बुद्धादि के चार, विचार आदि के पांच, सिद्धांत आदि के चार, पूर्व पक्षादि के दो, इत्यादि बुद्धि विषयक बातों की चर्चा है। शब्दादि के आठ ध्वनि के प्रकारों का उल्लेख किया गया है। नाट्यवर्ग में मुख से बजाये जाने वाले वाद्य वंशी इत्यादि वाद्यों के भेद नट, नाटक के अंग पात्र इत्यादि का संग्रह किया गया है। पाताल भोग वर्ग में पाताल, तमस आदि आठ अंधकार, नाग के प्रकारों का उल्लेख है। नरक वर्ग में नरक के विभिन्न भेदों के सहित शब्दों का संग्रह है।

द्वितीय काण्ड में पृथ्वी के भेद, हिमवत खण्ड के भेद भुवन के भेद, सप्तदीप के भेद सप्तसमुद्र, ब्रह्मावर्त, मध्यप्रदेश, तीन गौण देश तीन चेदिदेश, मगध, अयोध्या, मथुरा, मिथिला, काशी, उज्जयिनी, कर्णपुरी, पाटलिपुत्र आदि का नाम्नः उल्लेख है। इस प्रकार ये सब संग्रह भूमिवर्ग के अन्तर्गत हुआ है। पुर-बर्ग के अन्तर्गत राजभवन, पक्षिशाला, कारागृह और साधारण गृह तथा उसमें गवाक्ष कितने, कितने द्वार इत्यादि का वर्णन है। शैलवर्ग में सातपर्वतों का उल्लेख है। वनौषधिवर्ग में जंगली दवाइयों में तीन गुच्छा, तीन मंजरी, पांच पीपल, सप्तवर्ण चार जंबीर इत्यादि लताओं का वर्णन है। सिंह वर्ग में जंगली जानवरों का वर्णन है। मनुष्य वर्ग में मनुष्य से सम्बन्धित वस्तु तथा चारों वर्गों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्गों का उल्लेख है।

तृतीय काण्ड में विषम संचारी जीवन, तीन प्रकार के संधि जीवन, वाक्य-भिधान इत्यादि समस्त शब्द और संकीर्ण वगं में प्रज्ञा शंभु, साधु, यंत्र गुह, तीन आलिंगन दो कुसुमाकर, दोस्तन, इत्यादि संकीर्ण बातों का तथा नानार्थ वर्ग में शब्दों के नाना अर्थ दिए गए हैं। अव्यय वर्ग में अव्यय में और अन्त में काण्ड समाप्ति श्लोक के साथ त्रिकाण्ड शेष कोष विषय समाप्त होता है।

---

१. त्रिकाण्ड कोष व्योमवर्ग

२. त्रिकाण्ड कोष दिक्वर्ग

३. त्रिकाण्ड कोष कालवर्ग

हारावली

यह एक लघुकाय कोष है। सर्वप्रथम कोषकार मंचलाचरण में (ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्त्यर्थ) निम्न देवों का स्मरण किया है।

श्री गणेशाय नमः। श्री वज्रयोगिन्यै नमः।

इसके पश्चात शंकर की स्तुति है।

**"भुजगपति विमुक्त स्वच्छनिर्भीकवल्ली
विलसति मनुकुर्बनयस्य गंगा प्रवाहः
शिरसि सरस भास्वन् मालती दाम लक्ष्मी
लपयति हिमगौरः सोस्तुवः साध्यसिद्धेः"** ।।१।।

दूसरे श्लोक में कोषकार कहता है कि कल्पान्त के कवि और देहान्तर को प्राप्त कवियों के प्रसाद स्वरूप प्रतिष्ठा के इच्छुक मैं सरस्वती की इन्दना करता हूं।[1]

आगे श्री पुरुषोतम देव अपना नाम और हारावली कोष की रचना का उल्लेख करते हैं।[2] तदनन्तर कोषकार शंकर की स्तुति करता है।[3] पुनः विष्णु की वन्दना करते हुए कहता है कि जिनका धाम सत्य है, चार हाथ वाले और जिनके वक्षस्थल में कौस्तुभ मणि है ऐसे पांचजन्य अच्युत को नमस्कार है। इस प्रकार कोषकार ने १७ श्लोक तक कोष की भूमिका लिखी। १८वें श्लोक से अपने विषय की चर्चा आरम्भ की है। कोषकार २६ श्लोक तक पूर्ण श्लोक में एक शब्दों के पर्याय को बताया है।[4] इसके आगे एक ही श्लोक में दो शब्दों का उल्लेख किया है।

और आगे कोषकार द्वारा व्याध, वैर्यूर्यमणि, संवत्सर, मांस हाथी के मद का योगविधान, गजपृष्ठमांस, गजकर्ण, गजदन्त, गर्भिणी, परिचर्या, नवोढ़ा स्त्री का वस्त्र, ग्राम प्रधान देवता, ज्येष्ठ मास, नित्यकर्माशक्त, वैरानुवंध, दधिमंथन, दण्ड मंगल, बुध, बृहस्पति, केतु, शुक्र, ध्रुव, राहु, याचक इत्यादि नामों का

---

१. हारावली २

२. हारावली पुरुषोत्तमदेव ४

३. विषयमनयन शंकू चन्द्रमौलिश्रृगाली वृषभगति गणेशौरेरिहाष्ठौ वृषांक;
त्रिपुरदहन शूलिस्थाणुखट्वू हिंडि प्रियतम शितिकंठमार्यकल्पासकंठौ
—हारावली ८

४. इति श्लोकावधिः। हारावली ३६.

उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात वृक्षों में लोध्र मधूक, कदम्ब आदि वृक्षों का उल्लेख है। और आगे कस्तूरी, कर्पूर, अगस, आदि का उल्लेख है। कोष में इसी प्रकार समस्त नामों के पर्यायों का संग्रह है। कोष में कुल २७७ श्लोक हैं। २५५ श्लोक के पश्चात नानार्थ शब्दों का उल्लेख है। एक ही शब्द के अनेक अर्थ हैं। यहाँ पर्यायवाची नहीं दिए गए हैं, इसके पूर्व समानार्थक या समान शब्दों का संग्रह था। नानार्थक में भी कोषकार पहले की ही भाँति, ३ विभाग किया है। कुछ शब्दों का अर्थ पूर्ण श्लोक में दिया है। कुछ शब्दों का अर्थ आधे श्लोक में ही और कुछ के एक ही चरण में अर्थ दिया है। जहाँ पर पूरा श्लोक अर्थ में दिया गया है और उसके बाद आधे श्लोक में ही एक शब्द के अर्थ दिए हैं वहाँ कोषकार स्पष्ट लिखा है'' ''इति श्लोकावधि'' अर्थात् यहाँ तक इस प्रकार सब्दार्थों का संग्रह किया गया। लेखक ने कोष के प्रारम्भ और अन्त में अपना पूर्ण परिचय दिया है, जिससे जन्म समय के बारे में कोई शंका नहीं की जा सकती है।

एकाक्षर कोष

प्रस्तुत कोष में एक ही अक्षर के शब्दों का संकलन किया गया है। यह कोष संस्कृत साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस पद्धति का यह कोष सर्वथा नवीन है। इसके कुल ३८ श्लोकों में एक अक्षर के लगभग १२५ शब्दों के अर्थों की विवेचना की गई है। अकार का अर्थ वासुदेव आकार = पितामह, इकार कामदेव, ईकार लक्ष्मी, उकार शंकर अकार ब्राह्मण ऋकार से वेदमाता, ऋकार से दनुजप्रस, लृकार से देव, लृकार से माता, एकार विष्णु, एकार विष्णु, एकार महेश्वर, ओंकार ब्रह्मा ओंकार अनन्त, अं से परम ब्रह्म, अः से महेश्वर, कः प्रजापति, को से अर्क, वायु, अनल, का आम्रनि, मयूर कः प्रकाश कं शिर जल और सुख, कूः से पृथ्वी, ख शब्द से इन्द्र, ख से आकाश, सामान्य और शून्य के लिए भीख शब्द प्रयुक्त होता है। गो गणेश और गः से गन्धर्व, ग से गीत, गा से गाथा, गौ से गाय, सरस्वती, घा से घन्टा, घो से घन (बादल) ङकार से भैरव, ङकर विषय से अनिच्छा, च से चन्द्रमा, सूर्य, तस्कर, छ से स्वच्छु, छः से तरल, छः से छेदक, जकार गायन में बताया गया है जेता और बहादुर भी ज से मानना चाहिए।

इसी प्रकार कोषकार समस्त अक्षरों के शब्दों के अर्थों को बतलाया है। एक शब्द के अर्थ एक भी है और एक से अधिक भी है। लेकिन शब्द एक ही अक्षर का है अर्थात् एक ही अक्षर का शब्द होगा और उसी शब्द के विभिन्न एक अर्थ दिया गया है।

कोष का मुख्य विषय प्रत्येक अक्षर वर्णमाला के अर्थों का ज्ञान कराना था, क्योंकि जो प्रचलित कोष है उनमें एक अक्षर के शब्दों को प्रायः भुला दिया जाता है। इसी उद्देश्य को लेकर कोषकार श्री पुरुषोत्तम देव ने प्रस्तुत कोष की रचना की है। प्रस्तुत कोष को कुछ लोग पुरुषोत्तम देव का नहीं मानते हैं और कहते हैं किसी दूसरे कोषकार का यह कोष है, क्योंकि अन्य तीन कोष पुरुषोत्तम देव के और इस कोष की विषय और भाषा में पर्याप्त अन्तर है। लेकिन जहाँ तक भाषा का प्रश्न है वह ठीक है और विषय तो पुरुषोत्तम देव के किसी भी कोष में एक नहीं है।

शब्दभेद प्रकाश

(शब्द द्वैधकोष) महेश्वर

प्रस्तुत कोष में कुल ५५ श्लोक हैं। कोष में प्रत्येक शब्द को दो बार प्रयुक्त किया गया है। उसमें बहुत कम अन्तर है। सर्वप्रथम कोषकार ने बताया है कि जिन शब्दों को मैंने अपने कोष में प्रयुक्त किया है,उन्हीं शब्दों को कवियों ने भी अपने ग्रन्थों में प्रयुक्त किया है। मैंने 'शब्दभेद प्रकाश' नामक कोष लिखा है।

प्रबोधमाधातु शाब्दिकानां
कृपामुपेत्याविशतां कवीनाम्
कृतोमया रूपमवाप्य शब्द
भेदप्रकाशो खिलवाङ्भयार्थः ॥१॥

दूसरे श्लोक से कोषकार शब्दभेद कोष बतलाने लगे हैं। कोषकार का कहना है कि शब्द के मात्रा बदल देने से अर्थ में भी परिवर्तन हो जाता है। जैसे अगार से तात्पर्य घर से है और आगार से तात्पर्य उद्भव खजाना है।[1] इसी प्रकार देवकी और दैवकी से है देवकी श्री कृष्ण की माता देवक की कन्या और दैवकी से तात्पर्य देव की गति से है।[2] इस कोष को द्वैधकोष भी कहते हैं जिसका तात्पर्य है कि दो शब्द समान हों और उनका अर्थ भिन्न-भिन्न हों।

विश्व प्रकाश

(श्री महेश्वर सूरि)

प्रस्तुत कोष में क से लेकर ह तक के शब्दों के आधार पर ३३ विभाग हैं और अन्तिम अव्यय विभाग है। कोषकार सर्वप्रथम भगवान विष्णु की

---

१. **अगरुमागम् शब्दभेद प्रकाश २**
२. **देवकी दैवकी। शब्दभेद प्रकाश ६**

वन्दना करता है कि जो महामोह को नष्ट करने के लिए औषधि के समान त्रिधातु के निदान हैं सर्वज्ञ हैं और सम्पूर्ण दुख को नष्ट करने वाले हैं[1] इसके पश्चात विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती की वन्दना की है।

कला विलासन्मकरन्द विन्दु,
मुद्राविनिद्रे हृदयारविन्दे ।
या कल्पयन्ती रमते कवीनाम्
देवी नमस्याम् सरस्वतीताम् ॥[2]

इसके पश्चात लेखक जगद्वन्द्य गुरू की वन्दना करता है[3] तथा अपने पूर्वजों के नामों का उल्लेख करता है। कोषकार कुछ प्राचीन कोषकारों के नामों का उल्लेख करता है। जिनमें भोगीन्द्र, कात्यायन, साहसांक, वाचस्पति, व्याडि शुभांक, वोपालित, भागुरि आदि कोषकार हैं।[4] आगे कोषकार लिखता है कि यह भार जो मैंने कोष लिखने का उठाया था शताधिक पुस्तकों के द्वारा इस भार से मुक्ति पा गया है[5] 'क' शब्द के एक दो तीन चार पांच छः वर्गों के शब्दों को क्रमशः उल्लिखित किया गया है। सर्वप्रथम क अक्षर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के अर्थों का फिर इसके बाद क से प्रारम्भ दो अक्षरों के शब्दों का फिर क से प्रारम्भ तीन अक्षरों के शब्दों का फिर क से ही प्रारम्भ पाँच, छ अक्षरों के शब्दों का क्रमपूर्वक उल्लेख किया है।[6] इसी

---

१. **स्तुवीमहि महामोहक्लेशान्तकमिषग्वरम्**
त्रैधातुकनिदानज्ञं सर्वज्ञं दुःखहानये। विश्व प्रकाश—१

२. **विश्व प्रकाश २**

३. **विश्व प्रकाश ४**

४. **विश्व प्रकाश १६**

५. **विश्व प्रकाश १।२०**

६. **विश्व प्रकाश १।२१**

विश्वप्रकाश।२२

,, **कैककम २४**

,, **कद्विकेम २५ से २८ तक**

,, **कत्रिकमे ४८**

,, **क चतुर्थकम १८१, ८२**

,, **क पंचकम २३१, २३२**

,, **क षटकम २४२**

क्रम से और इसके आगे लेखक लिखता है कि मैं प्रस्तुत कोष के शब्दों के नाना अर्थों को प्रदर्शित कर रहा हूँ। प्रस्तुत कोष एकार्थक न होकर नानार्थक (अनेकार्थक) है। इतनी प्रतिज्ञा के पश्चात लेखक अपने मुख्य विषय की ओर आकर कोष लिखना प्रारम्भ कर देता है। सर्व प्रथम 'क' एकम के शब्द का अर्थ ब्रह्मात्मनि, अर्क, पावक, मयूर इत्यादि बतलाए हैं। इसके पश्चात क द्विकम के शब्दों का उल्लेख किया है जिनमें मुख्य रूप से अक, वक, शुक, द्विक, अर्क, कर्क, तर्क इत्यादि समस्त शब्दों के अर्थों का संग्रह किया है और इसके आगे क तृतीयकम् अर्थात क वाला तीन अक्षर के शब्दों का संग्रह करके उनके अर्थों का उल्लेख किया है। क त्रिकम् का उदाहरण है कनक, चम्पक इत्यादि और आगे क चतुर्थ शब्दों के अर्थों का उल्लेख किया है इसके उदाहरण अलिमकः; कुरबकः, इत्यादि हैं। क पंचकम् के उदाहरण में अनेनर्मक, काचर्वतिकः, गोजागरिक कण्टकारक, इत्यादि और इसी प्रकार 'क' षष्टकम के शब्दों के अर्थों के उदाहरण 'लूतामर्कटकः, सिन्दूरतिलका, वर्णविलोडरः इत्यादि हैं। इसी प्रकार ख अक्षर से भी शब्दों और उनके अर्थों का उल्लेख किया गया है। ग, घ, च, छ अर्थात समस्त अक्षर क से लेकर क्ष तक के शब्दों के अर्थों का संग्रह किया गया है। क वर्ग में ङ० अक्षर से शायद कोई शब्द नहीं होता है। इसीलिए उसका उल्लेख नहीं किया गया। आचार्य महेश्वर ने समस्त शब्दों के एक ही या तीन अर्थों का उल्लेख किया है। यह कोष बहुत बड़ा है। भाषा सरल तथा श्लोक अनुष्टुप का है।

धनंजय कोष

कुछ कोषकार प्रस्तुत कोष को नाममाला भी कहते हैं। लेकिन धनंजय ने नाममाला का कहीं भी उल्लेख नहीं किया। अन्त में कोष समाप्ति के समय कोषकार ने लिखा है कि "इति श्री धनंजय कृतौ निघण्टु समाप्ता"।

प्रस्तुत कोष में कुल २०५ श्लोक हैं। कोषकार सर्वप्रथम मंगलाचरण में सच्चिदानन्द स्वरूप की वन्दना करता है।

तन्नमामि परंज्योतिरवांङ्मनस गोचरम्।
मूलमूलयत्यविद्यां याद्विद्यामुन्मीलयत्यपि ॥

इस श्लोक के पश्चात कोष लिखना प्रारम्भ करता है। सर्वप्रथम १० युग्मों को बताते हैं और इसके पश्चात द्वादश ऋषि को बताते हैं। उसमें यति, मुनि, भिक्षु, स्तमय, संस्मय, व्रती, तपस्वी, संयमी, योगी, वर्णी, साधु इत्यादि।[1] इसके पश्चात चार शिष्यों के वाचक शब्दों को दीक्षित, मौण्ड, शिष्य, अन्त-

---

१. धनंजय कोष ३

वासी, इत्यादि[1] और २७ भूमिवाचक शब्दों को, भूमिः, भूः, पृथ्वी, पृथ्वी, गह्वरी, मेदिनी; मही, धरणी, सुमती, धात्री, क्षमा, विश्वम्भरा, अवनि इत्यादि[2] और इसके पश्चात् द्वादश पर्वत वाची शब्दों का प्रयोग किया गया है वरीमृतः, अचलः, शृंगी, पर्वत, गिरि, नगः, शिला उच्च, अद्रि[3], शिखर इत्यादि मुख्य और इसके पश्चात् १४ राजः के शब्दों का उल्लेख है जिसमें राजाधिपः, पतिः, स्वामी, नाथ परिवृढ प्रभु, ईश्वर, विभु ईशान, भत्ती, इन्द्र, ईश इत्यादि[4] पर्याय हैं और आगे वृक्षों के पर्याय[5] हैं। इस प्रकार इस कोष में समस्त शब्दों के पर्यायों का उल्लेख किया गया है। सम्पूर्ण शब्द एकार्थक प्रयुक्त हुए हैं और कोष में किसी भी प्रकार का विभाग नहीं है छोटा कोष है।

आचार्य हेमचन्द्र

परिचय-

आचार्य हेमचन्द्र का जन्म विक्रम संवत् ११४५ कार्तिकी पूर्णिमा को गुजरात प्रदेश के धन्धुकानामक गांव में हुआ था। यह गांव वर्तमान में भाधर नदी के दाहिने तट पर अहमदाबाद से उत्तर पश्चिम में ६२ मील की दूरी पर स्थित है। इनके पिता शैवधर्मानुयायी मौढ़कुल के वणिक थे। इनका नाम चाचदेव या चाचिग देव था। चाचिगदेव की पत्नी का नाम पाहिनी था। हेमचन्द्र के जन्म के सम्बन्ध में एक छोटी सी कथा प्रचलित है।[6] एक रात्रि को पाहिनी ने स्वप्न देखा। उसने अपने स्वप्न का फल आचार्य देवचन्द्र सूरि से पूछा। उन्होंने उत्तर दिया तुम्हें अलौकिक प्रतिभाशाली पुत्ररत्न की प्राप्ति होगी। यह पुत्र ज्ञानदर्शन और चारित्र से युक्त होगा तथा साहित्य एवं समाज कल्याण में संलग्न रहेगा। तदनुसार समय प्राप्त होने पर पाहिनी ने पुत्ररत्न प्राप्त किया। पिता ने अपने पुत्र का नाम चांगदेव रखा। इसके पश्चात् पिता व्यापार के निमित्त देशान्तर चला जाता है। माता पाधिनी ने ही पुत्र का पालन-पोषण बड़े ही स्नेहासिक्त हृदय से किया। एक बार आचार्य देवचन्द्र ने पाहिनी से कहा बहन तुम इस वालक को मुझे दे दो। यह बालक होनहार है। मैं इसको उत्तम

१. धनंजय कोष ४
२. धनंजय कोष ५, ६
३. धनंजय कोष ८, ६
४. धनंजय कोष १०
५. धनंजय कोष ११
६. अभिधानचिन्तामणि प्रस्तावना पृ० १३

शिक्षा ग्रहण कराऊँगा और यह बालक समाज तथा विश्व का कल्याण करेगा। माता पाहिनी ने अपने इकलौते पुत्र को देने से इंकार कर दिया। बाद में अन्य लोगों के द्वारा समझाए जाने पर कि यह आपका बालक पढ़कर उत्तम विद्या ग्रहण करेगा तथा विश्व का कल्याण करेगा। माता ने भी बालक की प्रगति को ध्यान में रखकर बालक को आचार्य देवचन्द्र को समर्पित कर दिया। आचार्य इस भविष्णु बालक को प्राप्त कर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उस बालक से पूछा वत्स तू हमारा शिष्य बनेगा चांगदेव ने उत्तर दिया जी हाँ अवश्य बनूंगा।[१] आचार्य, चांगदेव के उत्तर से अत्यन्त प्रसन्न हुए और चांगदेव को वहाँ से ले जाकर उदयन जो कि उस समय जैन धर्म का सबसे प्रभावशाली व्यक्ति था उसके पास रख दिया। हेमचन्द्र के दीक्षा के सम्बन्ध में मतभेद है। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न समय का उल्लेख उनके दीक्षित होने का प्राप्त होता है। प्रभावकचरित में पांच वर्ष की अवस्था में दीक्षित होना लिखा है। कुमारपाल प्रबन्ध में विक्रम संवत् ११६४ में दीक्षित होने का उल्लेख है। प्रबन्ध चिन्तामणि पुरातन प्रबन्ध संग्रह, प्रबन्धकोष एवं कुमारपालिप्रतिबोध आदि ग्रन्थों से आठ वर्ष की अवस्था में दीक्षित होना सिद्ध होता है।[२] प्रवज्या ग्रहण करने के बाद चांगदेव का नाम आचार्य ने हेमचन्द्र रखा। हेमचन्द्र की प्रतिभा अत्यन्त प्रखर, सूक्ष्म और प्रसरणशील थी। थोड़े ही समय में इन्होंने तर्क, व्याकरण, काव्य, अलंकार, छन्द, आगम आदि ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया।[३] श्री हेमचन्द्र ने अपने व्यक्तिगत प्रतिभा के कारण वि० सं० ११६६ में २१ वर्ष की अवस्था में ही सूरिपद से विभूषित होकर आचार्य हेमचन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हुए।[४] आचार्य हेमचन्द्र ने अपने व्यक्तिगत प्रतिभा से गुणकेश्वर जयसिंह सिद्धराज को आकृष्ट किया। सिद्धराज स्वयं विद्वान था उसने हेमचन्द्र से एक व्याकरण लिखने के लिए कहा हेमचन्द्र ने 'सिद्धहम' नाम का नया व्याकरण लिखा आचार्य हेमचन्द्र और सिद्धराज समवयस्क थे। सिद्धराज का जन्म हेमचन्द्र से दो वर्ष पूर्व हुआ था। दोनों में घनिष्ट मित्रता थी सिद्धराज राष्ट्रीय नेता, शासक संरक्षक के रूप में सम्माननीय थे और हेमचन्द्र धार्मिक, चारित्रिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से प्राणदायी थे।

---

१. अभिधानचिन्तामणि प्रस्तावना पृ० १४
२. अभिधान चिन्तामणि प्रस्तावना पृ० १५
३. सोमश्चन्द्रस्ततश्चन्द्रोज्वल प्रज्ञाबलादसौ
तर्कलक्षण साहित्यविद्याः पर्यच्छिनद् द्रुतम्। प्रभावक चरितम्
४. अभिधान चिन्तामणि प्रस्तावना पृ० १६

सिद्धराज जयसिंह के कोई पुत्र नहीं था । आचार्य हेमचन्द्र ने राज्य सिंहासन का उत्तराधिकारी कुमारपाल को घोषित किया था । कुमारपाल हेमचन्द्र का शिष्य था जब कुमारपाल राजा बन गया तभी से हेमचन्द्र की सतसंगति के कारण धर्म, साहित्य, विद्या, कला इत्यादि से प्रेम करने लगा तथा विद्वानों को आदर देने लगा । आचार्य हेमचन्द्र ने शिष्य के नाते कुमारपाल के चारित्रिक पक्ष को बहुत परिष्कृत किया था । ऐश्वर्य के विलासमय और उत्तेजक वातावरण में रहते हुए भी उसे रार्जाष और परमार्हत बना दिया था । मांस मदिरा आदि सप्त व्यसनों से मुक्ति दिलायी थी ।[1]

हेमचन्द्र की विद्वता के कारण ही (१) रामचन्द्र सूरि (२) बालचन्द्र सूरि, (३) गुणचन्द्र सूरि, (४) महेन्द्र सूरि, वर्धमान गणी (६) देवचन्द्र, (७) उदयचन्द्र, (८) यशचन्द्र आदि विद्वान उनके शिष्य बन गये थे । हेमचन्द्र ने जीवन को संबर्धित एवं सुसंस्कृत बनाने वाले सभी पहलुओं पर अपनी लेखनी चलाई है । व्याकरण, छन्द, काव्य, अलंकार कोष्र समस्त विषयों पर इनका असाधारण अधिकार था । श्री सोमचन्द्र सूरि ने इनकी सर्वांगीण प्रतिभा की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

क्लृप्तं व्याकरणं भवं विरचितं छन्देनवं याश्रया—
लंकारो प्रथितौ नवौः प्रकटितं श्री योगशास्त्रं नवम् ।
तर्कः संजनितो नवोजिन वरादीनां चरित्रं नवं
बद्धं येन न केन केन विधिना मोहः कृतः दूरतः ॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि हेमचन्द्र ने व्याकरण, छन्द, द्वयाश्रय काव्य अलकार योगशास्त्र, स्तवन काव्य, चरितकाव्य प्रभृति विषयों पर ग्रन्थ लिखे हैं । उनके निम्न ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है ।

व्याकरण शास्त्र में हेमचन्द्र ने हेमव्याकरण लिखा (२) द्व्याश्रय काव्य में चालुक्य वंश के चरित्र के साथ साथ व्याकरण के सूत्रों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं । इसमें (१) कुमारपाल चरित और (२) त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित लिखा है । इसके अतिरिक्त काव्यानुशासन विषयक ग्रन्थ लिखा । छन्दोनुशासन नामक ग्रन्थ में हेमचन्द्र ने संस्कृत एवं अपभ्रंश साहित्य के छन्दों का विवेचन किया है । मूल ग्रन्थ सूत्रों में है तथा इसी पर वृत्ति भी हेमचन्द्र ने लिखा है । न्याय विषयक ग्रन्थों में प्रमाण मीमांसा नामक ग्रन्थ श्री हेमचन्द्र ने लिखा है । इसमें प्रमाण प्रमेय की पूरी जानकारी दी गई है । अनेकान्त बाद, प्रमाण

---

१. अभिधान चिन्तामणि प्रस्तावना पृ० १८

पारमार्थिक, प्रत्यक्ष की तात्विकता, इन्द्रिय ज्ञान का व्यापारक्रम, परोक्ष के प्रकार, अनुमानावयवों की प्रायोगिक व्यवस्था निग्रह स्थान, जय पराजय व्यवस्था, सर्वज्ञत्व का समर्थन आदि विषयों पर विवेचन किया गया है।[1] राजा कुमारपाल के निवेदन पर हेमचन्द्र ने योगशास्त्र की भी रचना की। इसके १२ प्रकाश हैं। इसमें गृहस्थ जीवन के आमसाधना करने के नियमों का विवेचन किया गया है।[2] आचार्य हेमचन्द्र ने द्वात्रिंशिका की रचना की जो अत्यन्त ही प्रसिद्ध है वीतराग और महावीर स्त्रोत्र भी इनके उच्चकोटि के ग्रन्थ माने जाते हैं। भक्ति की दृष्टि से जितना इन स्त्रोत्रों का महत्व है, उतना काव्य की दृष्टि से नहीं है। इन समस्त ग्रन्थों के साथ साथ आचार्य हेमचन्द्र ने चार कोषों की रचना की है (१) अभिधान चिन्तामणि (२) अनेकार्थ संग्रह (३) निघन्टु शेष और (४) प्राकृत्त साहित्य का कोष देशी नाममाला।

अभिधान चिन्तामणि

संस्कृत के पर्यायों की जानकारी के लिए इस कोष का महत्व अमरकोष की अपेक्षा अधिक है। इसमें समानार्थक शब्दों का संग्रह किया गया है। इस कोष में कुल ६ काण्ड है—प्रथम काण्ड का नाम देवाधिदेव काण्ड है जिसमें कुल ८६ पद्य हैं। द्वितीय देवकान्ड २५० पद्य, तृतीय मर्त्य काण्ड ५९८ पद्य, चतुर्थ भूमिकाण्ड ४२३ पद्य। पंचम नारक काण्ड श्लोक संख्या ७ एवं षष्ठ सामान्य काण्ड श्लोक संख्या १७८ है। इस प्रकार इस कोष में कुल १५४२ पद्य हैं। हेमचन्द्र ने सबसे पहले रूढ़ योगिक और मिश्र शब्दों के लिखने की प्रतिज्ञा की हैं—

व्युत्पत्तिरहिताः शब्दा रूढ़ा आखण्डलादयः
योगोऽन्वयः सतुगुण क्रिया सम्बन्ध संभवः
गुणतो नीलकण्ठाद्याः क्रियातः स्त्रष्टुसन्निभाः
स्व स्वामित्वादि सम्बन्धस्त्राहु नामतदृताम् ॥

व्युत्पत्ति से रहित प्रकृति तथा प्रत्यय के विभाग करने से भी अन्वर्थहीन शब्दों को रूढ़ कहते हैं। जैसे आखण्डल आदि। यद्यपि कुछ आचार्य रूढ़ शब्दों की भी व्युत्पत्ति मानते हैं। पर उस व्युत्पत्ति का प्रयोजन केवल वर्णानुपूर्वि का ज्ञान कराना ही है। अन्वर्थ प्रतीति नहीं अतः अभिधान चिन्तामणि में संगृहीत शब्दों में प्रथम प्रकार के शब्दों के परस्पर अर्थानुगम को अन्वय या योग कहते

---

१. अभिधान चिन्तामणि प्रस्तावना पृ० २१
२. अभिधान चिन्तामणि १।२।३

हैं और यह योग गुण क्रिया और अन्य सम्बन्धों से उत्पन्न होता है। गुण के सम्बन्ध के कारण नीलकण्ठ, शितिकण्ठ, कालकण्ठ आदि शब्द ग्रहण किए हैं। क्रिया के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले शब्द स्त्रष्ठा, धाता, प्रभृति हैं। अन्य सम्बन्धों में प्रधान रूप से स्वस्वामित्व, जन्य जनक, धार्य धारक, भोज्य भोजक, पति क्लत्र, सख्य, वाह्यवाहक, ज्ञातेय, आश्रय आश्रयी एवं बाध्य बधक भाव सम्बन्ध ग्रहण किया गया है। स्ववाचक शब्दों में स्वामिवाचक शब्द या प्रत्यय जोड़ देने से स्व स्वामिवाचक शब्द बन जाते हैं। स्वामिवाचक प्रत्ययों में मतुद्, इन, अण, अक् आदि प्रत्यय एवं शब्दों में पाल, भुज, धन और नेतृ शब्द परिगणित है यथा भू+मतुद्=भूमान, घन+इन=घनी, शिव+अण्=शैवः दण्ड+इक=दण्डिका इसी प्रकार भूपाल आदि हैं।

प्रथम काण्ड—देवाधिदेवकाण्ड—इसमें सर्वप्रथम लेखक अपने को व्याकरण शास्त्र का ज्ञाता बतलाता है,[1] तथा दूसरे तीसरे पद्य में कोषगत रूढ़ यौगिक और मित्र शब्दों के पर्यायों को बताने के लिए कहता है। २३ श्लोक तक लेखक शब्दों के व्याकरण रूपों में कहाँ किस प्रकार अर्थ परिवर्तित हो जाता है कहाँ पर रूढ़ शब्द होता है। कहाँ यौगिक होता है और कहाँ कैसे मिश्र हो जाता है इत्यादि समस्त बातों को कोषकार ने बताया है। २४ वें श्लोक से कोषकार शब्दों के पर्यायों का उल्लेख करने लगा है, जैसे जिनेन्द्र के २५ नाम[2] २४ तीर्थंकरो[3] के नाम और फिर इस अध्याय में इन्हीं तीर्थंकरों से ही सम्बन्धित देवों के नामों का उल्लेख किया है।

द्वितीय काण्ड—द्वितीय काण्ड देव काण्ड के नाम से है। इसमें देवताओं का उल्लेख किया गया है सर्वप्रथम देवों के २७ नाम[4] फिर देवों के विमान, किरण के ३९ नाम[5] सूर्य के सारथि का नाम, चन्द्रमा के ३२ नाम २७ नक्षत्रों के नाम १२ राशियों के नाम ९ ग्रहों के नाम, सप्तर्षि के नाम इस प्रकार यह काण्ड देवताओं और उनके परिवारों के नामों से भरा पड़ा है।

तृतीय काण्ड-मर्त्यकाण्ड—इस काण्ड में मनुष्य से सम्बंधित नामों का उल्लेख किया गया है। मनुष्य के कितने पर्याय होते हैं कितनी अवस्थायें होती

---

१. अभिधान चिन्तामणि १।१
२. अभिधान चिन्तामणि १।२४, २५
३. अभिधान चिन्तामणि १।२६, २७, २८
४. अभिधान चिन्तामणि २।१, २
५. अभिधान चिन्तामणि २।१३, १४

हैं। पुरुष के कौन कौन गुण होते हैं, बुद्धिमानों के भेद होते हैं कितने कितने प्रकार के मनुष्य, उनके कितने वर्ग, कितनी कोटियाँ, घर की सामग्री, भोज्य पदार्थ, मृत्यु के पश्चात पितरों को श्राद्ध देना, चोर मायाबी, क्रूर चुगुलखोर, आलसी चतुर, दाता, दानी, इत्यादि ऐसे समस्त नामों का उल्लेख किया गया है जो मनुष्य से सम्बन्धित है। यह काण्ड सबसे बड़ा काण्ड है।

चतुर्थ तिर्यक् काण्ड—इस काण्ड में भौगोलिक वर्णन किया गया है। पृथ्वी, भारतवर्ष देश, प्रदेश, नदी, पर्वत, जल, तृण, औषधि, वनस्पति, कृषि, धातु व्यापार इत्यादि समस्त वस्तुओं का उल्लेख है।

पंचम काण्ड—यह काण्ड सबसे छोटा काण्ड है इसमें नरक के नाम, नरक में बलपूर्वक फेंकने या ढकेलने के नाम, नरक के घोर कष्ट के नाम, आकाश में स्थित नरकों के तीनों वायु के नाम, और इसके अलावा पाताल के नाम, बिल के नाम और गड्ढे के नामों का उल्लेख किया गया है।

अष्ट काण्ड

इस काण्ड में समस्त काण्डों से सम्बन्धित शब्दों के नाम हैं अर्थात इसमें कोई विभाग नहीं है कि केवल अमुक ही शब्दों के नाम रहेंगे।

इस प्रकार यह कोष अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। इसमें केवल शब्दों के पर्यायों मात्र का ही उल्लेख नहीं है, अपितु भाषा की दृष्टि से इसमें बहुत महत्वपूर्ण सामग्री संकलित है। इस कोष में बहुत से ऐसे शब्द आए हैं जो नवीन और प्राचीन शब्दों के समन्वय स्वरूप हैं जैसे भुक्ति (प्रान्त), विषय (जिला), युक्त (जिले का सर्वोच्च अधिकारी), विषय पति (जिलाधीश), शौल्किक (चुंगी विभाग का अधिकारी), गोल्मिक (जंगल विभाग का अध्यक्ष), बलाधिकृत (सेनाध्यक्ष), महाबलाधिकृत (फील्डमार्शल) एवं अक्षपटलाधिपति (रेकार्डकीपर) आदि नए शब्द ग्रहण किए गए हैं।

अनेकार्थ संग्रह

श्री हेमचन्द्र से अनेकार्थ संग्रह कोष में लगभग २००० श्लोक हैं।[१] अनेकार्थं संग्रह में कुल ६ काण्ड हैं। अन्त में कोषकार ने अव्यय वर्ग स्वतन्त्र रूप से लिखा है, एक, द्वि, त्रि, चतुः, पंच, षट, स्वरों के शब्दों को अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया है। प्रत्येक काण्ड की श्लोक संख्या निम्न प्रकार है :—

---

१. अनेकार्थ संग्रह, भूमिका पृ० ५

काण्ड	श्लोक संख्या
प्रथम काण्ड-एक स्वरकाण्ड	१७
द्वितीय काण्ड-द्विस्वर काण्ड	६०८½
तृतीय काण्ड-त्रिस्वर काण्ड	८१४½
चतुर्थकाण्ड-चतुः स्वरकाण्ड	३५६
पंचम काण्ड-पंचस्वर काण्ड	५७
षष्टम काण्ड-षष्ठस्वर काण्ड	७
परिशिष्ट अव्यय काण्ड	६८
कुल श्लोक संख्या	१९३१

विषय

प्रस्तुत कोष में कुल ६ काण्ड हैं, प्रत्येक काण्ड को अलग अलग स्वरों में क्रमशः विभक्त किया गया है। प्रथम काण्ड को एक स्वर काण्ड कहा गया है। इसमें एक स्वर के शब्द को अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है, जैसे को, शब्द के अनेकार्थक शब्द ब्रह्मणि, आत्मनि, रबी, मयूर, अग्नि, यम, अनिल।[1] इसी प्रकार ख स्वसंविद् व्योमनीद्रिंय।[2] इत्यादि। प्रत्येक शब्द को अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है, जिस कारण इस कोष को 'अनेकार्थ संग्रह' कोष कहा गया है। जिसका उल्लेख स्वयं लेखक ने किया है।[3] अकारादि का क्रम पूर्व में तथा अकारादि का क्रम बाद में प्रदर्शित किया गया है।[4]

इसी प्रकार द्वितीय काण्ड में द्विस्वर के शब्दों को अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। उदाहरण के लिए अर्क शब्द के पांच अर्थ बताए गए हैं (१) वृक्ष, (२) स्फटिक, (३) ताम्र, (४) सूर्य[5], (५) इन्द्र। मूक के भी चार अर्थ हैं (१) गूंगा, (२) रंक, (३) कृपण (४) मन्द।[6] सखा के भी सहाय, मित्र, सुख इत्यादि अनेकार्थक नामों का उल्लेख किया गया है।

---

१. को ब्रह्मण्यात्मनि रबौ मयूरेऽग्नौ यमे निले।१।५
२. अनेकार्थ संग्रह १।५
३. पदानां भागतो यो स्मिन्ननेकार्थः प्रकाश्यते।१।४
४. अकारादिक्रमो त्रादौ ककारादिक्रमोन्ततः।१।२
५. अर्कोद्रुमेदं स्फटिके ताम्रं सूर्य विजौजसि।२।१
६. मूकोदेत्या वाग्दोनेषु रंकः कृपण मन्दयोः।२।१४

तृतीय काण्ड में तीन स्वरों वाले शब्दों के अनेक अर्थ दिए गए हैं यथा गण्डकी, १ नदी का नाम २ वेश्याओं का झुण्ड आदि।[१] इसी तरह चतुर्थ काण्ड में चार स्वरों के शब्दों के अनेक अर्थ दिए गए हैं। जैसे सितच्छत्र के मेषज, पुण्डरीक, अग्नि, दिग्गज इत्यादि।[२] पंचम काण्ड में पांच स्वर वाले शब्दों के अर्थों का उल्लेख किया गया है। सहस्त्र पाद शब्द कारण्ड, भास्कर और यज्ञपुरुष इत्यादि अनेक अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। योजनगन्धा के भी अनेक अर्थ कस्तूरी, सीता तथा व्यासमाता दिए गए हैं।[३] इसी प्रकार षष्ठ काण्ड में भी उपर्युक्त प्रक्रिया के आधार पर शब्दों के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है। लेखक ने इस पर विशेष रूप से ध्यान दिया है कि प्रत्येक काण्ड में काण्ड के आधार पर ही स्वरों के अर्थों का उल्लेख किया जाय। या स्वर के शब्दों के अनेकार्थों में दोहदलक्षण का १ गर्भ, २ सन्धि, ३ यौवन तथा यौवन लक्षण का वक्षरुह और लवणिमा अर्थ दिए हैं।[४]

अन्त में लेखक ने परिशिष्ट काण्ड में अव्ययों के अर्थों का उल्लेख किया है—सर्वप्रथम क्रमपूर्वक देवताओं का उल्लेख है। अव्यय में एक स्वर अव्यय, द्विस्वर अव्यय, त्रिस्वर अव्यय, चार स्वर अव्यय तथा पंच स्वर अव्यय के शब्दों के अनेकार्थ प्रस्तुत किए गए हैं।

एक स्वर अव्यय में कु शब्द के अनेकार्थों में १ पापी, २ निन्दा ३ ईषद् अर्थ, ४ निवारण नाम हैं।[५] शंशब्द के १ कल्याण, २ सुख आदि अर्थ हैं।[६] इसी तरह द्विस्वर अव्यय नामों का उल्लेख है। उदाहरणार्थ ऊषा को रात्रि तथा उसका अन्त भाग तथा रात्रि को दोषा और निशामुख बताया गया है।[७] त्रिस्वर में पुटतः, अग्र और आद्य तथा पूर्वद्युः के पुर्वान्ह और प्रभात कहा गया है। चतुःस्वर के केवल दो ही पर्याय हैं १—अन्तरेणा जिसका अर्थ अन्तरविनार्थयोः दिया गया है तथा अहोबत का अनुकम्पा।[८] इसी तरह पंच स्वर में

१. अनेकार्थ संग्रह ३।३५
२. अनेकार्थ संग्रह ४।२१
३. अनेकार्थ संग्रह पृ० १४२
४. अनेकार्थ संग्रह ६।५
५. कु पापीयसि निन्दायामीषदर्थे निवारणे। परिशिष्ट काण्ड। ११
६. अनेकार्थ संग्रह। परिशिष्ट काण्ड।२१
७. ऊषा रात्री तदन्ते च दोषानिशि निशामुखे। परिशिष्ट काण्ड। ५५.
८. अहोबतानुकम्पायाम्। परिशिष्टकाण्ड-६८

केवल एक ही शब्द का उदाहरण है, सम्पूर्ण कोष अनुष्टुप में है भाषा सरल एवं सुबोध है।

निघण्टु शेष

निघण्टु शेष में कुल ६ काण्ड हैं, जिसका क्रमशः नाम और श्लोक संख्या निम्न है।

पहला	वृक्षकाण्ड	१८३
दूसरा	गुल्मकाण्ड	१०८
तीसरा	लताकाण्ड	४४
चौथा	शाक	३३
पांचमा	तृण	१७
छठवां	धान्य	१६

आचार्य हेमचन्द्र ने 'निघण्टु शेष' के प्रथम श्लोक में 'निघण्टु शेष' कोष लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं।

विहितेकार्थ नानार्थदश्य शब्द समुच्चयः
निघण्टु शेषं वक्ष्येऽहं नत्वाऽर्हत्पदपंकजम्

फिर दूसरे श्लोक में छवों काण्डों का नाम बताते हैं।[1] और लिखते हैं कि सप्तम उद्देश्य पूर्वक मैं इस ग्रन्थ की रचना करता हूँ तात्पर्य सप्तमी विभक्ति विशेषों से इस कोष की रचना करता हूँ। प्रथम काण्ड वृक्ष काण्ड है। अतः इस काण्ड में वृक्षों का संकलन किया है, जैसे अशोक, वंजुल हेमपुष्प[2], बकुल, द्राक्षाफल गूड़पुष्प, केसर[3] कोविदार, भद्रदारू, कांचनार, युगच्छद, ताम्रपुष्प[4] चम्पक, कांचन, हेमपुष्प, नागकेसर, हेमकेसर, दर्वीसह, पुष्परोचन, कदम्ब[5] इत्यादि। समस्त प्रकार के वृक्षों का वर्णन करने के कारण इस काण्ड को वृक्ष काण्ड कहा गया है।

दुसरा काण्ड गुल्म काण्ड है, इसमें गुल्मों का वर्णन किया गया है। यथा सिन्दूवार, निर्गुण्डी, नीलसिन्दुर, शीतसह, इन्द्रसुरसः, श्वेत सुरसा, प्रियंग,

---

१. बृक्ष गुल्म लता शाक तृण धान्यक्रमादिह
षड् काण्डाक्ति प्रवक्ष्यन्ते सप्तभ्युपशपूर्देवकम् ।१।२।

२. निघण्टु शेष १।४

३. निघण्टु शेष १।५

४. निघण्टु शेष, १।७,८

५. निघण्टु शेष १।६,१२

प्रिवकः, कंगु, प्रियवल्ली, मधुपष्टी, मधुस्मवा, कलीतकम्, नीरजा, मधुपर्णी, अश्वगन्धा, तुरगी,कचुका, अश्वकन्दः, बहुगन्धा, पुत्रदा, लोकपार्णी, मेघ श्रृंगी, सर्पदंष्टिका, बृश्चिकाली, विषाणिका, कण्टकारिका, विदारी, स्वादुकन्दा, पुष्पकन्दा, श्रृगाली, क्षीरशुक्ला, क्षीरकन्दा, क्षीरवल्ली, पयस्विनी, ऋक्षगन्धा, इक्षुगन्धा, इक्षुवल्ली, पृष्णिपणी, पृथक्पणी, लांगली कोष्ट पुच्छिका, कोष्ट विन्ना, श्रृगलविन्ना, घृतिलाघावनी इत्यादि[१] समस्त गुल्मों का उल्लेख निघण्टु लेख में किया गया है।

तृतीय काण्ड लताकाण्ड है। इसमें अनेक लताओं का वर्णन किया गया है, जिनमें गुंजा, कृष्णाला, काक चिंजिका, काकनिन्दिका, कासादनी, काकनखी, रक्तिका, काकनन्तिकर[२], काकणीलुः, चक्रशल्या दुर्मेषा ताम्रिका, उच्चटा, चूड़ामणि, द्रुमोदधा, शीतपाकी, शिखण्डिनी, पापचलिका, विद्धकर्णिका, बृकतिक्ता, वनतिक्त[३] प्राचीना, स्थापिनी, शतालकी, णीवरी, इन्दीवरी, शतमूली, शतपदी, शतकीर्णा, मधुस्मवा नारायणी, द्वीपिका[४] मत्स्यदित्ता, रोहिणी, कटुरोहिणी, अशोक रोहिणी[५] और आम्रगुप्ता, कण्दुरा, दुरभिग्रहा, अजहा, मर्कटी, कच्छुरा, कपिच्छुरा, ऋषभी[६] इत्यादि प्रकार की लताओं का उल्लेख निघण्टु शेष के तृतीय लताकाण्ड में उल्लिखित है।

चतुर्थकाण्ड में जिन शब्दों का उल्लेख किया गया है उसमें मुख्य रूप से शतपुष्पा, शताह्वा, माधवी, अतिच्छत्रा, छत्रपुष्पी, अवाक्पुष्पा, जीरकः, कुंची, रसोनः, अरिष्ठः, गृजनः, पलाण्डुः, यवनेष्ठः, सुकन्दः, सप्तला, बहुफेना सातला, मरालिका[७] आदि।

पंचम काण्ड में तृणों का वर्णन किया गया है उनमें मुख्य रूप से रौहिषम, श्यानकं, पौरम, पूतीकम् भूरि, कतृणम्, सौगन्धिकार, देवजग्धम्, शकलम पंगदलम्[८] आदि विभिन्न तृणों का संग्रह किया गया है।

---

१. निघण्टु शेष, २।१८४ से २९१ श्लोक तक
२. ,, ३।२९२-२९३
३. ,, ३।२९४
४. ,, ३।२९५-२९७
५. ,, ३।२९८
६. ,, ३।३००-३०१
७. ,, ४।३३६ से ३४० तक
८. ,, ५।३६९

षष्टकाण्ड धान्यकाण्ड में धान्य (फसल) के विभिन्न नामों प्रकारों का उल्लेख किया गया है, जैसे सस्य, सीत्य, ब्रीहिः, स्तम्बकरिः, षष्ठिक, कलमः, महाशालि, सुगन्धकः, हयप्रियः, तीक्ष्णशुकः, तोक्मः, मसूर कलाप, हरिमन्थकः, माष, मदन, नन्दी, बृष्यः, मुग्दः, प्रथन, हरितः, वसु, खण्डीर, प्रवेल, जद, प्रवर, वासन्तः, शिम्बिकः, तुवटकः, निगूढ़कः, कुलीमकः मयुष्ठकः, गोधूम, निष्पावः, इस प्रकार अनेक[1] धान्यों का वर्णन इस काण्ड में प्राप्त होता है।

इस प्रकार सम्पूर्ण कोष में केवल वनस्पतियों में वृक्ष, लता, गुल्म, शाक, तृण, धान्य आदि से सम्बन्धित उनके समस्त नामों का उल्लेख किया गया है।

'देशीनाममाला का परिचय प्राकृत कोष के परिचय के सन्दर्भ में दिया गया है।

नानार्थ मंजरी (राघव)

कोषकार प्रथमतः मंगलाचरण में गणेश की स्तुति करते हुए कहता है कि समस्त विद्या को जानने वाले, सुन्दर मुख वाले श्री विनायक जी, अज्ञान रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए सूर्य के समान विघ्न को नष्ट करने वाले को मैं सैकड़ों बार नमस्कार करता हूँ।[2]आगे कोषकार कहता है कि विश्व प्रकाश इत्यादि कोषों से शब्दों को संग्रह करके बालकों के ज्ञान सिद्ध के लिए मैं राघव कवि नानार्थ मंजरी नामक कोष की रचना करता हूँ।[3] इसके पश्चात् कोषकार विश्वप्रकाश, गोपाल,शेषकार, धनन्जय, शब्दार्णव' वैजयन्ती, सूर्प, रुद्र, यादव, प्रताप, भागुरि, दण्डी, रभस, हलायुध' सुभूति, हरिबिष्णु वररुचि, अमर उत्पल, अजय शाश्वत[4] आदि कोषों और कोषकारों कों स्मरण करने के पश्चात् कोषकार मुख्य विषय का प्रतिपादन करता है।

---

१. निघण्टु शेष ६।३८६ से ४०१ तक

२. समस्तविद्यावेतारं सुमुखं श्री विनायकम्
अज्ञानतिमिरादित्य विघ्नघ्नं नौमि संततम् ।१।

३. विश्वादीनि समाहृत्य बालानां ज्ञान सिद्धयै ।
कविना राघवेणार्ध कृता नानार्थ मंजरी ।२।

४. विश्वप्रकाशो गोपालः शेषकारो धनन्जयः' शब्दार्णव वैजयन्ती, सूर्यरुद्रश्च वादवः प्रतापो भागुरिदण्डी रभसचहलायुधः, सुभूति हरिविष्णु च वररुच्यमरौत्पलाः अजयः शाश्वतश्चेते उच्यन्ते पण्डितै पुरा। ३, ४, ५.

सर्वप्रथम कोषकार ने लगभग २० श्लोकों में स्वर वर्ण के एक अक्षर के शब्दार्थों का उल्लेख किया है, इसके पश्चात् क वर्ग से क्ष वर्ग तक शब्दों क्रमशः उनके अर्थों के सहित प्रस्तुत किया है, प्रत्येक अक्षर के ४ या ५ विभाग किए हैं। पहले विभाग में एक अक्षर का उसी अक्षर से प्रारम्भ शब्द होगा, जैसे 'क' इत्यादि फिर दो अक्षर का शब्द होगा। लेकिन क्रम अन्त में होगा। इसीलिए इस प्रकार क शब्द समाप्त होने पर ही कोषकार लिखता है 'इति द्वयक्षर कान्तः' खान्तः गान्तः' इत्यादि। इस प्रकार जितने अक्षर का शब्द कोषकार बताएगा, उतने ही अक्षर का शब्द होगा और जिस वर्णमाला का क्रम होगा वह वर्णमाला का क्रम अन्तिम अक्षर पर होगा जैसे दो अक्षर क वर्ग में अर्क, कर्क, तुर्क इत्यादि।

नानार्थ संग्रह अजयपाल

कोषकार ने मंगलाचरण और कोष का परिचय संक्षिप्त रूप से चार श्लोकों में देकर कोष लिखना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम भगवान विष्णु की वन्दना करते हुए कोषकार कहता है कि उनकी जय हो और आप लोगों का कल्याण करें। जिन भगवान के चरणों में देवासुर विनम्रपूर्वक अपने मस्तक रूपी लक्ष्मी को अर्पित करते हैं।[1]

इसके पश्चात् कोषकार कहता है कि पूर्व कोषकारों के कोषों को देखकर मैं अकाराद्रिक्रम से 'नानार्थ संग्रह नामक कोष की रचना कर रहा हूँ।'[2] यहाँ शब्दों के अनेक अर्थ दिए गए हैं। प्रथमान्त हैं वर्तमान में सप्तम्यन्त हैं सप्तम्यन्त भेद से[3] तीन ही बहुबचन किया है। यहाँ बिना लिंग विशेष के शब्दों को नहीं प्रयुक्त किया है।[4]

प्रस्तुत कोष में एक शब्द के कई अर्थों को बताया गया है। क्रमशः 'अ, से लेकर 'स' तक अक्षरों से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के अर्थों को बताया है जिस

---

१. जयन्ति शास्तुः पद पंकजाकुराः नखांशवश्चन्द्रभरी चिकोमलाः
विनम्रदेवासुर मौलिषु श्रिय वहन्ति ये प्रस्फुट मालती स्त्रजः ।१।

२. वीक्ष्यपूर्व कविग्रन्थान काराद्यादिभिः पदैः
क्रमाद जयपालेन कृतौ नानार्थ संग्रहः ।।२।।

३. सर्वत्रादावनेकार्थः प्रथमान्तोऽत्रदर्शितः
वर्तमाना सप्तम्यन्ते सप्तभ्यन्तैरभेदिते ।३।

४. त्रिष्वेष बहुवचनं कृतं न चतुरादिषु
बिना लिंग विशेषण नैवात्रपुनरुक्तता ।।४।।

अक्षर से शब्दों को बताया वह अक्षर शब्द के आदि में पड़ेगा और जितने शब्द उसमें बनते होंगे पहले उनको लिखा है फिर क्रमशः आगे वाले अक्षर से प्रारम्भ शब्दार्थ को। उदाहरण के लिए पहले अकार में अमृत शब्द का अर्थ हृदय, पीयूष, मुक्ति तोय, अमृता, गुडूची, पथ्य आदि अर्थ दिया और आगे आकार, इकार, उकार, उक्त और क्र, ए, ऐ ओ औ तथा फिर क्रम से क से स तक के प्रारम्भ होने वाले समस्त शब्दों के अर्थों को बताया है।

धरणिकोष धरणिधर

प्रस्तुत कोष में कोषकार ने पहले मंगलाचरण में परब्रह्म को नमस्कार किया है। बिशुद्ध ज्ञानदेह के लिए प्राणियों के स्वामी, विधिस्वरूप, सम्पूर्ण लोक के हित वाले सर्वज्ञ को नमस्कार है।[1] जो ज्ञान दया के समुद्र और जिसका गुण दूसरों के लिए, वे सर्वाविद् परमेश्वर कल्याण करें।[2] वाक् और अर्थ के प्रतिपादन के लिए, सभी प्राणियों के कारण स्वरूप सर्वशुक्ला सरस्वती तुम्हारे लिए सुप्रीता हों।[3] देव के देव को पहले नमस्कार करके जो सर्वज्ञ और संसार के गुरु हैं, अन्य तन्त्रों को इकट्ठा करके सार संग्रह करता हूँ।[4] और आगे कोषकार कहता है कि जो नानार्थ पहले ही सर्व और कहा गया है वही लिंग भेद के स्पष्ट के लिए कहता हूं[5] और इसी श्लोक के पश्चात् कोषकार शब्दों के अर्थों को बताने लगता है। कोषकार कान्तवर्ग से शब्दों के अर्थों को बताना प्रारम्भ करता है। शब्दों में क्रम अन्तिम अक्षर पर है। इसीलिए कान्त-खान्त गान्त कहा है। प्रत्येक अक्षर के शब्दों में तीन विभाग किया है। पहले विभाग एक अक्षर में 'पाद' किया गया है। इसमें एक श्लोक में चार शब्दों के अर्थ दिए गए हैं दूसरे में एक श्लोक में एक और दूसरी पंक्ति में एक और दूसरी पंक्ति दूसरे शब्द का अर्थ दिया गया है। तृतीय विभाग में एक श्लोक

---

१. विशुद्धिज्ञान देहाय भूतनाथाय वेधसे
हिताय सर्वलोकानां नमस्ते सर्व वेदिने ॥१॥

२. यस्य ज्ञान दयासिन्धौः परार्थै कफलागुणाः ।
स 'चेत्करोतुकल्याण' सर्वविप्तारमेश्वरः ॥२॥

३. सा ते भवतु सुप्रीता वागर्थ प्रतिपत्तए ।
हेतवे सर्वभूतानां सर्वशुक्ला सरस्वती ॥३॥

४. देवदेवं प्रणम्यचादौ सर्वज्ञं जगतो गुरुम् ।
समाहृत्यान्यतन्त्राणि क्रियते सारसंग्रह ॥४॥

५. यौनानार्थः समुद्दिष्ट आदावेव सर्वतः ।
स्पष्टाय लिंगभेदाय क्वचिदावृत्तिरिष्यते ॥८॥

में एक शब्द के अर्थ दिए गए हैं । इसी प्रकार का विभाग सभी शब्दों के साथ किया गया है । 'क' से लेकर क्ष तक के अक्षरों के शब्दों (जो अन्तिम अक्षर पर पड़ता है) के अर्थों को दिया गया है ; शब्द का क्रम अन्तिम अक्षर पर ही है ।

नाममालिका (राजाभोज)

नाममालिका के कर्त्ता राजा भोज सर्वप्रथम सरस्वती, विष्णु, पार्वती शंकर, गणेश और स्वामिकार्तिक को, हृदय से ध्यान करके नाममालिका की रचना की प्रतिज्ञा करते हैं ।[1] इसी श्लोक के पश्चात कोषकार स्वर्ग के नामों को गिनाने लगे प्रस्तुत कोष में कुल ३ प्रकरण हैं ।

(१) स्वर्गादिनामधेय प्रकरण	४२ श्लोक
(२) गगनादि नामधेय प्रकरण	१८ श्लोक
(३) भूम्यादिनाम धेय प्रकरण	२६८ श्लोक

प्रथम काण्ड में स्वर्ग, देव, इन्द्र, इन्द्रपुत्र, बाहन, आकाशगंगा इसके अतिरिक्त अन्य देवताओं में वरुण, कुवेर इत्यादि देवों का उल्लेख किया गया है ।

द्वितीय काण्ड में अन्तरिक्ष, नक्षत्र, उनके परिवार उनके कार्य आदि का इन्द्रधनुष आदि के शब्दों का संग्रह किया गया है । तृतीय काण्ड में पृथ्वी उत्तर दक्षिण इत्यादि देश की सीमा, देश प्रदेश, द्वीप, पर्वत, वृक्ष, औषधि, लता, वनस्पति, मृग, पशु पक्षी, जीवजन्तु, अध्ययन-अध्यापन, यज्ञ होम, अग्निहोत्री, कृषि, मुनि, राजा, राजा के अंग, हांथी, घोड़ा, सेना, कृषि इत्यादि समस्त शब्दों के पर्यायों का क्रमशः उल्लेख किया गया है ।

प्रस्तुत कोष १२ हवीं शदी का है । ये राजाभोज धारानगरी के राजा थे । कुछ लोगों का कहना है कि प्रस्तुत कोष किसी दूसरे कवि का है जो कि राजा भोज के यहां सभापण्डित था । बाद में राजा भोज अपने नाम से इस कोष को प्रकाशित किया है । लेकिन राजा भोज स्वयं विद्वान था उसमें कोष लिखने की क्षमता थी । उसने अन्य ग्रन्थों का भी निर्माण किया है । अतः राजा भोज ने स्वयं प्रस्तुत कोष को लिखा है न कि संकलन किया है ।

---

१. **वागीशं वरलक्ष्मीशं गौरीशं गणनायकम् ।
कुमारं च हृदि ध्यात्वा क्रियते नाममालिका ॥१॥**

पर्यायशब्दरत्न (धनञ्जय भट्ट)

प्रस्तुत कोष के कर्त्ता धनन्जय भट्ट के बारे में कुछ नहीं पता चलता है क्या नाममाला नामक कोष के कर्त्ता धनन्जय, प्रस्तुत कोष के भी लेखक हैं इत्यादि बातों में मतभेद है। प्रस्तुत कोष और नाममाला कोष के भाषा में विशेष अन्तर होने से यह अनुमान लगाया जाता है कि प्रस्तुत कोष के कर्त्ता धनन्जय भट्ट और नाममाला कोष के कर्त्ता धनन्जय अलग अलग लेखक थे। नाममाला प्राचीन कोष है और पर्याय शब्द रत्न उसके बाद का है।

प्रस्तुत कोष में कुल तीन सर्ग हैं

(१) ऊर्ध्व लोकसर्ग श्लोक संख्या १७३
(२) मध्यलोक सर्ग श्लोक संख्या ७२२
(३) पाताल लोकसर्ग श्लोक संख्या ८६

इस विभाग के लिए कोषकार ने कहा है कि प्रत्येक सर्गों में उपर्युक्त शब्दों के संग्रह के लिए विभाग किया गया है।[1]

ऊर्ध्वलोक सर्ग में सर्वप्रथम कोषकार शंकर की स्तुति करता है।[2] दूसरे और तीसरे सर्ग में कोषकार शब्देन्दु शेखर का उल्लेख करता है, और चौथे श्लोक में कोषकार कहता है कि जिस शब्द को सुनने से ही विद्वान भी विमोहित हो जाते हैं। उस पर्याय शब्द रत्न को मैं लिखता हूँ। ततः कोषकार स्वर्ग, ब्रह्मपुरी, लोकेश, वेद, त्रयीहवि, षड वेदांग, ७ पूर्व शास्त्र, आदि के नामों का उल्लेख किया है। भगवान विष्णु, चक्र, गदा, शंख, कामदेव, इत्यादि के नामों का उल्लेख भी क्रमशः किया गया है।

मध्यलोक पृथ्वी, पुर, रास्ता, राजमार्ग तथा पृथ्वी के समस्त सम्बन्धित मनुष्य, वृक्ष, कृषि, राजा आदि शब्दों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार पाताल लोक में पाताल लोक, वासुकि आदि महानाग आदि के शब्दों का संग्रह किया गया है।

---

१. यच्छब्द श्रवणादेव विद्वानपि विमुह्यति।
तैरेव कुर्वे पर्याय शब्दरत्नं मनोहरम्॥

२. कैलाशे शैलाहिं करुणारसपूर्णा चित्तकमनीयम्।
प्रणमामि मूलकन्दं गौरीयुत वामभागरुणागम्॥

उणादि कोष (महादेव वेदान्तिन)

प्रस्तुत कोष में उणादि शब्दों के अर्थ लिंग भेद सहित दिये गये हैं। महादेव वेदान्तिन ने लिखा है कि प्रस्तुत कोष में निज विनोद हेतु लिखा हूँ। अतः यह कोष किसी घटना से प्रभावित होकर कोषकार ने नहीं लिखा। प्रस्तुत कोष में कुल निम्न विभाग हैं।

(१)	प्रथम पाद श्लोक संख्या	१८७	सूत्र संख्या	१५८
(२)	द्वितीय पाद श्लोक संख्या	१३०	सूत्र संख्या	१२४
(३)	तृतीय पाद श्लोक संख्या	१६७	सूत्र संख्या	१६०
(४)	चतुर्थ पाद श्लोक संख्या	२१८	सूत्र संख्या	२३८
(५)	पंचम पाद श्लोक संख्या	३७	सूत्र संख्या	७०
		७३९		७५०

प्रस्तुत कोष में लेखक यद्यपि उणादि सूत्रों के बताने की प्रतीज्ञा की है लेकिन इस कोष में उणादि समस्त सूत्रों को नहीं बताया गया और न ही उन सूत्रों की आलोचनात्मक व्याख्या ही की गई है प्रथम पाद में 'कृके वचः कश्च' की व्याख्या की गई है। कृक, वाकु, मयूर, सरह, और इसी प्रकार 'धान्ये निते' १।१० की व्याख्या ब्रीहि भेद तथा उन्देरिच्चप्दे १-१३ की व्याख्या इन्दुश्चन्दे, 'सृजेरसुमच' १-१५ की व्याख्या रज्जुर्वेण्या गुणेस्त्रियाम लिखी गई है। 'यो द्वेच' १-२२ की व्याख्या 'यमुरश्वेद्रश्वमेघीये' इसी प्रकार उणादि सूत्रों की व्याख्या पूरे कोष में की गई है।

द्वितीय पाद में समीणाः सूत्र की व्याख्या समिथः संगते वहां 'संग्रामे तन्न-पुंसके' ॥२०१॥ और इसी प्रकार से 'निन्देर्नलोपश्च' का अर्थ निद्रा ।२१७ अदेदीर्घश्च का अर्थ आर्द्रा मान्तरे क्लिन्ने त्रिषु 'हीबेरकेतुतत्'और पणेरिज्यादेश्च वः ॥२–७१। का अर्थ अथो नैगमे वणिक इत्यादि तृतीयपाद में भी यही प्रक्रिया सर्तेरयुः ३-२२ का अर्थ दिया। सरयू नदी 'स्तुवादीर्घश्च' ३-२५ स्तुपः समूहे चैतन्ये और चतुर्थ और पंचम पाद में भी इसी पद्धति से सूत्रों के अर्थ दिए गए हैं। कुछ उदाहरण दिए जाते हैं जैसे भुवः कित ४-५५' भूमिर्वसुन्धरायां स्वात्स्यानकात्रे तुभूम्यदि अग्नेर्नलोपश्च ४-५० अथोअग्निवह्नोच चित्र के हन्तेरन् घ च ५-५७ घरोगृहे, चतेरन ५-५८ अथ चत्वारः संख्या, प्राततरेन ५-५९ प्रातख्यम्।

शिवकोष (शिवदत्त मिश्र)

प्रस्तुत कोष में आयुर्वेदिक औषधियों के नामों का संग्रह किया गया है। सर्वप्रथम ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्त्यर्थ सरस्वती की वन्दना करते हैं।

'वन्दामहे भारति तं भवत्याः
कृपाकटाक्षं करुणापरायाः
यतो जगद्वयस्त समस्त वस्तु
स्वहस्तविन्यस्तमिवाभाति ॥१॥

हे सरस्वती तुम्हारे कृपाकटाक्ष से मैं तुम्हारी वन्दना करता हूँ। द्वितीय श्लोक में कोषकार ने पूर्व कोषकारों के नामों का उल्लेख किया है। शब्दार्णव, अजय, अमर वोपालित, सिंह मेदिनी, विश्वप्रकाश, हारावली; हलायुध शाश्वत हेम, त्रिकण्ड शेष, इत्यादि [1] कोषों और कोषकारों के नामों का उल्लेख करने के पश्चात कोषकार अपने कोष में निर्दिष्ट विषय का उल्लेख करते हुए कहता है कि विविध औषधियों का संग्रह करके मैं लिंग भेद से नानार्थ औषधि नामक कोष की रचना करता हूँ।[2] और इसके पश्चात कोषकार अपने कोष में क्रम से औषधि विषयक शब्दों को बताने लगा। सर्वप्रथम काक, जंघा[3] काकनासिक, उदम्बरिका, वक; अशोक, अशोका, आटकी; किंशुक, कटुका, कण्टकः, शिम्याक, किम्याक, कर्पूर, ककन्द, चिनाक, शल्यनी, मण्डक, ककेटिक, सहकार, सहसार, द्राक्षाक्षा, कुरू वं, कोविदार, काँतार दरक, रक्तपुष्प, जवापुष्प, शृगाल, जम्बू, गंग्गुल, सोमराज्यी, गोराम सर्मिका नालिकेल, कटकायो, कदल, कदूफल [4] घोषांतिकी इत्यादि औषधियों के समस्त नामों का संग्रह किया गया है।

परमानन्दीय नाममाला (मकरन्ददास)

प्रस्तुत कोष तीन मुख्य भागों में विभाजित हैं- (१) नाममाला, (२) अनेकार्थ संग्रह (३) लिंगानुशासन।

---

१. शब्दार्णवाजयामरवोपालित सिंह मेदिनीविश्वान्
हारावली हलायुध शाश्वतहैम त्रिकाण्ड शेषांश्च ॥२॥
२. प्रीत्यं विचिच्य भिषजो विविधोषधानाम संदिहानस्य
नानार्थोषधकोषी विरच्यते लिंगभेदिन।३।
३. शिवकोष।६
४. शिवकोष।४५२

प्रस्तुत कोष के कर्त्ता श्री मकरन्ददास हैं। इनके पिता का नाम परमानन्द था। मकरन्ददास बहुत ही मेधावी एवं विलक्षण बुद्धि के थे। इन्होंने सर्व प्रथम अपने नाममाला में मंगलाचरण में ॐ श्री शारदाय नमः श्री परमात्मने नमः तथा इसके अनन्तर श्री गोस्वामी भगवान को नमस्कार किया है कि जिसके ध्यान से प्राणी (जीवधारी) जल्दी ही ऐश्वर्ययुक्त हो जाता है ऐसे चिदानन्द स्वरूप गोस्वामी को नमस्कार है।[1] इसके पश्चात कोषकार श्री सरस्वती जी को नमस्कार करते हुए कहता है कि जिसके स्वरूप से समस्त महान वांग्मय संव्याप्त है और उसके विष्णु ही सम्पूर्ण संसार हैं ऐसे वाणी के लिए सदा नमस्कार है।[2]

कोष के उद्देश्य को प्रकट करते हुए कोषकार लिखता है कि 'दूसरों के उपकार के लिए और अपने स्वयं बोध के लिए नाममाला नानावर्गों में लिख रहा हूँ।[3] और इसके पश्चात कोषकार शब्दों के संग्रह को बताने लगे। प्रस्तुत कोष में कुल ४ परिच्छेद में श्लोक संख्या ४४ इस परिच्छेद में शब्दों के अर्थों को बताया है यद्यपि यह कोष नाममाला नाम का है। अर्थात इस कोष में पर्यायों को बताया गया है, फिर भी इस परिच्छेद में शब्दों के अर्थों को ही बताया गया है जैसे जैसे 'अः कृष्णे गरुण थाश्च द्रुहिणे पुष्प केतने'' इसी प्रकार क्रमशः कोषकार ने इ ऋ लृ अं और क से लेकर ह तक के एक अक्षर के शब्दों और उनके अर्थों को बताया है और इस परिच्छेद के समाप्ति पर कोषकार ने लिखा है इति श्री कायस्थ चिखारीयामाथुरवंशभूषण मणि श्री गढ़मल पुत्र श्री प्रत्परमानन्दन विरचितायां पर मानन्दीय नाममाला प्रथम-काण्डः नाममाला के द्वितीय परिच्छेद में शब्दों के पर्याय दिये गये हैं। इस परिच्छेद में कुल ३७६ श्लोक हैं। सर्वप्रथम आठ श्लोकों में श्री कृष्ण के ७४ नामों का संग्रह किया गया है। इसके पश्चात लक्ष्मी के नामों को बताया गया है। फिर प्रद्युम्न, कामदेव, इसके पश्चात भगवान विष्णु का चक्र, बाहन इत्यादि के नामों का संग्रह किया गया है, ततः बलराम के नामों को बताया गया है। इसी प्रकार शंभु और उनके परिवार, ब्रह्मा और उनके परिवार इन्द्र और उनके परिवार आदि देवों के नामों के

---

१. यद्ध्यानात्प्राणिनां सद्यो भवन्ति विपुलः श्रियः
चिदानन्द स्वरूपाय तस्मैगोस्वामिने नमः ॥१॥

२. यत्स्वरूपेण संव्याप्तं समस्तं वांग्मयं परम्
विष्णुदेव जगत्तस्ये नमस्कुर्मे गिरे सदा

३. अन्येषामुपकाराय निजबोधाय च स्फुटम्
नाम पारायणं वक्ष्ये नानावर्गैरहं मुदा ॥

पश्चात चन्द्रकला नक्षत्र, तारा, रात्रिदिन, ऋतु आदि के पर्यायों का उल्लेख किया गया है।

तृतीय परिच्छेद में पहले कोषकार परब्रह्म को नमस्कार किया है।[1] इसके पश्चात अग्नि वायु, वनस्पति, वृक्ष, लता, जीव जन्तु, पशु पक्षी के नामों को बताया है।

चतुर्थ परिच्छेद में भी परमात्मा[2] को नमस्कार किया है। इस परिच्छेद में सर्वप्रथम मनुष्य के नामों का और उसकी अवस्था, मनुष्यों में पण्डित विद्वान कवि, कलाकार तथा अन्य स्वभाव गुण क्रूर, चोर और कपटयुक्त मानवों के नामों का संग्रह है।

इस प्रकार परमानन्दीय नाममाला भाग के परिच्छेद के अतिरिक्त अन्य तीनों परिच्छेदों में शब्दों के पर्यायों को बताया गया है प्रारंभ में शब्दों के अर्थों का उल्लेख है।

परमानन्दीय नाममाला (अनेकार्थ संग्रह)

प्रस्तुत कोष में शब्दार्थों का उल्लेख किया गया है जो कि अकारादि क्रम से हैं। प्रत्येक शब्द जिनका अर्थ दिया गया है वे दो अक्षर के ही हैं। इसके लिए सर्वप्रथम कोषकार ने कहा है कि अकारादि क्रम से दो अक्षरों के शब्दों और उनके नाना अर्थों को लिखता हूँ।[3]

इसके पश्चात कोषकार अकारादि क्रम से अर्थों को बताने लगा। सर्वप्रथम अजः शक के अर्थ में कृष्ण, स्मर, रुद्र, मेष, ब्रह्मण्यकं दुख, पाप, इत्यादि अर्थों को बताया है। बाद में क्रमशः अर्ध, अक्ष, अलि अर्क, अंशु, अग, अस्त्र, अस्त, अर्थ, अहिन, अद्रि, अलं अधि, अति इत्यादि शब्दों के अर्थों को बताया है। इसके पश्चात व्यंजन में क वर्ग से लेकर ह वर्ग तक के अक्षरों से बने दो अक्षरों के शब्दों के अर्थों को कोष में प्रयुक्त किया है। पहले दो अक्षर के शब्द और उनके अर्थ और बाद में ३, ४ अक्षर के भी शब्द हैं।

---

१. प्रणौमि परयाभक्त्या प्रकृष्ट विभुतां विभुम्
नाशोत्पादस्थितिप्रष्टं परब्रह्म निरंजनम् ॥३।१

२. स्थिति उपाद विनाशात्मजगतो हेतवे सते।
कूटस्थाय नमस्तस्मै कस्मैचित्परमात्मने ॥४।१

३. अकारादि क्रमेणाथ द्वयक्षरादिक्रमेण च।
अनेकार्थानि नामानि कथ्यन्ते कतिचिन्मया ॥
अनेकार्थ परमानन्दीय नाममाला।१

लिंगानुसाशन

कोषकार ने लिंगानुशासन नामक कोष की रचना की है। कोषकार ने कहा कि बिना लिंगानुशासन के अधीन है। अतः नामानुशासन के बोध के लिए लिंगानुशासन को लिख रहा हूँ।[1] कोषकार ने इसमें ६ विभाग किए हैं। पुलिग संग्रह इसमें पुलिग शब्दों का ही संग्रह है जैसे हस्त, पराग इत्यादि स्त्रीलिंग संग्रह में स्त्रीलिंग बोधक शब्दों का ही संग्रह किया गया है जैसे शस्त्री, वीणा, आकृत्या आदि इसी प्रकार नपुंसक लिंग में नपुंसक शब्दों का संग्रह जैसे आतपत्र, पुण्डरीक, भूमि आदि। इसी प्रकार पुलिग स्त्रीलिंग, पुलिंग नपुंसक लिंग आदि भेदों में सम्बन्धित शब्द और अर्थ दिए गए हैं।

कविकल्पद्रुम कोष (वोपदेव) १२४

वोपदेव के पिता का नाम केशव था। वोपदेव ने कविकल्पद्रुम के अतिरिक्त जिन ग्रन्थों का निर्माण किया उनमें मुख्य रूप से 'मुग्ध बोध' (संस्कृत व्याकरण) काव्य कामधेनु (कविकल्पद्रुम की व्याख्या) हरिलीलामृत, मुक्तफल, शतश्लोकी, चन्द्रकला, सिद्धमन्त्रप्रकाश इत्यादि हैं।

प्रस्तुत कोष में कुल ३६१ श्लोक हैं। यह कोष व्याकरण के समान धातुओं का संग्रह है। कोषकार ने सर्वप्रथम आदित्य को नमस्कार किया है —

शब्दाकर करग्राममर्थमण्डलम्।
ज्ञानात्मानमाद्यन्तमादित्यं तमुपास्महे ॥१॥

इसके पश्चात कोषकार आध शाब्दिकों को स्मरण किया जिनमें इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशली, शाकटायन; पाणिनि, अमर जैनेन्द्र आदि।[1] कोषकार कहता है कि इन लोगों के मतों और शब्द संग्रहों को देखकर धातुपाठ अदाद्याद्यक्रम और अदन्तादि क्रम से लिखता हूँ[2] और कवि कल्पद्रुम नाम का कोष जिसमें धातुओं का उल्लेख किया गया पद्यों द्वारा निर्मित किया गया

---

१. **नामानुशासनमिदं सम्यग् लिंगानुशासनाधीनम् ॥**
तस्मातद्बोधार्थ कुर्वेकिंचित्प्रयत्नमहम् ॥ लिंगानुशासन् ॥

२. **इन्द्रश्चन्द्रः काशकृत्स्नापिशली शाकटायनः**
पाणिन्यमरजैनेन्द्रा जयन्त्यष्टादि शाब्दिका ॥२॥

३. **मतानि तेषामालोक्य सर्वसाधारण स्फुटः।**
धातुपाठस्वदाद्याद्य क्रमादन्तादिमक्रमः ॥३

है ।[1] इसके पश्चात कोषकार अकारादि धातुओं के क्रम से धातुओं को बताने लगे हैं । कुण्, त्क, कुह, क्रड तवम, इत्यादि क्रम से बताया है और इस कोष का मुख्य विषय यह है कि अमुक धातु अमुक शब्द से बनने के बाद इस अर्थ में प्रयुक्त हो जायगी जैसे त्क, ग्रहे गण संख्यावाची, गोम त्क लेप, गहत्क, गहने, चित्रत्क क्षणि के क्षणे, छिद्र, त्क भेदे, क्षेद त्क छेदे इत्यादि इसमें अकारान्त धातुवर्ग से ककारान्त, गकारान्त, चकारान्त और क्रमशः सौत्र धातु वर्ग के धातुओं को बताया गया है यह कोष मुख्यतः व्याकरण कोष है ।

एकार्थ नाममाला द्वयक्षर नाममाला (सौभरि)

एकार्थ नाममाला में सर्वप्रथम कोषकार विष्णु भगवान को नमस्कार किया है 'सुन्दर बुद्धि के नाथ देवों के देव रमापति को मैं नमस्कार करता हूँ और एकार्थ नाममाला नामक कोष बुद्धि को प्रसन्न करने के लिए लिखता हूँ ।[2] प्रस्तुत कोष का नाम एकार्थ नाममाला है जिसका तात्पर्य होता है कि प्रत्येक शब्द जो संग्रह किए गए हैं उनका एक ही अर्थ हो लेकिन इस कोष में अनेकार्थ शब्दों को प्रयुक्त किया गया है, अतः इस कोष का नाम एकार्थ के स्थान में एकाक्षर होना चाहिए था, क्योंकि प्रस्तुत कोष में एक अक्षर के ही शब्द हैं और उनके विभिन्न अर्थ हैं । सर्वप्रथम कोषकार अः शब्द के अर्थ को बताता है । कृष्ण, शंकर; ब्रह्मा, शक्र, सोम, अनिल, अनल, सूर्य, प्राण, यमकाल इत्यादि अ अक्षर से लेकर कोषकार क्ष अक्षर तक के शब्दों का अर्थ बताया है लेकिन प्रत्येक शब्द एक ही अक्षर का होता है । इसमें कुल १०० श्लोक हैं ।

द्वयक्षरी नाममाला

इसका नाम शब्दों के संग्रह के आधार पर ठीक रखा है, क्योंकि इसमें सभी शब्द दो अक्षर के हैं इसमें सबसे पहले कोषकार परमब्रह्म का ध्यान करके दो अक्षर के शब्दों और उनके विभिन्न अर्थों को बताया है ।[3] सबसे पहले क्वणः शब्द का अर्थ कणः और कणा का धरा क्णुः का पुत्र इसी क्रम से क्तः क्ति क्ता क्या, क्यीः क्मं, क्मा, क्यः क्या, ख्यः ग्या, च्य, ज्य, ठ्या, ज्या, थ्यो, ध्यो, न्या, फ्यः, श्य इत्यादि क्रम से शब्दों के अर्थों को बताया है, प्रस्तुत

---

१. कवि कल्पद्रुमो नाम पद्यैर्निष्पाद्यते त्रच ।
धातवः पठिताः पाठसूत्रलोकागमस्थिताः ।।४।

२. प्रणम्य सुधियां नाथं देवदेवं रमापतिम
एकार्थ नाममालां तु कुर्वे चेतः प्रसादनीम् ।।१।

३. कवर्णितं परमं ब्रह्म धीमहि प्रणताः सदा
ध्यात्वा प्रकाश्यते माला सर्वज्ञान विधाययिनी ।।१

कोष में कुल १११ श्लोक हैं। कोषकार ने अपना नाम बताते हुए अन्त में ग्रन्थ समाप्ति के समय लिखा है।

इत्येषा रचिता मालाक्षरी सौभरिणा शुभा
य: पठेच्छ्रुणुयाच्चेमां स शब्दार्णव पारगः ॥१११।

शब्दरत्न प्रदीप

सर्वप्रथम कोषकार ने लिखा है कि शुद्ध वर्ण और अनेक अर्थ उत्तम शब्द रत्न, विद्वानों के कण्ठ में रात दिन विद्यमान रहें।[1] प्रस्तुत श्लोक को कुछ विद्वानों ने लिखा है कि यह श्लोक कोषकार का नहीं है और बाद में जोड़ा गया है। मंगलाचरण दूसरे श्लोक में होने से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत श्लोक बाद में ही जोड़ा गया है। मंगलाचरण में लेखक ने वागात्मन् को नमस्कार किया है।[2] और आगे कोषकार कहता है कि सरस्वती के प्रसाद से कवि जिस पद को बाँधता है प्रसिद्ध हो अथवा अप्रसिद्ध हो लेकिन यही प्रमाण ठीक माना जाता है।[3]

इसके पश्चात कोषकार अपने कोष के मुख्य उद्देश्य को प्रकाशित करता है। सर्वप्रथम शिव शब्द के अर्थ को बताता है, शिव का अर्थ कल्याण, शंभु, और शिवा का गौरी, अभया, कोषकार ने इस श्लोक को अनेकार्थ अमुच्चय शाश्वत से लिया है। इसके पश्चात कोषकार गौरी शब्द का अर्थ बताता है। प्रसूतास्त्री, गौरी शंकर की पत्नी, गौरी गोरचना इत्यादि प्रथम मुक्तक में कुल ६८ श्लोक हैं और प्रथम मुक्तक तक शब्दों के अर्थ श्लोकाधिकार के रूप में दिए गए हैं अर्थात एक शब्द एक ही श्लोक में बताए गए हैं। मुक्तक समाप्ति में कोषकार ने लिखा है 'इति शब्द रत्नप्रदीपे श्लोकार्थिकारः प्रथमों मुक्तकः' द्वितीय मुक्तक में शब्दों के अर्थों को बताया गया है लेकिन इस मुक्तक में एक श्लोक से दो शब्दों के अर्थ दिए गए हैं। कोष में सर्व प्रथम लिखा है कि यहाँ से अर्थ श्लोक में ही शब्दों के अर्थ को बताता हूँ। तृतीय मुक्तक में भी यही

---

१. शुद्धवर्णमनेकार्थं शब्द मौक्तिकमुक्तमम्।
कुण्ठे कुर्वन्ति विवान्सः श्रद्दधानादिनानिशम् ।१
। श०र०प्रदी०

२. शब्दाम्भोधिर्यतो नन्तः कुतोऽथामस संभवात
स्वानुवाचैक मानाय तस्मै वागात्मने नमः ॥२॥ श० ए० प्र०

३. सरस्वत्या प्रसादेन कविर्बध्नाति यत्प्रदम्।
प्रसिद्धमप्रसिद्धम वा तत प्रमाण चस्तधुमिः ॥३॥

प्रक्रिया से शब्दों के अर्थों को बताया है। चतुर्थ और पंचम मुक्तक में भी शब्दों के अर्थों को बताया गया है। चतुर्थ मुक्तक राजा और उससे सम्बन्धित शब्दार्थ है। कोषकार ने ग्रन्थ के समाप्ति में अपना कोई नाम इत्यादि नहीं दिया और सीधे से लिखा है 'इति शब्दरत्नप्रदीपो पंचमोमुक्तक'।

मंखकोष (मंख)

प्रस्तुत कोष के कर्त्ता अजयपाल हैं। इन्होंने अनेकार्थ कोष नामक कोष भी लिखा है। कुछ लोगों का कहना है कि मंख कोष के कर्त्ता मंख नामक कोई दूसरे ही कोषकार थे, लेकिन प्राप्त जानकारी के आधार पर अजयपाल ही प्रस्तुत कोष के कर्त्ता माने जाते हैं।

कोषकार ने प्रस्तुत कोष में सर्वप्रथम बोधिधर को नमस्कार किया है और कहा है कि दुखरूपी बीच को नष्ट करने वाले मेरी रक्षा करें।[1] इसके पश्चात कोषकार भागुरि, कात्यायन, हलायुध, हुग्ग, शाश्वत, अमर धन्वन्तर, निघण्टु इत्यादि[2] कोषों को लिखते हैं कि देखकर और लिंगानुशासन को भी देखकर तथा विचार करके अनेकार्थ शब्दों का संग्रह कर रहा हूँ।[3] और आगे कोषकार लिखते हैं कि यथा संभव इस कोष में कान्दादि शब्दों के क्रम को लिया गया है। और आगे लिंग भेद के कथन के पश्चात कोषकार अपने कोष को बताने लगे। सर्वप्रथम को शब्द का अर्थ बताया है। धातुः, वात, शिरोऽम्बु, आकाश इत्यादि इसी प्रकार कोषकार 'क अक्षर से लेकर क्ष' अक्षर तक शब्दों के अर्थों को बताया है। इनका क्रम अन्तिम अक्षर पर पड़ता है अर्थात अगर दो अक्षर कान्त को बता रहे हैं तो शब्द दो अक्षर का होगा और अन्तिम अक्षर 'क' ही होगा। इसी प्रकार तीन, चार और अक्षरों का क्रम रहेगा जिस अक्षर के शब्द और अर्थ बताएंगे उसका अन्तिम अक्षर वही होगा जैसे क द्वितीय अर्क, ककं, अंक, किष्कु इत्यादि। इसी प्रकार क तृतीयम् में उलूक, आलोक इत्यादि। इसी प्रकार समस्त अक्षरों का क्रम है। क से लेकर क्ष तक अक्षर अन्त में ही पड़ेगा। इस कोष में कुल १००७ श्लोक हैं। स्वर अक्षरों के क्रम को कोषकार ने अन्त में बताया है। उदाहरण '-आ प्रगृह्यः

---

१. पातुं बोधि धरं दूरविकीर्ण कर शीकरः
दुखबीजच्छिदै वर्षोत्करका इव विघ्नागितः ॥ मंलकोष।

२. भागुरि कात्य हलायुध हुग्गामरसिंह शाश्वतादि कृतान्
कोशान्निरीक्ष्यनिपुण धन्वन्तरि निर्मित निघण्टु च ॥ म० को० २

३. लिंगानुशासनं च विचार्य लक्ष्यं महाकवीनां च
कुरुतेऽनेकार्थानां शब्दानां मखकः कोषम् ॥ म० को० ५।

स्मृतौ'', ई दुखभावने'' इत्यादि और अन्त में कोषकार ने लिखा है ''इति श्री मंख कोषः समाप्तः''।

कल्पद्रु कोशः (केशव कृत)

कल्पद्रु कोष संस्कृत साहित्य का सबसे बड़ा कोष है, इसमें कुल ३ स्कन्ध हैं (१) भूमिस्कन्ध, (२) भुवः स्कन्ध, (३) स्वर्गस्कन्ध ।

इस प्रकार सम्पूर्ण कोष ३ स्कन्ध २७ काण्डों में विभक्त है । अन्त में केशव ने स्वयं लिखा है—

इति ह शब्दकल्पद्रु ध्यसि केशव निर्मितः ।
भूर्भूवः स्वस्त्रिभिः काण्डैः सं प्राप्तः सिद्धिमुत्तमाम् १
भ्रान्तेः पुरुष धर्मत्वं पांशुमत्वं क्षितेखि
तच्छोध्यं लेखले पाद्यैः स्वागारमिवपण्डितैः
श्रमेणानेन मे देवो दक्षिणार्मि्तमीश्वरः
विबुधैः सक्लैः सार्ध प्रीयतां भगवानजः ।

सर्वप्रथम केशव ने अपने गुरु को नमस्कार किया है ।

'गुरुं श्री दक्षिणामूर्ति विभुं विश्वेश्वरं परभ्
सर्वज्ञं तमनाद्यन्तं रात्रिविवमुपास्महे ।

इसके पश्चात अपने से पूर्व कोषकारों का भी उल्लेख किया है । उनमें कात्य, वाचस्पति, व्याडि, अमरमंगल, सहसांक, महेश आदि और लिखा है कि इनके मतों को अच्छी प्रकार से अध्ययन करके कल्पद्रु कोष की रचना कर रहा हूँ ।[1] इसके पश्चात कोषकार ने अपने कोष में किस प्रकार के शब्दों का संग्रह किया है, इसके लिए बताया कि स्त्रीलिंग, पुलिंग, नपुंसक लिंग इत्यादि प्रकार के भेदों से युक्त शब्दों का संग्रह किया जा रहा है । और लिखते हैं कि समस्त शब्दों के पर्याय के साथ ही यहाँ अलंकारिक सिद्धान्त के आधार पर शब्दों का चयन किया है । कोषकार आगे बताता है कि जिन प्रसिद्ध शब्दों का संग्रह यहाँ मैंने नहीं किया वे प्रसिद्ध शब्द महाकवियों के काव्यों में मिल

---

१. **काथवाचस्पतिव्या डिभागुर्यमरसंगलाः**
साहसांक महेशाद्या विजयन्ते जिनान्तिमाः
समालोक्य मतान्येषां कल्पद्रुरखिलार्थदः
क्रियते केशवेनायं नाम प्रकृति बोधनः ।। कल्पद्रु कोष १।२,३।

जायगा ।[१] इस प्रकार कोषकार अंकुरोदगम नामक प्रस्तावना में कोष के लिखने की प्रतिज्ञा शब्दों के संकलन का क्रम और शब्दों के समस्त विभागों का वर्णन करके आगे देश प्रकाण्ड नामक प्रथम काण्ड लिखना प्रारम्भ करते हैं। इसके सर्वप्रथम, ग्राम, जनपद, देश, प्रदेश, राष्ट्र इत्यादि का उल्लेख करते हैं ।[२] इसके बाद बताते हैं कि 'देश के पूर्व और दक्षिण उद्दीच्य और पश्चिमोत्तर हिमालय मध्य में विन्ध्य इत्यादि । आगे के श्लोकों में देशों का उल्लेख किया है जिनमें प्रयाग, मध्यदेश का उल्लेख किया गया है । इसके बाद नदी शरावती, गंगा, यमुना, सरस्वती[३] आदि का उल्लेख किया है ।

द्वितीय प्रकाण्ड में मन्दिर, पतन, शाखा, नगर, स्त्रियों का भेद, वैश्या स्त्री के लक्षण और अन्य जनपदों, नगरों में साकेत, हस्तिनापुर, कौशल, द्वारावती, द्वारिका, मिथिला, पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, प्रयाग, मथुरा, काशी, उज्जयनी, आदि का उल्लेख किया गया है ।[४] तृतीय प्रकाण्ड में मनुष्यों के नाम, गुण, कर्म आदि समस्त बातों का उल्लेख किया गया है, चतुर्थ काण्ड में सप्त ऋषियों के सहित अन्य ऋषि तथा यह बताया है कि गोत्रकारक सात ही ऋषि होते हैं,[५] और इसके अलावा फिर हजारों गोत्र होते हैं ।[६] आगे बताया कि महाकुल सभ्य आर्य होता है । इस काण्ड में ऋषि मुनि, ब्रह्मण आदि से ही सम्बन्धित बातों का उल्लेख किया गया है । पंचम काण्ड क्षत्रियकाण्ड है । इसमें छत्रियों के भेदों का वर्णन है । राजा, राजा के अंग, उपांग, सेना, कोष आदि समस्त बातों का वर्णन है । सप्तम काण्ड में वैश्य वर्ग के समस्त अवयव व्यापार, वाणिज्य, कृषि और अन्य आपके साधनों का उल्लेख है तथा जीविका के साधनों का अलग उल्लेख किया गया है । अष्टम प्रकाण्ड शूद्र प्रकाण्ड है । इसमें शूद्रों का उल्लेख किया गया है । उनकी सेवा, उनकी जातियां और उनके कर्मों का उल्लेख किया गया है । इस प्रकार यहाँ तक चारों वर्गों का उल्लेख उनके कार्य उनके विभाग आदि का वर्णन किया गया है ।

---

१. येषाँ नाति प्रसिद्धानां शब्दानामिह संग्रहः
तेषा महाकविग्रन्थैः संवादीऽनुविधीयताम् । कल्पद्रु कोष १।६

२. कल्पद्रु कोष

३. कल्पद्रु कोष १।७, ८, ६, १०

४. कल्पद्रु कोष २।१३ से २२ तक

५. जमदग्नि भरद्वाज विश्वामित्रात्रिगौतमाः
वशिष्टकश्यपागस्था ऋष्यो गोत्रकारकाः ।।४।१

६. गोत्राणां तु सहस्त्राणि प्रयुतान्यर्वुदानि च ।।४।२।

विशेष्यनिघ्न अष्टम काण्ड—इस काण्ड में सर्वप्रथम लेखक लिखता है कि—

स्त्रीदाराद्यं यद्विशेष्यं यादृशेः प्रस्तुतं पदैः
गुणद्रव्य क्रियाशब्दाविज्ञेयास्तस्य भेदका ।।८।१

अर्थात स्त्री दारा आदि जो विशेष रूप से पदों में प्रस्तुत किए गए वही गुण द्रव्य क्रिया आदि के भेद से शब्दों को जानिए। इसी काण्ड में वंचक के ५ नामों धूर्त, वंचक, पापी, छुद्र पंचक[1] तथा दीन के ५ नामों में दुस्थितों, दुर्गतों, दीनों, दरिद्रों किंचनों पिच[2] आदि नामों का उल्लेख किया है। इस काण्ड में कुल १८६ श्लोक है।

संकीर्ण काण्ड नवमों—यह काण्ड संकीर्ण काण्ड के नाम से कहा गया है। लेखक ने सर्वप्रथम लिखा है कि—

प्रकृति प्रत्ययार्थाधै संकीर्ण लिंगमुन्नयेत्
विधिर्विधानं कर्मा स्त्री क्रिया कृत्यविधाकृतिः।६।१
अपि तत्कर्मसातत्ये स्युरेव परम्पराः
साकल्पं सां ग बचने पारण्यण परायणे ।।६।२

और उसी प्रतीज्ञा के अनुसार

शमथस्तु शमः शान्ति प्रशान्ति प्रशमः पुनः ।
उपशान्तिश्चोपशमो यान्तिस्तु बमथोदमः

वनौषधी काण्ड—दशवें काण्ड में वनौषधि का उल्लेख लेखक ने किया, जिसमें मुख्य रूप से अरण्य[3] आराम[4], उपवन, वाटिका, प्रमदवन, तिकुंच, कुंज[5], वृद्ध, लता, गुल्म, तृण, इत्यादि समस्त वनस्पतियों के साथ वन जंगल का उल्लेख किया है।

सरभादि एकादश प्रकाण्ड—इस प्रकाण्ड में सरभ महामृगों का वर्णन

---

१. कल्पद्रुम कोष केशव ८।८६
२. वही— ८।६०
३. वही— १०।१
४. वही— १०।३
५. वही— १०।११

किया गया है जिसके पैर, कन्धा, ग्रीवा[1] का भी अच्छे ढंग से उल्लेख किया गया है। और बताया गया है कि सिंह के अमुक-अमुक नाम होते हैं । वहर्यक्ष, केसरी, नरकी, मृगपति, हरि कण्ठीखः, पंचशिखः, भीमविक्रम इत्यादि[2] और इस काण्ड में अन्य वन्य जन्तुओं का भी उल्लेख किया गया है, जिससे व्याघ्र[3], चिकः[4] भल्लूक[5] और इसके अतिरिक्त ऋक्ष, सृगाल, जम्बुक, बनकुक्कुर इहामृग, इत्यादि । इस प्रकार इस प्रकाण्ड में वन्य पशुओं के अंगों प्रत्यंगों, कार्यों का उल्लेख है।

पर्वतादि प्रकाण्ड द्वादशः—इस प्रकाण्ड में पर्वतों का उल्लेख किया गया है। जिनमें मुख्य रूप से सुमेरु, हिमालय दक्षिणाचल माल्यवान, मलय, त्रिकूट विन्ध्य मेकल,, गंधमादन, ऋष्यमूक, चित्रकूट, द्रोणी इत्यादि पर्वतों का उल्लेख है।

समुद्रादि प्रकाण्ड त्रयोदशः—इस प्रकाण्ड में समुद्रों का वर्णन किया गया है।

पातालादि प्रकान्ड चतुर्दशः—इसमें पातालों का वर्णन करते हुए लेखक लिखता है कि पृथ्वी के नीचे पातालों के भेद है, १–रसातल, २—तलातल, सुतल, वितल, अतल, महातल, पाताल।

सर्पादि प्रकाण्ड पंचदशः—इसमें सर्पों के भेदों का उल्लेख किया गया है और बताया गया है कि सर्प वायु का भोजन करते हैं और विषधर होते हैं। आँख से सुनते हैं । बिल में बास करते हैं। प्रथम सर्पराज वासुकि,[6], द्वितीय तक्षक[7] तृतीय कालीय[8] इत्यादि मुख्य सर्पों के भेद हैं। और बाद में इसके भेद प्रभेद बताए गए हैं।

---

१. कल्पद्रु कोष केशव ११।१, २
२. वही— ११।३, ४
३. वही— ११।६
४. वही— ११।१०
५. वही— ११;१०
६. वही— १५।८
७. वही— १५।६
८. वही— १५।११

नारक प्रकान्ड षोडशः—इसमें कर्म के अनुसार मनुष्यों को गति मिलती है और जो मनुष्य नीच कर्म करते हैं उनको अनेक भेदों युक्त नरकों में भेजा जाता है। नरकों के भेद में महारौरव' संघात, कालसूत्र' कालकर्ण, निऋति आदि बताए गए हैं।

जिन प्रकान्ड सप्तदशः—इसमें जिन भगवान के नामों का उल्लेख किया गया है जिसमें बुद्ध [1] सर्वदर्शी' दाशार्ह,[2] महावोधि, वीतराग, धर्मराज सर्वज्ञः, सुमतः दशबल[3] शर्वार्थ सिद्ध संगुप्त गौतम[4] आदि नामों को संकलित किया गया है।

इस प्रकार से भूमिस्कन्ध के प्रकान्डों का संक्षिप्त परिचय दिया गया।

भुवः स्कन्ध इसमें पहला प्रकाण्ड सामान्य प्रकाण्ड के नाम से है। इसमें सामान्य रूप से समस्त नामों का उल्लेख किया गया है द्वितीय प्रकान्ड भूस्थ देव प्रकाण्ड है। इसमें भूस्थित देवों का उल्लेख किया गया है। जैसे अग्नि, पवन, और अग्नि के भेदों में शोचिष्केश, शमीगर्भ, विश्वप्सश्च, समन्तभुक् इस प्रकाण्ड में अग्नि और वायु के ही भेद उपभेद, समस्त विभागों का वर्णन किया गया है।

नमस्थ देवप्रकाशण्डस्तुतीयः—इसमें आकाश स्वित देवों का वर्णन किया गया है। पृषद्श्व, गन्धवह, जगतप्राण, प्राण, अपान, व्यान, उदान, समाज आदि देवताओं का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इन्द्र, सूर्य शिव इत्यादि समस्त नभस्थ देवताओं का उल्लेख है।

कालप्रकाण्ड चतुर्थः—इसमें काल तिथि का तथा तिथियों के देवताओं का उल्लेख है। तिथि में समस्त तिथि का तथा घड़ी, दण्ड, पल, नाड़ी विकालिका, प्रातः, मध्यान्ह, शाम आदि समस्त समयों के विभागों का उल्लेख किया गया है। चन्द्रमा की समस्त कला सम्पूर्ण नक्षत्र इत्यादि सबका वर्णन किया गया है।

---

१. कल्पद्रु कोष केशव १७।१
२. वही— १७।२
३. वही— १७।५
४. वही— १७।६

नाट्य प्रकान्ड पंचमः—इसमें नाट्य में संगीत के सप्त स्वर नाट्य, नृत्य आदि का उल्लेख किया गया है।

स्वर्ग स्कन्ध

इसमें सर्वप्रथम सूर्यादि प्रकाण्ड—में सूर्य से १२ नाम और अलग-अलग मासों में अलग-अलग गति का उल्लेख किया गया है।

दूसरा ब्रह्म प्रकाण्ड द्वितीय कहलाता है। इसमें ब्रह्मा के नामों का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त सप्तऋषि और योगिनी के नामों का उल्लेख किया गया है। तीसरा अव्यय प्रकाण्ड तृतीय कहा गया है। इसमें सर्व प्रथम नारायण विष्णु के नामों का उल्लेख विष्णु के ही पर्यायों और उन पर्यायों के पत्नी, भाई, पिता आदि के नामों का ही उल्लेख किया गया है। और अन्तिम स्त्रियादिलिंग प्रकाण्ड चतुर्थ है जिसमें लेखक ने स्वयं लिखा है कि द्वितीयादि विभक्ति और एक बचन का रूप कहा और बहुत अर्थों के प्रतिपादन के लिए, मैं अब बारम्बार अनेक अर्थ के प्रतिपादक कहूँगा और अपनी प्रतीज्ञा के अनुसार लेखक ने इसमें अनेक अर्थों का उल्लेख किया है।

नानार्थ रत्नमाला कोष (इरुग पदद घिनाथ)

प्रस्तुत कोष नानार्थ रत्नमाला ६ काण्डों में है। प्रथम एकाक्षर काण्ड में कुल ८३ श्लोक हैं। प्रथम एकाक्षर काण्ड, द्वितीय द्वयक्षर काण्ड, तृतीय त्र्यक्षर काण्ड, चतुर्थ चतुरक्षर काण्ड, पंचम संकीर्ण काण्ड, षष्ठ अव्यय काण्ड, इत्यादि नामों से प्रसिद्ध है। लेखक ने सर्वप्रथम सीताराम की वन्दना की है।

दाक्षिण्यं निजसेवकेषु परमं कुर्वन्तमन्तर्मुखम्
कुन्दाच्छस्फुरद्दूर्णित स्तुतिकथा संछादितशामुखम्
श्रीरामं रघुराजपुंगवकुलालंकार हीरांकुरं
सीताराम गुर च नौमि मनसा विद्वसभाधूर्धरम ॥१॥

इसके बाद लेखक ने बताया कि विविध ग्रंथों के संदर्भ के आधार पर मैने इस कोष की रचना की हैं [1] और बाद में अपना नाम और कोष का नाम बताया है।[2] और लिखा कि हमारा प्रस्तुत कोष न तो बहुत छोटा और न तो

---

१. **नानार्थ रत्नमाला कोष।२**
२. **सोयं ग्रघ्नाति रत्नमाला गुणोज्वलाम्।**
श्रीमानिरुगदंडेशो तात्यल्प नातिविस्तरम्।३।

बहुत विस्तार का है और आगे लेखक लिखता है कि स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसक लिंग आदि भेदों से युक्त मैने नानार्थ रत्नमाला नामक कोष की रचना की है। जो शब्द तीनों लिंगों में प्रयुक्त होता है वहां विषु और जो दो ही लिंगों में प्रयुक्त होता है, वहाँ द्वयो लिखा गया है तथा जहां नपुंसक ही लिंगा होगा वहां लिगान्तर शब्द का प्रयोग किया गया है[1]

उपर्युक्त प्रतिज्ञा के अनन्तर कोषकार ने अपने कथन के अनुसार कोष लिखना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम 'अ' अक्षर से प्रारम्भ किया है और बताया अकार से ब्रह्मा विष्णु और शंकर का बोध होता है और इसके पश्चात इकार से शुरू किया प्रथम काण्ड में केवल एक ही अक्षर से शब्दों का प्रारम्भ किया है। द्वितीय काण्ड में दो अक्षरों वाले शब्द और तृतीय, चतुर्थ में क्रमशः तीन, चार अक्षरों से प्रारम्भ शब्दों को लिखा है।

मेदिनीकोष (मेदिनीकर)

कोषकार मेदिनी कर सर्वप्रथम मंगलाचरण में भगवान शंकर जी की वन्दना की है। भगवान शंकर को नमस्कार है जिनके शिर में जटाओं के बीच गंगा विशेष[2] प्रकार से शोभित हो रही हैं और इसके आगे कोषकार कोष लिखने के लिए कहता है कि पूर्वाचार्य के कृतियों को देखकर और शब्दशास्त्र का निरूपणकर नानार्थ शब्दकोष में लिखता हूँ।[3] जो कि लिंग भेद से बनाया गया है और आगे कोषकार अमरसिंह के श्लोक उद्धृत किया है कि—

'प्रायशोरूपभेदन विशेषण वशात्क्वचित्।
स्त्रीपुन्नपुंसकं ज्ञेयं विशेषोक्तश्चकुत्रचित ॥३॥

अमरकोष में 'साहचर्यात् वशात् क्वचित्' लिखा गया है और इसमें विशेषण वशात क्वचित लिखा गया है। अन्तर केवल इतना ही है अर्थात प्रायः रूप भेद से कभी विशेषण के द्वारा, स्त्रीलिंग पुलिंग और नपुंसक लिंग जानना चाहिए और आगे कोषकार लिखता है कि कोष में जहाँ जो शब्द तीनों लिंग का है उसको 'त्रिषु' और जो स्त्री और पुलिंग का है उसको द्वयौ तथा जो नपुं-

---

१. नानार्थ रत्नमाला कोष।

२. वृषांकाय नमस्तस्यै यस्यमौलिविलंम्बिनी
जटावेंष्टन यां शोभां विभावयति जान्हवी ॥मेदिनी कोष॥

३. पूर्वाचार्य कृतीवीक्ष्य शब्दशास्त्र निरूप्य च।
नानार्थ शब्द कोशा [illegible] कथ्यते ॥मेदिनी कोष २

सक लिंग में प्रयुक्त होता है उसको शेषार्थ कहा गया है ।[1] यह श्लोक भी कोषकार अमरकोष से ही लिया है और फिर आगे कोषकार रूप परिवर्तन से लिंग भेद को बताता है ।[2] प्रस्तुत कोष नानार्थक है कोषकार ने बताया है कि यहाँ सर्वत्र नानार्थ प्रथमांत रहेगा । इस प्रकार कोष लिखने का उद्देश्य, और प्राचीन कोषकारों से गुहीत शब्द तथा भगवान शंकर की वन्दना रत्मादि सब बातें कोषकार ने १३ श्लोक तक बताई है और आगे के श्लोक से कोषकार अपना मुख्य विषय लिखना प्रारम्भ कर दिया ।

प्रस्तुत कोष में कुल १८०७ श्लोकों में शब्दों के अर्थों का संग्रह किया गया है, इसमें क से लेकर ह तक ३३ वर्णो में शब्दार्थो का संग्रह है । सर्वप्रथम कोषकार क एकम में अ को शब्द के अर्थ में ब्रह्माणि, यम, दक्ष, भाष्कर, कामग्रन्थ, पक्षी और पार्थिव इत्यादि[3] अर्थ दिया है और आगे क द्वितीयम् में अर्क शब्द के अर्थ में कर्पण, स्फटिक, रवि, ताम्र, दिवस्पति आदि अर्थ दिए[4] 'क' तृतीयम के अम्बिका अर्थ में पार्वती, माता, और धृतराष्ट्र की माता आदि[5] और क चतुर्थकार भार्यारिक शब्द के अर्थों में पुत्रान, भार्या, निर्णित हृरिणोत्तर आदि[6] दिया है । कपंचमम् के अथोजलक शब्द के अर्थो में रंक, नारि केलफल अम्बुज, शंख, जल लता और मेघ इत्यादि[7] अर्थ दिए हैं । और इसी प्रकार कषद् अर्थों में मदन शलाका का कामोद्दीप, मेषज्य, और सारकियों : अर्थ दिया है ।[8] इस प्रकार कान्त वर्ग समाप्त हो जाता है, इसी प्रकार से गान्त, धान्त, ङ०ान्त, चान्त, छान्त इत्यादि समस्त शब्दों के अर्थों को उसी क्रम में दिया है । क से लेकर ह शब्द तक के ही अर्थ सल्लिखित हैं ।

---

१. त्रिलिंग्मा त्रिष्विति पदंमिथुनेति; द्वयोरिति
 निषिद्ध लिंग शेषार्थ त्वंतार्थादिनपूर्व भाक् ॥४॥

२. मेदिनी कोष । ५, ६, ७, ८

३. —वही १४

४, —वही— १५

५. —वही— ४४

६. —वही— २०५

७. —वही २२८

८. —वही २३५

बाद में और अव्ययों के अर्थों को बताया है। सर्वप्रथम अ[1] और फिर आ[2] इ[3] ई[4] और इसी क्रम से उ[5] ऊ और फिर ऋ लृ[6] शब्दों के अर्थों को बताया है और आगे फिर व्यंजन के क[7] द्वि क त्रि ग[8] द्वि ङ[9] द्वि च[10] द्वि छ[11] त्रि तद्वि दद्वि इत्यादि क्रम से ह[12] त्रि तक के शब्द और उसके अर्थों का उल्लेख किया है।

वररुचि कोष (वररुचि)

प्रस्तुत कोष में कुल ६० श्लोक हैं। श्लोक बहुत ही बड़े बड़े हैं। सबसे बड़ा श्लोक १२ पंक्तियों का है। इससे भी बड़े श्लोक हैं। सर्वप्रथम कोषकार ग्रन्थ निर्विघ्न समाप्यर्थ दुर्गा देवी की स्तुति की है। पाशांकुश प्रभृति भूषणों से शोभित, सम्पूर्ण अंग सुन्दर रमणीय और भयावह वेश को धारण करने वाली ब्रह्मा इत्यादि जिसके चरणों की सेवा करते हैं तथा जिसका रूप कमनीय है तथा त्रिपुरारि (शंकर जी) के द्वारा सेवित है मैं दुर्गा की स्तुति करता हूँ।[13] आगे कोषकार लिखता है कि यद्यपि संसार में शब्द बहुत हैं तथापि कुछ शब्द गद्य के द्वारा छात्रों के लिए मैं लिख रहा हूँ।[14] आगे कोषकार लिखते हैं कि शब्द बहुत

---

१. मेंदिनी कोष अव्ययवर्ग ५
२. —वही—अव्यय वर्ग १
३. —वही— ३
४. —वही— ३
५. —वही— ४
६. —वही ८
७. —वही— ११
८. —वही— १२
९. —वही— १३
१०. —वही— १४
११. —वही— १८
१२. —वही— ९२
१३. पाशांकुशप्रभृतिभूषण भूषितांगी।
सर्वांगरम्यरमणीय विचित्र वेषां
ब्रह्मादि सेवितपदां कमनीय रूपां
दुर्गां भजामि सततं त्रिपुरारि सेव्या ॥वररुचिकोष।१
१४. शब्दा बहुविधालोके संति यद्यपि विस्तराद्
तथापि केचिद् गद्यं ते छात्राभावत्कहे तवे ॥२॥

हैं जातिशब्द, गुणशस्त्र, क्रिया शब्द और अन्य वे सब यहाँ संज्ञा भेद से हैं उनको संक्षिप्त विधि से कहा गया है।[1] इसके पश्चात कोषकार गुणवाचक शब्दों को बताया और इसके लिगों के भेदों को बताया है और आगे ११ श्लोक के पश्चात कोषकार अपना मुख्य विषय बतलाने लगा। पुत्र मंत्र इत्र शब्दों को कोष में बताया और कहा कि जो पुत्रसूत्र में सुतः इस अर्थ में, वेद में हि शब्द से उच्चरित होता है। वह छम छात्र विष्णु मित्रादि के समान पुलिग में सिद्ध होता है। और आगे लिखता है, छत्री नर्तकः, आतप, वारण वाचक छत्र शब्द नपुंसक अर्थ में है और इसका प्रयोग बताया है। 'इदंछत्रंवर्षातपवारणं, अयंत्रों अध्येता, अथं विष्णुमित्रंः कश्चित्पुरुषः। इस प्रकार प्रस्तुत कोष में गुण, क्रिया और जाति के आधार पर प्रत्येक शब्दों के विभाग पुल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसक लिंग और लोक में इन शब्दों का प्रयोग कैसा होता है यह बताया गया है।

गणित नाममालाकोष हरिदत्त कृपा

कोषकार सर्वप्रथम कोष लिखने के पूर्व अपना परिचय और कोष के नाम का उल्लेख किया है।

> **'गणितस्यनाममाला वक्षोगुरुप्रसादतः।**
> **बालानांहि सुबोधाय हरिदत्तोद्विजाग्रणी ॥१॥**

इस श्लोक के पश्चात कोषकार अपने मुख्य विषय को बताता है। इस कोष में गणित के आधार पर ज्योतिष शास्त्र के शब्दों का संग्रह किया गया है। सर्वप्रथम कोषकार नक्षत्रों का उल्लेख करता है, २७ नक्षत्रों में क्रमशः अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा' पुनर्वसु, पुष्य, श्लेषा, मघा इत्यादि। उनके स्वामी देवता आदि का उल्लेख किया गया है।[2] बाद में नक्षत्र विषयक संज्ञाओं का उल्लेख[3] इसके पश्चात् राशि संज्ञा में (१) अजसेष' (२) गोवृष, (३) मिथुन वेणिको युग्मो, (४) कर्क कीटक (५) सिंह को केसरी, हरी, मृगेन्द्र (६) नारी, स्त्री, युवती योषित कन्या प्रमदांगना, (७) वणिक का तुल वाणिज्य के लिए (८) वृश्चिक लिसरी सृप (९) चाप, दण्ड, कार्मुक धनु संज्ञा (१०) विद्वान लोग नक्र से मकर कहा है (११) घट, बंभ कलश (कुंभ संज्ञा, (१२) मीन' मत्स्य भ्रष इत्यादि १२ राशियों की तद्बोधक शब्दों का संग्रह किया गया है। इसके पश्चात् द्वादश भावनां संज्ञा का उल्लेख और फिर क्रमशः केन्द्रीत्रिकोण

---

१. **जातिशब्दाः क्रियाशब्दा गुणशब्दास्तथापरे।**
संज्ञाभेदाभवंत्यत्रसंक्षेपादुच्यते विधिः ॥३॥

२. **गणित नाममाला १ से १६ तक**

३. **गणित नाममाला १७**

पणफट आमोम्लिम संज्ञा का उल्लेख तथा क्रमशः भुवनसंज्ञा, सूर्य नामानि इसके बाद चन्द्र नामों का फिर भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु केतु, इत्यादि नवग्रहों का उल्लेख इसके बाद मास चक्षु विधमास संज्ञा, घटीपल प्रहर संज्ञा, दिन संज्ञा रात्रि पूर्वान्ह अपरान्ह पक्ष, ऋतु, अयन वर्ष, रात्रि अंश संज्ञा तथा दिक् नाम, चरस्थित द्विस्वभाव संज्ञा, अयन, उत्तर दक्षिण गोल संज्ञा, संक्राति संज्ञा। इत्यादि क्रमशः संज्ञाओं का वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ ज्योतिष के आधार पर लिखा गया है।

मातृका कोष

प्रस्तुत कोष एक छोटा कोष है। इसमें कुल ५३ श्लोक हैं। सर्वप्रथम कोषकार मंगलाचरण में गणेश, महेश, और सरस्वती की स्तुति की है।

'श्री गणेशं महेशानभारतीमीश्वरंशिवम् ।
नत्वावक्ष्ये मात्रिकाणि निघण्टं बाल बुद्धये ॥१॥

कोषकार कहता है कि श्री गणेश, महेश, भारती (सरस्वती) और ईश्वर शिव (कल्याणकारी) को नमस्कार करके 'मातृका कोष लिखता हूँ' बाद में ओंकार ज्योति को नमस्कार करता है[1] और कोष लिखना प्रारम्भ करता है।

सर्वप्रथम 'अः' शब्द के अर्थ में कोषकार लिखता है, अः श्रीकण्ठ केशव हैं। और आ नारायण तथा गुरु अर्थ में है, आकार विष्णु शय्या बताया है, इसी प्रकार कोषकार इ, ई, उ, ऊ, ऋ लृ ए ऐ आदि स्वरों तथा क से लेकर ह पर्यन्त तक सभी अक्षरों के शब्दों का अर्थ बताया है। शब्द एक अक्षर के हैं तथा अर्थ दो तीन चार तक है अर्थ अधिकांश देवता वाचक है।

प्रस्तुत कोष किसका लिखा हुआ इस विषय में सन्देह है कोई लेखक एक मत नहीं हैं। कोषकार ने भी कोष के माध्यम से अपना कोई परिचय नहीं दिया है, अतः इस विषय में कुछ कोई नहीं कह सकता है। मुख्य बात तो यह है कि भारत देश अध्यात्मवादी देश है। यहाँ के लेखकों, कवियों और विद्वानों में लोकेषणा की भावना नहीं रहती है। इसीलिए वे अपना परिचय अपनी कृति में नहीं दिए, जिससे भारतीय लेखकों के जन्म, समय और स्थान के बारे में पता लगाना बहुत कठिन हो जाता है। कालिदास प्रभृति विद्वान ने भी जो कि भारत के महान काव्यकार कहे जाते हैं अपना परिचय नहीं दिया है।

---

१. **ॐ ध्रुवस्तारस्त्रिवृद्ब्रह्मवेदादिस्तार कोव्ययः ।**
प्रणवश्चत्रि मात्रोऽपि ओंकारो ज्योतिरादितः ॥मातृका कोष-२ ।

अव्यय कोष (श्रीमहादेव)

कोष प्रस्तुत करते हुए सर्वप्रथम कोषकार गणेश की स्तुति करता है ।

गजाननं नमस्तेऽस्तु सर्वविघ्न हरे नमः ।
विश्वस्या कहेरहारे सर्वलोक शिवंकर ॥१॥

इसके पश्चात कोषकार अपने गुरु की भी वन्दना करता है, और कहता है कि जिसके सानिध्य में रहते हुये मैं इस योग्य बना उस गुरु को नमस्कार है ।[1]

ततः कोष में शब्दार्थों को बताने लगे । नक्तं रात्रौ, शीघ्रार्थकाल भूयस्तु अधुनार्थे, ऊर्ध्वार्थे—समकालेच प्रवाहुकं प्रवाहिका इसी प्रकार से कोषकार ने लिखा है, कोषकार ने पहले एकार्थक या समानार्थक शब्दों को लिखा है और फिर अनेकार्थक शब्दों को बताया है । अनेकार्थक शब्दों का ग्रहण बहुत किया गया है, सम्पूर्ण कोष में अनेकार्थक ही शब्दों का उल्लेख है, जैसे आशुसद्यः सपद्युक्तं त्य विशेष विकल्पयोः ।

और मुख्य रूप से इस कोष में व्याकरण के शब्दों की भाँति अर्थ समझाया गया है । यह कोष होते हुए भी इसमें व्याकरण जैसे व्युत्पत्तियाँ दाँ गई हैं और पहले कोषकार ने कहा भी है कि व्याकरण के समान प्रस्तुत कोष में शब्दों को बताया जायगा ।

इस कोष में बहुत थोड़े से श्लोक हैं । लगभग ७५ श्लोक हैं जिसमें ७ श्लोक में तो कवि अपने कोष लिखने के आधार, आराध्य देव की वन्दना एवं श्लोक से अपने मुख्य विषय को बताया है । प्रत्येक शब्दों के अर्थों या पर्यायों के साथ उसका प्रयोग इत्यादि कोषकार ने बताया है । यह कोष व्याकरण की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है ।

द्विरूप कोष

प्रस्तुत कोष के कर्त्ता का कुछ भी पता नहीं चलता है, क्योंकि कोषकार ने अपने लिए कुछ भी नहीं लिखा है । प्रस्तुत कोष एक लघुकाय कोष है । इसका नाम द्विरूप है अर्थात एक शब्द के दो रूप स्पष्ट किए गए हैं । उदाहरण के लिए नीचे शब्द दिये जाते हैं, जो देखने में एक ही समान हैं, थोड़ी सी मात्रा परिवर्तन के कारण उनका अर्थ परिवर्तित हो गया है । जैसे—

---

१. **श्री गुरु परमानन्दं बन्देस्वानं दविग्रहं**
यस्य सानिध्य मात्रेण चिदानन्द दयते वपुः ॥

आषाढ़	आसाढ़
विशुवं	विषुवं
मातृस्व	मातृष्व
कषा	कशा
कुशलं	कुसलं
वाशरो	वासरो
वशिष्ठो	वशिष्ठः
मुषलो	मुसलः

इत्यादि कोषकार पहले केवल स, ष, श, भो से अर्थ परिवर्तन को बताया है और आगे मात्रा भेद से अर्थ परिवर्तन को बताता है जैसे—

वातिलो	वातुलो
अभिक्षा	आभीक्षा
चेरी	चेडी
अस्तिवाना	अस्तिवाने
डिम्भः	डिम्ब
अर्द्र	आर्द्र
घ्राण	घ्रात
ननन्दा	ननान्दा
निशीत	निशितं

इत्यादि प्रकार से समस्त कोष में कोषकार ने ऐसे ही शब्दों के जोड़ों का संग्रह किया है जिसका अर्थ अक्षर, मात्रा, वर्ण भेद से परिवर्तित हो जाता है अक्षर भेद में तीनों स के भेद हैं तीनों स का उच्चारण एक ही प्रकार का होता है लेकिन उनके अर्थों में परिवर्तन है।

उणादि कोष (शिवराम)

प्रस्तुत कोष में कोषकार ने उणादि शब्दों का संग्रह किया है। सर्वप्रथम मंगलाचरण लिखते हैं—

> वेदत्रणी वया वंद्यावंद्यदेवत्रणीवया।
> अग्नित्रयी वयावंद्या सामांपातुमुनित्रयी

तीनों वेदों की वन्दना करके (ऋक् साम यजुः) त्रिदेव की वन्दना (ब्रह्म, विष्णु महेश) करके तीन अग्नि (बड़वाग्नि, जठराग्नि, दावाग्नि) की वन्दना करके और मुझको तीनों मुनि (पाणिनि, पतंजलि, कात्यांयन) रक्षा करें आगे कोषकार लिखता है उणादि कोष 'लक्ष्मीनिवास' नामक पृथ्वी में शिव और

राम की कथा जब प्रचलित रहे तब तक शिवराम का लिखा हुआ उणादि कोष जीवित रहे ।[1]

कोषकार आगे लिखता है कि यहाँ पर उणादि प्रत्ययांत शब्दों का संग्रह किया गया है, जो व्याख्या से स्फुट प्रत्यय क्रम से सरल बोध है ।[2] शिष्ट प्रयोगों की बहुलता है लिंग निर्णय के द्वारा जाना जा सकता है । उणादि प्रत्ययान्त व्युत्पन्न दूसरे हैं[3] । आगे कोषकार लिखता है कि प्रत्यय आदि का ज्ञान स्वरारि से जो उपयुक्त है उसके लिए व्याख्यान किया गया है । और लिखते हैं कि तत्वबोधिनी मनोरमा व्याख्या में शब्देन्दु शेखर ने जिस अर्थ को नहीं लिखा उसको भी मैं यहाँ लिखता हूँ[4] । कोषकार कहता है कि कुछ बहुत सी व्युत्पत्तियां यहां ग्रहण की गई । कुछ की सिद्धि वैदिक संस्कृत में है और कुछ की लौकिक में है, जैसे गंगा पद की व्युत्पत्ति, सागर अर्थ दोनों में होती है ।[5] इतना लिखने के पश्चात कोषकार अपने मुख्य विषय की ओर आ कर समझाते हैं ।

प्रस्तुत कोष में कुल पांच पाद हैं । प्रथम पाद में १३६ श्लोक द्वितीय पाद में ७६ तृतीय पाद में १०९ चतुर्थ पाद में १४५ और पंचम पाद में ३४ श्लोक है । कुल श्लोक संख्या ५०० है । प्रथम पाद में कोषकार ने उणादि प्रत्ययीत शब्दों के अर्थों एवं उसकी व्युत्पत्ति को भली प्रकार से समझाया है । कोषकार ने आठ प्रकार के उणि शब्दों को बताया है वायु, पायु, कारु, मायु, साधु, स्वादु, जायु[6] इत्यादि । इसके पश्चात इन्हीं के समान उणि शब्दों का

---

१. लक्ष्मीनिवास कोशोऽयं उणाद्यतंक संग्रहः ।
शिवराम कथायावत्तावत्तिष्ठति भूतले ।।२।

२. उणादि प्रत्ययांतानां संग्रह यत्रनिर्मिते
व्याख्या व्याख्येय योर्व्यक्तिप्रत्यय प्रक्रमातस्फुटा ।।३।।

३. शिस्ट प्रयोग बाहुल्या ज्ञातव्योलिंगनिर्णयः
व्युत्पन्ना सत्युणाद्यता अव्युत्पन्नाअपिक्वचित् ।।६।

४. उणादि कोष ।८

५. उणादि कोष । १०, ११

६. वायुर्वातोगुदंपायुः कारुः शिल्पी च कारकः
मायुः पित हिसन्साधुः स्वादु प्रियरसौनरि ।।
शीघ्रमाश्वौषधजायुः शब्दाअष्ठौ उणिस्फुटा ।।१२, १३

संग्रह किया गया है जैसे आयु शब्द और इसको बताया है कि यह शब्द लोक में पुल्लिग है और दारू शब्द का अर्थ है मनोरम काष्ठ है।[१] चारू चाटुका अर्थ बताया है प्रिय वाक्य। इस प्रकार प्रथम पाद में उणादि शब्दों के अर्थ व्युत्पत्तियां और लिंग का बोध कराया गया है।

दूसरे पाद में लेखक ने बताया कि करि और गज शब्द दोनों एकार्थक हैं लेकिन करि स्त्रीलिंग और गज पुल्लिग में आता है।[२] अर्थात एक ही शब्द के अलग अलग पर्यायों का लिंग विभेद हो जाता है। तृतीय पाद में निपाद संज्ञा बताया है। मीनमत्स्य बुद्र तुंफन ए निपात है।[३] कंस शब्द का अर्थ बताते हुए लिखा है कंस स्त्रीलिंग में पानपात्र कांस तथा पुलिंग में दैत्यारि कंस। इसी प्रकार समस्त शब्दों की व्याख्या की है। चतुर्थ पाद में भी इसी प्रकार से उणादि शब्दों की व्युत्पत्ति अर्थ लिंग परिवर्तन इत्यादि बताया गया है। पंचम पाद में आठ मठों का उल्लेख है कीचक, मेचक, श्याम, काकारि, पंचक, वुनि, चंड, जठर ये आठ मठ हैं। आगे बताता है कि गर्गादि माठर्य हैं और विदादि माठर हैं। इस प्रकार इस पाठ में भी शब्दों के भेद प्रभेद और लिंगों का बोध कराया गया है। प्रस्तुत कोष व्याकरण युक्त कोष है। विशेषकर उणादि प्रत्यय का पूरा विवेचन प्रस्तुत कोष में किया गया है।

पंचतत्व प्रकाश (बेनीदत्त)

कोषकार सर्वप्रथम लक्ष्मीनारायण की स्तुति करने के पश्चात अपना कोष लिखना प्रारम्भ किया है। लक्ष्मी नारायण की स्तुति में कहते हैं कि दोनों अद्वैत हैं। और जिनका शरीर अपूर्व है और जो महान हैं तथा जिनका तेज करोड़ों सूर्य के समान हैं मैं भगवान लक्ष्मी नारायण को नमस्कार करता हूँ।[४] इसी मंगलाचरण के पश्चात कोषकार अपने विषय को लिखना प्रारम्भ करता है।

प्रस्तुत कोष में एकार्थक या सामानार्थक (पर्याय) शब्दों का संग्रह किया गया है। सर्वप्रथम पृथ्वी के २५ नामों (भू, भूमि, पृथ्वी, पृथिवी, मेदिनी,

---

१. आयुर्लोके पुंस्येवदारु काष्ठं मनोरमं ॥ १४

२. करेणुर्गजयोषायाँस्त्रियां स्त्रियाँ पुंसि गजेऽपि च ॥ २।१

३. मीनोमत्स्ये बुद्बुतु फेनएतौनिपातितौ ॥३।१३

४. अद्वयंद्वयमाभातिलक्ष्मी नारायणात्मकं
अपूर्वं तन्महः पूर्वकोटिसूर्य मुहुन्नुमः । पंचतत्व प्रकाश १

काश्यणी, मही, धरा, वसुमती, धात्री, क्षमा, विश्वम्भरा, अवनि, धरित्री, क्षमा, लोकधात्री, वसुधा, वंसुधरा, सर्वसहा, रत्नागर्भा, स्थिरा, क्षिति) का उल्लेख किया गया है।[1] इसके पश्चात, भूत् मृत्तिका ये दो मृत्तिका के नाम, प्रशस्त मृद के[2] नाम, इसके पश्चात् पूर्व देश दक्षिण देश, पश्चिम देश, पुरी के ६ नाम, गोपुर, हट्ट के नाम[3] फिर मनुष्य के नाम सम्बन्धी में बन्धु, पिता, माता, गुरु, बहन, पत्नी, श्वसुर, इत्यादि के अलग अलग नाम हैं। इसके पश्चात राजा उसके सहयोगी राजा के मन्त्री, पुत्र, रानी इत्यादि के अलग-अलग नाम दिये हैं। इसी तरह वृक्ष, लता औषधि में धतूर, अर्क, तिलक कुंगिका, अगस्त, अशोक, बंधूक, कदंब, तमाल, शिरीष, केला, दाण्डिम, अक्षोटक[4] आदि के नामों का उल्लेख है और इसी प्रकार गंगा, यमुना, नर्मदा, विपाशा, करटोप, अटक, शोणभद्र आदि[5] नदियों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार समस्त विषयों के नामों का क्रमशः प्रस्तुत कोष में संग्रह किया गया है।

शारदीयाख्य नाममाला (हर्षकीर्ति)

सर्वप्रथम कोषकार ने सच्चिदानन्द की स्तुति की है। परमात्मा सच्चिदानन्द ईश्वर को प्रणाम करके, माला के समान मनोरम 'शारदीयाख्यनाममाला' नामक कोष की मैं रचना करता हूँ और इसके पश्चात ग्रन्थकार शब्दों का संग्रह किया है। इस कोष में कुल तीन काण्ड हैं और तीनों काण्डों में कुल ११ वर्ग हैं—

प्रथम काण्ड

१.	देववर्ग	५८ श्लोक
२.	व्योमवर्ग	४५ श्लोक
३.	धरावर्ग	७५ श्लोक

द्वितीय काण्ड

१.	अंग वर्ग	६७ श्लोक

---

१. पंचतत्व काश। २, ३
२. पंचतत्व प्रकाश। ६
३. पंचतत्व प्रकाश २० से ३४ तक यात्रिक वंश
४. पंचततव प्रकाश जल भानुस्फूर्ति में ८ श्लोक से १३ तक।
५. प्रणम्यपरमात्मानं सच्चिदानंदमीश्वरं
ग्रन्थाम्यहं नाममाला मालामिव मनोरमां॥ शारदीयाख्य नाममाला १।

२.	संयोगादिवर्ग	३५ श्लोक
३.	संगीत वर्ग	११ श्लोक
४.	पंडित वर्ग	३७ श्लोक

तृतीय काण्ड

१.	ब्रह्मवर्ग	६ श्लोक
२.	राजवर्ग	३७ श्लोक
३.	शूद्रवर्ग	२६ श्लोक
४.	संकीर्णवर्ग	६१ श्लोक

कोषकार ने इसी काण्ड और वर्ग के आधार पर शब्दों का संग्रह किया है। सर्वप्रथम देववर्ग में सरस्वती, गणेश, ब्रह्मा, आदि देवों के नामों का उल्लेख किया है। व्योमवर्ग में आकाश, अन्तरिक्ष तथा धरावर्ग में पृथ्वी के नामों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार द्वितीय काण्ड में भी सम्बन्धित वर्गों में शब्दों का संग्रह किया गया है। कुल श्लोकों की संख्या ४६३ है।

सिद्ध शब्दार्णव (शहजीकीर्ति)

प्रस्तुत कोष शहजीकीर्ति द्वारा लिखा गया है। कोषकार, संस्कृत और प्राकृत भाषा में कई ग्रन्थ लिखे हैं। इनका प्रथम ग्रंथ सुदर्शन चौपाई है जिसको बगदीपुरा में संवत् १६६१ तथा अंतिम 'ग्रंथ' प्रतिक्रमण बाल बोध को जैसालमीरा में संवत १७०४ में लिखा था। उन्होंने भाषा टीका भी लिखा है जिसका नाम 'प्रवचन सरोधना' है। संस्कृत में उनके दस ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है जिनमें चार टीकाएं हैं शेष स्वयं के ग्रंथ हैं। भाष्यों में (१) गीतम कुलक वृत्ति लगभग ६००० श्लोक सं० १६७१ (२) सारस्वत व्याकरण वृत्ति सं० १६८१ (३) कल्पमंजरी टीका कल्पसूत्र सं० १६८१ (४) महावीर स्तुति वृत्ति सं० १६८५। इसके अतिरिक्त ६ ग्रन्थों की मौलिक रचना कोषकार ने की है, जिसमें यह कोष भी है।

सर्वप्रथम कोषकार सर्वज्ञ जिन देव को नमस्कार करके सिद्ध शब्दार्णव कोष लिखने की प्रतिज्ञा करते हैं[1] इसके पश्चात् सात प्रकार से शब्दों के भेद को बताया है। तीन लिंग और रूढ़ यौगिक मिश्र आदि भेद भी बताकर ६वें श्लोक से १६वें तक जैनाधिकार जैनदेव, गणधर, साधु, मोक्ष, पंचमहाव्रत,

---

१. स्मृत्वा सर्वज्ञमात्मार्थी सिद्धशब्दार्णवो जिनात्
सलिंगनिर्णय नामकोष 'सिद्ध स्मृति नये।

सिद्धान्त, पद्मासन, अष्टांग योग, दीक्षा नाम इत्यादि शब्दों को बताकर पश्चात बुद्ध नाम बताया है। ब्रह्मा, कृष्ण इसके पश्चात कृष्ण से सम्बन्धित समस्त शब्दों के नाम फिर महादेव और उनके परिवार तथा सम्बन्धित समस्त नामों का संग्रह किया गया है। इसी प्रकार द्वितीय काण्ड में भी स्वर्गदेवता, अमृत इन्द्र, इन्द्र, इन्द्राणी आदि नामों का उल्लेख है।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के पर्यायों का उल्लेख किया गया है। दोनों काण्डों में कुल ७६७ श्लोक हैं।

अनेकार्थ तिलक (महीप)

अनेकार्थ तिलक को नानार्थ तिलक भी कहते हैं। प्रस्तुत कोष में नानार्थक शब्दों का संग्रह किया गया। कोष में निम्न चार काण्ड हैं—

१. एकाक्षर काण्ड श्लोक संख्या ४५

२. द्वयक्षर काण्ड श्लोक संख्या ३६२

३. त्र्यक्षर काण्ड श्लोक संख्या २६०

४. संकीर्ण वर्णकाण्ड श्लोक संख्या २१३

अनेकार्थ तिलक के कर्त्ता महीप के जीवन और व्यक्तित्व के बारे में कुछ भी पता नहीं चलता है। प्रत्येक काण्ड के समाप्ति से यह पता लगता है कि प्रस्तुत कोष के कर्त्ता श्री महीप हैं और कोष के अन्त में कोषकार ने अपना संक्षिप्त परिचय दिया है जिससे स्पष्ट होता है कि कोषकार के पिता का नाम सोम और माता का नाम सौभाग्य देवी था।

श्रीमान्सोमभवः सलक्षसचिवो वाक्कण्ठभूषांकामृत।
सम्प्रासूत सुतं महीपममलं सौभाग्यदेवी च यं
संकीर्णाख्य इहोज्वलः समुचिते विद्वद्गिरां पूर्णतां
ग्रन्थे तद्रचितेऽधुना यमभजत्काण्डञ्च पंजाग्रजः।

कोष में सर्वप्रथम कोषकार ने सरस्वती की स्तुति करते हुए कहता है कि जिसके स्मरण करने से भयभीत प्राणी अपने समस्त इष्ट की सिद्ध प्राप्त कर लेता है और जो संसार की स्थिति और नाश के कारण हैं वे सरस्वती आप लोगों को वांच्छित वस्तु प्रदान करें।[1] इसके पश्चात कोषकार बताता है कि

---

१. **या संस्मृता प्राणभृतांक्षणेन संसाधयेदिष्टसमस्त सिद्धिं**
विश्वस्य सृष्टि स्थिति नाशहेतः साभारती यच्छतु वांच्छितं वः।१।

कवियों को आनन्द प्रदान करने वाला मैं चारकाण्डों का अनेकार्थ तिलक नामक कोष का संग्रह करता हूं ।[१] और इसके पश्चात कोषकार लिखता है कि प्रथम काण्ड में एक ही अक्षर के अनेक अर्थों का संग्रह किया गया है ।[२] और वह क्रम अकारादि अक्षर से है और इस प्रकार कोषकार अ अक्षर से शब्दों के अर्थों का विवेचन करने लगा । सर्वप्रथम, अः शब्द के अर्थ में कृष्ण और विनितासूत अर्थ, इसके पश्चात 'आ' शब्द के अर्थ में कोषकार अव्यय, स्मृतवाक्य, सन्ताप कोष आदि अर्थ दिए हैं । इसी तरह इ, उ, ऊ, ऋ, ओ, क, कु, खं, गं अर्थात समस्त अक्षर के शब्दों के अर्थों को बताया है ।

द्वितीय काण्ड में कोषकार ने बताया कि अकारादि क्रम से ही इस काण्ड में दो अक्षरों के शब्दों के अर्थों को बताता हूँ ।[३] और इसमें सर्वप्रथम 'अर्ध' शब्द का अर्थ पूजा विधि और मूल्य बताया है और अब्ज शब्द का अर्थ धन्वन्तर, चन्द्र, शंख, इत्यादि इसी तरह अक्ष शब्द के विभीतक, कर्ष, रावण शकट, आमृन, रथ के अवयव इत्यादि ।

तृतीय काण्ड में कोषकार ने बताया कि अकारादि के क्रम से इस काण्ड में तीन अक्षरों के अर्थों को क्रम से कहूँगा[४] और तदनुसार कोषकार 'अ' वर्ण से तीन युक्त अक्षरों के शब्दों को कहने लगा । सर्वप्रथम अमितः शब्द के अर्थ में अभिमुख शीघ्र, पार्श्व, इत्यादि अर्थों की और अशोक के अर्थ में वजुल और वीतशोक अर्थ दिया है । अतः इस काण्ड में भी अकारादि से प्रारम्भ समस्त वर्णमाला के अक्षरों से क्रमशः तीन अक्षर के ही शब्द और उनके अर्थों को बताता है ।

और चौथा काण्ड संकीर्ण काण्ड के नाम से है । इसमें भी 'अ' अक्षर से प्रारम्भ चार अक्षरों के शब्दों के अर्थों को क्रमशः वर्णमाल के आधार पर बताया हैं ।[५] जैसे अपवर्ग के अर्थ में क्रियाशेष. त्याग, साफल्य, मोष[६] आदि ।

---

१. कवीन्द्रमुकुदानन्द कन्दोद्गमसुधाकरः
विरच्यते चतुः कांड्या रम्यौऽनेकार्थ संग्रहः । २।

२. अकाराधादिभिः शब्दै क्षान्तैरेकाक्षराभिधा ।
ग्रन्थेऽस्मिन्प्रथमः काण्ड आविर्राहत सुविस्तरात ।।४।

३. अकरादि आदिभिः शब्दैः अस्मिन् वर्णद्वयाभिधः ।
द्वितीयोऽनुपमः काण्डः क्रमारभ्यतेऽधुना ।।२।१

४. अकाराद्यादिभिः शंकरस्मिन्वर्णत्रया भिधः
तृतीय क्रियते काण्ड क्रमात्यण्डितमण्डनम् ।३।१

५. अथ संकीर्ण वर्णाख्यस्चतुर्थोऽत्र विरच्यते ।
काण्डोऽयममलैः शब्ददैरकाराद्यादिभिः क्रमात् ।।४।१

६. अनेकार्थ तिलक ।४।२

राजव्यवहार कोष रघुनाथ (पंडित)

परिचय—प्रस्तुत कोष के कर्त्ता शिवाजी के प्रधान अमात्य रघुनाथ पंडित हनुमन्ते हैं। मराठी भाषा में जब अन्य भाषा का प्रभाव हुआ और भाषा का ह्रास होने लगा शिवाजी ने यह विचार किया कि शब्द कोष के निर्माण से यह ह्रास नहीं हो सकता है। उन्होंने अपने प्रधान अमात्य रघुनाथ पंडित को कहा कि एक ऐसे कोष का निर्माण करो जिसमें राज्य में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का संग्रह हो। इससे प्रेरित होकर कोषकार ने प्रस्तुत कोष में राज व्यवहार में आने वाले समस्त शब्दों का संग्रह किया।

कोषकार का जन्म स्थान चिंचवाड़ था वहां गनपति के उपासक, मुद्गल गोत्रीय अग्निहोत्री ब्राह्मण के यहाँ उनका जन्म हुआ था, कोषकार के आजा (पिता के बाबा) त्रिभल्ल नामक अपने अंग शौर्य उदारता आदि गुणों से युक्त भोंसले राज्य वंश के प्रधान थे। युद्ध में अग्र भाग में रहकर शौर्य दिखाने के फलस्वरूप इनके वंश को हनुमान (हनुमते) ऐसी उपाधि प्राप्त हुई। इनके पुत्र नारायण हनुमते।[1] शुद्धाशयी, षट्कर्मों में युक्त ब्राह्मण अत्यन्तदानवीर थे सन्मार्गचारी नारायण के पुत्र रघुनाथ पंडित शिवाजी के प्रधान अमात्य थे आप शिवाजी के राजकर्म और युद्ध सम्बन्धी कार्यों में इतने योग्य थे कि स्वतः शिवाजी इन्हें प्रशंसा करते थे, कर्णाटक, भावनगर आदि दक्षिण प्रदेश इनके ही मन्त्रणा के द्वारा जीता गया। इसका स्पष्ट उल्लेख श्लोक ७८ में किया गया है। शिवाजी रघुनाथ पंडित जो कि राजकार्य में दक्ष थे अपने से भिन्न नहीं मानते थे। इसी कारण पूर्ण राज्य में इनका विशेष आदर था।

राज्य व्यवहार कोष

प्रस्तुत कोष में कुल १० वर्ग हैं जिसमें कुल मिलाकर ३८४ श्लोक हैं। उपोद्घात के कुल ८४ श्लोकों को मिला देने से श्लोकों की संख्या ४६८ है। वर्गों के अनुसार श्लोकों की अलग अलग संख्या निम्न हैं—

---

१. **नारायणाभिधसुधीतिलकादेवाय**
तस्मादनुग्रहमसौ शिवसार्वभौमः
आसस्तुस्य कुलामात्य शिववर्म महीभृतः
केचिन्मौद्गल्या वंशाब्धिपूर्णचन्द्रा महीसुराः
तेषु विख्यातकर्माऽभूत् त्रिमल्लाख्यो युधाग्रणी
दधते हनुमन्नाम यद्वंश्या विक्रमार्जितम्
तस्याऽसीत तनयो धीमान्यज्वा नारायणाभिधः ॥

१. राजवर्ग	श्लोक संख्या ३३
२. कार्यस्थानवर्ग	श्लोक संख्या ४६
३. भोग्यवर्ग	श्लोक संख्या ३४
४. शस्त्रवर्ग	श्लोक संख्या २०
५. चतुरंगवर्ग	श्लोक संख्या ४३
६. सामन्त वर्ग	श्लोक संख्या १३
७. दुर्ग वर्ग	श्लोक संख्या २६
८. लेखन वर्ग	श्लोक संख्या १११
९. जनपद वर्ग	श्लोक संख्या ४०
१०. पण्यवर्ग	श्लोक संख्या १८
उपोद्घात	श्लोक संख्या ८४
	४३८

(१) **राजवर्ग** :—प्रस्तुत वर्ग में राज दरबार में कार्यरत भालदार, चौपदार, अमात्य, सचिव, पेशवा[1] इत्यादि वर्गीकरण के आधार पर इनके अर्थों का उल्लेख किया गया है।

(२) **कार्यस्थानवर्ग** :—जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट होता है कि कार्य स्थान वर्ग में जहां विभिन्न कार्यों का संग्रह हो, कोष में भी इसके लिए कारखाना[2] शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस वर्ग में सुनार द्वारा विभिन्न प्रकार के निर्मित गहने, और दर्जी द्वारा विभिन्न प्रकार के सिले जाने वाले कपड़ों के नाम और उनके अर्थों का उल्लेख किया गया है।

(३) **भोग्यवर्ग** :—प्रस्तुत वर्ग में खाद्य पदार्थ, सुगन्धित द्रव्य, चम्पा, चमेली इत्यादि के तेल, अर्गजा, अबीर, केसर, कस्तूरी[3] के लिए भी शब्द योजना की गई है। विशेष रूप से आज कल के सर्वमान्य पेय (चाय काफी इत्यादि) के लिए 'विश्राम कषाय'[4] का सार्थक प्रयोग किया गया है। और ऐसे पेय लेने के स्थान (जिसमें पान का भी रस) को 'सर्वतखाना' ऐसा शब्द जो उस समय अस्तित्व में था।[5]

१. राजव्यवहार कोष ।१।२

२. राजव्यवहार कोष २।३४ कार्यस्थानं तु कार्खास्नानामतःपरिभाषितम् ॥

३. 'मकरंदो गुलाबः स्यात् केसरं जाफरा भवेत् । राजव्यवहार कोष ३।९३

४. 'काहवा नाम विश्राम कषायः परिभाषितम्' राज व्यवहार कोष ३।८७

५. 'पानकादि रसस्थानं सर्वतखाना प्रकीर्तितः ।' राज व्यवहार कोष ३।८६

(४) **शस्त्र वर्ग** :—प्रस्तुत कोष में शस्त्रागार शब्द के लिए जिरात्खाना[1] शब्द प्रयुक्त हुआ है। शस्त्र, चतुरंग, सामन्त एवं दुर्ग वर्ग इन चारों वर्गों में तत्कालीन युद्धविभाग सम्बन्धी उस समय के उपयोग में आने वाले शस्त्रों के नाम जैसे कटार, फारसी, कमान, तीर[2] चतुरंग सेना और उससे सम्बन्धित नाम जैसे हांथी, घोड़ा, अंतर्झलि, मुजुमा, लगान, जीन इत्यादि सामन्तवर्ग में मन्त्री वजीर, सैन्य लश्कर, चमूपाल इत्यादि प्रकार के शब्दों का संग्रह किया गया है। अधिकारियों के नाम भी उपर्युक्त वर्गों में दिखते हैं जैसे दुर्ग वर्ग में किला के नामों के साथ उनके निर्माण में उपयोगी सामग्री, कारीगर; मजदूर एवं किलों के संरक्षण करने वाले छोटे बड़े अधिकारियों के नाम के शब्द प्रयुक्त हैं।

(८) **लेखन वर्ग** :—प्रस्तुत वर्ग में कार्यालय जहाँ राजकीय कार्य किए जाते रहे जिसको दफ्तर[3] शब्द प्रयुक्त किया गया है। इसी वर्ग में बैंकों का भी उल्लेख किया गया है, जिसके द्वारा ऋण दिया जाता रहा अथवा जिसमें बचत किया जाता था। ऋणदान को कर्जदान शब्द प्रयुक्त किया गया हैं। बचत करने या ऋण देने से जो लाभ बचता था उसको फायिदा या नफा[4] शब्द प्रयुक्त किए गए हैं। लाभ के अतिरिक्त बचा हुआ धन मूलधन कहलाता था। प्रतिदान के लिए फेरदेणा तथा अमानत के लिए रखणा शब्द प्रयुक्त किए हैं।

जनपद वर्ग में नगर समिति हेतु उपयुक्त शब्द योजना हेतु अन्य नामों का उल्लेख किया गया है, जैसे विलायत, जनपद, बलदायत्तन, नगर, ग्राम, मौजा इत्यादि[5]। कुछ शब्द तहसील, कचहरी के काम सम्बन्धी प्रयुक्त हैं। और इसी प्रकार पण्य वर्ग बाजार, पण्यवीथिका शब्दों के अतिरिक्त व्यापारी के ७२ नामों का उल्लेख किया गया है, जिनमें मुख्य सराफ (सोनार) तमेर (ताम्रकार) सार (कांसकार), लोहार (लोहकार), कंभार (कुंभकार) (कुलाल) वेली, जुल्हायी; तांबोली, माली, शिपी, जुआरी, लोहविक्रयी, काष्ठ विक्रयी, रंगारी, बागवान् जोहारी, नापित, चित्रकार, इत्यादि व्यापारियों के व्यापार युक्त नामों का उल्लेख[6] किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत कोष में जिन शब्दों का संग्रह किया गया है उनका संक्षिप्त परिचय वर्ग के अनुसार दिया गया। प्रस्तुत कोष में संस्कृत के शब्दों

---

१. 'शस्त्रागारंजिरात्खाना' राज व्यवहार कोष ४।११४
२. 'राज व्यवहार कोष' ४।११८ से १२३ तक
३. राज व्यवहार कोष। ८।२१६
४. राजव्यवार कोष ८।२२८
५. राजव्यवार कोष ६।३२७
६. 'राजव्यवहार कोष' १०।३६७ से ३८१ तक

का पर्याय प्राप्त होता है। जिसके बारे में विद्वानों का कहना है कि ये शब्द मराठी के लिए नहीं हैं। परन्तु इस बात का खण्डन इस प्रकार से है कि उस काल में व्यवहार की भाषा मराठी ही थी और उसमें मिश्रित विदेशी भाषा के शब्दों के लिए ही उस कोष की रचना करनी पड़ी।

प्रस्तुत कोष में फारसी शब्दों के लिए प्रयुक्त संस्कृत के पर्याय शब्द, जितना संभव हो सका, उतना छोटे अर्थात २-३ अधिक से अधिक ४ अक्षरों के होकर उच्चारण में सरल सिद्ध हुए। ३०० वर्ष पूर्व निर्मित यह शब्द योजना न केवल वर्तमान समय के मराठी भाषा के लिए ही उपयुक्त सिद्ध हुई है वरन अन्य प्रादेशिक भाषाओं के लिए भी उपयोगी है।

तृतीय अध्याय

संस्कृत कोषों की परम्परा : विश्लेषण एवं मूल्यांकन

●

कोषों का वर्गीकरण

संस्कृत साहित्य में कोषों का निम्न तीन प्रकार से विभाजन किया जा सकता है—

(१) पद्धति एवं प्रणाली के आधार पर,
(२) विषय के आधार पर,
(३) भाषा के आधार पर ।

संस्कृत कोषों में शब्द संग्रह की दो प्रमुख पद्धतियां पाई जाती हैं—(१) समानार्थक, (२) अनेकार्थक ।

१—समानार्थक

इसका प्रारम्भ 'निघण्टु' (वैदिक कोष) से हुआ । इसके अनुसार कोष में एक शब्द के अनेक नाम या पर्याय दिए जाते हैं । पर्याय से तात्पर्य उसी अर्थ के अनेक शब्दों से है । अंग्रेजी में इन्हें (Semonyms) कहते हैं । स्वयं अमरसिंह ने पर्याय, आनुपूर्वी, आवृत, परिपाटी, अनुक्रम को एक ही अर्थ में प्रयुक्त किया है [१] अमरकोष के व्याख्याकार भानुजी दीक्षित के अनुसार समयानूकूल शब्दों के क्रम को पर्याय कहते हैं । [२] अतः पर्याय कोष का तात्पर्य ऐसे कोष से है जिसमें एक ही अर्थ के अनेक नाम को संगृहीत किया जाता है ।

'सामानार्थक' शब्द का तात्पर्य होता है समान अर्थ वाले शब्द ।

---

१. 'अनुपूर्वी स्त्रियां वावृत्परिपाटी अनुक्रमः ।' अमरकोष २।७।३७
२. 'पर्यायः प्रकारेऽवसरेक्रमे ।' सुधाव्याख्या पृष्ठ ३३८

इस शब्द का प्रयोग अमरकोष में समः, तुल्यः, सदृक्षः, सदृशः, सदृक् साधारणः' समानः के साथ किया गया है।[1] वस्तुतः किसी भी शब्द का पर्याय संभव नहीं है। समानार्थक शब्द कामचलाऊ अर्थ में सम्बन्धित शब्द के निकट माने जा सकते हैं लेकिन सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर उनसे एक दूसरा ही अर्थ ध्वनित होता है जैसे सूर्य के सारथि के बहुत से पर्यायों में सूर्य-सूतः 'अरुणः', 'अनूरः' 'काश्यपिः', 'गरुड़ाग्रे' आदि नाम आये हैं।[2] जो सामान्य रूप से सूर्य-सारथि के पर्याय हैं। लेकिन इन सबके अलग अलग अर्थ हैं और यदा कदा भ्रम उत्पन्न कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, 'अनूरः' कहने से सर्व प्रथम 'अविद्यमानावूरूयस्य' अर्थात जिसके जंघा नहीं हैं यह बात ध्यान में आती है।[3] 'अरुणि' का लक्ष्यार्थ बाद में स्पष्ट होता हैं।

इसी प्रकार 'काश्यपिः' कहने से 'काश्यपस्य अपत्यम्' (कश्यप का पुत्र) अर्थ व्यक्त होता है और बाद में 'सूर्य सारथि'। अन्य समानार्थक कोषों के नाम हैं धनन्जय का 'नाममाला' हेमचन्द्राचार्य का अभिधान चिन्तामणि, 'कल्पद्रु-कोष' केशव का, महेश्वर का पर्याय रत्नमाला आदि।

२—अनेकार्थक

कोषों में शब्द संग्रह की दूसरी पद्धति को अनेकार्थक या नानार्थक पद्धति कहा गया है। अनेकार्थक या नानार्थक से तात्पर्य अनेक अर्थों से है अनेकार्थक शब्द का प्रयोग अमरसिंह ने विविध, बहुविध, नानारूप आदि के साथ किया है।[4] उन्होंने 'नाना' के तीन अर्थ बताए हैं।[5] 'अनेक, उभय, विना। वर्तमान सन्दर्भ में 'अनेक' अर्थ ही ठीक बैठता है। यथा 'नानाविधा पुरुषाः।[6]

इस प्रकार की पद्धति का पहला उपलब्ध कोष शाश्वत कृत अनेकार्थ समुच्चय' है। यद्यपि इससे भी पूर्व अमरकोष में अनेकार्थ शब्दों का संग्रह उनके अर्थों के साथ प्राप्त होता है। लेकिन अमरकोष मूलतः समानार्थक शब्दों का कोष है। तृतीय काण्ड के नानार्थ वर्ग में कुछ शब्दों के अर्थों का संग्रह अवश्य है। परन्तु स्वतंन्त्र रूप से पूर्णतः नानार्थक पद्धति से लिखा जाने वाला सर्व प्रथम उपलब्ध कोष 'अनेकार्थ समुच्चय' ही है।

---

१. 'वाच्यलिगाः, समस्तुल्यः, सदृक्षः, सदृशः, सदृक् साधारणः, समानश्चो' अमरकोष २।१०।३७
२. सूरसूतोऽरूणोऽनूरः काश्यपिर्गरुड़ाग्रजः, । अमर १।३।३२
३. सुधाव्याख्या पृ० ५२
४. विविध स्याद् बहुबिधो नानारूपः । अमर ३।१।६३
५. नानाऽनेकोभयार्थयोः । अमर ३।३।२४८
६. मणि प्रभाव्याख्या पृ० ५१०

नानार्थक कोषों में शब्दों के एक से लेकर चार या कहीं-कहीं चार से भी अधिक अर्थ दिए गए हैं। कुछ कुछ कोषों में तो अर्थों की संख्या के आधार पर ही उसके खण्ड किए गए हैं। एकार्थक, द्विअर्थक, त्रयर्थक आदि। अनेकार्थक कोषों में महेश्वर का 'विश्वप्रकाश' मंख का 'अनेकार्थ कोष, अजय पाल का 'नानार्थ संग्रह' हेमचन्द्र का 'अनेकार्थ संग्रह' केशवस्वामी का 'नानार्थार्णव संक्षेप' के नाम उल्लेखनीय हैं।

३—उभयार्थक

इन दो पद्धतियों के अतिरिक्त भी एक तीसरी पद्धति है, जिसके आधार पर कतिपय कोषों का प्रणयन किया गया है। इसमें समानार्थक व अनेकार्थक दोनों पद्धतियों का एक साथ प्रयोग किया गया है। यद्यपि इस प्रकार की पद्धति वाले कोषों की संख्या बहुत ही कम है। फिर भी कुछ कोषकारों ने समानार्थक पद्धति के साथ साथ नानार्थक पद्धति का भी प्रयोग किया है। कुछ कोषकारों ने तो अलग अलग कोषों में अलग अलग पद्धतियों का सहारा लिया है। जैसे हेमचन्द्र ने अपने चार कोषों में भिन्न भिन्न पद्धतियों का आश्रय लिया है। अमरसिंह ने भी अपने अमरकोष में तीन पद्धतियों का प्रयोग किया है। इस पद्धति के अन्य कोषों में हलायुध भट्ट का 'अभिधान रत्नमाला' आचार्य यादव प्रकश की 'वैजन्ती' जटाधर का 'अभिधान तन्त्र' विश्वनाथ का 'कोषकल्पतरु' नाम लिए जा सकते हैं।

उपर्युक्त तीन पद्धतियों के ही आधार पर संस्कृत के समस्त कोषों की रचना हुई है, चाहे वह कोष वैदिक कालीन 'निघण्टु' हो, या आधुनिक युग का 'तारानाथ तर्क' वाचस्पति का 'बाचस्पत्यम्' हो। इन तीन पद्धतियों के अतिरिक्त कोष रचना के लिए किसी अन्य पद्धति का प्रयोग नहीं मिलता है।

उपर्युक्त प्रमुख तीन पद्धतियों पर आधारित संस्कृत के तीन प्रकार के कोषों—समानार्थक, अनेकार्थक व उभयार्थक के अतिरिक्त अन्य निम्नांकित प्रकार के कोष पाए गए हैं :—

१. एकाक्षरकोष
२. अव्यय कोष
३. अर्थोग्राफिकल कोष
४. उणादि कोष
५. औषधि एवं वनस्पति सम्बन्धी कोष
६. ज्योतिष एवं खगोल विद्या सम्बन्धी कोष

७. बौद्धधर्म सम्बन्धी कोष,

८. पालि प्राकृत कोष

१—एकाक्षर कोष—इन कोषों में एक पद के शब्द अथवा वर्णमाला के एक अक्षर के शब्दों का संग्रह होता है। ये तान्त्रिक साहित्य के मातृक कोष के ही समान अक्षरों को उसी प्रकार रहस्यपूर्ण अर्थ प्रदान करते हैं जैसे जादू के मन्त्रों तन्त्रशास्त्र में प्रदान किया जाता है। इस प्रकार के कोषों में निम्नांकित कोषों का नाम प्रमुख है—

१. एकाक्षर कोष पुरुषोत्तमदेव

२. एकाक्षर नूतन नाममाला विश्वशंभु

३. एकाक्षर नाममाला सुधाकलास

४. एकाक्षर रत्नमाला माधव

५. एक वर्णार्थ संग्रह भरतसेन।

२—अव्यय कोष—इस प्रकार के कोषों में अव्यय शब्दों का संग्रह किया गया है। प्रमुख कोष निम्न है—(१) महादेव का अव्यय कोष द्वादश कोष नाम संग्रह के साथ प्रकाशित हुआ है, (२) अव्ययार्णव जय भट्टारक।

३—अर्थोग्राफिकल कोष—इन कोषों में उन विविध रूपों का संग्रह किया जाता है, जिनमें कोई शब्द प्रयुक्त हो सकता है। इस प्रकार के कोषों में निम्नांकित उल्लेखनीय हैं। १—'शब्द भेदप्रकाश' महेश्वर, (२) वर्णदेशन द्विरूपकोष पुरुषोत्तम देव, ३—द्विरूपकोष श्री हर्ष, ४—उष्माविवेक गदा सिंह, ५—शब्द भेद प्रकाश भानुजी दीक्षित, ६—द्विरूपध्वनि संग्रह भरत सेन, ७—त्रिरूप कोष कचना किलहन कवि ८—श्री शब्द रत्नाकर साधुसुन्दरि गणि ९—वैभाषिक कोष कृष्णकवि, १०—विशेषामृत त्रयम्बक मिश्र।

४—उणादि कोष—इस तरह के कोषों की रचना विशेप रूप से उन शब्दों के संग्रह के लिए की जाती है, जिनका निर्माण उणादि और प्रत्ययों के संयोग से होता है। इस प्रकार कोष निम्नांकित हैं।

१. लक्ष्मी निवासाभिधान कोष शिवराम

२. उणादि कोष राम शर्मा

३. उणादि मंजरी शुभाशीलगणि

४. शब्दाधितरि रामगोविन्द

५. नानार्थ शब्द रत्नाकर कालिदास

(५) **औषधि एवं वनस्पति सम्बन्धी कोष**—इन कोषों को सामान्यतया निघण्टु, निघण्ट, अथवा निर्घण्टु कहा गया है। इसमें अधिकांशतः पर्याय के रूप में औषधियों पेड़-पौधों, पशुओं, खनिज पदार्थों और संक्षेप में उन सभी वस्तुओं का समाहार होता है, जिनका प्रयोग मनुष्य के लिए खाद्य पदार्थ अथवा औषधि के रूप में हो सकता है। इनमें से कुछ कोष औषधि के रूप में उनके गुणों का भी उल्लेख करते हैं। इस प्रकार के निम्न कोष प्रसिद्ध हैं। (१) धन्वन्तरी निघण्टु (२) पर्याय रत्नमाला माधवाकर, (३) मुक्तावली, (४) निघण्टु शेष हेमचन्द्र, (५) अमिधान रत्नमाला शब्दराश, निघण्टु मल्लिनाथ (६) मदन विनोद मदनपाल, (७) राजनिघण्टु नरहरि, (८) शिव कोष शिवदत्त, (९) शब्द चन्द्रिका चक्रपाणि दत्त (१०) दक्षिणामूर्ति निघण्टु वेंक्टेश्वर (११) द्रव्यमुक्तावली, (१२) पर्यायार्णव नीलकण्ठ।

(६) **ज्योतिष शास्त्र व खगोल विद्या सम्बन्धी कोष**— इस तरह के कोषों में दिन तिथि, मास, राशि, नक्षत्र, ग्रह सम्बन्धी शब्दों का संग्रह किया गया है। इस प्रकार के कोषों में निम्न हैं—मुख्य कोष हरिदत्त कृत-गणित नाममाला, वज्रभूषण, सांख्यकोष, नवग्रह, कोष, राशि कोष, नक्षत्रकोष, महाव्युत्पत्ति।

(७) **बौद्ध धर्म सम्बन्धी कोष**—बौद्धधर्म से सम्बन्धित ग्रन्थों के पठन्पाठन के लिए कुछ विशेष कोषों का प्रणयन किया गया। वे संस्कृत कोषों के नहीं बल्कि वैदिक निघण्टु के अधिक समान हैं। वैदिक निघण्टुओं की ही तरह ये पद्यवद्ध रूप में लिखे गये हैं। और कुछ उस समय में प्रचलित ग्रन्थों के अध्ययन के लिए लिखे गए।

(८) **पालिप्राकृत कोष**—प्रस्तुत विषय पर विस्तृत चर्चा अध्याय पांच में देखिए।

इन प्रकारों के अतिरिक्त कुछ और प्रकार के कोषों का उल्लेख प्राप्त होता है[1] जैसे-पौराणिक व्यक्तियों और स्थानों के नामों के कोष-ऐतिहासिक व्यक्तियों के नामों के कोष (चरित्र कोष या जीवनी कोष), भौगोलिक स्थानों, नदियों,

---

१. कोष कला-रामचन्द्र वर्मा पृ०५

अमरकोष में अलग अलग विभागों में शब्दों को प्रयुक्त किया जैसे भूमिवर्ग दिक् वर्ग, वनौषधि वर्ग आदि।

कोषकला रा०च० वर्मा, पृ० ६

पर्वती आदि के नामों और विवरणों के कोष। भिन्न भिन्न विज्ञानों जैसे कृषि, गणित, दर्शन, मौलिक विज्ञान, वैद्युत शास्त्र आदि के पारिभाषिक शब्दों के कोष आदि आदि। बहुत बड़े बड़े लेखकों के द्वारा प्रयुक्त या मुख्यतया महत्वपूर्ण ग्रन्थों में आये हुए शब्दों के भी कोष होते हैं जैसे अमरकोष, हेमकोष, मेदिनी-कोष, हलायुध कोष आदि।

उपर्युक्त प्रकार से कोषों का विभाजन विषय एवं पद्धति के आधार पर भी किया गया है। कोषों का तीसरा विभाजन भाषा के आधार पर भी किया जा सकता है। इस प्रकार में तीन प्रकार के कोष पाए जाते हैं।

(१) एक माषिक कोष—इस प्रकार के कोषों में एक ही भाषा में शब्दों का संग्रह किया जाता है जैसे अमरकोष शाश्वत कोष आदि।

(२) द्विभाषिक कोष—इस प्रकार के कोषों में एक भाषा के शब्दों का दूसरे भाषा में अर्थ दिया जाता है। जैसे संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, संस्कृत मराठी कोष, संस्कृत गुजराती कोष, संस्कृत बंगाली कोष आदि।

(३) त्रिभाषिक कोष—इस प्रकार के कोष में एक भाषा के शब्दों को तीन भाषाओं में प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार का 'केसर कोष' संस्कृत, हिन्दी उर्दू में लिखा गया है।

(२) शक-चयन-क्रम

संस्कृत कोषों में शब्द चयनक्रम में समयानुकूल विशेष परिवर्तन दिखाई पड़ते हैं। ऐसा लगता है कि शब्दों के चयन में कोई सुनिर्दिष्ट पद्धति नहीं रही है। सर्वप्रथम वैदिक कोष निघण्ट में अध्यायों एवं काण्डों के अनुसार शब्दों का चयन किया गया है। नैघण्टुक काण्ड में एक अर्थ के वाचक शब्दों का प्रयोग किया गया है, नेगम काण्ड में अनेकार्थक शब्दों का प्रयोग किया गया है, और दैवत काण्ड में देवताओं के विषय में विचार किया गया है। इसके पश्चात् अमरकोष तक इसी पद्धति का अनुसरण किया गया, अमरकोष में वर्गों के अनुसार सम्बन्धित शब्दों का संग्रह किया गया है। जैसे स्वर्ग वर्ग में स्वर्गस्थ देवताओं का भूमिवर्ग में भूमि से सम्बन्धित शब्दों का पुर वर्ग में पुर से सम्बन्धित शब्दों का चयन किया गया है। इसी प्रकार शैल, वनौषधि, सिंहादि, मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्गों में उनसे सम्बन्धित शब्दों का संग्रह किया गया है। प्रायः सभी समानार्थक कोषों में इसी प्रकार से शब्दों का संग्रह किया गया है।

अनेकार्थक कोषों में शब्द चयन पद्धति एक प्रकार की नहीं है। 'शाश्वत कोष' में शब्दों के चयन में अर्थ क्रम को प्राथमिकता दी गई है। पहले उन

शब्दों को प्रयुक्त किया गया है, जिनके चार अर्थ दिए गए हैं, इसके पश्चात् तीन अर्थ वाले शब्दों को प्रस्तुत किया गया। 'अनेकार्थ ध्वनिमंजरी' में भी शब्दों का संग्रह अर्थ के अनुसार ही किया गया है। सबसे पहले उन शब्दों का संग्रह है जिनका अर्थ श्लोकार्थ में दिया गया है। सबसे पहले उन शब्दों का संग्रह है जिनका अर्थ पूरे श्लोक में दिया गया है। फिर उन शब्दों का संग्रह है जिनका अर्थ श्लोकार्थ में दिया गया है। और इसके पश्चात् पाद में दिये गये अर्थ वाले शब्दों का संग्रह किया गया है। इस प्रकार की शब्द चयन के तरीके का अनुसरण कुछ अन्य कोषों में भी किया गया है। इनके अतिरिक्त कुछ कोषों में शब्दों का चयन अक्षर-क्रम से किया गया है, जैसे—पहले 'क' अक्षर से प्रारम्भ एक ही अक्षर के शब्द इसके बाद 'क' अक्षर से ही प्रारम्भ दो अक्षर वाले शब्द, आगे तीन-चार और पांच-छः अक्षरों तक के शब्दों का चयन इसी क्रम से किया गया है।

किन्हीं किन्हीं कोषों में शब्द चयन क्रम देव नागरी लिपि के अनुसार किया गया है। कुछ कोषों में देव नागरी वर्ण शब्द के प्रारम्भ में आता है, कुछ में शब्द उसी से अन्त होता है। जिन कोषों में अक्षरों का क्रम शब्द के प्रारम्भ से रखा गया है, उनमें प्रारम्भ और अन्त में 'अर्थ' व 'इति' के साथ 'क एकम्', 'क द्वितीयम्', 'क तृतीयम्' आदि का उल्लेख किया गया है। जिन कोषों में शब्दों का क्रम वर्णान्त पर आधारित है, उनमें क्रमशः 'कान्त एकम्, कान्त द्वितीयम्, तृतीयम्, चतुर्थम्' आदि का उल्लेख किया गया है। यही पद्धति सभी अक्षरों से प्रारम्भ व अन्त होने वाले शब्दों में प्रयुक्त की गई है।

शब्द संग्रह के आधार

संस्कृत कोष साहित्य का शब्द भण्डार अत्यन्त समृद्ध है। इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ये शब्द विद्वानों की मौलिक प्रतिभा की उपज है अथवा उनके गहन अध्ययन के परिणाम। संस्कृत कोषों के शब्द भण्डार के मूल श्रोत निम्नांकित हैं—

१—वैदिक वांग्मय
२—पाणिनीय व्याकरण
३—महाकाव्य
४—साहित्य की अन्य विधाओं
५—पूर्ववर्ती कोष

वैदिक वांग्मय में प्रयुक्त शब्दों का संग्रह विद्वानों ने कोषों में किया है। निघण्टु पूर्णतः वैदिक शब्दों का ही कोष है। बाद में भी वैदिक शब्दों को विद्वानों ने अपने-अपने कोषों में प्रयुक्त किया है। इसके अतिरिक्त बहुत से कोषकारों ने अपने कोष निर्माण के लिए पाणिनीय व्याकरण का सहारा लिया है, जिसमें संस्कृत वांग्मय के विविध शब्दों को व्युत्पत्ति के आधार पर एकत्र किया गया। संस्कृत कोषों में प्रयुक्त बहुत से शब्द महाकाव्यों से भी लिये गये हैं। स्मरणीय है कि कोष रचना के विकास के पूर्व ही बहुत से महाकाव्यों का प्रणयन हो चुका था। इन महाकाव्यों में रामायण-महाभारत कालिदास कृत रघुवंश कुमार संभव, अश्वघोष के सौन्दरानन्द, बुद्धचरित आदि उल्लेखनीय है। शब्द संग्रह के लिए विद्वानों ने साहित्य की अन्य विधाओं से भी शब्दों को चुना है जिनमें नाटक, साहित्यशास्त्र, दर्शन आदि मुख्य हैं। इसके साथ कोषकारों ने पूर्ववर्ती कोषकारों के कोषों के आधार पर भी शब्द संग्रह किया है। उदाहरणार्थ अमरकोष की रचना अमरसिंह ने व्याडि, वररुचि और धन्वन्तरि के कोषों के आधार पर की है।[1] इसी प्रकार अमरकोष परवर्ती कोषकारों के लिए उपजीव्य कोष बना रहा।

नीचे कुछ कोषों को निम्न शीर्षकों के आधार पर प्रस्तुत किया जा रहा है—

१. पद्धति एवं प्रणाली

२. शब्द चयन का क्रम

३. शब्द संग्रह के आधार

अनेकार्थ समुच्चय (शाश्वत) —

शाश्वत कोष में एक ही शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है। जैसे अमृत के ५ अर्थ[2] निवारण के चार, पुण्डरीक के चार इत्यादि। दूसरे शब्दों में एक ही शब्द के अनेक अर्थ दिए गए हैं और इसके लिए लेखक ने पहले ही लिखा है[3] कि मैं एक शब्द के अनेक अर्थों का संकलन कर रहा हूँ। इनके शब्द संकलन की पद्धति नवीन है, इनके पूर्व कोई भी कोषकार ने स्वतन्त्र रूप से इस प्रकार के कोषों की रचना नहीं की। अतः इनकी प्रणाली स्वयं की है किसी कोषकारों का अनुकरण इन्होने नहीं किया। इनके पूर्व एकार्थक कोष उपलब्ध होते हैं। इनके समय से अनेकार्थ कोष भी लिखे जाने लगे।

---

१. सर्वानन्द अमर टीका १।१।२

२. शाश्वत कोष। १२

३. क्रियते शाश्वतेनायमनेकार्थ समुच्चयः।२।

श्री शाश्वत का 'अनेकार्थ समुच्चय' नामक कोष ६ विभागों में विभक्त है। प्रथम ३ विभागों में प्रत्येक शब्दों का अर्थ पूर्वारूप से दिया गया है। चौथे विभाग में एक पद में दो शब्दों के अर्थों का उल्लेख किया गया है और पांचवें तथा छठवें विभाग में एक श्लोक में चार शब्दों के अर्थों का उल्लेख किया गया है दूसरे शब्दों में एक चरण में एक ही शब्द के अर्थों का उल्लेख है इसके अतिरिक्त कोष में कोई भी विभाग और न तो कोई शब्दों के चयन का क्रम ही है।

कोषकार शाश्वत ने सर्वप्रथम लिखा है कि—

'पूर्बाचार्य प्रसादेन विदित्वा शब्द विस्तरम्
क्रियते शाश्वतेनायमनेकार्थ समुच्चयः।।१।

उपर्युक्त श्लोक ने अमरकोष के ही विषय में लेखक ने लिखा है क्योंकि लेखक ने अमर कोष से भली भाँति परिचित था और कुछ पंक्तियां अमरकोष से ले लिया है जैसे –

(१) 'मात्रं कात्स्न्येवधारणे।' शाश्वत' ६१; अमरकोष ३।३।१७८
(२) 'योग्यभाजनयोः पात्रम् ।। शाश्वत। ४००, अमरकोष ३।३।१७६
(३) पश्चात्सादृश्योरनु।। शाश्वत ७६६ अमरकोष ३।३।२४८
(४) पारेधिर्यज्ञियतरो शाखायामुपसूर्य के। शाश्वत ४२४, अमरकोष ३।३।६७
(५) भावःसस्तास्वभावाभिप्राय चेष्टामृजन्मसु । शाश्वत ४८ और अमरकोष ३।३।२०८
(६) योगः संनह नौपायसंगति ध्यान युक्तिषु ।। शाश्वत १००, अमरकोष ३।३।२२,
(७) दिग्देशकाले पूर्वादो प्रागुदक्प्रत्यगव्यम्। शाश्वत १३६, अमरकोष ३।४।२८.
(८) दाषोत्पादेनुबन्धः स्यात्प्रकृत्यादि विनस्वरे। मुख्यासुयायिनि शिशौ प्रकृतस्यानुवर्तने ।। शाश्वत। ६५, अमरकोष ३।३।६८,६६.

कोषकार शाश्वत ने और आगे लिखा है कि—

दृष्टाशिष्ट प्रयोगेऽहं दृष्ट. व्याकरणत्रयः
अधीती सदुपाध्याया लिंगशास्त्रेषु पंचम।।

इस प्रकार शाश्वत का कहना कि उसने तीन विभिन्न व्याकरण और पांच लिंगानुशासन का अध्ययन किया है। उन तीन व्यकरणों और पांच लिंगानु-

शासन में एक चन्द्रगोमिन का भी व्याकर था जिसका अध्ययन शाश्वत ने किया था और उसी के ही आधार पर शाश्वत ने लिखा है—

'वीणादीनां गुणः तन्त्री, तन्त्री देह सिरामता ।।४२६ शाश्वत कोष तंत्री शब्द को डीठबन्त नदी के समान चन्द्रगोमिन ने माना है। उणादि सूत्र १।६० चन्द्रगोमिन व्याकरण। जो पाणिनि के ही अनुसार उणादि सूत्र ३।४४६ जिसका अर्थ गाना से है। इस प्रकार इससे यह स्पष्ट होता है कि शाश्वत ने चन्द्रगोमिन के व्याकरण का भी अच्छा अध्ययन करके उसके प्रयोगों से अवगत था जिसका प्रयोग अपने कोष में लाया है।

कालिदास ने ललामन शब्द का प्रयोग इस प्रकार से किया था 'कन्या ललामकमनीयम जस्यलिप्सोः' रघु ४।६४ अमर सिंह ने केवल ललाम[1] शब्द मात्र ही लिया है। उपर्युक्त प्रकार से नहीं लिखा। लेकिन शास्वत को दोनों प्रकार मालूम थे और दोनों के ही आधार पर लिखा है।

'प्रधानध्वजश्रृंगेषु पुण्ड्बालघिलक्ष्मसु
भूपावाजि प्रभावेषु ललामं च ललामच ।। शाश्वत । ८०

कालिदास ने भित्तिशब्द का प्रयोग इस प्रकार से किया—

निर्धौतदानामलगण्डभित्तिः ।। रघुवंश । ४।४३

शाश्वत ने इसी को प्रदेश अर्थ में इस प्रकार से लिखा—

प्रदेश कुड्ययोभित्तिर्नया विवरभेदसो ।। शाश्वत कोष ६५३

इस प्रकार उपर्युक्त सभी उदाहरणों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि शाश्वत अपने कोष 'अनेकार्थ समुच्चय' में शब्दों का जो संग्रह किया है वे अमरकोष के हैं और चन्द्रगोमिन व्याकरण के भी शब्द है। इसी प्रकार कालिदास के रघुवंश महाकाव्य के शब्द हैं। कोषकार ने उपर्युक्त तीनों ग्रन्थ-कारों के शब्दों को जिस प्रकार से उनके कृतियों में हैं उसी प्रकार से अपने कोष में ज्यों का त्यों उतार दिया है।

अनेकार्थध्वनि मंजरी (महाक्षपणक)

अनेकार्थध्वनि मंजरी नामक कोष लिखने की पद्धति शाश्वत के 'अनेकार्थ समुच्चय' के समान है।

शाश्वत ने भी अपने कोष में वर्णमाला इत्यादि का सहारा नहीं लिया। शाश्वत ने पहले शिव अर्थ को बताया है। महाक्षपणक ने भी उसी शब्द को बताया है। इस प्रकार शाश्वत और महाक्षपणक दोनों की पद्धति एक ही

---

१. अमर कोष ३।३।१४३

मालूम होती है। शाश्वत पूर्व के हैं। महाक्षपणक बाद के हैं अतः शाश्वत के पद्धति का अनुकरण महाक्षपणक ने किया।

अतः महाक्षपणक की पद्धति शाश्वत के आधार पर है। श्री महाक्षपणक ने अनेकार्थ ध्वनि मंजरी नामक कोष में शब्दों के संग्रह के लिए विशेष रूप से कोई क्रम नहीं अपनाया है वर्णमाला का कोई आधार नहीं लिया है और न तो कोई ऐसा विभाग ही किया है कि जिसमें उस विभाग से ही सम्बन्धित शब्दों का ही उल्लेख हो। एक ओर से शब्दों के अर्थों का उल्लेख कर दिया है। यद्यपि प्रस्तुत कोष में कोई विभाग नहीं है फिर भी कोषकार ने पहले देववाचक शब्द और उनके अर्थों का उल्लेख किया है। जैसे—

शिवः शर्वः शिवः शुक्लः शिवः कीलः शिवः पशुः
शिवागौरी शिवा क्रोष्ठी शिवं श्रेयः शिवाभया ॥४॥

पार्वती के लिए दूसरे श्लोक गौरी ही शब्द से प्रारम्भ होता है, कुछ श्लोकों तक कोषकार ने देवता वाचक ही शब्दों का उल्लेख किया है। तीसरे में हरि का उल्लेख है। इस तरह कोषकार शब्दों के क्रमों का तो विशेष ध्यान दिया है, लेकिन वर्ग, विभाग वर्णमाला इत्यादि के द्वारा नहीं किया है, कोषकार ने यद्यपि तीन विभाग किए हैं। शब्दार्थ के लिए कुछ श्लोक तक एक श्लोक में एक ही शब्द के अर्थ बताए हैं और कुछ में एक श्लोक में दो शब्द के अर्थ और कुछ श्लोकों के पश्चात एक श्लोक में चार अर्थ बताए हैं। इसके लिए पूर्ण श्लोकाधिकार अर्धश्लोकाधिकार और पादश्लोकाधिकार खण्ड किया है।

प्रस्तुत कोष में कोषकार ने एक शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया है। इसी तरह शाश्त्रत ने भी एक ही शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया था, और कोषकार ने शाश्वत के अनुसार ही शब्दों को ग्रहण किया है। जैसा कि शाश्वत पहले शिव के लिए शंकर शुक्ल कली व पशु अर्थ लिया है, उसी प्रकार महाक्षपणक ने भी यही अर्थ में प्रयुक्त किया है। अतः महाक्षपणक का मुख्य आधार शाश्वत कोष अनेकार्थ शब्द समुच्चय ही था। इसके अतिरिक्त महाक्षपणक ने अमरकोष के बहुत शब्दों का संग्रह किया है, जैसे अहि शब्द सूर्य अर्थ में यह प्रयुक्त हुआ है और भुजंग[1] अर्थ में भी और अमरकोष में भी इन्हीं शब्दों के पर्यायों में आया है और जो शब्द प्रयुक्त है वे निघण्टु के भी हैं।

---

१. अनेकार्थ ध्वनि मंजरी ५७

अभिधान रत्नमाला (हलायुध भट्ट)

प्रस्तुत कोष में कोषकार ने ५ काण्डों में विभाग किया है। प्रथम काण्ड-स्वर्ग-काण्ड द्वितीय भूमिकाण्ड, तृतीय पाताल काण्ड, चतुर्थ-सामान्य और पंचम काण्ड अनेकार्थ काण्ड। प्रथम चार काण्डों में कोषकार ने प्रत्येक शब्दों के पर्यायों का संग्रह किया है। यह पद्धति अमरकोष के आधार पर है अमरकोष में भी शब्दों के समानार्थक शब्दों का उल्लेख है।

इस कोष के पंचमकाण्ड में अनेकार्थ शब्दों का उल्लेख किया गया है। इसके लिए पूर्व में ही कोषकार ने लिखा है कि--

एकोऽर्थोबहुभिः शब्दैः कथितः कथ्यतेऽधुना।
एकस्मैव तु शब्दस्य बहुष्वर्थ णु वर्त्तनं ।।५।।

अर्थात् यहां तक (चार काण्डों में) मैंने एक ही शब्द के बहुत नामों को कहा है और अब आगे एक ही शब्द के बहुत से अर्थों को कहूँगा।

इस प्रकार कोषकार प्रस्तुत कोष में दोनों प्रकार के पद्धति का अनुसरण किया है। प्रथम पद्धति अमरसिंह के आधार पर एक ही शब्दों के विभिन्न पर्यायों का उल्लेख किया और पद्धति, शाश्वत, महाक्षपणक के अनुसार, एक ही शब्द के विभिन्न अर्थों का उल्लेख किया है।

अतः कोषकार अनेकार्थक और समानार्थक शब्दों को संग्रह करके दोनों पद्धति का अनुसरण किया है।

प्रस्तुत कोष दो भागों में है, १–एकार्थक शब्दों का संग्रह, २–अनेकार्थक शब्दों का संग्रह।

उपर्युक्त प्रकारों में शब्दों का चयन क्रमपूर्वक काण्ड के अनुसार किया गया है, जैसे स्वर्गस्थ देवों के नाम, उनके परिवार का नाम, उनके वाहन का नाम, उनके शस्त्र का नाम, उनके चक्र, निवास इत्यादि का संग्रह क्रम पूर्वक किया गया है, इसी प्रकार भूमि काण्ड में, भूमि से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह क्रम पूर्वक किया गया। तृतीय काण्ड पाताल काण्ड में सम्बन्धित शब्दों का संग्रह क्रम पूर्वक किया गया है। इसी प्रकार सामान्य काण्ड में भी सामान्य शब्दों के संग्रह के क्रम का ध्यान रखा गया है।

इसी प्रकार नानार्थ काण्ड में एक शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है। लेकिन उन शब्दों का संग्रह क्रम के ही आधार पर किया गया है

जैसे विग्रह नाम, हेला नाम, शुड़ा, नाम, भवनाम, वालिश नाम इत्यादि ।[१]

प्रस्तुत कोष अमरकोष के आधार पर लिखा गया है, प्रथम स्वर्गकाण्ड में स्वर्गस्थ देवताओं का उल्लेख है । ब्रह्मा के जिन नामों का उल्लेख मिलता है । अमरकोष में भी ब्रह्मा के उन्हीं नामों का क्रमशः उल्लेख है । इसी प्रकार अमरकोष के आधार विष्णु एवं अन्य देवताओं के नामों का उल्लेख मिलता है । इस प्रकार जिन नामों का संग्रह अमरकोष में किया गया है, उन्हीं नामों का अभिधान रत्नमाला में भी चाहे जो शब्द हो केवल क्रम का अन्तर है नाम एक है । अतः सर्वप्रथम अमरकोष का ही आधार लेखक ने क्रिया साथ में व्याकरण में पाणिनीय व्याकरण, निघण्टु इत्यादि भी आधार ग्रन्थ थे ।

वैजयन्ती (आचार्य यादव प्रकाश)

प्रस्तुत कोष का प्रथम भाग पर्याय भाग है । इसमें शब्दों के विभिन्न नामों का उल्लेख किया गया है, और यह उल्लेख विभिन्न अध्यायों में सम्बन्धित शब्दों से ही किया गया है । जैंसे-भूमि काण्ड के देश अध्याय में ही देश के विभिन्न नामों का संग्रह इत्यादि किया गया है ।

अनेकार्थ पद्धति का भी अनुकरण प्रस्तुत कोष में किया गया है, और प्रत्येक शब्दों को द्वयक्षर, त्र्यक्षर, पुलिंग, स्त्री एवं नपुंसक लिंग के आधार पर प्रस्तुत किया गया है, तथा उनके विभिन्न अर्थों का संग्रह किया गया है ।

इस प्रकार आचार्य यादव प्रकाश ने अपने कोष वैंजयन्ती में दोनों पद्धति का अनुकरण किया है । इस प्रकार की पद्धति का यह पहला कोष है । इसके बाद इनके पद्धति का भी अनुकरण पुरुषोत्तम देव ने किया है ।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन के लिए कोष में कई विभाग किये गये हैं और उन बिभागों में ही सम्बन्धित शब्दों का चयन किया गया है । जैसे प्रथम भाग पर्याय में स्वर्ग काण्ड के आदि देव अव्याय में ही देवताओं और उनके परिवारों का उल्लेख किया गया है । जैसे लोकपाल अध्याय में ही लोकपालों के शब्दों का संग्रह है । सम्बन्धित अध्यायों में सम्बन्धित शब्दों का ही संग्रह किया गया है । अतः पर्याय भाग में शब्दों का संग्रह विशेष काण्ड और अध्याय में ही किया गया है ।

इसी प्रकार नानार्थ भाग में शब्दों के चयन का भी विशेष ध्यान दिया गया है । इसमें तीन काण्ड बनाये गये हैं । द्वक्षर त्र्यक्षर और चतुरक्षर और इन्हीं तीनों काण्डों में पुलिंग, नपुंसकलिंग और स्त्री लिंग के अध्ययन में

---

१. अभिधान रत्नमाला ५।१७,१८

अलग अलग दो अक्षर का पुलिंग द्वयक्षर काण्ड में अक्षर त्र्यक्षर काण्ड में में और चार अक्षर का चतुरक्षर में स्त्री नपुंसक और अन्य अर्थ तीनों लिंगों के जो शब्द उनके लिए भी अलग बिभेद है। अतः इस कोष में शब्दों के चयन के लिये विभागों के द्वारा सम्बन्धित शब्दों का ही चयन किया गया है।

आचार्य यादव प्रकाश से बहुत शब्दों को अमरकोष के आधार पर लिखा है, उसी प्रकार से

शब्द संग्रह के आधार

आचार्य यादव प्रकाश ने बहुत शब्दों को अमरकोष के आधार पर लिखा है, उसी प्रकार का विभाग और विभागों में सम्बन्धित शब्दों का संग्रह किया गया है तथा कुछ शब्द और पंक्तियां तो अमरकोष और वैजयन्ती की एक ही प्रकार की हैं। जैसे—

(१) "मनुष्या मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः। अमर।२।६।१ वैजयन्ती मनुष्य अध्याय १

(२) विप्रछत्रिय विट्शूद्राश्चातुर्वर्ण्यमिति स्मृतम। अमर २।७।२
ब्रह्मक्षत्रियविष्ट शूद्रा इति वर्णोश्चतुष्टये ।। वैजयन्ती । मनुष्य-ध्याय । २

(३) उपाध्यायोऽध्यापको ··· ···
मन्त्रव्याख्यावृहदाचार्य ··· ··· अमर २।७।७
मन्त्रव्याख्यादिनाचार्य उपाध्यायस्तु पाठनात् । वैजयन्ती ब्रा० अ०। ३२

(४) छात्रान्ते वासिनौ शिष्ये शैक्षाप्रथम कल्पिका। अमर ३।७।११

(५) एकतीर्थी सतीर्धयक गुरु सब्रह्मचार्यरिण
धर्मभ्राता सहाध्यायी शैक्षा प्राथम कल्पिका ।। वै० ब्रा० अ० २४

(६) स्वाम्यमात्य सुहृत्कोश राष्ट्र दुर्गबलानि च
राज्यांगानि प्रकृतयः पौराणां श्रणयोऽपिच ।
(अमर २।८।१७) (वैजयन्ती भूमिकाण्ड क्षत्रिय अध्याय ३)

(७) सन्धिर्ना विग्रहो यानमासनं द्वैधमात्रयः
षड् गुणाः (अमर २।८।१८)
षडगुणाः आसनं यानं द्वैधंविग्रह आश्रयः
सन्धिश्च (वैजयन्ती भूमिकाण्ड क्षत्रिय अध्याय। ६)

(८) नृपासनं यत्तद्भद्रासनं सिंहासनं तु तत्
हैमं छत्रं त्वातयत्रं ।। अमर २ । ८ । ३१, ३२
हैमं सिंहासनम् भद्रासनम् त्वन्यन्नृपासनम् ।
छत्रं स्यात आतपत्रं । (वैजयन्ती भूमिकाण्ड क्षत्रियाध्याय । १५

(९) सेनामुखं गुल्मगणो वाहिनी वृतना चमूः
अनीकिनी दशानीकिन्यक्षौहिणी (अमर २ । ८ । ८१)
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी वृतना चमूः
अनिकिनीत्यनीकन्यः पुनरक्षौहिणी दश (वैजयन्ती क्ष० अ० ५८)

(१०) उरूव्या उरू णा अर्या वैश्या भूमिस्पृशो विशः
आजीवौ जीविका वार्ता वृत्तिर्वर्तन जीवने । ।। (अमर २।९।१)
अर्याभूमिस्पृशो वैश्या उरुव्या उरूणा विशः
आजीवो जीविका वृतिर्वार्ता वर्तन जीवने (वैजयन्ती मं० का० वै० अ० । १)

(११) कुंभकारः कुलालोऽस्य पचनं पाकमण्डलभ् । वै०भू०शू०अ० २७
कुंभकाः कुलालः स्यातु-अमर २।१०।६

(१२) अधोभुवन पातालं बलिसद्म रषातलम्
नागलोकोऽथ कुहरं शुषिरं विवरं विलम् ।
छिद्रं निर्व्यथनं रोकरन्धं श्वभ्रं वयाशुषिः
गर्तावटो भुविश्वभ्रे सरन्ध्रे शुविरं त्रिषु (अमर १।८।१,२)
पातालं बलिसद्माधोभुवनं वडवामुखम् ।
रसातलं तलं नागलोको दैत्यक्षयो रसा ।
अगाधो भुवनं रोकं रन्ध्रं निर्व्यथनं विलम्
कुहरं सुषिरं छिद्रं श्ववोऽस्त्रल्की सूषिर्वणा ।
वैजयन्ती पाताल का० सरीसृप अ० १, २

(१३) इतिहास पुरावृत्ति मुदात्ताद्यास्त्रयः स्वाराः
आख्यायिको पलब्धार्था पुराणं पंचलक्षणम्
प्रबन्ध कल्पना कथा प्रबह्लिका प्रहेलिका
(अमर १।१।५, ६)
कथा त्वाख्यायिकाख्यानं पुराणं पंचलक्षणम्
इतिहास पुरावृत्तिमतिह्यमितिहाव्यम् ।
प्रवल्हिका, प्रहेलिका प्रजल्पनम् बहूदितम्
वैजयन्ती अन्तरिक्ष काण्ड शब्दाध्याय ३६

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों के देखने से स्पष्ट होता है कि वैजयन्ती में जो शब्द, पंक्ति, श्लोक, काण्ड, अध्यायों का संग्रह किया गया है। वह सब अमरकोष के ही आधार पर किया गया है। बहुत सी पंक्तियां तो अमर-कोष की अक्षरशः ले ली गई है। उदाहरण के लिए कुछ ही पंक्तियां दी गई हैं वैसे वैजयन्ती अमरकोष के शब्दों में बहुत साम्यता है। नानार्थ भाग में भी शब्दों और अर्थों को, कोषकार ने शाश्वत और महाक्षपणक के कोष के आधार पर ही संग्रहीत किया है।

पुरुषोत्तमदेव (त्रिकाण्ड शेष)

श्री पुरुषोत्तम देव ने अपने त्रिकाण्ड शेष नामक में समानार्थक शब्दों का संग्रह किया है। कोषकार ने सम्पूर्ण पद्धति अमरकोष के आधार पर ही अपने कोष में अपनायी है। कोषकार को अमरकोष की पद्धति स्वीकार थी जिस कारण अमरकोष के पद्धति का अनुकरण किया है, अमरकोष स्वयं कहा है—

> **"अलौकिकत्वादमरः स्वकोशेनयानिनामानिसमुल्लिलेख**
> **बिलोक्य तैरप्यऽधुनाप्रचार ममपंयन्तं पुरुषोत्तमस्य**
> **बर्गक्रमास्तथानाम लिंगयोंस्तद्रूपदेशतः।**
> **परिभाषादिक सर्वमत्राव्यमरकोशवत्** ॥ २।३ ॥

अर्थात अमरसिंह के अलौकिक कोष को देखकर और जिस नाम का उल्लेख उन्होंने किया है उन्हीं नामों का उल्लेख मैं भी कर रहा हूँ। तथा वर्गक्रम नामलिंग और परिभाषा सम्पूर्ण अमरकोष के ही समान है। कोषकार ने प्रस्तुत कोष में समानार्थक शब्दों को ग्रहण किया है। अमरकोष में भी समानार्थक शब्दों का संग्रह है।

कोषकार ने काण्ड और वर्ग के आधार पर शब्दों का संग्रह किया है। प्रथम काण्ड में स्वर्ग वर्ग में स्वर्गस्थ देवों का ही उल्लेख किया है। व्योमवर्ग में अन्तरिक्ष से ही सम्बन्धित नामों का ही उल्लेख किया है। दिग्वर्ग में दिशाओं से ही सम्बन्धित नामों का संग्रह है।

इस प्रकार कोषकार ने शब्द संग्रह के लिए विशेष क्रम को ध्यान में रखा है और जो शब्द जिस वर्ग में उपयुक्त होता है। उसका उल्लेख उसी ही वर्ग में किया गया है। वर्गों का क्रम भी बहुत ही उपयुक्त एवं समयानुकूल है, पहले स्वर्गवर्ग फिर मनुष्य वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का उल्लेख क्रमशः किया गया है।

कोषकार ने सर्वप्रथम लिखा है कि मैं अमरसिंह के आधार पर कोष की रचना कर रहा हूँ ।[1] अर्थात हमारे कोष का आधार अमरकोष है और उसी तरह कोषकार ने अपने त्रिकाण्ड शेष को लिखा भी । अमरकोष में भी ३ काण्ड हैं, त्रिकाण्ड शेष भी कुल ३ काण्ड हैं । अमरकोष में प्रथमकाण्ड में क्रमशः स्वर्ग, व्योम, दिग् काल, घी, शब्दादि नाट्य, पातालि भोग नरक, वारि इत्यादि वर्ग है । त्रिकाण्ड शेष में भी यही वर्ग क्रमशः है । कोष प्रारम्भ करते हुए अमरसिंह ने पहले अमर कोष में स्वर्ग के स्वः, स्वर्ग नाक, त्रिदिव, त्रिदशालय सुरलोक, द्यौः त्रिविष्टपत्र, आदि नामों का संग्रह किया है और पुरुषोत्तम देव ने भी त्रिकाण्ड शेष में सर्वप्रथम स्वर्गलोक के स्वर्गलोक, देवलोक, मन्दर, अवरोह, फलोदय, सौरिभ, शक्रभवन आदि नामों का संकेत किया है और श्री पुरुषोत्तम देव ने जिन नामों के क्रम का उल्लेख अमरसिंह ने किया उसी प्रकार नामों के क्रम का उल्लेख किया है । अतः यह स्पष्ट है कि पुरुषोत्तम देव ने अमरकोष के ही आधार पर अन्य ग्रन्थ लिखा है ।

इसके अतिरिक्त वैदिक कोष 'निघण्टु' को भी आधार कोषकार ने बनाया है । क्योंकि जो नाम पृथ्वी, हिरण्य वनस्पति के उसमें प्राप्त हैं । वे सभी त्रिकाण्ड शेष में भी उपलब्ध हैं इसके अतिरिक्त कोषकार व्याकरण ग्रन्थों का भी सहारा लिया था क्योंकि शब्द व्याकरण की दृष्टि से सिद्ध हैं । इस प्रकार कोषकार अपने कोष लिखने का मुख्य आधार अमरसिंह के अमरकोष, निघण्टु, पाणिनीय व्याकरण इत्यादि मुख्य रूप से अपनाया था ।

हारावली

प्रस्तुत कोष हारावली में लेखक ने जिस पद्धति का अनुकरण किया है यह पद्धति अन्य कोषों से सर्वथा भिन्न है । कोषकार ने इस कोष में किसी काण्ड, वर्ग, अध्याय आदि का आधार नहीं लिया । इसके साथ ही न तो किसी वर्णमाला क्रम का भी कोई आधार लिया ।

इसमें दोनों पद्धतियों का आश्रय लिया गया है । प्रस्तुत कोष में २२५ श्लोक तक समानार्थक शब्दों का संग्रह है और २२५ श्लोक से २७० श्लोक तक नानार्थक शब्दों का संग्रह है ।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन में कोई क्रम नहीं दिखता और न तो शब्दों के चयन के लिए कोई विभाग ही किया गया है, जो शब्द जहाँ याद

---

१. त्रिकाण्ड शेष १,१।३

आया उसका वहीं उल्लेख किया गया है । पुरुषोत्तमदेव ने अपने त्रिकाण्ड शेष कोष में शब्दों के चयन के लिए विशेष क्रम का ध्यान दिया है और शब्द चयन के लिए वर्गों का विभाग भी बहुत अच्छे ढंग का किया है । लेकिन प्रस्तुत कोष में शब्दों का कोई विभाग नहीं है ।

हारावली कोष के अन्त में कोषकार पुरुषोत्तम देव ने लिखा है 'काव्य इत्यादि अनन्त हैं और विशेष रूप से शब्द अनन्त हैं कौन कब क्या देखा ऐसा कोई बताने में सक्षम नहीं है ।[१] इसीलिए शब्द को किसने देखा और इसका अर्थ क्या है, इस प्रकार से काव्य में झूठा और मात्सर्य मलिन आतमा के समान है ।[२]

और इसके आगे अपने पूर्ववर्ती कोषकारों का उल्लेख करके कोषकार लिखता है कि वाचस्पति, व्याडि, विक्रमादित्य ने क्रमशः शब्दार्णव, उत्पलिनी, संसारावर्त कोष की रचना की है । इन्हीं कोषों को सार ग्रहण कर और अन्य कोषों से भी ग्रहण कर मैं हारावली नामक कोष की रचना की है ।[३] इस प्रकार कोषकार सर्वप्रथम इस कोष में गृहीत शब्दों के लिए वाचस्पति, व्याडि और विक्रमादित्य को ही बताया है, लेकिन त्रिकाण्ड शेष नामक कोष में अमरकोष को बताया कि इस आधार पर कोष लिख रहा हूँ । इस कोष में भी लेखक ने लिखा है कि अन्य ग्रन्थों से विशेष रूप में सार ग्रहण कर मैं इस कोष को लिख रहा हूँ । अन्य कोषों में मुख्य रूप से अमर सिंह का अमरकोष, निघण्टु वैदिक कोष मुख्य हैं और तीन कोषों के नाम तो स्वयं कोषकार ने लिए हैं । व्याकरण में भी पाणिनीय व्याकरण मुख्य होने से उसका आधार भी कोषकार ने लिया है और काव्य, महाकाव्य, ज्योतिष ग्रन्थ इत्यादि समस्त सामग्री के आधार पर कोषकार ने प्रस्तुत कोष हारावली की रचना की है ।

---

१. **काव्यादीनामतंतत्वाच्छब्दाबीनां विशेषतः ।**
क्वकदाकेन किं दृष्ट इति को वेदि तुं क्षमः ।।१७१

२. **अतः शब्दः क्वदृष्टोद्यमर्थ तश्चापि की दृशः**
इतिकाव्यमलीकस्यान्मास्तर्य मलिन मात्मना ।।१७२

३. **शब्दार्णव, उत्पलिकी, संसारावर्त इत्यपि ।**
कोषावाचस्पति व्याडि विक्रमादित्यस्य निर्मिता ।।१७३
आदायसारमेतेषामन्येषांच विशेषतः ।
हारावली निर्मितेयंमयाद्वादशः वतसरे ।।१७४

शब्दभेद प्रकाश

शब्दभेद प्रकाश में कोषकार भाषा वैज्ञानिक पद्धति के आधार पर शब्दों का उल्लेख किया है और इसमें यह सिद्ध किया गया है कि एक ही प्रकार के शब्द थोड़ा अन्तर होने पर उनका अर्थ कैसे बदल जाता है, यह पद्धति अमर-कोष में नहीं है, जो कि संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट कोष माना गया है। इस प्रकार के पद्धति का कोष यह पहला कोष मिला है कि जिसमें दो शब्द एक ही प्रकार के दिए गये हैं और उसका अर्थ अलग अलग होता है। इस कोष में ऐसे करीब १०० शब्दों से भी अधिक जोड़े शब्द हैं। इस कोष में सबसे पहला शब्द अगार आगार है और सबसे अन्तिम शब्द अव्यय अनव्यय है। इस कोष में कहीं मात्रा भेद है और कहीं वर्ण भेद है। कहीं रूढ़ शब्द हैं[1] लेकिन समस्त शब्द द्वैध है अर्थात जोड़े हैं और अन्त में कोषकार लिखता है।

'जागर्ति यस्यैष मनः सरोजे
स एव शब्दार्थ विवर्त नेशः
निजप्रयोगर्पित काम चारः
पर प्रयोगार्थ विशारदश्चः॥५।

शब्दभेद प्रकाश कोष में कोषकार श्री पुरुषोत्तम देव ने शब्दों के संग्रह में पहले क्रम का अनुसरण किया, लेकिन कुछ ही शब्दों के पश्चात क्रम खण्डित हो गया। सबसे पहले उन्होंने स्वर के क्रम को ध्यान में देकर निम्न शब्दों का क्रम प्रस्तुत किया-अगार, आगार, अयग-आयगा, अराति-आराति, अम-आम, अमर्ष-आमर्ष, अंकुर-अंकूर, अन्तरिक्ष-अन्तरीक्ष, अगस्त्य-अगस्ति, अटरूष-आटरूष, अवश्य-आवश्य इत्यादि यहाँ तक कोषकार ने स्वर वर्णमाला में अ वर्ग का क्रम अपनाया और इसके पश्चात क्रम का खण्डन करके बिना वर्णमाला के क्रम के ही आधार पर कोष लिखना प्रारम्भ किया। कुछ शब्दों तक केवल जोड़े शब्दों में मात्रा भेद हैं[2] और कुछ शब्दों में वणभेद है [3]।

प्रस्तुत कोष में जो शब्द गृहीत किए गए हैं वे शब्द पहले ही कोष व्याकरण काव्य, महाकाव्य नाटक आदि ग्रन्थों में प्रयुक्त हैं केवल कोष की पद्धति भिन्न हैं अर्थात जो प्रणाली इसमें ली गई है अन्य कोषों में नहीं प्राप्त होती है।

---

१. क्वचिन्मात्राकृतो भेदः क्वचिद्वर्ण कृतोऽत्रच।
क्वचिदर्थान्तरोल्लेखाच्छ शब्दार्थरूढ़ितः क्वचित। ५४।

२. बन्धुरं, बन्धूरं। शब्दभेद प्रकाश। ८

३. यावन्यां च भवान्यां। शब्दभेद प्रकाश। ५१।

पुरुषोत्तमदेव (एकाक्षरकोष)

एकाक्षर कोष जिस पद्धति पर लिखा गया है, उस प्रकार का दूसरा कोष नहीं प्राप्त होता है, लेकिन इस कोष में शब्दों के अर्थों का उल्लेख किया गया है, जो इनसे भी पहले शाश्वत, महाक्षपणक, हेमचन्द्र आदि कोषकारों ने अपनाया है, लेकिन इस कोष में एक ही अक्षर के शब्द हैं अन्य कोषों में ऐसा नहीं प्राप्त होता है।

प्रस्तुत कोष में कोषकार ने शब्द चयन के क्रम का विशेष ध्यान दिया है और एक ओर से शब्दों का उल्लेख वर्णमाला के क्रम में किया है। पहले स्वर के समस्त शब्दों को अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ,ॠ और लृ शदों के अर्थों का फिर वर्णमाला के ही आधार पर क्रमशः शब्दों को संग्रह किया है।

शब्दों के संग्रह में कोषकार ने बिलकुल नई पद्धति का सृजन किया है फिर भी जिन शब्दों के अर्थों को ग्रहण किया है। व्याकरण में सभी उपलब्ध हैं तथा कुछ शब्द अन्य कोषों में भी है। इसके लिए, शाश्वत के अनेकार्थ समुच्चय, हेमचन्द्र का अनेकार्थ संग्रह महाक्षपणक का अनेकार्थ मंजरी आदि मुख्य हैं। अमरकोष भी इसके लिए महान सहायक था, पाणिनीय अष्टाध्यायी तो पूर्णरूप से ही इस कोष के लिखने में सहायक रही है क्योंकि ये समस्त शब्द उसी से ही प्रादुरभूत हुए हैं।

विश्व प्रकाश (महेश्वर)

विश्व प्रकाश नामक कोष में शब्दों के विभिन्न अर्थों का उल्लेख है, जो कि सर्वप्रथम शाश्वत ने अपने 'अनेकार्थ समुच्चय' नामक कोष में परम्परा अपनायी थी, लेकिन उसमें केवल अनेकार्थ दिया गया है। उसमें कोई क्रम नहीं लिया गया है। श्री महेश्वर ने एक दूसरी नई परम्परा का भी सृजन किया जिसका अनुकरण आगे चलकर आचार्य हेमचन्द्र ने किया, वह यह है कि प्रत्येक शब्दों में जो क्रम अपनाया है, वह क्रम अन्तिम अक्षर में है। उदाहरण के लिए जैसे दो अक्षर के "क द्वितीयम्" लिख रहे हैं, तो उसमें क शब्द अन्तिम अक्षर पर होगा, जैसे शुक, तुक, कर्क, अर्क इत्यादि। अतः इनकी यह परम्परा बिल्कुल भिन्न और नई मालूम होती है।

श्री महेश्वर ने विश्व प्रकाश नामक कोष में शब्द चयन क्रम जो अपनाया है, वह इस प्रकार से है। प्रथम तो उन्होंने किसी भी ऐसे काण्ड का आश्रय नहीं लिया जिससे सम्बन्धित समस्त शब्दों को एक साथ प्रदर्शित किया जाय। कोषकार महेश्वर ने शब्द चयन के लिए दूसरे प्रकार का विभाग किया है। वह वर्णमाला के अक्षरों से है अर्थात क से लेकर (ङ को छोड़कर) तक के कुल

३३ विभागों में तथा अव्यय की अर्थात् कुल ३४ विभागों में शब्दों का चयन किया है। प्रत्येक विभाग में फिर ६ विभाग किए हैं। अर्थात् प्रत्येक अक्षर में ६ प्रकार के शब्दों का उल्लेख है। प्रत्येक अक्षर के ६ विभागों से सर्वप्रथम उसी प्रकार से एक अक्षर का शब्द जैसे का से को, ख से खे इत्यादि।

फिर उसी अक्षर से दो अक्षर का शब्द, फिर तीन अक्षर का शब्द, फिर चार अक्षर का शब्द फिर पांच ६ अक्षर तक के शब्दों का उल्लेख है। मुख्य रूप के शब्दों का उल्लेख किया गया है, उस अक्षर के क्रम अन्तिम वर्ष से रहता है।

प्रथम अक्षर के चयन का क्रम कोई नहीं हैं अन्तिम अक्षर के चयन का क्रम हैं। अव्यय वर्ग में भी अ इ उ इत्यादि अक्षरों के शब्दों के साथ सम्पूर्ण वर्णमाला का क्रम है।

श्री महेश्वर ने अपने ग्रन्थ में सर्वप्रथम भोगीन्द्र, कत्यायन, साहसांक, वाचस्पति, व्याडि, शुभांग, गोपालित, भागुरि आदि कोषकारों का उल्लेख किया हैं।[1] इससे स्पष्ट होता है कि उपर्युक्त कोषकारों और उनके कोषों से महेश्वर पूर्णरूप से परिचित थे, और इन्हीं कोषकारों के ही आधार पर कोषकार ने अपने कोष की रचना की है। कुछ शब्द शाश्वत के हैं। जैसे— अम्वर अर्थ में 'सुगन्धि द्रव्य भेदेस्यादम्बरं व्योमवस्त्रयोः'[2] और महेश्वर ने लिखा "अम्वरवाँससि व्योमकर्पासिच सुगन्धके।"[3] और इसी प्रकार कमल शब्द को देखिए "कमला श्री जलं पद्मं कमलं कमलोमृगः"[4] और महेश्वर ने लिखा "मृगभदे च कमलः कमला श्री स्त्रियोः"।[5]

इस प्रकार शाश्वत के अनेक शब्दार्थ को महेश्वर ने अपने विश्व प्रकाश कोष में लिखा है। केवल क्रम बदला है और वही शब्द वही अर्थ दिया है। इससे स्पष्ट होता है कि महेश्वर ने अपने कोष लिखने का आधार पाणनीय अष्टाध्यायी, वैदिक निघण्टु, और अमरकोष का भी लिया था।

धनंजय कोष (धनंजय)

प्रस्तुत कोष में शब्दों के पर्याय का उल्लेख किया गया है। इसमें वर्ग इत्यादि का विभेद न करके सम्पूर्ण शब्दों को बिना किसी क्रम के ही कहा

---

१. विश्वप्रकाश। १६
२. शाश्वतकोष। ४८६
३. विश्वप्रकाश। रत्रिकम्। १०२
४. शाश्वत कोष। २२६
५. विश्वप्रकाश। रत्रिकम्। ५३

गया है। अतः अमरसिंह के पद्धति का तो नहीं कहा जा सकता है। शाश्वत महाक्षपणक इत्यादि कोषकारों ने इसी पद्धति से लिखा है, लेकिन उनका कोष एकार्थक न होकर अनेकार्थक है। अतः इस पद्धति पर भी नहीं है। इनकी पद्धति यह है कि सम्पूर्ण शब्दों के पर्यायों को प्रस्तुत करना है।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन का कोई ध्यान नहीं दिया गया। इसमें कोई क्रम नहीं हैं, लेकिन पहले गुरु[1] और बाद में शिष्य का जरूर ख्याल किया गया है।

अभिधान चिन्तामणि (हेमचन्द्र)

श्री हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि कोष में नामों के पर्यायों का उल्लेख किया है, जैसे अर्जुन के १७ नाम अर्जुन के धनुष २, द्रौपदी के ७ नाम[2] इत्यादि।

अभिधान चिन्तामणि में एक ही शब्दों के अनेक पर्यायों का उल्लेख किया गया है। अतः यह एकार्थक या समानार्थक कोष है और प्रस्तुत कोष की पद्धति एवं प्रणाली निघण्टु और अमरकोष जैसी है।

श्री हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि नामक कोष में शब्दों के चयन के वर्णानुक्रम का कोई सहारा नहीं लिया उन्होंने शब्दों के चयन के लिए जो क्रम लिया वह इस प्रकार से हैः—

(१) कोषकार ने सर्व प्रथम शब्दों के तीन विभाग बताए १-रूढ़, २-योगिक, ३-मिश्र[3]।

रूढ़ व्युत्पत्ति से रहित अर्थात प्रकृति तथा प्रत्यय के विभाग करने से भी अन्वर्थहीन शब्दों को रूढ़ कहते हैं। रूढ़ शब्द व्युत्पति रहित होते हैं।[4] परस्पर अर्थानुगम को अन्वय या योग कहते हैं। वह योग गुण क्रिया तथा सम्बन्ध से उत्पन्न होता है। इस प्रकार यहाँ से १८ श्लोक तक कोषकार यौगिक शब्दों की ही व्याख्या करते हैं। तथा इसके पश्चात् लेखक ने स्वयं बताया कि इस कोष में पु० स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग का कोई ध्यान नहीं दिया गया है। क्योंकि यह विषय लिंगानुशासन का है।[5]

---

१. धनन्जय कोष । ३, ४

२. अभिधान चिन्तामणि ३।३७२, ३७३, ३७४

३. अभिधान चिन्तामणि । १।१

४. अभिधान चिन्तामणि । १।२

५. अभिधान चिन्तामणि १।१६

प्रथम काण्ड में गणधर आदि अंगों के सहित देवाधिदेव[1] (वर्तमान भूत तथा भविष्यन्त अर्हन्तो तथा उनके वाचक शब्दों) को द्वितीयकाण्ड में-अंगों भेदोपभेदों के सहित देवों को[2] तृतीय काण्ड में अंगों के सहित मनुष्यों को चतुर्थ काण्ड में अंगों के सहित तिर्यचों को और पाँचवें काण्ड में अंगों के सहित नारकीय जीवों को तथा षष्ठ काण्ड में साधारण तथा अव्यव शब्दों का उल्लेख है।

इस प्रकार लेखक ने उपर्युक्त प्रकार की प्रतिज्ञा कोष लिखने के लिए किया और उसी अनुसार शब्दों का चयन किया है।

आचार्य हेमचन्द्र ने इस ग्रन्थ की 'स्वोपज्ञ' नामक टीका भी लिखा और इस टीका में अपने पूर्ववर्ती ५६ आचार्यों का उल्लेख किया और ३१ ग्रन्थों का उल्लेख किया है। उनके नाम स्वोपज्ञवृति भावनगर से प्रकाशित संस्करण की पुष्टि एवं संख्याओं के साथ यहाँ लिखा जाता है। उनमें ५६ ग्रन्थकारों के नाम तथा कोष में क्रमशः पृष्ठों तथा पंक्तियों की संख्यायें हैं। अमर (५५-१७ तथा २१, ५६-२५) अमरादि (२७६-२१, २९६-१४), अलंकारकृत (११२-१३), आगमविद् (७०-१४), उत्पल (७४-१४), कात्य (५६-१०, ६१-८), कामन्दकि (५५०१४), कालिदास (४१३-२, ४४०-१६), कौटिल्य (७०-४, २९६-२), कौशिक (१६६-१३, १७०-२८), क्षीरस्वामी (३५०-९, ४६१-१७), गौड़ (३६-२९, ५३-३), चाणक्य (३९४-५), चान्द्र (५२८-२५), दन्तिल (१२१-२२, ५६३-३), दुर्ग (५८-२८, १७४-२७), दुमिल (१५१-७, २०९-२७), धनपाल (१-५, ७६-२१), धन्वन्तरि (१६६-२८, २५९-७), नन्दी (५२-२३), नारद (४५७-१८), नैरुक्त (१६४-१८, १८६-६), पदार्थविद् (२०८-२२), पालकाप्य (४१५-२७), पौराणिक (३७३-६), प्राच्य (२८-२६, ५७-२८), बुद्धिसागर (२४५-२५), बौद्ध (१०१-१७), भट्टतोत (२४-१७), भट्टि (५९३, २३), भरत (११७-९, १२४-२३), भागुरि (६६-१४, ६८-२७), भाष्यकर

---

१. देवाधिदेव प्रथमेकाण्ड़े १।२०

२. देवा द्वितीयके। अभिधान चिन्तामणि। १।२०

३. नरास्तृतीये तिर्यचस्तुर्य एकेन्द्रियादयः। एकेन्द्रियाः पृथिव्यम्बुतेजोवायुमहीरुहा
कृमिपीलक लूताद्याः स्युर्द्वित्रिचतुरन्द्रियाः। पंचेन्द्रिया श्चेभकेरिमत्स्याद्या
स्थलखाम्बुगाः
पंचेन्द्रिया एव देवा नरा नैरयिका अपि
नारकाः पंचमे सांगाः: षष्ठे साधारण स्फुटम
प्रस्तोष्यन्ते व्ययाश्चात्र १ त्वन्ताथादीन पूर्वगो॥ २०, २१, २२, २३,

(६६-२३, ३४८-१३, ३८६-२६), भोज (१५७-१७, १८८-२६) मनु (६३-११, १९५-१३), माघ (९२-१७), मुनि (१७१-८), याज्ञवल्क्य (३३६-२, ४८३-२०), याज्ञिक(१०३-९), लौकिक (३७८-२३, ४३३-३), लिंगानुशासनकृत (५३६-२४), वाग्भट्ट (१६७-१), वाचस्पति (१-६, २९-४), वासुकि (१-५) विश्वदत्त(४९-८), वैजयन्तीकार (१३१, २३, १३३-१९), वैद्य (१६६-२८, २५३-२३), व्याडि (१-५, ३४-२२ और२५), शाब्दिक(४३-७, १०२-७), शाश्वत (६४-७, १०२-७), श्रीहर्ष (११८-७) श्रुतिज्ञ (३३२-२७), सम्य(१३४-१, २५८-१२), स्मार्त (२०९-१०, ३४७-२, ३५८-१०), हलायुध (१४४-१५ और १६) तथा हृद्य (४५३-२७)

उपर्युक्त ग्रन्थकारों का उल्लेख श्री हेमचन्द्र ने किया है। इसके अतिरिक्त ३१ ग्रन्थों के भी नामों का उल्लेख किया है जो नीचे इसी प्रक्रिया से बताया जा रहा है।

ग्रन्थ—अमरकोष (८-५), अमरटीका (४५-१३, ५५-१), अमरमाला (४४०-३०), अमरशेष (१५३-२०, ४५६-१५), अर्थशास्त्र (२९७-२५, ३१६-२७), आगम (२१८-१६), चान्द्र (१५८-२६),जैनसमय (८०-६), टीका (५७४-२४), तर्क (५५०-५) त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित (१३-९, ८०-७), द्वयाश्रय महाकाव्य (६१०-१८ और २५), धनुर्वेद (३०९-१७, ३१०-८८, ३११-७) धातुपारायण (१-११, ६०९-५) नाट्यशास्त्र (११७-६, १२२-१३, २४३-१७), निघण्टु (४८४-३०) पुराण (५६-२१' ७०-१५), प्रमाण मीमांसा (५५५-२१), भारत (३३८ १३, ३९०-२७), महाभारत (८१-२३), माला (६८-२७, २९८-२५) योग-शास्त्र (४४५-७), लिंगानुशासन (८-४, १९३-१३, ६०९-११), वामनपुराण (४६-२९, ८२-८), विष्णुपुराण (६९-१९, ९३-१), वेद (३५-२२), वैजयन्ती (५७-३, १०९-१८), शाकटायन (२-१), श्रुति (२८-२५, ३०-१८), संहिता (९३-४, ९६-६) तथा स्मृति (३५-२७, ३६-७)।

इस प्रकार हेमचन्द्र ने स्वयं ५६ ग्रन्थकारों का और ३१ ग्रन्थों का उल्लेख अपने 'स्वोपज्ञ' टीका में किया। इन ग्रन्थों में बहुत से कोष ग्रन्थ बहुत से व्याकरण ग्रन्थ और महाकाव्य, पुराण, इतिहास, उपनिषद्, स्मृति अर्थशास्त्र, मीमांसा आदि के समस्त ग्रन्थ और ग्रन्थकारों का उल्लेख है जिससे स्पष्ट होता है कि हेमचन्द्र ने अपने कोष लिखने और कोष की स्वोपज्ञ टीका लिखने के लिए ग्रन्थों का आधार लिया था।

अनेकार्थ संग्रह (हेमचद्र)

अनेकार्थ संग्रह नामक कोष में श्री हेमचन्द्र शब्दों का चयन वर्णमाला के आधार पर क्रमपूर्वक किया है। प्रथम काण्ड में 'क' वर्ण से प्रारम्भ किया है।

क शब्द से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के अर्थों का उल्लेख करने के बाद क्रमशः ख,[१] च ज तथा अन्त में भा शब्द से प्रारम्भ शब्दों के अर्थों को बताया है। द्वितीय काण्ड में शब्दों का संग्रह भी वर्णमाला के आधार द्विस्वरों में किया गया है। अकारादि शब्दों का चयन पहले और ककरादि का चयन वाद में किया गया है।[२] प्रत्येक शब्द में दो स्वर तथा प्रत्येक शब्द के अन्त वाले अक्षर का क्रम वर्णमाला के आधार पर किया गया है जैसे दो स्वर से युक्त पहले उन शब्दों का चयन किया गया जिन शब्दों के अन्त में क अक्षर पड़े। जैसे अर्क, अकं, कर्ककाक छेको इत्यादि तथा जहाँ पर ऐसे शव्द समाप्त हो जाते हैं जिनके अन्त में क हो वहाँ लेखक ने लिख दिया है कि 'इति द्विस्वरकान्तः इसी प्रकार द्विस्वर खाना, गान्त, ह्यान्त चान्त अर्थात् क्रम पूर्वक द्विस्वर वाले शब्द में अन्तिम अक्षर वर्णमाला के आधार पर क वर्ण से लेकर ह् वर्ण तक के शब्दों का संग्रह किया है, यही पद्धति तृतीय काण्ड में भी अपनायी गई है। अन्तर केवल इतना है कि द्वितीय काण्ड में दो स्वर के ही शब्द प्रयुक्त किये गये हैं और तृतीय काण्ड में तीन स्वर के शब्द प्रयुक्त किए गए हैं और इसी प्रकार चौथे काण्ड में भी चार स्वर के शब्दों को संग्रहीत किया गया है। इसी पद्धति के आधार पर ही शब्दों के अन्तिम अक्षर 'क' से लेकर 'ह्' तक के अक्षरों वाले शब्दों के अनेक नामों का उल्लेख किया गया। पंचम काण्ड में भी पंचस्वर के शब्दों का उल्लेख अन्तिम अक्षर का क्रम क्रमशः क से लेकर ह् तक के शब्दों का किया गया है। षष्ठ स्वर से युक्त शब्दों का चयन षष्ठ काण्ड में किया गया है। इस काण्ड में कुछ शब्दों का उल्लेख है। अन्तिम अक्षर का क्रम क वर्ण से ही प्रारम्भ होता है। उदाहरण के लिए ग्राममृदगुरिका मदनशलाका, मातुल पुत्रक, वर्णविलोडकः, सिन्दूर तिलकः इत्यादि।[3] इस काण्ड में केवल कान्त अर्थात् जिस शब्द के अन्त में क अक्षर हो णान्त अर्थात् जिस शब्द के अन्त में ण अक्षर हो जैसे दोहदलक्षण, यौवनलक्षण, तथा जिस शब्द के अन्त में त अक्षर हो ऐसे ही शब्दों का उल्लेख किया गया है। षष्ठ काण्ड में कुल १० ही शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है। अन्तिम काण्ड परिशिष्ट काण्ड तथा अव्यय काण्ड बताया गया है। इस काण्ड में दो शव्दों का चयन सबसे पहले स्वर क्रम से किया गया है। अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ इत्यादि शब्दों का अर्थ सबसे पहले बताया गया है। लेखक ने इसके लिए लिखा भी है कि इस काण्ड में स्वर

---

१. खं स्वसंविदि व्योमनीन्द्रिये १;५

२. अकरादिक्रमोऽत्रादौ ककारादिक्रमोऽन्ततः ॥१।२.

३. अनेकार्थ संग्रह । ६; १, २, ३, ४

से पहले अव्ययों को लिखता हूँ ।[१] और इसके पश्चात एक स्वर अव्यय में क अक्षर से प्रारम्भ करके ह अक्षर तक के अर्थों का उल्लेख किया है, तथा बाद में द्विस्वर अव्यय के शब्दों को प्रयुक्त किया है जैसे, तिर्यक, हिरुक इत्यादि ।[२] तीन स्वर अव्यय का कोई क्रम स्पष्ट नहीं दिखाई देता है, और न तो वर्णक्रम का ही कोई आधार लिया गया है । इसी प्रकार चतुःस्वर अव्यय और पंचम स्वर अव्यय का भी संग्रह किया गया है ।

इस प्रकार प्रस्तुत कोष के शब्द चयन का क्रम स्वर के ही आधार पर किया गया है । द्वितीय से षष्ठ काण्ड में अन्तिम अक्षर का चयन वर्णमाला के क्रम को ध्यान में रखकर ही किया गया है । परिशिष्ट काण्ड अव्यय काण्ड में पहले स्वरों का संग्रह फिर सामान्य रूप से अव्ययों का संग्रह किया गया है ।

श्री हेमचन्द्र ने अनेकार्थ संग्रह नामक कोष लिखा[३] इसमें उन्होंने एक ही शब्द के अनेक अर्थ दिए हैं जैसे राका[४] के अनेक अर्थों में चन्द्रमा, नदी इत्यादि अर्थ दिए । शाखा के अनेक अर्थों में वृक्ष की शाखा, वेद की शाखा इत्यादि अर्थ दिए[५] हैं । अनेकार्थ संग्रह कोष का नाम भी इसी आधार पर किया गया है । श्री हेमचन्द्र से पूर्व भी अनेकार्थ कोष लिखे गए हैं । शाश्वत ने अनेकार्थ समुच्चय लिखा है । इसमें अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है । अनेकार्थ ध्वनि मन्जरी महाक्षपणक ने लिखा, अनेकार्थ कोष (नानार्थ कोष) अजयपाल ने लिखा । इस प्रकार अनेकार्थक कोष लिखने की परम्परा बहुत प्राचीन थी, जिसका अनुकरण हेमचन्द्र ने किया

आचार्य हेमचन्द्र अनेकार्थ संग्रह नामक कोष में एक शब्द के अनेक अर्थों का संकलन किया है । इनके पूर्व शाश्वत ने भी अपने कोष अनेकार्थ समुच्चय में एक शब्द के अनेक अर्थों का संकलन किया था । कुछ शब्दों को हेमचन्द्र शाश्वतकोष से लिया है जैसे चित्र के अनेकार्थों में शाश्वत ने लिखा है—

"चित्रंतिलकमिच्छन्ति चित्रभालेख्ययमद्‌भुतम् ।।[६]

और हेमचन्द्र ने लिखा,······**चित्रखेतिलकेऽद्‌भुते, आलेख्य कजुरे[७]**

मधु के लिए शाश्वत ने लिखा है —

---

१. अथाऽव्ययानि वक्ष्यन्ते प्राग्देव स्वरक्रमात् परिशिष्ट काण्ड । १.
२. अनेकार्थ संग्रह परिशिष्ट काण्ड । २६, २७.
३. कुर्वेऽनेकार्थसंग्रहम । अनेकार्थ संग्रह १।१
४. अनेकार्थ संग्रह
५. अनेकार्थ संग्रह
६. अनेकार्थ समुच्चय शाश्वत ।१७
७. अनेकार्थ संग्रह हेमचन्द्र ।२।४२१

"मधुमद्यं मधु क्षौद्रं मधुपुष्परसंविदुः
मधुर्दैत्यो मधुश्चैत्रौ मधुकोपिमधुर्मतः ।[1]

और हेमचन्द्र ने

"मधुश्चैत्रर्तुदैत्येषु जीवाशाकमधूकयोः
मधुक्षीरेजलेपद्यै मद्यें क्षौद्रे पुष्परसेऽपिच ॥[2]

और इसी प्रकार पुण्डरीक के लिए देखिए

"पुण्डरीकं सितच्छत्रं पुण्डरीकं सिताम्बुजम्
व्याघ्रो पि पुण्डरीकः स्यात्पुण्डरीकश्च दिग्गज; ।[3]

और हेमचन्द्र ने

व्याघ्रो पि पुण्डरीकः पुण्डरीकं सिताम्बुजे
सितच्छत्रै भेषजेच पुण्डरीको ग्निदिग्गजे ।"[4]

और इसी प्रकार प्रसव के लिए

"उत्पादः प्रसवोज्ञेनयः प्रसदोगर्भमोचतम्
पुष्पं फलं च बृक्षाणां प्रसवं परिचक्षते ॥[5]

और हेमचन्द्र ने—

"प्रसवः पुष्पफलोऽपत्ये गर्भमोचने
उत्पादे च प्रसेवस्तु वोणांगस्यूतयोर्दट्टतौ ॥[6]

इस प्रकार हेमचन्द्र ने शाश्वत कोष का अनुकरण किया ।

इसके अतिरिक्त अमरकोष यद्यपि एकार्थक कोष है फिर भी अमरकोष के

---

१. अनेकार्थ समुच्चय शाश्वत ।३
२. अनेकार्थ संग्रह हेमचन्द्र, २।२४७, २४८
३. अनेकार्थ समुच्चय शाश्वत ।१४
४. अनेकार्थ संग्रह हेमचन्द्र ।४।२०।२१
५. अनेकार्थ समुच्चय शाश्वत ।६४
६. अनेकार्थ संग्रह हेमचन्द्र ।३।७४०

शब्दों को हेमचन्द्र ने प्रयोग किया जैसे पर्वतों में हेमचन्द्र ने विन्ध्य[१], अर्बुद[२], गन्धमादन[३], गण्डशैल[४], त्रिकूट[५] का उल्लेख किया और अमरसिंह ने भी विन्ध्य[६], त्रिकूट[७] गन्धमादन[८], गण्डशैल[९] का प्रयोग किया था। इस प्रकार अमरकोष को भी आधार बनाया था।

हेमचंद्र (निघण्टु शेष)

हेमचन्द्र ने "निघण्टु" शेष नामक कोष में जिस पद्धति का आश्रय लिया है यह अन्य कोषों से सर्वथा भिन्न है, जैसे इस कोष में केवल वनस्पतियों के हीं नामों का उल्लेख किया गया है। अमरसिंह ने भी वनस्पतियों का उल्लेख किया है, लेकिन अमरकोष के ही अन्तर्गत एक काण्ड स्वतन्त्र रूप से वनौषधि वर्ग के नाम से उसमें वनस्पतियों का उल्लेख किया है। धन्वन्तरि ने भी वनौषधि का उल्लेख किया है, परन्तु उन्होंने भी स्वतन्त्र रूप से कोई अलग कोष नहीं लिखा। इस तरह हेमचन्द्र ने जो परम्परा "निघण्टु शेष" नामक कोष में लिया है वह अलग ही है। इस कोष में वनस्पतियों का उल्लेख किया गया है। इसके लिए अलग अलग काण्डों में अलग अलग वनस्पतियाँ जैसे प्रथम काण्ड वृक्ष काण्ड है इसमें समस्त वृक्षों का उल्लेख द्वितीय काण्ड गुल्मकाण्ड है। इसमें गुल्मों का उल्लेख तथा तृतीय काण्ड में लताओं का उल्लेख चतुर्थ काण्ड में शाक का उल्लेख पंचम काण्ड में तृण का उल्लेख और षष्ठ काण्ड में धान्यों का उल्लेख करके संस्कृत कोष साहित्य में एक नई पद्धति का निर्माण किया है। हेमचन्द्र ने अन्य तीन कोषों में मुख्य विषयों का कथन कर चुके हैं, जिस कारण से स्वतन्त्र रूप से वनस्पतियों का उल्लेख निघण्टु शेष नामक कोष में किया है।

शब्दचयन का क्रम :—श्री हेमचन्द्र ये निघण्टु शेष नामक कोष में वनस्पतियों का मात्र उल्लेख किया है। किसी वर्ण, अक्षर, पद एवं वाक्य का क्रम नहीं रखा है, केवल काण्ड के आधार पर वनस्पतियों का ही क्रम लिया है।

---

१. अनेकार्थ संग्रह हेमचन्द्र ।२।३८४
२. —वही— ३।३४२
३. —वही— ५।३०
४. —वही— ४।३००
५. —वही— ३।१६०
६. अमरकोष २।१।७
७. अमरकोष २।३।२
८. अमरकोष २।३।३
९. अमरकोष २।३।६

कोषकार ने शब्दों के चयन का कोई विशेष शब्द, अक्षर का क्रम न रखते हुए काण्डों के आधार पर शब्दों का क्रम रखा है । वृक्ष काण्ड में वृक्ष वाचक ही शब्दों का संकलन, गुल्मकाण्ड में गुल्म वाचक ही शब्दों का संकलन और तृण काण्ड में तृणवाचक शब्दों का ही संकलन किया है । अर्थात काण्डों के क्रम के आधार पर कोषकार ने शब्दों के चयन का क्रम रखा है ।

श्री हेमचन्द्र ने निघण्टु शेष में मात्र वनस्पतियों का उल्लेख किया है, इनके पूर्व अमरकोष ने भी वनस्पतियों का उल्लेख अमरकोष में किया है। धन्वन्तरि ने भी वनस्पतियों का उल्लेख किया है । ये दोनों कोषकार हेमचन्द्र से पूर्व हुए हैं, अतः हेमचन्द्र ने इन्हीं आचार्यों के आधार पर अपने कोष निघण्टु शेष का निर्माण किया है । कुछ श्लोक तो ऐसे मिले हैं ओ धन्वन्तरि और हेमचन्द्र के शब्दशः एक ही तरह के हैं जिससे स्पष्ट होता है कि हेमचन्द्र ने उनका अनुकरण किया है । नीचे कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं। हेमचन्द्र ने पाटली पाटला के निम्न नाम दिए हैं—

"पाटल्यां पाटला स्थाल्यमोघा तोयाधिवासिनी
वसन्त-कामयोर्दूती कुम्भिका कालवृत्तिका ।।१६। निघण्टु शेष ।

और अमरसिंह ने भी

"पाटलिः पाटला मोधा कालास्थालीफलेरुहा
कृणवृन्ता कुबेराक्षी (अमर का० २ वर्ग ४ श्लोक ५४,५५)।

और—

"कुचन्दने सु पत्रांग पट्टरज्जनम्
सुरंगयं रक्तकाष्ठं पत्तूरं तिलपर्णिका ।। निघण्टु शेष ।१।२५

अमरसिंह ने भी कहा है

"तिलपर्णी तु पत्रांग रंजनं रक्तचन्दनम् ।
कुचन्दनं च ।। अमर २।६।१३२

हेमचन्द्र --

सप्तच्छेद शुक्तिपर्णो गुच्छपुष्पः सुपर्णकः
स्थूलपर्णो दीर्घवृक्षः शारदो विषमच्छदः ।।

और अमरसिंह ने भी

"सप्तपर्णो विशालत्वक् शारदो विषमच्छदः अमर २।४।२३

"अरिष्टो हिंगुनिर्यासो नेता नियमनोऽपि च ।।१।१७३
"हिगुनिर्यास शब्दों यं निम्बे हिंगुरसेऽपि च ।।" शाश्वत ।३७३
"करजे स्यान्नक्तमाला पूतिकश्चिरिबिल्वकः
करणः श्लीपदारिश्च प्रकीणः कलिनाशषकः
पूतिकरंजो गौरश्च सुमनाधृत पर्णकः ।।निघण्टु शेष । १४४

और अमरकोष में—

"चिरिबिल्वो नक्तमालः करजश्च करंजके
प्रकीर्यः पूतिकरजः पूतिरुः कलिमारकः ।।
अमरकोष २।४।४७-४८

और हेमचन्द्र ने हरिद्रा नाम इस प्रकार से बताया है ।

"हरिद्रायां वर्णवती कांचनी वरवर्णिनी
निशाख्य रजनिगौरी पीतिका मेहधातिनी
वैश्या विटप्रियापिंगा हरिताच्च तरि गणी ।। नि० शे० २।२१३

और धन्वन्तरि ने भी लिखा

"हरिद्रा पीतिका पिंगा रजनी रज्यनी निशा
गौर्य वर्णवती पीता हरिता वरवर्णिनी
हलदी हलना श्रेष्ठा ज्ञेया वर्णविलासिनी
विषध्नी च जयन्ती च दीर्घरक्ता सुरंगिणी
धन्वन्तरि वर्ग १ श्लोक ५४-५५

और हेमचन्द्र ने लिखा—

"यवासके धन्वयासो यासो धन्वयवासकः
वीरमूलो दीर्घमूले बालपत्रो मरुद्भवः
अधिकष्टकः कुनाशस्ताम्रमूली प्रतोदिनी
दुःस्पर्शा कच्छुराऽनन्ता समुद्रान्ता दुरालभा ।।२।२२।२२८

और धन्वन्तरि ने भी लिखा—

'यासो यवासकोऽनन्ता बालपत्रोऽधिकारकः
बीरमूला समुद्रान्ता दीर्घ मूलोमरुद्भवः
धन्वयासो दुरालम्भा ताम्रमुली च कच्छुरा
दुरालभा च दुःस्पर्शा या सो धन्वयवासकः
धन्वन्तरि वर्ग १ श्लोक २०, २२.

और हेमचन्द्र ने यह लिखा—

'बालके जलकेशाख्यं बर्हिष्ठम् दीर्घरोमकार
ह्रीबेरोदीच्य वज्राणि पिंगमाचमनं कचम् । २।२३१

धन्वन्तरि ने भी लिखा—

बालकं वारितोयं च ह्रीबेरं जलमंबुच
केशं वज्रमुदीच्यंच पिंगमाचमनं कचम् ।।
धन्वन्तरि वर्ग १। श्लोक ४७

और लताकाण्ड में हेमचन्द्र ने लिखा—

गुंजायां कृष्णला काकचिन्हिगा
काकादनी काकानखी, रक्तिका काकनन्तिका
काकपीलुश्चक्रशल्या दुर्मेषा ताम्रिकोच्चटा
चूड़ामणिद्रुमोदूर्धा च शीतपाकीशिखण्डिनी ।,
निघण्टु शेष ३।२६२, २६३.

इसी को धन्वन्तरि ने इस प्रकर से लिखा था—

'काकादनी काकपीलुः काकशिम्बिश्च रक्तिका
चक्रशल्या ध्वांक्षनखी द्रुमोदधा काकनन्तिका
चूड़ामणि शीतपाकी शिखण्डा कृष्णला मता
उच्चटा ताम्रिका गुंजा चटकी काकसाह्वया।।
धन्वन्तरि वर्ग ४। श्लोक २७, २८.

उपर्युक्त श्लोकों से यह पता चलता है कि हेमचन्द्र और धन्वन्तरि के शब्द एक हैं । धन्वन्तरि हेमचन्द्र से प्राचीन हैं क्योंकि धन्वन्तरि की गणना अमरसिंह के साथ विक्रमादित्य के नवरत्नों में की जाती है । अतः धन्वन्तरि के कोष का अनुकरण हेमचन्द्र ने किया जिससे उससे मिलते शब्दों का संग्रह किया है, अमरसिंह के भी बहुत शब्द निघण्टु शेष में प्रयुक्त हुए हैं, जो ऊपर श्लोकों द्वारा स्पष्ट किया गया, अतः अमरसिंह के अमरकोष का भी अध्ययन हेमचन्द्र ने किया है । इसी प्रकार हेमचन्द्र शाश्वत के अनेकार्थ समुच्चय नामक कोष का भी अध्ययन किया है क्योंकि शाश्वत कोष के शब्द निघण्टु शेष में प्रयुक्त हुए हैं । इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र ने पाणिनि अष्टाध्यायी, और महाकवियों के काव्यों का भी अध्ययन किया था ।

इस तरह प्रस्तुत कोष निघण्टु शेष के लिए जिन ग्रन्थों से सामग्री का संकलन हेमचन्द्र ने किया था उसमें मुख्य रूप से पाणिनि अष्टाध्यायी अमरसिंह का अमरकोष, धन्वन्तरिकोष, शाश्वत का अनेकार्थ समुच्चय आदि है ।

नानार्थ मंजरी (राघव)

प्रस्तुत कोष में एक शब्द के कई अर्थ दिए गए हैं इसीलिए इस कोष का नाम नानार्थ मंजरी है इस प्रकार के कोषों में 'अनेकार्थ समुच्चय' शाश्वत 'अनेकार्थ ध्वनि मंजरी' महाक्षपणक 'मेदिनी कोष', और हेमचन्द्र का 'अनोकार्थ संग्रह' आदि हैं। इस प्रकार की प्रणाली को नानार्थक या अनेकार्थक कहते हैं। इससे भिन्न प्रणाली एकार्थक या समानार्थक कही जाती है।

प्रस्तुत कोष में शब्दों का चयन बड़े अच्छे ढंग से क्रम पूर्वक किया गया है। इस कोष में यद्यपि काण्ड, वर्ग, अध्याय आदि का विभाग नहीं किया गया है, फिर भी प्रत्येक अक्षर स्वर 'अ' से लेकर व्यंन्जन क्ष तक ४२ अक्षरों में प्रत्येक के चार विभाग किए गए हैं, जैसे वर्णमाला के 'क' अक्षर के प्रथम विभाग ऐसा किया गया है कि 'क' अक्षर से एक ही अक्षर के शब्दों का अर्थ दिया गया है। जैसे 'को' शब्द का अर्थ ब्रह्मणि, अर्क, वायु, अग्नि, शमन, स्वर्ग[1] आदि दूसरा विभाग द्वयक्षर कान्त, इसमें दो अक्षर का शब्द होगा और उस शब्द का क्रम इस प्रकार से होगा कि 'क' अक्षर अन्त में पड़े जैसे 'अर्क' शब्द का अर्थ कपर्ण' स्फटिक, ताम्र, सूर्य, दिवस्पति आदि दिए हैं[2] और तीसरे विभाग में क्रम यही रहेगा लेकिन शब्द तीन अक्षर का होगा अर्थात तीन अक्षर का कान्त शब्द जैसे करक शब्द का अर्थ पक्षि, कमण्डल, करकं दिया है[3] इसी प्रकार चौथे विभाग में सम्पूर्ण प्रक्रिया उपर्युक्त केवल शब्द चार अक्षर का होगा जैसे पुण्डरीक-व्याघ्र, दिग्गज, कमल, विष्णु[4] इसी प्रकार से समस्त अक्षरों का विभाग एवं अन्तिम अक्षर का क्रम वर्णमाला के आधार पर किया गया है और यही शब्द और उनके अर्थ के चयन का क्रम है।

कोषकार ने सर्वप्रथम बताया है कि विश्व प्रकार आदि से शब्दों को लेकर मै नानार्थ मंजरी की रचना बालकों के ज्ञान सिद्धि के लिए लिख रहा हूं।[5] कोषकार ने यहां 'समाहृत्य' शब्द का प्रयोग किया है ठीक इसी अर्थ में 'समाहृत्य' शब्द का प्रयोग पहले अमरकोष में किया है[6]

---

१. नानार्थ मंजरी एकाक्षर कान्त। १
२. नानार्थ मंजरी द्वयाक्षर कान्त। १
३. नानार्थ मंजरी त्र्यक्षर कान्त। १
४. नानार्थ मंजरी चतुरक्षर कान्त। १
५. विश्वादीनि समाहृत्य बालानां ज्ञान सिद्धये
कविना राघवेणाथ कृता नानार्थ मंजरी। २
६. समाहृत्यन्यतन्त्राणि संक्षिप्ते प्रतिसंस्कृतै
सम्पूर्ण उच्यते वर्ग नामलिंगानुशासनम्। अमर।

इसके अतिरिक्त कोषकार ने अपने से पूर्व कोषकारों को बताया है उन कोषों और कोषकारों में विश्व प्रकाश, गोपाल, शेषकार, धनन्जय, शब्दार्णव, वैजयन्ती, सूर्य रुद्र, यादव प्रकाश, प्रताप, भागुरि, दण्डी, रभस, हलायुध, सुभूति, हरिविष्णु, वररुचि, अमर, उत्पल, अजय, शाश्वत आदि ।[1] कोषों और कोषकारों को बताया है कि हमसे प्राचीन हुए हैं, इन कोषों और कोषकारों से राघव भली प्रकार से परिचित थे और इन्हीं कोषों में बताए गए पद्धति प्रणाली एवं शब्दों के चयन के अनुसार अपने कोष की रचना की है ।

शब्दों के चयन के लिए पहले उनके संग्रह को देखना पड़ता है, इसके लिए कोषों की आवश्यकता होती है, जिसके लिए कोषकार ने उपर्युक्त कोषकारों के नामों का उल्लेख किया है । अमर और शाश्वत कोष का तो मुख्य आधार कोषकार ने लिया ही है ।

नानार्थ संग्रह (अजयपाल)

प्रस्तुत कोष में एक शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है । इस प्रकार के कोष को नानार्थ कोष या अनेकार्थ कोष कहते हैं, ऐसे कोषों में सर्वप्रथम शाश्वत ने अनेकार्थ समुच्चय, महाक्षपणक में अनेकार्थ ध्वनि मंजरी, हेमचन्द्र ने अनेकार्थ संग्रह अनेकार्थ तिलक महीप, नानार्थ मंजरी राघव आदि हैं, इसी पद्धति का यह प्रस्तुत नानार्थ संग्रह नाम का कोष है ।

दूसरी प्रणाली कोषों में विभागों की होती है । कुछ कोषों में काण्ड, वर्ग, अध्याय, उच्छ्वास, वर्णमाला के अक्षर आदि के द्वारा विभाग रहता है और कुछ कोषों में नहीं रहता है जैसे शाश्वत कोष में विभाग नहीं है और न कोई क्रम है । लेकिन प्रस्तुत कोष में यद्यपि विभाग कोई नहीं है फिर वर्णमाला का क्रम है ।

प्रस्तुत कोष में शब्द चयन के लिए वर्णमाला के अक्षरों का आश्रय लिया है । कोषकार ने क्रमशः अकार से शब्दों का चयन किया है और उनके अर्थों को बताया है । अकार से जितने शब्द प्रारम्भ होते हैं । पहले उनके शब्दार्थ फिर अकार से जितने शब्द शुरू होते हैं उनके शब्दार्थ इसी तरह इकार,

---

१. **विश्वप्रकाशो गोपालःशेषकारो धनंजयः**
शब्दार्णवो वैजयन्ती सूर्योरुद्रश्च यादव
प्रतापो भागुरिर्दण्डीच रभस हलायुधः
सुभूतिर्हरिविष्णु च वररुच्यमरोत्पलाः
अजयः शाश्वतश्चेते उच्यन्ते
पण्डितैः पुरा ॥

ईकार, उकार अकार, ऋकार, एकार, ऐकार, ओकार, औकार से प्रारम्भ शब्दों के अर्थों का क्रमशः उल्लेख और फिर ककार, से क्रमशः सकार तक के शब्दों के अर्थों को बताया है। जैसे ककार में कृष्ण शब्द के अर्थ में वर्ण विशेष, विष्णु, व्यास, धनन्जय आदि[1] खकार के खर शब्द का अर्थ गर्दभ, तीक्षण, दुस्पर्श राक्षस आदि[2] अर्थ इसी तरह गकार में गौरी का अर्थ आठ वर्ष की कन्या, पार्वती[3] आदि अर्थ दिए हैं इसी क्रम से सभी वर्णों के शब्दों का अर्थ दिया गया है।

श्री अजयपाल के नानार्थ कोष में अनेक अर्थ दिए गए हैं। अजयपाल का समय ११४० है, इनके पूर्व ११०० में आचार्य यादव प्रकाश ने वैजयन्ती नामक कोष लिख चुके थे, उन्होंने भी अपने कोष में नानार्थ भाग में शब्दों के अर्थों को बताया है। कुछ शब्द तो अजयपाल उन्हीं से लिये हैं, जैसे अंशुक शब्द वस्त्र अर्थ में लिखा है।

वैजयन्ती

(१) अंशुकं केवलेवस्त्रे सूक्ष्मवस्त्रोत्तरीययौ;। नानार्थभाग त्र्यक्षरकाण्डे नपुंसक लिंग अध्याय ।२

(२) अंशुकं वसनेसूक्ष्मे वस्त्रमात्रान्तरीययोः। नानार्थ संग्रह अकार ।४४.

(१) अपवर्ग क्रियासाध्यफलाप्तौ त्यागमोक्षयौ :। नानार्थ भाग शे० का० पु० ।६

(२) अपवर्ग क्रियाशेष साफल्यत्यागमुक्तिषु।। नानार्थ, अजय। अकार ।३१

(१) निकारस्तु तिरस्कारे धान्यस्योत्क्षेपणेऽपिच। यादव त्र्यक्षर पु० ३७

(२) निकारः स्यात्यरिभवे धान्यस्योत्क्षेपर्ण तथा। नानार्थ संग्रह अजय। नकार।२१

(१) निगमो निश्चये वेदे पुरे पथि वणिक्यये वैजयन्ती त्र्यक्ष० पु०।३५

(२) निगमो नगरे वेदे निश्चयेचे वणिम्यथे।। नानार्थ संग्रह अजय नकार। ५

(१) निषधोऽद्रौदेश भेदे कठिने तस्य राजनि। वैजयन्ती नानार्थ त्र्य० पु०।३८

(२) निषधोदेशेऽद्रिभेदे कठिने निषधाधिये। अजयपाल नकार।२२

(१) शाखा वेद प्रभावेषु बाहै। पादद्रुमागयोः। वैजयन्ती द्वयक्षर पु०।३६

---

१. नानार्थ संग्रह ककार। १

२. नानार्थ संग्रह खकार। १.

३. नानार्थ संग्रह गकार।२.

(२) शाखा वेद विभागेच तरोखयवो भुजे । अजय। शकार ।३८
(१) वयः खगेऽन्ने वर्षेऽर्थे शुभाकारे तनौवपुः। वै०द्वय० नपु०।३०
(२) वयः पक्षिणि धान्यादो दृश्यते योवनेऽपिच। अजयपाल नकार।३२
(१) करणं कारणे काये साधने ववकारिषु ॥ वैजयन्ती त्र्य० न०।९
(२) करणं कारणे काये साधनेन्द्रियर्मकसु । अजयपाल ककार ।५

इस तरह उपर्युक्त उदाहरणों के देखने से यह स्पष्ट होता है कि श्री अजयपाल ने वैजयन्ती कोष के शब्दों को अपने कोष में कुछ अक्षरशः उतार लिया है। अतः कोषकार को कोष लिखने का मुख्य आधार ग्रन्थ वैजयन्ती कोष था और इसके अतिरिक्त व्याकरण, साहित्य, महाकाव्य आदि ग्रन्थों को भी कोषकार ने आधार ग्रन्थ बनाया था।

धरणिकोष (धरणिधर)

प्रस्तुत कोष में अनेकार्थ पद्धति का अनुकरण किया गया है। इस पद्धति में एक ही शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है।

इस कोष में वर्णमाला के क्रम के अनुसार शब्दों का संग्रह और उनके अर्थों को बताया गया है। प्रस्तुत कोष में शब्दों का चयन वर्णमाला के क्रम के आधार पर किया गया है। सर्वप्रथम 'कान्त' वर्ग में क पादः कार्धश्लोकः, क श्लोकः ये विभाग किये गये हैं। क पादः के अधिकार तक एक श्लोक में चार पादों के अनुसार चार शब्दों के अर्थों को दिया गया है। कर्धश्लोक में एक श्लोक कान्त, दो शब्दों के अर्थों का उल्लेख किया गया है। क श्लोक में कान्त एक ही शब्द के अर्थों का विवेचन किया गया है, यही पद्धति शब्द चयन में सम्पूर्ण अक्षरों के साथ अपनाई गई है अर्थात सभी अक्षर के तीन भाग प्रथम भाग में श्लोक में चार शब्दों के अर्थ द्वितीय भाग में श्लोक में दो ही शब्दों के अर्थ तृतीय भाग में एक श्लोक में एक ही शब्द के अर्थ का उल्लेख किया गया है। जिस अक्षर के शब्दों का उल्लेख किया जाता है, वह अक्षर का क्रम शब्द के अन्तिम अक्षर पर पड़ता है। इसमें किसी वर्ग, काण्ड, अध्याय का इसके अतिरिक्त आधार नहीं लिया गया है और न तो शब्द में एकाक्षर द्वयक्षर त्र्यक्षर आदि क्रम से शब्दों का चयन किया गया है जो ही शब्द जहाँ उचित समझा गया कोषकार ने प्रयुक्त कर दिया।

शब्द संग्रह के आधार

कोषकार श्री धरणिधर ने अमरकोष को शब्द संग्रह को आधार बनाया था और यहां तक अमरकोष की कुछ पंक्तियां अपने कोष में अक्षरशः उतार ली है, जैसे—

(१) समाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः
सम्पूर्णमुच्यते वर्गेर्नामलिंगानुशासनम् ।। अमर १।१।२

(२) समाहृत्यान्यतन्त्राणि क्रियते सारसंग्रह
पादैः पादद्वयैः श्लोकैरनेकार्थ समुच्चयः ।। धरणिकोष ३,४

(१) ······लोकस्तुभुवने जने ।
पद्यं यशसि च श्लोकः ।। अमर ३, ३।२

(२) श्लोकोयशसिपद्ये स्याल्लोकस्तुभुवने जने । धरणि कोष ।१६

(१) एके मुख्यान्यकेवलाः । अमर ३।३।१६

(२) एके मुख्यान्यकेवलाः । धरणिकोष । २४

(१) इक्ष्वाकुः कटुतुम्बीस्यात् । अमर २।४।१५६, धरणिकोष ।८४

(२) प्रज्ञानं बुद्धचिन्ह्योः । अमर , ३।३।१२२, धरणि १३३४

(३) तलिनं विरले स्तोके । अमर ३।३।१२७, धरणि १३३१

(४) क्रन्दने रोदनाह्वाने । अमर ३;३।१२३, धरणि १३४०

(५) स्यादर्याः स्वामीवैश्ययोः । अमर ३।३।१४७

(६) स्यादस्वामी वैश्ययोः । धरणि १८१७

(७) मन्युर्दैन्ये क्रतो क्रुधि । अमर ३।३।१५४। धरणि १८१६

(८) लीला विलास क्रियया । अमर ३।३।१६६; धरणि २३०५

(९) चक्रवालं तु मण्डलम् । अमर । १।३।६ और लोका लोकश्चलवाल
अमर २।३।२ लोकालौके चक्रवालं तु मण्डलम् धरणि । २४३१

(१०) स्यात्कर्कशः साहसिकः । अमर ३।३।२१
कर्कशः स्यात्साहसिके । धरणि २६३१

(११) न्यक्षं कान्सर्न्य कृष्टयोः । अमर ३।३।२२५, धरणि २८२८

इस तरह उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि धरणिधर ने अपने कोष में अमरकोष से पर्याप्त सामग्री ली है, इसके अतिरिक्त शाश्वत कोष और कल्पद्रु कोष से भी धरणिधर ने अपने कोष निर्माण के लिए सामग्री ली है, क्योंकि बहुत पंक्तियां एक दूसरे से उपर्युक्त प्रकार से मिलती हैं ।

नाममालिका (भोज)

प्रस्तुत कोष से शब्दों के पर्यायों का उल्लेख किया गया है । स्वर्ग के इतने नाम, वरुण के इतने नाम, पृथ्वी के अमुक नाम इत्यादि ।

कोषों में शब्दों के पर्यायों में एक प्रणाली और इस प्रकार की होती है कि कोषों में नाम के अनुसार विभाग होते हैं, जैसे स्वर्ग वर्ग, देव वर्ग, भूमि-वर्ग, मनुष्यवर्ग, ब्रह्मवर्ग, क्षत्रियवर्ग में सम्बन्धित शब्दों का ही संग्रह होता है। प्रस्तुत कोष में भी इसी प्रकार के तीन विभाग है।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन के लिए किसी भी वर्णमाला के क्रम का उल्लेख नहीं है, परन्तु प्रस्तुत कोष में तीन विभाग किए गए हैं—

(१) स्वर्गादि नामधेयप्रकरण, इसमें स्वर्गस्थ देवताओं के नामों का क्रमशः संग्रह है, (२) गगनादि नामधेय प्रकरण—इसमें अन्तरिक्ष, दिशा आदि के नामों का क्र मशः संग्रह है, (३) भूम्यादि नामधेय प्रकरण इस विभाग में भूमि, देश, प्रदेश, पर्वत, नदी, ग्राम, नगर, पशु, पक्षी, वनस्पति, औषधिलता, वृक्ष आदि का क्रमशः संग्रह मनुष्य चारों वर्ग, वर्ण, आश्रम, जाति, कुल, वस्त्र, आभूषण वेषभूषा आदि का क्रमशः वर्णन है।

कोषकार ने अमरकोष के पद्धति का अनुकरण करके उसी के आधार पर अपने कोषों में शब्दों का संग्रह किया गया है। अमरकोष में पहला वर्ग स्वर्ग वर्ग है और उसमें सबसे पहले स्वर्ग के नामों का उल्लेख किया गया है, जिसमें स्वः स्वर्ग, नाक, त्रिदिव, त्रिदशालय, सुरलोक द्यौः त्रिविष्टपम आदि[1] नाम दिए हैं और नाममालिका में भी सर्वप्रथम स्वर्गादि प्रकरण में स्वर्ग के ही नामों का उल्लेख किया गया है, जिसमें स्वर्ग, नाक, त्रिलोकांग्र, सुधावास, बुधालय, मन्दाकिनीधर दिव्य खपुर आदि[2]। इसी प्रकार इसी वर्ग में इन्द्र के नामों को देखा जाय, जितने नाम इन्द्र के प्रस्तुत कोष में दिए गए हैं। वे सब नाम तो अमरकोष में प्राप्त ही हैं[3] अतः इन्द्र के कुछ नाम अमरकोष से नाममालिका में ले लिया गया है। इसी प्रकार अमरकोष में क्रमशः इन्द्र की नगरी, इन्द्र का घोड़ा, उद्यान, ऐरावत हाथी, आदि के नामों का क्रमशः वर्णन है; नाममालिका में भी इसी क्रम से समस्त नामों का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार भूमिवर्ग में सबसे पहले अमरकोष में भूमि के निम्न नाम दिए गए हैं—भूः भूमि, अचला, अनन्ता, रसा, विश्वम्भरा, स्थिरा, धरा, धरित्री,

---

१. स्वरव्ययं स्वर्गनाक त्रिविदत्रिदशालयाः
सुरलोके द्यौदिवौ द्वैस्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम् ॥ अमरकोष १।१।६

२. स्वर्ग नाकत्रिलोकागृय सुधावासबुधालयः
मन्दाकिनी धरोदिव्यः खपुरं तं नपुंसकम्। नाममालिका।२

३. अमरकोष १।१;४१ से ४४ तक।

धरिणी, क्षोणी, आदि क्रमशः दिए गए हैं। नाममालिका में भी वसुन्धरा, रत्नगर्भा, धारुणी, धरणी, धरा धारणी, भूतधात्री च, विश्वधात्री, क्षमा, सहा आदि अतः जिस किसी शब्द को देखा जाय वे सब अमरकोष के ही आधार पर लिखे गए हैं। अतः स्पष्ट है कि नाममालिका के लिखने का मुख्य आधार अमरकोष था।

पर्यायशब्द रत्न—(धनञ्जय भट्ट)

पद्धति एवं प्रणाली—प्रस्तुत कोष में शब्दों के पर्यायों का संग्रह किया गया है। इसीलिए इस कोष का नाम "पर्याय शब्द रत्न" है। इस पद्धति पर लिखे गए अन्य कोषों में सर्वप्रथम वैदिक कोष निघण्टु, अमरकोष, वैजयन्ती कोष मुख्य हैं। इसी का अनुकरण करके पर्यायों को देकर धनन्जय भट्ट ने भी पर्याय शब्द रत्नमाला नामक कोष की रचना की है।

प्रस्तुत कोष में तीन विभाग ऊर्ध्वलोक संग्रह, मध्यलोक संग्रह, पाताल लोक संग्रह किया गया है और सम्बन्धित शब्दों को ही बताया गया है।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन के लिए किसी वर्णमाला का क्रम नहीं लिया गया है। केवल तीन विभाग किए गए है—(१) ऊर्ध्वलोक वर्ग, (२) मध्य लोकवर्ग, (३) पाताललोक वर्ग और इन तीनों विभागों में जो विभाग जिससे सम्बन्धित है उन्हीं शब्दों का ही संग्रह किया है।

इस प्रकार प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन के लिए विभागों का विभाजन और उन विभागों में सम्बन्धित शब्दों का संग्रह किया गया है।

शब्द संग्रह के आधार—प्रस्तुत कोष में कोषकार ने अमरकोष के आधार पर शब्दों का संग्रह किया है जिस क्रम से अमरकोष में शब्दों के पर्यायों का उल्लेख है, उसी क्रम से प्रस्तुत कोष में भी शब्दों का संग्रह किया गया है। कुछ पंक्तियां तो अमरकोष की और पर्याय शब्दरत्न की अक्षरशः मिलती हैं।

१—'दाक्षयण्योऽश्विनीत्यादि तारा अश्वयुगश्विनी' अमरकोष १।३।२१
पर्याय शब्द रत्न १।१२१

२—'तमस्तु राहुः स्वर्भानुः सैंहिकेयो विधुंतुदः।'
अमरकोष १।३।२६, पर्याय शब्द रत्न १।१३१

३—कलाहीने सानु मतिः पुर्णेराका निशाकरे। अमर १।४।८, पर्याय—१।१३६

४—उपाधिर्ना धर्मचिन्ता पुंसाधिर्मानसी व्यथा। अमर १।७।२८, पर्याय—१।१७०

५—व्यध्वो दुरध्वोविपथः कदध्वा कापथः समाः । अमर २।१।१६, पर्याय २।६

६—गृहासक्ताः पक्षिमृगाश्छेकास्ते गृह्यकाश्चते । अमर २।५।७३, पर्याय २।७५

७—चाण्डालप्लवमातंग दिवाकीर्तिजनंगमा । अमर २।१०।१९, पर्याय २।५९०

८—निभसेका शनीकाश पुतीकाशोपमादयः । अमर २।१०।३७, पर्याय शब्दरत्न २।६१६

९—सुराहलि प्रियाहाला परिस्तुद्वरुणात्मजा । अमर २।१०।३९, पर्याय २।६१७

(१०) उक्ताभूरिप्रयोगत्वादेकस्मिन्ये च यौगिकाः
ताद्धर्म्यादन्यतो वृतावृहा लिंगान्तरे पिते । अमर २।१०४६, पर्याय २।६३२.

इस प्रकार उपर्युक्त पंक्तियों को देखने से स्पष्ट होता है कि श्री धनन्जय भट्ट से अमरकोष से अक्षरशः अपने कोष में उतार ली है, अतः अमरकोष को मुख्य आधार अपने कोष रचना के लिए बनाया था जिससे उसके शब्द उसके जैसे विभाग और उसकी पंक्तियों को संग्रह करके अपने कोष को पूर्ण किया ।

उणादिकोष—(महादेव वेदान्तिन)

पद्धति एवं प्रणाली—प्रस्तुत कोष में उणादि सूत्रों का संग्रह तथा उनके अर्थों को समझाया गया है । प्रस्तुत कोश में व्याकरण के समान शब्दों का संग्रह है । इस प्रकार की पद्धति का पहले वररुचि कोष लिखा जा चुका है । यही प्रक्रिया उसमें भी है । शब्दों के नाना अर्थों को बताया गया है ।

शब्द चयन का क्रम—प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन के लिए, यद्यपि किसी भी क्रम का उल्लेख नहीं है न तो वर्णमाला के ही अक्षरों के आधार पर शब्दों का चयन किया गया और न तो काण्ड वर्ग विभेद के द्वारा ही शब्दों का चयन किया गया है । प्रस्तुत कोष में पांच पाद हैं और पाँचों पादों में शब्दों का संग्रह क्रम पूर्वक किया गया, तथा उनके अर्थों को भी बताया गया है ।

शब्द संग्रह के आधार—प्रस्तुत कोष व्याकरण के शब्दों का संग्रह और उनके अर्थों को बताया गया है । व्याकरण ग्रन्थ से ही प्रस्तुत कोष की सामग्री ली गई है । इसके लिए पाणिनि की अष्टाध्यायी और पतंजलि, कात्यायन आदि के भाष्य तथा वरदराजाचार्य की वृत्ति और उसमें लिखी गयी टीकाओं के ही

आधार पर प्रस्तुत ग्रन्थ लिखा गया। प्रस्तुत ग्रन्थ व्याकरण से ही मिलता जुलता है। अन्तर केवल इतना है कि लिखे गए भाष्य में श्लोकों के क्रम तथा उनका प्रयोग इत्यादि विस्तृत है।

शिव कोष (शिवदत्त मिश्र)

यद्यपि प्रस्तुत कोष में आर्युवेदिक औषधियों के ही शब्दों का संग्रह एवं उसके अर्थों का उल्लेख है, फिर भी संस्कृत कोषों की चली आ रही प्रणाली को ही स्वीकार करके उसी आधार पर शब्द संग्रह किए गए हैं। प्रस्तुत कोष अनेकार्थक है अतः यह शाश्वत कोष के ही पद्धति पर लिखा गया है। प्रस्तुत कोष में लिंग निर्देश के साथ ही शब्दों का संग्रह किया गया है।

प्रस्तुत कोष में शब्दों का चयन वर्णमाला के क्रम पर किया गया है। क से लेकर ह वर्ण तक के शब्दों का संग्रह किया गया है। क एकम् क द्वि, कत्रिः, क चः, क पंच इत्यादि प्रकार से समस्त अक्षरों का विभाग है और जो अक्षर के शब्द जहाँ बताए गए उनका क्रम अंतिम अक्षर पर ही पड़ेगा जैसे क में क अक्षर का क शब्द का और क में दो अक्षर का शब्द जिसके अंत में वही जैसे काका. ट क, व क, शुक, इसी प्रकार क त्रि में भी तीसरे अक्षर का ही क्रम रहेगा जैसे अशोक, अशोका और इसी तरह चार और पांच अक्षरों का क्रम रहेगा और यही क्रम क से लेकर ह वर्ण तक के अक्षरों का है और उनके शब्दों का अर्थ क्रमशः दिया गया है।

प्रस्तुत कोष में औषधियों से सम्बन्धित शब्दों के नामों का संग्रह एवं उसका अर्थ बताया गया है। औषधि शास्त्र का सबसे प्राचीन और बृहद ग्रन्थ 'चरक संहिता' है, जिसको कि चरक मुनि ने लिखा था। इस ग्रन्थ में समस्त औषधि, लता, जड़ी-बूटी, पुष्प पत्ती जो औषधि से सम्बन्धित है सबका उल्लेख किया गया है। कोषकार ने इसी को आधार बनाकर प्रस्तुत कोष को लिखा है। इसी कोष के समान एक वैद्यक निघण्टु है जिसको भी आधार बनाकर कोषकार ने प्रस्तुत कोष की रचना की है। इसके अतिरिक्त जो शब्द यहाँ प्रयुक्त हुए हैं वे वैदिक शब्द भी हैं जिससे स्पष्ट होता है कि कोषकार ने वेदों को भी आधार बनाया था वैदिक शब्द निम्न हैं :—

अपामार्ग अथर्व० ५-१७-६, अर्क अथर्व० ६-७२-१, अस्वगन्ध अथर्व शतपथ ब्रा० ८।१।१६, अश्वत्थ, ऋक १।१३५।८, अथर्व० ३-६-१, शतपथ ब्रा० ६।५।१। १३ अंजन अथर्व०५।६, इक्षु अर्थवेद ३४।५, उदुम्बर अथर्व० १६।३१।१ शतपथ ब्रा० ३।२।११३३, फरेज ऋक १।५३।८, १०।४८।८,रिसुका ऋक

१०।६५।२०, कुस शतपथ ब्रा० २।५।२,१५, कुस्थ अथर्व० ४।४, ५।१०२ खादिर, ऋक० ३।५३।१९, अथर्ववेद, ३।६।१, गुग्गुल अथर्व० १९।६८,२ गोधुम शतपथ ब्रा० १२।१। २, तिला अथर्व० २।८।३, शतपथ ब्रा० ९।१।१।३, दर्भ ऋक० १।१९१।३ दुर्वा ऋक० १०।१६।१३, घव ऋक० १।१६।२, धान्य ऋक० ६।१३।४, अथर्ववेद ३।२४।२।४, निवार शतपथ ब्रा० १।४।१४, पिलू अथर्व० २०।१३५।१२ लक्ष अथर्व ४।५।७।

अतः उपर्युक्त शब्दों को देखने से स्पष्ट होता है कि कोषकार ने वेदों से भी सामग्री ली है। इसके अतिरिक्त वररुचि कोष, मेदिनी धन्वन्तरि, हृदय, दीपक, वाचस्पति, हेमचन्द्र, वावमिश्र, त्रिकाण्ड शेष। आदि कोषों से भी प्राप्त सामग्री के आधार पर कोषकार ने कोष की रचना की है।

परमानन्दीय नाममाला (मकरन्ददास)

प्रस्तुत कोष ३ भागों में विमक्त है। प्रथम भाग नाममाला, इसमें शब्दों के पर्यायों को बताया गया है, इस प्रकार की पद्धति अमरकोष की है। इसके लिए कोषकार ने पहले ही कहा है कि नाम परायण को नाना वर्गों में बता रहा हूं[1] अतः इस कोष में नाममाला नामक कोष की पद्धति अमरकोष के आधार पर है।

द्वितीय अनेकार्थ संग्रह नामक भाग में अनेकार्थक शब्दों को प्रयुक्त किया गया है, पहले दो अक्षरों के शब्दों को और बाद में क्रमशः ६-४ अक्षरों के शब्दों के नाना अर्थ दिये गए हैं[2], इसलिए इस भाग को अनेकार्थ कहा गया है।

प्रस्तुत कोष ६ भागों में है (१) नाममाला, (२) अनेकार्थ संग्रह (३) लिंगानुशासन।

प्रथम नाममाला में चार काण्ड हैं, प्रथम काण्ड में शब्दों का चयन 'अ' से लेकर 'ह' तक क्रमशः एक अक्षर के शब्दों को प्रयुक्त किया गया है, अतः नाममाला नामक भाग में वर्ण अक्षर का क्रम न होते हुए विषय का क्रम रखा गया है।

द्वितीय भाग अनेकार्थ संग्रह नाम से है इसमें शब्दों के अनेक अर्थ दिये गये हैं और इसमें शब्दों के चयन का क्रम अकारादि क्रम से है तथा सर्वप्रथम

---

१. नाम पारायणं वक्ष्ये नानावर्गैरहं मुद्रा। प० ना० ३

२. अकरादि क्रमेणार्थ द्वयक्षरादि क्रमेण च।
अनेकार्थानि नामानि, कथयन्तेकतिचिन्मया॥ प० ना० अ० सं० १

जिस वर्ण का क्रम रहेगा उस वर्ण का पहला शब्द दो अक्षर का और क्रमशः तीन और चार अक्षर का भी शब्द रहेगा कोषकार ने पहले ही लिखा है कि अकारादि क्रम से दो अक्षर के क्रम के आधार पर नानार्थ शब्दों का संग्रह किया जा रहा है।

तृतीय भाग लिंगानुशासन नाम से है इसमें लिंगों का निर्देश क्रम पूर्वक किया गया है, जो शब्द जिस लिंग के होंगे उसी में प्रयुक्त किए गए हैं। इसमें ६ विभाग हैं—(१) पुल्लिग (२) स्त्रीलिंग (३) नपुंसक लिंग (४) पुलिंग और स्त्रीलिंग, (५) स्त्री लिंग नपुंसक लिंग (६) पुल्लिग और नपुंसक लिंग और इन्हीं विभागों में क्रमशः सम्बन्धित शब्दों का ही प्रयोग है।

कोषकार ने बहुत से शब्द अपने पूर्व कोषकारों के आधार पर लिखा है, यहाँ तक कि पूर्व कोषकारों के पंक्तियों तक को अक्षरशः अपने कोष में उतार लिया है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ दर्शायी जा रही हैं।

१. आर्द्रा तु कालिनी रौद्री पुनर्वसु तु यामकौ, (अभिधान चिन्तामणि हेमचन्द २।२४)
आर्द्रा च कालिनी रौद्री यामकौ च पुनर्वसु (परमानन्दीय नाममाला २।१०६

२. दैवे युग सहस्त्रे द्वे ब्राह्मं कल्पा तु ते नृणाम् ।
मन्वतरं तु दिव्यानां युगानासेकसप्ततिः ।। (अ०चि० हेमचन्द्र २।७४)
दैवेयुगसहस्त्रे द्वे ब्राह्मं कल्पा तुते नृणाम् ।
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानामेकसप्ततिः ।। (अ०चि० हेमचन्द्र २।७४)
दैवेयुगसहस्त्रे द्वे ब्राह्मं कल्पा तुते नृणाम् ।
मन्वन्तरं तु दिव्यानां युगानां एक सप्ततिः (परमानन्दीय नाममाला २।१४८, १४९)

३. षडंगी वेदाश्चत्वारो मीमांसान्वीक्षकी तथा ।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या एताश्चतुर्दश ।। (२।१६७ हेम०अ०चि०)
अंगषक तथा वेदा मीमांसान्वीक्षिकी तथा
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्याश्चैताश्चतुर्दश (परमानन्दीय नाममाला २।१७०)

वटकस्त्वसेकिमः

४. भृष्टायवाः पुनर्धाना धानाचूर्णन्तु सक्तवः
पृथुकश्चिपटस्त्युल्यौ लाजा स्युः पुनरक्षताः
गोधूमचूर्ण समिता यवक्षोदे तुचिक्कसः (अभिधान नि०मणि हेमचन्द्र ३।६४, ६५, ६६)

वटकेऽवसेकिमोऽप्युक्तौ धाना भ्रष्ट यवास्मृता:
धानाचूर्ण सलवस्तु लाजा: स्यु: पुनरक्षता:
चिपिट: पृथुकश्चैव मवचूर्णे तु चिक्कस:
गोधूमस्य मतंचूर्णं समिता संमता स्मियाम् (परमानन्दीय नाममाला ४।६६, ६७)

५. कूष्माण्डके केलिकिलो नन्दीशे तण्डुनन्दिनौ (हेम० अभि० चि० २।१२४)
कूष्माण्डके केलिकिलो नन्दीशे तण्डुनदिनौ (परमानन्दीय नाममाला २।४३)

६. तिलक: कालक: पिप्लुर्जडलस्तिलकालक: (हेम० अभि० ३।२८२)
तिलक: कालक: पिप्लुर्णडुलस्तिलकालक: (परमानन्दीय नाममाला ४।२७५)

७. रस अहारं तेजोऽग्नि संभव: षडरसाश्रय:
आत्रेयो सृक्करो धातुर्धनमूलमहापर: ।। (परमानन्दीय नामामाला ४।२७६, २७७)

८. त्रुटि: संशयलेशयो: (परमानन्दीय० अने०।२२४, हेम० अनेका०। २।९२)

९. धीदा कन्यामनीषयो: ।। हेमचन्द्र अनेकार्थ संग्रह २।२३०
परमानन्दीय नाममाला अनेकार्थ० २५६

१०. नीच: पामर खर्वयो: ।। हेमचन्द्र अनेकार्थ संग्रह २।५९
परमानन्दीय नाम माला अने० २६२

११. पट्ट: चतुष्पटे पीठे । हेमचन्द्र अनेकार्थ समुच्चय २।९४,
परमानन्दीय नाम माला अने० ३०३

१२. संबाध: संकटे यौनो ।। हेमचन्द्र अनेकार्थ समुच्चय ३४२,
परमानन्दी नाम माला अनेका० ३७१

१३.———————पारीपूरपरागयो:
पात्रयां कर्करिकायां च पादबन्धे च हस्तिनाम् ।। हेमचन्द्र अनेकार्थ संग्रह २।४३९, ४०

———————पारीपूर परागयो:
यात्रयां कर्करिकायां च हस्तिनाम् पार बन्धने ।। परमानन्दीय नाममाला अने० २९२, २९३

१४. संभोगो भोग रतयो: । हेमचन्द्र अनेकार्थ संग्रह ३।१३१
संभोगो रतभोगयो: । परमानन्दीय नाममाला अनेकार्थ ३७०

१५. **तलस्ताल चपेटयोः । परमानन्दीय नाममाला लिंगानुशासन ।१३**
तलश्चपेटे तालद्रो हेम० अने० २।४९३
१६. **पुमान स्याद समाहारे द्वन्दोऽश्ववडवाकिति। परमानन्दीय, लिंगानुशा०।१४**
यास च स्याद् असमाहृरिद्वन्द्वो श्ववाडवाइति हेमचन्द्र । ४
१७. **शाखा पुरे स्त्रियां गृह्या दुन्दुभिरक्षविन्दुषु**
ग जा सुराग्रहे रज्जौ रश्मिः मीला रताहतै ।
शाल्यवाद्यभिजः क्ष्वेडा वारिः स्त्री वजबन्धम्ः
अश्मन्ते त्वग्तिकारण्यानी यवानी हिमान्यपि । परमानन्दीय नाममाला
लिंगानुशासन ३९।४०

उपर्युक्त समस्त पंक्तियां हेमचन्द्र के कोष अनेकार्थ संग्रह की हैं अतः हेमचन्द्र के कोष को मुख्य आधार बनाया गया है ।

कविकल्पद्रुम (बोपदेव)

प्रस्तुत कोष में धातु वाचक शब्दों का उल्लेख एवं उनके प्रयोग तथा उनके विभिन्न अर्थों का विवेचन किया गया है । इस कोष में व्याकरण के पद्धति को अपनाया गया है । क्योंकि कोषों में शब्दों के पर्याय या शब्दों के अर्थों का उल्लेख किया जाता है । शब्दों के विभाग, यह व्याकरण का अध्ययन है अतः प्रस्तुत ग्रन्थ व्याकरण युक्त कोष है, क्योंकि शब्दों का संग्रह तो किया है, लेकिन केवल कुछ ही शब्दों का जो धातु के अन्तर्गत आते हैं, अतः कोष होते हुए कोष के पद्धति से भिन्न व्याकरण की पद्धति से युक्त कोष है ।

प्रस्तुत कोष में शब्दों का चयन क्रमपूर्वक किया गया है । अकारान्त धातु से लेकर क्रमशः हकारान्त धातु और सौत्रधातु का संग्रह किया गया है । मुख्य रूप से जिस अक्षर की धातु का क्रम होगा उसमें उसी धातु को बताया गया है इस कोष में शब्दों के चयन का यही क्रम है ।

प्रस्तुत कोष में शब्दों का संग्रह कोषकार ने अपने से पूर्व शाब्दिकों के आधार पर किया है क्योंकि कोषकार ने आठ शाब्दिकों को बताया है, इन्द्र, चंन्द्र काश-कृत्स्त्र, आपिशलि, शाकटायन, पाणिनि, अमर, जैनेन्द्र, प्रस्तुत कोष में व्याकरण के आधार पर शब्दों के धातुओं का उल्लेख किया गया है और उपर्युक्त शाब्दिक व्याकरण के ही कर्त्ता हैं । इन्द्र चन्द्र आदि का नाम व्याकरण से जुड़ा हुआ है । आपिशलि और शाकटायन, प्राचीन वैयाकरण हैं । व्याकरण साहित्य में पाणिनि सबसे ही अधिक विश्रुत हैं क्योंकि इन्होंने व्याकरण के सूत्रों में समस्त शब्दों को बांध दिया । इनकी अष्टाध्यायी पर

कितने काम किए जा चुके हैं, संस्कृत में पाणिनि का व्याकरण अमर देन है।

अतः बोपदेव ने अपने ग्रन्थ निर्माण के लिए उपर्युक्त व्याकरणों एवं कोषकारों से मदद लेते हुए विशेष रूप से पाणिनि के अष्टाध्यायी के आधार पर प्रस्तुत ग्रन्थ का निर्माण किया।

एकार्थ नाममाला द्वयक्षर नाममाला

प्रस्तुत कोष में शब्दों के अर्थों को बताया गया है। यह पद्धति "अनेकार्थ समुच्चय शाश्वत" अनेकार्थ ध्वनि मंजरी महाक्षपणक के आधार पर है क्योंकि उपर्युक्त दोनों कोषों में शब्दों के विभिन्न अर्थों को दिया गया है और इस प्रकार की पद्धति के ये दोनों कोष सबसे प्राचीन हैं तथा प्रस्तुत कोष में भी शब्दों के अर्थों को बताया गया है। अतः इसकी पद्धति इन्हीं दो कोषों के आधार पर है।

प्रस्तुत कोष में शब्दों का चयन वर्णमाला के आधार पर किया गया है। प्रथम भाग एकाक्षर कोष है अर्थात् इस कोष में एक ही अक्षर के शब्द हैं और ये शब्द क्रमशः अ से लेकर क्ष तक हैं, अतः इनका क्रम वर्ण माला के क्रम पर है और एक ही अक्षर के शब्दों के अर्थों को बताया गया है।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के विभिन्न अर्थों का उल्लेख किया गया है और वे समस्त शब्द प्राचीन कोषकारों के आधार पर हैं, जिनमें 'अनेकार्थ समूच्चय' शाश्वत ने भी इसी प्रकार के ऐसे ही समस्त शब्दों के अर्थों को बताया है। कुछ शब्द तो अमरकोष के हैं और कुछ शाश्वत कोष के प्रयुक्त हैं। द्वयक्षर कोष में समस्त शब्द तो व्याकरण ग्रंथ के हैं अतः कोषकार का आधार व्याकरण ग्रन्थ भी था जिसमें पाणिनि अष्टाध्यायी मुख्य है।

अतः कोषकार का प्रस्तुत कोष लिखने का आधार अमरकोष, शाश्वत कोष, अनेकार्थ, ध्वनि मंजरी, पाणिनि अष्टाध्यायी के साथ ही महाकाव्य, नाटक आदि ग्रन्थ थे। कोषकार ने अपने कोष में मुख्य दो ही विभाग किए हैं। पहला एकाक्षर या एकार्थ नाममाला कोष और दूसरा द्वयक्षर कोष इसमें दो ही अक्षर के शब्दों को प्रयुक्त किया गया है।

शब्द रत्न प्रदीप

प्रस्तुत कोष में शब्दों के अनेक अर्थों में बताया गया है। प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन के लिए कोई विशेष क्रम का उल्लेख नहीं है। कोषकार ने पहले देवी देवताओं के नामों और अर्थों का उल्लेख किया है। तत्पश्चात मनुष्यादि से सम्बन्धित नामों का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत कोष में पाँच

विभाग किए गए हैं। प्रथम मुक्तक, द्वितीय मुक्तक, तृतीय मुक्तक, चतुर्थ मुक्तक पंचममुक्तक, और इन्हीं मुक्तकों में शब्दों का चयन किया गया है, प्रथम मुक्तक में श्लोकाधिकार अर्थात एक श्लोक के ही एक शब्द के अर्थ, द्वितीय में अर्थ श्लोकाधिकार, अर्थात् एक श्लोक में दो शब्दों के अर्थों को प्रयुक्त किया गया है। इसी आधार पर शब्दों को चयन किया गया है और यही शब्दों के चयन का क्रम है।

प्रस्तुत कोष शाश्वत के आधार पर ही शब्दों का संग्रह किया है और बहुत कुछ शब्दों को क्रमशः शाश्वत का ही लिखा है, शाश्वत कोष में सबसे पहले निम्न श्लोक प्राप्त होता है—

शिवं भद्रं शिवः शुंभः शिवा गौरी शिवा मया।
शिवः कीलः शिवा क्रोष्टो भवेदामलकी शिवा ॥

और प्रस्तुत कोष में शब्दार्थों के आरम्भ में ही प्रस्तुत श्लोक प्राप्त होता है, अतः कोषकार का मुख्य आधार शाश्वत कोष था, दूसरा आधार कोष-कार अनेकार्थ ध्वनिमंजरी महाक्षपणक की भी क्योंकि कोषकार ने महाक्षपणक के ही अनुसार कुछ शब्दों को प्रयुक्त किया है।

इसके अतिरिक्त कोषकार मेदिनी कोष के भी शब्दों को अपने कोष में संग्रहीत किया है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कोषकार ने अनेकार्थ कोष लिखकर अनेकार्थ पद्धति संयुक्त प्राचीन कोषों को सामने रख कर ही अपने कोष का निर्माण किया है। इनमें मुख्य रूप से शाश्वत कोष अनेकार्थ समुच्चय, महाक्षपणक कोष, अनेकार्थ ध्वनि मंजरी, मेदिनी कोष मेदिनीकर आदि मुख्य थे।

मंख कोष

प्रस्तुत कोष में शब्दों के अनेक अर्थों को बताया गया है। अनेकार्थक कोषों की पद्धति प्रमाणिक तौर पर शाश्वत कोष से ही मानी जाती है। एकार्थक कोषों की पद्धति बहुत प्राचीन है, वैदिक शब्दों का कोष निघण्टु नाम से प्रख्यात है जो संस्कृत वांग्मय का सबसे प्राचीन कोष माना जाता है, एकार्थक है और इसके पश्चात संस्कृत साहित्य का सबसे लोक प्रिय कोष हुआ। अनेकार्थक कोषों में शाश्वत का कोष ही माना गया है।

प्रस्तुत कोष में शब्द चयन के लिए विशेष क्रम अपनाया गया है। प्रत्येक अक्षर (क से क्ष तक) के लिए ४ विभाग किए गए हैं। क एकम् अर्थात् इससे क शब्द एक अक्षर का और उसका अर्थ कान्त द्वितीयम् इसमें दो अक्षर के शब्द जो कान्त अर्थात् जिनके अंत में क हो जैसे अर्क, कर्क, अंक इत्यादि। इसी

प्रकार तीन अक्षर का भी क्रम है और अक्षर के भी शब्दों का क्रम है तथा ऐसे ही क से लेकर ज्ञ अक्षर का क्रम है तथा अन्त में अव्यय वर्ग अ इ उ आदि स्वरों से प्रारम्भ शब्दों के अर्थों को क्रमशः बताया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन में अक्षरों के क्रम के आधार पर कोषकार ने किया है। कोषकार ने प्रस्तुत कोष लिखने के लिए जिन कोषों और कोषकारों को आधार लिया, वह पहले ही बताया है। इनमें भागुरि का नाम सबसे पहले लिया है।[1] भागुरि ने त्रिकाण्ड नामक कोष लिखा था, ये अमर पूर्व कोषकारों में एक हैं। इसके पश्चात् कात्यायन का नाम लिया है। कात्यायन ने नाममाला नामक कोष लिखा था। ये भी अमरपूर्व कोषकारों में माने जाते हैं, इसके बाद हलायुध को बताते हैं। हलायुध नामक कोष से पर्याप्त सामग्री ली है। अमरसिंह ने अमरकोष की रचना की, जिससे परवर्ती कोषकारों को लिखने के लिए प्रेरणा एवं सामग्री प्राप्त हो गई। इसके पश्चात कोषकार शाश्वत को बताया शाश्वत ने अनेकार्थक कोष लिखा है। मंख कोष भी उसी पद्धति में अनेकार्थक हैं और शाश्वत के ही आधार पर शब्दों का संग्रह किया गया है और इसके पश्चात कोषकार ने लिखा है कि धन्वन्तरि के कोष को देख करके मैं प्रस्तुत कोष की रचना की है और महाक्षपणक को भी कोषकार ने अपने कोष के लिए बनाया था।[2] और व्याकरण शास्त्र विषय ग्रन्थ को भी अध्ययन करके कोष लिखा।

कल्पद्रु (केशव)

केशव ने कल्पद्रु की रचना की, उनके पूर्व संस्कृत साहित्य में करीब १०० कोष ग्रन्थों की रचना हो चुकी थी। केशव पूर्व प्रणाली के आधार पर दोनों पद्धति को अपनाया है अर्थात् एकार्थक और शब्दों का भी उल्लेख किया है। जैसे विनायक के समानार्थक शब्दों में पृश्नि, ऋ्टंग, तुन्दिल, द्वैमातुर, हैरम्ब, लम्बोदर।[3] इसी प्रकार पृथ्वी के नामों में विश्वंभरा, जगती, प्थवीरसा, धरित्री, भूतधात्री, उर्वी, महीक्ष्मा इत्यादि[4] और अनेकार्थक शब्दों का भी

१. भागुरि कात्य हलायुध हुग्गामरसिंह शाश्वतादिकृतान्।
कोशान्निरीक्ष्य निपुणं धन्वन्तरि निर्मितं निघण्टु च ॥३.

२. लिंगानुशासनं च विचार्य लक्ष्यं महाकवीनां च।
कुरुतेऽनेकार्थान शब्दानां मंखकः कोषम् ॥४।

३. कल्पद्रुकोष केशव १।१०

४. वही १।१४,१५,१६

संग्रह किया गया है, जैन महापाप करने वाला प्रेत और परेता होता है[1] नाख नकर कहलाता है[2] इस प्रकार इस बहुत बड़े कोष में कोषकार ने एक ही शब्दों को अनेक बार पिष्ट पेषण किया है। उदाहरण के लिए कृषिगोत्र पुराण में सात कृषियों का उल्लेख किया है।[3] और फिर उन्हीं सप्तर्षियों का उल्लेख अन्य कई स्थानों में किया है।[4] ऐसे बहुत उदाहरण हैं। इस प्रकार इस कोष की पद्धति एवं प्रणाली सर्वथा भिन्न दिखती है।

कोषकार ने कुल ३ स्कन्ध लिखे जिनमें प्रथम स्कन्ध में १८ प्रकाण्ड द्वितीय में पाँच प्रमाण और तृतीय स्कन्ध में ४ प्रमाणों में विभाग किया है, शब्दों के चयन के क्रम में कोषकार ने वर्णानुक्रम का कोई सहारा नहीं लिया, उसने विभाग के आधार पर ही, शब्दों का चयन किया है, जैसे देश प्रमाण में देशों का उल्लेख किया है। गोत्र प्रमाण में ऋषि गोत्र प्रवर्तकों के नाम[5] क्षत्रिय वर्ग में क्षत्रिय अर्थात् राजा से ही सम्बन्धित समस्त बातों का उल्लेख किया गया है।[6] जिन प्रमाण में बुद्ध के नामों का उल्लेख किया गया है। सबसे महत्वपूर्ण शब्दों का चयन निश्चित ही प्रमाण में किया गया है, जिससे प्रत्येक कोष के अध्ययन करने वालों को विशेष सुविधा प्राप्त होती है। अन्य कोषों के अनुसार प्रस्तुत कोष में शब्द चयन के लिए किसी भी अक्षर वर्ण एवं मात्रा का सहारा नहीं लिया गया है। केवल शब्दों के चयन में विषय का सहारा प्रमाण आधार पर लिया गया है, जो सर्वथा उपयुक्त है।

कल्पद्रु कोष के लेखक केशव ने कल्पद्रु कोष में जो इतने विशाल शब्दों का संग्रह किया है। उन शब्दों का अध्ययन कहाँ से किया अर्थात् अपने कोष लिखने के लिए किन ग्रन्थों का आधार बनाया इत्यादि बातों की जानकारी उनके कोष में संग्रहीत शब्दों के आधार पर लगाया जा सकता है। कोषकार ने जिन प्रमाण में बुद्ध के नामों का उल्लेख किया है। इसी प्रकार बुद्ध के १८ नाम अमरकोष में भी प्राप्त होते हैं। अर्थात् जो बुद्ध के नाम अमरकोष में प्राप्त होते हैं। वही

---

१. कल्पद्रु कोष ५।१
२. वही ३।२।६,१०,११
३. वही १।१०
४. वही ३।२।६,१०,११
५. वही ५।१
६. वही १८।१,,२,३,४

सब नाम कल्पद्रु कोष में मिलते हैं और आगे देखिए कल्पद्रु कोष में ब्रह्मा के निम्न नाम मिलते हैं। धाता, सुरासुरगुर, पितामह, चतुरानन, विरंचि, विधि, स्मष्टा, प्रजापति, वेधा, विधाता, कमयासन, स्वयम्भूः[1] और अमरकोष में ब्रह्मा के निम्न नाम मिलते हैं। ब्राह्मात्मभूः, सुरज्येष्ठ, परमेष्ठी, पितामह, हिरण्यगर्भ, स्वयंभू, चतुरानन, धाता, बिरंचि, कमलासन, स्मष्टा, प्रजापति, वेधा, विधाता इत्यादि[2] नामों का उल्लेख किया गया है और नारायण के नामों का उल्लेख श्लोक देखने में अंतर स्पष्ट हो जाता है।

"यज्ञोनारायणो कुन्दो, वैकुण्ठोविष्टरश्रवा
पीताम्बरो हृषीकेष केशवो माधवः स्वभूः
दैत्य दानव पर्याय शत्रु पर्याय इत्यपि
बभ्रूश्चतुर्भुजः कृष्णौ वासुभद्रो विरंचनः
केशवः शंभुरो जन्हुः पद्मनाभिर्वृषाकपिः
विरंचिः कपिलो विष्णुः विश्वम्सेनो पराजितः
बहुरूपो जगन्नाथः श्रीदत्ता प्रपितामहः
शांर्द्रगच्युतो मधुरिपुः पद्मनाभो जनार्दनः।
सीतापतिर्दाशरथिः सौमित्रि भरताग्रजः
कौशल्येयः कौशलेयः काकुत्थे रघुनायकः
कौशलेशोरामभद्रो काकुत्स्थी रघुनायकः

और अमरकोष में देखिए

विष्णुनारायणः कृष्णौ वैकुण्ठो विष्ठर श्रवा
दामोदरो हृषीकेष केशवो माधवः स्वभूः
दैत्यारि पुण्डरीकाक्षो गोविन्द गरुड़ध्वज
पीताम्बरो च्युतः शांर्गी विष्वक्सेनो जनार्दनः
उपेन्द्र इन्द्रावरजश्चक्रपाणि चतुर्भुजः
पद्मनाभो मधुरिपुः वासुदेव स्मिविक्रमः
देवकीनन्दनः शौरि श्रीपतिः पुरुषोत्तमः
वनमाली बलिध्वंसी कंसारातिरधोक्षजः
विश्वम्भरा कैरभ जिद्विधुः श्री वस्तलाच्छनः

---

१. कल्पद्रु कोष १।१८।१ से ११ तक
२. अमरकोष १।१।१३,१४

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों कोषों के नामों को देखा जाय तो यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि अमर कोष के सम्पूर्ण नाम केशव ने अपने कल्पद्रु कोष में लिया है। कुछ नामों के क्रमों में जरूर परिवर्तन दिखाई पड़ता है और विशेष परिवर्तन नहीं दिखता है। अतः इससे सिद्ध होता है कि केशव ने अपने कोष लिखने का मुख्य आधार अमरकोष ही माना है और उसी के अनुरूप कोष लिखा है।

नानार्थ रत्नमाला

श्रीमान इरुगदण्डधिनाथ ने अपने कोष नानार्थ रत्नमाला में जिस पद्धति को अपनाया है उस पद्धति का क्रम इसके पूर्व भी था। इन्होंने अपने कोष में प्रत्येक शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया है जो इनसे पूर्व शाश्वत हेमचन्द्र आदि कोषकारों ने इसी पद्धति से कोष लिखा था कोषकार ने सर्वप्रथम लिखा है—

सोयं ग्रन्थानि नानार्थ रत्नमालां गुणोज्वलाम्
श्री मानिरुगदंडेशी नात्यल्पं नाति विस्तरम् ।३।

इस तरह कोषकार ने भी पहले ही लिखा है कि मैं नानार्थ रत्नमाला नामक कोष लिखता हूँ। प्रस्तुत कोष में लेखक ने शाश्वत और हेमचन्द्र की ही पद्धति का अनुकरण किया है, क्योंकि ए कोष भी अनेकार्थक हैं। एक ही शब्द के अनेक अर्थ हैं और नानार्थ रत्नमाला भी अनेकार्थक है। प्रस्तुत कोष में 'अ' अक्षर से लेकर 'ह' तक के शब्दों का क्रमशः उल्लेख किया गया है तथा स्त्री लिंग के लिए "स्त्रियाम" पुल्लिग के लिए "पुमान्" और नपुंसक के लिए "क्लीबे", शब्द प्रयुक्त हुए हैं और जो शब्द तीनों लिंगों में हैं उसे त्रिषु कहा गया है तथा जो दो ही लिगों में हैं उसे द्वयो शब्द प्रयुक्त हुआ है। इनके कोष लिखने की पद्धति यही है। इरुगपददंडधिनाथ ने प्रस्तुत कोष में शब्द चयन का जो क्रम अपनाया है वह वर्णमाला के आधार पर है। इन्होंने कुल ६ काण्डों में नानार्थ रत्नमाला नामक कोष की रचना की है, प्रथम काण्ड को एकाक्षर काण्ड कहा गया है। इस काण्ड में सम्पूर्ण शब्द एक ही अक्षर से प्रारम्भ होते हैं। उन्हीं शब्दों का अर्थ दिया गया है जैसे 'अ' अक्षर से लिखा है "अकारो ब्रह्म विष्णु ईशः"

द्वितीय काण्ड की भी पद्धति यही है। अंतर केवल इतना है कि इसमें दो अक्षर वाले शब्दों का संग्रह के साथ अर्थ का उल्लेख किया गया है। इसी तरह तृतीय काण्ड में भी तीन अक्षर वाले शब्दों का संग्रह किया गया है। चौथे काण्ड

काण्ड में चार अक्षरों के शब्दार्थों का उल्लेख है। क्रम अ वर्ण से ह तक के अक्षरों का।

इसके अतिरिक्त कोषकार ने शब्द चयन में पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग का भी उल्लेख किया है, जो शब्द तीनों लिंगों में हैं उसे त्रिषु और जो दो ही लिंगों में हैं उसे द्वय और जो नपुंसक लिंग का है उसे शेष लिंग कहा है और जो स्त्रीलिंग का है जो स्त्रियाम् कहा है और जो शब्द पुल्लिग का है उसे पुमान कहा है। इन समस्त शब्दों के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

जैसे तीनों लिंगों में—

'ज्ञः प्राज्ञे त्रिषु'[1]

और विट् शब्द देखिये

'वैश्य जने पुरीषे विट् क्रमात् पुंसि द्वयो स्त्रियाम्'[2]

यहाँ तीनों के उदाहरण हैं नपुंसक का उदाहरण नीचे देखिए

क्लीबे तुगगनेराशौ"[3]

नानार्थ रत्नमाला लेखक 'इरुगपद इंडधिनाथ' ने प्रतुस्त कोष में जो शब्दों का संग्रह किया वे सब पाणिनीय अष्टाध्यायी, वैदिक को निघण्टु, अमरकोष शाश्वत कोष, रघुवंश महाकाव्य आदि ग्रन्थों के ही आधार पर लिखे गए हैं क्योंकि कुछ शब्द इन ग्रन्थों के हैं जो कोषकार ने लिखा है। जैसे 'गौ'[4] शब्द इन्होंने भूमि अर्थ में प्रयुक्त किया है और गौ[5] शब्द निघण्टु में भी इसी अर्थ में प्रयुक्त है। इसी प्रकार इन्होंने रुग् शब्द जल अर्थ में[6] लिया है जो वहाँ भी प्रयुक्त है। अमरकोष में 'मन्मथ[7]' शब्द कामदेव के लिए प्रयुक्त हुआ है इन्होंने भी कामदेव के लिए ही मन्मथ का प्रयोग किया है। इस प्रकार कोषकार ने अमरकोष का भी अनुकरण किया। इसी तरह कोषकार ने शाश्वत के अनेकार्थ समुच्चय नामक कोष के अमृत 'क्षत्रिय' जलद आदि ग्रन्थों को संग्रहीत किया है।

---

१. **नानार्थ रत्नमाला १।३०**
२. **नानार्थ रत्नमाला १।३०**
३. **नानार्थ रत्नमाला १।३०**
४. **नानार्थ रत्नमाला १।३०**
५. **वैदिक निघण्टु १।१**
६. **नानार्थ रत्नमाला १।६४**
७. **नानार्थ रत्नमाला १।८०**

मेदिनी कोष (मेदिनीकर)

कोषकार ने अपने कोष में जिस पद्धति का प्रयोग किया है। उस पद्धति से शाश्वत, महाक्षपणक इत्यादि ने भी कोष लिखा है। कोषकार ने पहले ही लिखा है कि प्रस्तुत कोष नानार्थ है[1] अर्थात् इसमें एक शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है और इसके अन्त में परिशिष्ट के रूप में अव्यय वर्ग को भी दिया गया है जिसमें समस्त स्वरों का भी उल्लेख है, लेकिन मेदिनी कोष में कुल १८०७ श्लोकों में शब्दों का संग्रह है और उसके अर्थों का विवेचन है शाश्वत और महाक्षपणक के कोष में एक शब्द के दो या तीन ही अर्थ का उल्लेख है। लेकिन मेदिनी कोष में एक शब्द के कम से कम ५ या अधिक १० अर्थों का भी उल्लेख मिलता है। अतः यह पद्धति शाश्वत कोष और क्षपणक कोष पर आधारित होते हुए भी नवीन मालूम पड़ती है। इस कोष में वर्णमाला के आधार पर विभाग किए गए हैं और उस विभाग में उसी से सम्बन्धित शब्दों और उसके अर्थों का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत कोष के अन्त में अव्यय वर्ग भी स्वतंत्र रूप से है जिसमें अ इत्यादि स्वरों के अर्थों का उल्लेख है।

प्रस्तुत मेदिनी कोष में शब्दों के चयन के लिए वर्णमाला क्रम का विशेष ध्यान रखा गया है। वर्णमाला के क्रम से क अक्षर से लेकर ह तक के शब्दों का उल्लेख है और एक अक्षर के एक, दो, तीन, चार, पांच और छः अक्षरों से युक्त शब्दों के अर्थों का उल्लेख अर्थात पहले एक अक्षर से प्रारम्भ क शब्द के अर्थ फिर दो अक्षर के क शब्द का अर्थ फिर तीन अक्षर से युक्त क शब्द के अर्थ और चार अक्षर से युक्त 'क' शब्द के अर्थ और इसी तरह पांच और छ अक्षरों वाले क शब्द के अर्थ का उल्लेख है। क से लेकर ह तक के ३३ वर्णों के शब्दों का उल्लेख किया गया है।

दूसरी बात यह कि अक्षरों का जो क्रम दिया गया है वह आदि से न होकर अन्त से है अर्थात जो शब्द एक अक्षर या दो तीन अक्षर का होगा उनका जो क्रम है अन्तिम अक्षर पर पड़ेगा जैसे क द्वितीयम है इसमें क अन्त अक्षर पर पड़ेगा और दो अक्षर का शब्द होगा जैसे अर्क, कर्क इत्यादि। इसी प्रकार तीन अक्षर के शब्दों में भी शब्द तीन अक्षर का रहेगा। प्रथम दो अक्षर चाहे जो हो लेकिन तीसरा अक्षर क ही रहेगा जैसे जनक, नरक, उलूक

---

१. **नानार्थ शब्दकोषोऽयं लिंग भेदेन कथ्यते।**

इत्यादि। इसी प्रकार चार अक्षर के शब्दों में भी क्रम रहेगा जैसे अलिमका। इस प्रकार पांच और छः अक्षरों का भी क्रम है और यही क्रम सब अक्षरों के साथ है और जहाँ जिस अक्षर से शब्द समाप्त होता है, वहां कोषकार ने लिखा है, इति कान्त, खान्त, गान्त, घान्त इत्यादि अर्थात यहां से क अक्षर के शब्द समाप्त, ख, ग, घ, के समाप्त और अगला वर्णक्रम से चालू हो जाता है।

अन्त में कोषकार परिशिष्ट के रूप में अव्यय वर्ग दिया है इसमें कुल ६३ श्लोक है। इसमें भी क्रम को ध्यान में रखा गया है। पहले स्वर अक्षरों के शब्दों और उसके अर्थों का उल्लेख है और बाद में व्यन्जन अक्षरों का उसी क्रम से उल्लेख किया गया है। अतः इस कोष का क्रम वर्णमाला के आधार पर किया गया है, जो अत्यन्त ही उपयुक्त है।

शब्द संग्रह के आधार

कोषकार मेदिनीकर ने मेदिनी कोष के अन्त में निम्न कोषकारों, कोषों का उल्लेख किया है।

'उत्पालिनी, शब्दार्णव, संसारावर्त नाममालाख्यान
भागुरि वररुचि, शाश्वत वोपालित रंतिदेव हरकोषान ।१
अमर शुभांग हलायुध गोवर्धन, रभसपाल कृत कोषान।
रुद्रामरदत्त जयगंगाधर, धरणिकोशाश्च ।२
हारावली, अभिधान त्रिकाण्डशेषंच रत्नमालां च
अबिहुदोषं विश्वप्रकाशं कोषं च विचार्य ।।३
वाग्भट्ट माधव वाचस्पति, धर्म व्याडि तारपालाख्यान।
अपि विश्वरूप विक्रमादित्य नामलिंगानि शास्त्राणि
पाणिनि पदानुशासन पुराण काव्यादिकं सुमिरूप्य ।।५।।

इत्यादि पांच श्लोकों में बहुत से कोष और कोषकारों का उल्लेख करके उनके कोषों और ग्रन्थों के आधार पर कोष लिखने को बताया है। इसमें उत्पलिनी कोष, शब्दार्णव, संसारावर्त, नाममाला आदि कोष और कोषकारों में भांगुरि, वररुचि, शाश्वत, वोपालित, रंतिदेव, हर, अमर शुभांग, हलायुध गोवर्धन, रभसपाल, रुद्र, अमरदत्त, जयगंगाधर, धरणिकोष, हारावली, अभिधान, त्रिकाण्ड, रत्नमाला विश्वप्रकाश, वाग्भट, माधव, वाचस्पति, धर्मव्याडि, तारपाल, विश्वरूप और विक्रमादित्य के द्वारा बताए गए शब्दों को विचार करके ही कोष लिखा अर्थात् उपर्युक्त कोषकारों और कोषों के ही आधार पर कोष की रचना की है।

और आगे कोषकार लिखता है कि व्याकरण ग्रन्थों से भी मैंने सहायता ली है उसमें कात्यायन, वामन, चन्द्र, गोमिन और पाणिनि के पदानुशासन और पुराण काव्य आदि के आधार पर ही मैंने मेदिनी कोष को लिखा है। कोषकार ने समस्त कोषों और कोषकारों का उल्लेख करके यह स्वयं बता दिया कि मैं यह कोष अपने से नहीं वरन इन लेखकों के कृतियों से लिखा।

वररुचि कोष (वररुचि)

प्रस्तुत कोष में प्रत्येक का विभाग व्याकरण की दृष्टि से किया गया है। प्रस्तुत कोष में बताया गया है कि कौन शब्द पुल्लिग है कौन स्त्रीलिंग या नपुंसक लिंग में आता है। किसका प्रयोग किस प्रकार करना चाहिए। उदाहरण के लिए देखिए—कोषकार लिखा है कि 'यावत्कश्चित त्रांतः शब्दोंऽत्र नपुंसकेहिबोद्धव्यः। वर्जंहि पुत्रमंत्रश्चित्रानेवं गरित्रंच ॥११॥

यावानितिसमुच्चयो कश्चिद्यस्त्रातः शब्द सनपुंसके बौद्धव्यः। पुत्रमंत्रश्चित्र शब्दान्वर्जं यित्वेत्यर्थः यथा सूत्रं शस्त्रं शास्त्रं मित्रं यत्रं पवित्रं च। गात्रं प्पोत्रं पात्रं दात्रं सत्रं परित्रं च इत्यादि।' अर्थात जिस किसी शब्द के अन्त में 'त्र' हो उसको नपुंसक शब्द ही मानना चाहिए लेकिन पुत्र, मंत्र चित्र गरित्र शब्द को छोड़कर जैसे सूत्र, शस्त्र शास्त्र, मित्र, पत्र पवित्र। गात्र, पोत्र, पात्र, यात्र, सत्र परित्र इत्यादि [1] समस्त शब्द नपुंसक हैं।

इस प्रकार कोषकार व्याकरण के नियमों के आधार में शब्दों का संग्रह किया है और बताया कि शब्द कितने प्रकार के हो सकते हैं, किस अर्थ में इनका प्रयोग किस लिंग में होता है और इस प्रकार के शब्द सभी इस लिंग में आते हैं शेष इतने शब्दों को छोड़कर, इत्यादि कोष की पद्धति है। इस कोष में अन्य प्रणालियों के अतिरिक्त शब्द के विभाग, जाति,गुण और क्रिया के आधार पर किए गए हैं, तथा उन शब्दों के पुल्लिग, नपुंसक लिंग का भी भेद मिलता है, जो कि अधिकांश कोषों में किया गया है। लेकिन जाति गुण और क्रिया के आधार पर शब्दों का विभाग कोषों में नहीं है, अतः इसकी प्रणाली अन्य कोषों से भिन्न है।

प्रस्तुत कोष में शब्द चयन के लिए किसी क्रम का उल्लेख नहीं है। इस कोष में शब्दों के चयन के लिए जाति गुण और क्रिया का ही विभाग किया गया है। और इसके अतिरिक्त जहाँ पर कोषकार ने एक प्रकार के शब्द का

१. वररुचि कोष ११,१२

उल्लेख किया है वर्णमाला के आधार पर वहाँ उसी प्रकर अक्षरों से युक्त शब्दों का उल्लेख किया है, जैसे पुत्र, मित्र, चित्र, सूत्र, शस्त्र, पत्र, पवित्र, गात्र, पोत्र, पात्र, दात्र, सत्र, परित्र ।[1] यहाँ पर प्रत्येक शब्द ऐसे हैं जिसके अन्त में 'त्र' अक्षर होता है । यहाँ इसी त्र के ही आधार पर शब्दों को समझाया है कि भ्रांत शब्द नपुंसक होते हैं, कुछ शब्दों को छोड़कर और कोषकार ने एक और विशेष रूप से शब्दों के चयन में क्रम रखा है वह यह कि अगर जिसका उल्लेख कर रहे हैं उसी के अंग प्रत्यंग का उल्लेख क्रमशः करने के पश्चात ही आगे दूसरे शब्दों को ग्रहण करेगें उदाहरण के लिए, कंठ, स्तन, बाहु, ग्रीवा, पृष्ठ, ललाट, उदर इत्यादि का क्रमशः उल्लेख किया है ।

इसके अतिरिक्त कोषकार ने एक और क्रम का आधार लिया है जहाँ पर जिस शब्द का उल्लेख किया वहीं उससे सम्बन्धित शब्द का भी उल्लेख किया है, जैसे 'इदं धान्यंसस्यं, द्विदलं मुदगरादीना' इत्यादि ।[2]

अतः कोषकार ने वर्णक्रमों का कोई ध्यान शब्द चयन के लिए नहीं दिया, लेकिन शब्द संग्रह में समय स्थान और वस्तु विशेष को विशेष ध्यान दिया हैं ।

कोषकार ने सर्वप्रथम अपने कोष में निम्न कोषकारों का उल्लेख किया है।

'दृष्ट्वा जैमिनिकोष सूत्र रचनां कात्यायनीयंम्रतं व्यासीयंकविशंकर प्रभृतिभियंदभाषित निश्चपात ।। यच्चानंदकविप्रवीररचितं वद्धंच यद्दंडिना । यद्वास्तायन शाश्वतादि कथितं कुर्वे मिधानंद्भुतं ।।७।। माकुर्वंतुमयंकराल कलितः प्रायः श्रुतेर्नाशनात्सर्वंभ्रांतजनादनेककवित्ताहीन प्रगल्मश्रयात् ।। उद्धरिंभवतां विधाय हृदये मोभ्रातरोयंमया कर्त्तव्यः परमोधमः अमविध्नैः शब्दात्कुतः सीदथ ।।८।।

उपर्युक्त कथन के आधार पर यही सिद्ध होता है कि वररुचि का प्रस्तुत कोष न होकर व्याकरण विषयक ग्रन्थ है और दूसरी बात यह कि कोषकार वररुचि समस्त वैयाकरणों को गलत बताया है लिखा है जैमिनि, कात्यायन के सूत्र रचना को [3] और आनन्द कवि, दण्डी के शब्द शास्त्र को और वात्सायन शाश्वत आदि के कोष को देखा और सभी लोग भ्रांत से कविताहीन हैं[4] । आप लोगों के उद्धार के लिए प्रस्तुत ग्रन्थ लिख रहा हूं ।

---

१. बररुचि कोष । ११,१२
२. वररुचि कोष । ६४
३. वररुचि कोष । ११
४. वररुचिकोष । १२

यद्यपि कोषकार इन कवियों से अपने को श्रेष्ठ लिख रहे हैं तथापि इनके ही ग्रन्थों के आधार पर अपने कोष लिखने के योग्य हुए हैं, क्योंकि जिस शब्दों का उल्लेख इन लोगों में किया, उसी शब्दों के अध्ययन के फलस्वरूप वररुचि कोष लिखने के योग्य हुए ।

अतः हम यह कह सकते हैं कि वररुचि अपने कोष लिखने के लिए जैमिनि कात्यायन[1] वात्सायन इत्यादि के सूत्रों से और शाश्वत प्रभृति कोषकारों से तथा दण्डी[2] इत्यादि महाकवियों के ग्रन्थों शब्दशास्त्रों के आधार पर अपने कोष की रचना की है ।

गणित नाममाला (हरिदत्त)

प्रस्तुत कोष में ज्योतिष विषयक सामग्री का वर्णन किया गया है । यद्यपि इनके पूर्व कोषकारों ने इस विषय पर सूक्ष्म दृष्टि डाली थी, लेकिन इतनी विस्तृत नहीं, अपने कोष के एक ही वर्ग में अमरसिंह ने अमरसिंह में नक्षत्रों और राशियों का उल्लेख किया है; इसी प्रकार 'अभिधान चिन्तामणि' में हेमचन्द्र ने भी समस्त नक्षत्रों उनके स्वामी, देवता राशि इत्यादि का विवेचन किया है, लेकिन उनकी भी सामग्री इतनी पर्याप्त नहीं है, जितनी की श्री हरिदत्त ने प्रस्तुत कोष में ज्योतिष शास्त्र के आधार पर सभी संज्ञाओं, ग्रह नक्षत्र, तिथि, वार, योग, करण, अयन आदि का उल्लेख और उनके स्वामी इत्यादि शब्दों का संग्रह किया है ।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के समानार्थक शब्दों का ही उल्लेख है न कि उनके अर्थों का अतः यह कोष अमरसिंह के अमरकोष, अभिधान चिन्तामणि और अन्य समस्त एकार्थक कोषों की पद्धति पर लिखा गया है ।

प्रस्तुत कोष में शब्दों के संग्रह में वर्णमाला के क्रम का कोई ध्यान नहीं दिया गया लेकिन विषय का विशेष ध्यान है । कोषकार ने सर्वप्रथम नक्षत्र के नामों का फिर द्वादश राशि, इसके बाद द्वादशं भावों की संज्ञा, फिर क्रमशः भुवन, सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु केतु आदि नवग्रहों का क्रमशः इसके बाद घड़ी, पल, प्रहर, दिन रात्रि, पूर्वान्ह, अपरान्ह, पक्ष कृतु, अयन, वर्ष राशि अंश दिक् आदि सभी का क्रमशः उल्लेख किया है ।

इस तरह इस कोष में विषय का ध्यान दिया गया है और उसका क्रमशः उल्लेख करके शब्दों के संग्रह में विशेष क्रम दिखाया है ।

---

१. वररुचि कोष । ११

२. वररुचि कोष । १२

प्रस्तुत कोष में कोषकार ने स्वतन्त्र रूप से ज्योतिष विषय का उल्लेख किया है, सर्व प्रथम २७ नक्षत्रों का उल्लेख है, अमरकोष में भी कुछ नक्षत्रों के पर्याय क्रमशः मिलते हैं, जैसे मृगशिरा नक्षत्र को—

'मृगशीर्षं मृगशिरस्तस्मिन्नलाग्रहायणी' (अमर १।३।२३)
मृगशीर्षं मृगशिरं सौम्यं मृगश्वशोभनं (गणित नाममाला ४)

इसी प्रकार वृहस्पति के नामों में अमरकोष में—

बृहस्पतिः सुराचार्या गीष्पतिर्धिषणो गुरुः
जीव आंगिरसो वाचस्य निश्चित्रशिखण्डिजः । (अमर १।३।१४)

और गणित नाममाला में—

वृहस्पति, घिषणों, देवेन्द्र पूजितः, इन्द्रमन्त्री देव गुरु, वाचस्पति अंगिरसौ, वाम्पति अंगिरा सुतः ।[1] इत्यादि और इसी प्रकार से हेमचन्द्र विरचित अभिधान चिन्तामणि में भी इन्हीं नामों का क्रमशः उल्लेख है । अतः यह सिद्ध होता है कि कोषकार यद्यपि प्रस्तुत सामग्री लेकर स्वतन्त्र रूप से 'गणित नाममाला' नामक कोष की रचना की है तथापि उपर्युक्त कोषों को ही आधार बनाया है ।

इसके अतिरिक्त 'गणित नाममाला' में जो सामग्री है ज्योतिष ग्रन्थों में उपलब्ध होती है, जैसे कोषकार ने तिथियों के स्वामी का उल्लेख किया है । एकादशी तिथि षष्ठी और प्रतिपदा नन्दा कही जाती है, द्वितीया सप्तमी, द्वादशी भद्रा और तृतीया अष्टमी और त्रयोदशी जया, चतुर्थी नवमी और चतुर्दशी रिका, पंचमी, दशवीं और पूर्णमासी पूर्णा संज्ञा कही जाती है ।[2] ज्योतिष ग्रन्थ में मुहूर्त्त चिन्तामणि में इसका उल्लेख है ।[3] इस प्रकार कोष के लिखने के लिए कोषकार ज्योतिष विषयक समस्त ग्रन्थों का आधार बनाया था ।

मातृका कोष

प्रस्तुत कोष में एक ही अक्षर के शब्दों का संग्रह करके उनके अर्थों का उल्लेख किया गया है, इसी प्रकार से पुरुषोत्तम देव के 'एकाक्षर कोष' में भी है, प्रस्तुत कोष में स्वर अ से लेकर व्यन्जन 'ह' तक एक अक्षरों के शब्दों के अर्थों का उल्लेख किया गया है, यह कोष अनेकार्थक (नानार्थक) है इसमें एक

---

१. गणित नाममाला कोष ६६
२. गणित नाममाला कोष ६३ से ६६ तक
३. नन्दा, च भद्रा, च जया च रिक्ता, पूर्णेन्दु तिथ्यौ शुभमस्तशस्ता
शिता शिते——
मुहूर्त्त चिन्तामणि ;

ही शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है। इस कोष में शाश्वत महाक्षपणक, हेमचन्द्र पुरुषोत्तम देव के प्रणाली के आधार पर एक ही शब्द के अनेक नामों का उल्लेख है।

मातृका कोष में शब्द चयन के क्रम में विशेष ध्यान रखा गया है। सबसे पहले स्वर अक्षरों के अ आ इ ई उ ऊ ॠ ॡ ए ऐ ओ औ और क से लेकर ह तक के अक्षरों का एक ही अक्षर के शब्द का अर्थ दिया गया है। इसके अतिरिक्त कोष में कोई विभाग खण्ड, काण्ड, वर्ग नहीं है। कुल ५३ श्लोक हैं क्रम यही है। इस प्रकार का क्रम पुरुषोत्तम देव के एकाक्षर कोष में रखा गया है।

कोषकार ने प्रस्तुत कोष में अपना नाम समय का कोई उल्लेख नहीं किया है, जिससे यह पता लगाया जा सके कि किस समय कोष लिखा है और किस ग्रन्थ से प्रभावित होकर कोष लिखा है लेकिन यह कहा जा सकता है कि कोष में जिस पद्धति का निर्माण किया है उसी पद्धति में चलने वाले कोषकारों के आधार पर इन्होंने कोष लिखा। अतः इनके कोष लिखने के लिए 'अनेकार्थ समुच्चय' शाश्वत 'अनेकार्थ ध्वनि मंजरी महाक्षपणक' 'अनेकार्थ संग्रह' हेमचन्द्र और पुरुषोत्तम देव के 'एकाक्षरी कोषमाला' मुख्य आधार थे इसके अतिरिक्त व्याकरण ग्रन्थों का भी आधार था। महाकाव्य और नाटक ग्रन्थ भी कोषकार ने पढ़ा था। अतः यही सब कोषकार के कोष लिखने के आधार थे।

अव्यय कोष (श्री महादेव)

प्रस्तुत कोष में कोषकार ने जिस परम्परा के आधार पर कोष लिखा है उस परम्परा पर कोई भी कोष नहीं लिखा गया, अधिकांश कोषों में अव्यय वर्ग अलग से रहता है, जैसे अमरकोष, अभिधान चिन्तामणि, द्विरूप कोष त्रिकाण्ड शेष इत्यादि। लेकिन प्रस्तुत कोष में केवल अव्यय कोष ही है। अर्थात समस्त शब्द केवल अव्यय के हैं और इसीलिए इसे अव्यय कहा गया है। इस कोष में यद्यपि शब्दों के अर्थों और प्रयोगों को बताया गया है जो कि व्याकरण ग्रन्थों में बताया जाता है। इसी प्रकार से 'वररुचि' कोष में भी व्याकरण के अनुसार शब्दों के विभाग और प्रयोग बताए गए हैं। अतः यह कोष उन्हीं के पद्धति के आधार पर लिखा गया है।

दूसरी बात यह है कि इस कोष में नानार्थक और समानार्थक दोनों प्रकार के शब्दों का उल्लेख किया गया है।

प्रस्तुत कोष में किसी भी प्रकार का विभाग नहीं है और न तो कोषकार किसी काण्ड, वर्ग, खण्ठ आदि का ही विभाजन किया है और न तो किसी

प्रकार के वर्णमाला के क्रम के आधार पर इस कोष को लिखा गया है इसमें जो ही शब्द कोषकार के सामने आते गए उनका उल्लेख कर दिया है। अतः प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन के लिए किसी भी प्रकार के क्रम का आधार नहीं लिया गया।

कोषकार श्री महादेव ने कोष प्रारम्भ के समय निम्न बातों का उल्लेख किया है।

'अव्ययार्थ प्रकाशं श्री महादेवः कृतीसुधीः।
सिद्धान्त कौमुदी तत्वबोधिनी सुमनोरमायां।
पुराण काव्य कोशादीन समालोच्य गुरूनिमतः।
वित्पित्सूनां प्रतनुते बालानां बोधसिद्धये ।।

कोषकार कहता है कि अव्यय के अर्थों को मैं प्रकाशित करता हूँ। सिद्धान्त कौमुदी तत्वबोधिना (मनोरमा) पुराण, काव्य कोष और गुरु के मत की अर्थात गुरु के उपदेश के आधार पर मैं बालकों के बोध के लिए प्रस्तुत कोष लिख रहा हूँ।

इस प्रकार इससे स्पष्ट होता है कि कोषकार व्याकरण ग्रन्थ सिद्धान्त कौमुदी की तत्वबोधिनी टीका से बहुत प्रभावित था और उसी के आधार पर उससे प्राप्त सामग्री और शब्द के ही आधार पर इस कोष को लिखा। इसलिए यह कोष व्याकरण के समान है, सिद्धान्त कौमुदी, पाणिनीय अष्टाध्यायी का एक खण्ड है। इसमें वरद राजाचार्य ने भाष्य लिखा है उसी भाष्य की व्याख्या मनोरमा टीका से प्रसिद्ध है, जिसके ही द्वारा कोषकार ने प्रस्तुत कोष की रचना की है।

इसके अतिरिक्त कोषकार ने पुराणों का उल्लेख किया है, कोषकार पुराणों से भी परिचित थे, पुराण संख्या में १८ और इतने ही उपपुराण हैं। इन पुराणों को भी कोषकार अध्ययन करके प्रस्तुत कोष लिखा है। इसी तरह काव्य को भी कोषकार ने बताया कि ये भी हमारे कोष के आधार में काव्यों में कालिदास के काव्य, माघ, भारवि, दण्डी, इत्यादि कवियों ने काव्यों को लिखा, जिसका अध्ययन करके कोषकार ने अव्यय कोष की रचना की थी और कोष ग्रन्थों का भी उल्लेख कोषकार ने किया। इनके समय तक समस्त कोष ग्रन्थ प्रसिद्ध हो चुके थे जिसके ही आधार पर कोषकार ने प्रस्तुत कोष की रचना की। अतः प्रस्तुत कोष लिखने के आधार सिद्धान्त कौमुदी पुराण, काव्य, कोष इत्यादि ग्रन्थ थे।

द्विरूप कोष

इस प्रकार का कोष पुरुषोत्तम देव ने 'शब्द भेद प्रकाश' (द्विरूप कोष) नाम से लिखा है, उसी प्रकार से प्रस्तुत कोष भी द्विरूप कोष है। इसका नाम ही है द्विरूप अर्थात शब्दों के दो रूप, एक ही शब्द के दो रूप और उसका अर्थ परिवर्तन दिखाया गया है। इस प्रकार पुरुषोत्तम देव के 'शब्द भेद प्रकाश' नामक कोष में है। अतः उसी पद्धति के आधार पर यह कोष लिखा गया है। प्रस्तुत कोष के लेखक का पता न लगने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि पुरुषोत्तम देव ने इनकी पद्धति का अनुकरण किया कि इन्होंने पुरुषोत्तम देव के पद्धति का अनुकरण किया।

इन्होंने शब्दों के अर्थों का उल्लेख नहीं किया है वरन दो (युग्म) शब्दों को देकर उसके अर्थ परिवर्तन की ओर संकेत किया है। अतः यह कोष अनेकार्थ न होकर समानार्थक है।

प्रस्तुत कोष में शब्द चयन के लिए कोई क्रम नहीं लिया है। पहले एक ही प्रकार के दो शब्द ऐसे बताए हैं जिनमें 'स' का केवल अन्तर तीनों 'स' के परिवर्तन में अर्थ किस प्रकार बदल जाता है। इसके पश्चात मात्रा परिवर्तन हो जाने से किस प्रकार शब्द का अर्थ बदल जाता है, केवल यही क्रम प्रस्तुत कोष का है। इसके अलावा कोई वर्ण, विभाग, वर्ग, भाग आदि के आधार पर विभाग नहीं किया गया है।

प्रस्तुत कोष में जो शब्द प्रयुक्त हैं, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि कोषकार ने शब्द संग्रह के लिए पाणिनीय व्याकरण को मुख्य रूप से आधार बनाया था। इसके अतिरिक्त कोष ग्रन्थों में अमर शाश्वत, त्रिकाण्ड, अभिधान चिन्तामणि, प्रभृति कोषों के आधार पर ही कोषकार ने प्रस्तुत कोष लिखा है। पुरुषोत्तमदेव ने भी इसी प्रकार कोष लिखा है, अतः उनका ही कोष आधार रहा होगा।

उणादि कोष (शिवराम)

प्रस्तुत कोष में उणादि प्रत्ययांत शब्दों की व्युत्पत्ति अर्थ और लिंग का बोध कराया गया है। इसके साथ ही यह भी बताया गया है कि एक ही शब्द विभिन्न पर्यायों में लिंग भेद हो जाते हैं, जैसे गज करि एक ही अर्थ के हैं लेकिन इन दोनों में लिंग में अन्तर है, गज शब्द पुल्लिंग में आता है और करि स्त्रीलिंग

है ।[1] इस प्रकार प्रस्तुत कोष की पद्धति व्याकरण के आधार पर है । कोषकार ने इसी उद्देश्य को लेकर पूर्व में ही लिखा है कि जो शब्द शेखर ने तत्व बोधिनी टीका में नहीं लिखा उसी को मैं लिख रहा हूँ ।[2] अतः प्रस्तुत कोष उणादि प्रत्ययांत शब्दों की टीका है क्योंकि कोषकार इसको स्वीकार कर रहा है । कुछ भी हो यह उणादि शब्दों के संग्रह के कारण उणादि कोष है ।

प्रस्तुत कोष व्याकरण के समान होने से दोनों प्रकार की प्रणाली का अनुकरण करता है । प्रस्तुत कोष में शब्दों के समानार्थक शब्दों को और उसमें कुछ के अर्थ और प्रयोग व्युत्पति तथा उनका विभेद स्त्रीलिंग, पुलिग इत्यादि बातों का विचार किया गया है ।

प्रस्तुत कोष में शब्द चयन के लिए किसी विशेष क्रम का ध्यान नहीं रखा गया है । न तो वर्णमाला के ही आधार पर शब्दों को प्रयुक्त किया गया है, कुल पांच पाद हैं । पाँचों पादों में एक ही प्रक्रिया से शब्दों के प्रकृति प्रत्यय लिंग का बोध कराया गया है ।

प्रस्तुत कोष में उणादि प्रत्ययांत शब्दों का संग्रह किया गया है जो कि व्याकरण ग्रन्थ के आधार पर शब्दों के प्रयोग, लिंग प्रत्यय का विभाग है, पाणिनि के अष्टाध्यायी पर, पतंजलि और कात्ययान ने भाष्य लिखा और उसी भाष्य पर वरदराजाचार्य ने भी भाष्य लिखा और उसकी टीका मनोरमा नाम से शब्द शेखर ने लिखा है । कोषकार लिखता है कि तत्व बोधिनी टीका में (बालमनोरमा) के जिन उणाधंत प्रत्यय को नहीं लिखा गया है उसी को मैं लिख रह हूँ ।[3] मुख्य रूप से कोषकार ने पाणिनि के अष्टाध्यायी का आधार बनाया और उसी के आधार पर अपने प्रस्तुत की रचना की और दूसरा आधार कोषकार ने मनोरमा टीका को बनाया क्योंकि मनोरमा टीका के ही आधार पर कोषकार को मालूम हुआ कि अमुक-अमुक शब्दों की व्युत्पति, अर्थ, प्रयोग, लिंग इस प्रकार से दिया गया है और अमुक शब्दों का भी इस प्रकार से होगा अतः कोषकार का दूसरा आधार बाल मनोरमा टीका थी ।

इसके अतिरिक्त कोषकार ने जो शब्दों का संग्रह किया है और उसके समानार्थक शब्दों दिया है वे शब्द संस्कृत कोषों, के हैं जैसे करि गज,

---

१. उणादि कोष ।२।१

२. उणादि कोष ।१।८

३. नालेखि तत्व बोधिन्यांयोऽर्थ शब्ददुशेंखरे
मनोरमा व्याख्याख्यात्रा सोऽप्यत्र लिखितोमया । ।१।८

हाँथी[१] के समानार्थक हैं । ये दोनों शब्द अमरकोष, शाश्वत कोष अभिधान इत्यादि समस्त कोषों में मिल जाते हैं । इससे यह स्पष्ट होता है कि कोषकार प्रथम आधार पाणिनीय अष्टाध्यायी को बनाया फिर बाल मनोरमा टीका को और इसके पश्चात अमर, शाश्वत त्रिकाण्ड, अभिधान चिन्तामणि इत्यादि कोषों को बनाया और उसी आधार पर प्रस्तुत कोष का निर्माण किया ।

पंचतत्व प्रकाश (वेनीदत्त)

प्रस्तुत कोष में शब्दों के पर्यायों का उल्लेख किया गया है, जैसे पृथ्वी के २५ नाम, भूमृत के दो नाम, इत्यादि । अर्थात प्रस्तुत कोष में शब्दों का समानार्थक प्रयोग किया गया है । यह प्रयोग वैदिक कोष निघण्टु, अमरकोष आदि के पद्धति के अनुसार किया गया है । क्योंकि इन दोनों कोषों में जिस पद्धति का सृजन किया गया है, उसी पद्धति का अनुकरण पंचतत्व प्रकाश में किया गया । उसमें भी शब्दों के पर्यायों का उल्लेख है । इसमें भी शब्दों के पर्यायों का उल्लेख है ।

प्रस्तुत कोष में शब्द चयन के लिए किसी क्रम का आश्रय वर्णमाला के आधार पर नहीं लिया गया है जैसा कि अन्य कोषों में लिया जाता है । प्रस्तुत प्रस्तुत कोष में शब्दों के चयन के लिए कोषकार कुछ विभाग बना दिया है और उस विभाग के अन्तर्गत उन्हीं शब्दों का संग्रह किया गया है जो उससे सम्बन्धित हैं जैसे प्रथम—

(१) मनुष्य मरीचिः में मनुष्यों के ही जाति, कर्म विवाह नाम आदि के बारे में बताया गया है ।

(२) चतुःपय मारीचिः—इस विभाग में चार पैर वाले, पशु पक्षी जीव जन्तु के नाम, अंग इत्यादि से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह है ।

(३) वृक्षलता औषधि मारीचिः—इस विभाग में वृक्ष, लता वनस्पतियों के विभिन्न नामों का उल्लेख है ।

(४) याज्ञिक वंश—इसमें याज्ञिकों के वंशों का उल्लेख है ।

(५) जलमानुस्फूर्ति मारीचिः इसमें सूर्य की किरणें और जल से सम्बन्धित समस्त शब्दों का उल्लेख किया गया है।

(६) दिक्पाल मारीचिः इसमें समस्त दिक्पालों से ही सम्बन्धित शब्दों का उल्लेख किया गया है ।

---

४. उणादि कोष २।१

(७) शव मारीचिः इसमें मरणोपरान्त शवों का संग्रह किया गया है।
(८) अंडज मारीचिः इसमें अंडा से उत्पन्न जीवों के कुछ शब्दों का उल्लेख है।

इस प्रकार प्रस्तुत कोष में इसी विभाग के अन्तर्गत ही शब्दों का चयन किया गया है।

प्रस्तुत कोष में जिन शब्दों का संग्रह किया गया है, अधिकांश शब्द वैदिक कोष निघण्टु के ही आधार पर हैं। सर्वप्रथम वैदिक कोष निघण्टु में पृथ्वी के २१ नामों का उल्लेख है [१] और इस कोष में भी सर्वप्रथम पृथ्वी के २५ नामों का उल्लेख किया गया है।[२] इसके पश्चात निघण्टु में नदी के ३७ नामों का उल्लेख मिलता है।[३] उन्हीं नामों का उल्लेख प्रस्तुत कोष में भी मिलता है।[४] इस तरह प्रस्तुत कोष और निघण्टु के शब्दों में समानता दिखती है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि कोषकार सर्वप्रथम इस कोष के लिए वैदिक कोष निघण्टु का आश्रय लिया होगा।

इसी तरह इस कोष में जिन पशु पक्षी लता, वनौषधि इत्यादि समस्त शब्दों का संग्रह है वे समस्त शब्दों का संग्रह अमरकोष में भी किया गया है। निघण्टु के पश्चात संस्कृत का सबसे उत्कृष्टतम कोष अमरकोष है। इसमें समस्त शब्दों का विभाग के अनुसार संग्रह किया गया है। इस कोष की सामग्री समस्त बाद के कोषकारों ने ग्रहण की है,

शारदीयाख्य नाममाला (हर्षकीर्ति)

प्रस्तुत कोष में ३ काण्ड हैं। और तीनों काण्डों में अलग-अलग वर्ग हैं। वर्ग में उनके नाम के अनुरूप उसी प्रकार के शब्दों का भी संग्रह किया गया है। इसी प्रकार से अमरकोष, त्रिकाण्ड शेष, अभिधान चिन्तामणि इत्यादि कोषों में काण्ड और वर्ग के आधार पर शब्दों का संग्रह किया गया है। इसी पद्धति के अनुसार प्रस्तुत कोष लिखा गया है।

शब्द समानार्थक हैं। शारदीयाख्य नाममाला नामक कोष में एक ही शब्द के अनेक पर्यायों को दिया गया है। यह कोष अमरकोष के पद्धति पर लिखा गया है।

प्रस्तुत कोष में शब्दों का चयन कोष में किए गए विभाग के आधार पर किया गया है, जैसे कोष में तीन काण्ड हैं। प्रथम काण्ड में तीन वर्ग (१)देववर्ग

---

१. निघण्टु १।१
२. निघण्टु पंचतत्व कोष।१।१
३. निघण्टु १।१३
४. पंचतत्वकोष जलमानुस्फूति मारीचि।७

इस वर्ग में देवताओं के ही नामों का उल्लेख किया गया है, (२) धरावर्ग— इस वर्ग में पृथ्वी के नाम और पृथ्वी के जीव जन्तु आदि के नामों का उल्लेख है और (३) व्योम वर्ग में अन्तरिक्ष, आकाश, दिक् आदि के नामों का उल्लेख है। इसी प्रकार द्वितीय काण्ड में भी अंग वर्ग में अंगों का वर्णन, संगीत वर्ग में संगीत कला नाद्य, वाद्य आदि का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार तृतीय काण्ड में ब्रह्म वर्ग में ब्राह्मण, राज वर्ग में राजा, क्षत्री आदि का उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत कोष के समस्त वर्गों में उसी से सम्बन्धित ही शब्दों का चयन किया गया है, उससे भिन्न शब्द उस वर्ग में नहीं मिलेंगे।

प्रस्तुत कोष में समानार्थक शब्दों का संग्रह किया गया है तथा तीन काण्ड में कोष का विभाग किया गया है और त्रिकाण्डशेष इन दोनों कोषों में भी ३ काण्ड हैं और प्रत्येक काण्ड में अलग-अलग वर्ग हैं तथा अलन-अलग वर्गों में उससे सम्बन्धित शब्दों का ही संग्रह किया गया है। उसी प्रकार से प्रस्तुत कोष शारदीयाख्य नाममाला में भी तीन काण्ड और तीनों काण्ड में अलग-अलग वर्ग और वर्ग में भी सम्बन्धित शब्दों का ही उल्लेख किया है और शब्द भी वही है जो अमरकोष और अभिधान चिन्तामणि में प्रयुक्त है। इस कोष में सर्वप्रथम सरस्वती के निम्न नामों का उल्लेख है। वाग्देवी, शारदा, ब्राह्मी, भारती, गीः सरस्वती, हंसयाना, ब्रह्म पुत्री सारदा, वरदायिनी इत्यादि[1] और हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणि में सरस्वती के यही नाम प्रयुक्त हैं। उपर्युक्त दोनों नामों में विशेष भिन्नता नहीं है अमरकोष में भी। इसी प्रकार सरस्वती के भी इसी प्रकार सरस्वती के नामों का उल्लेख है और अन्य देवताओं के नामों का भी उल्लेख है। निघण्टु में सर्वप्रथम पृथ्वी के २१ नामों का उल्लेख है[2] इसमें भी भूमि, भू, वसुधा, धरित्री, धरिणी, धरा, मही, वसुधरा, धात्री क्षाणी, क्षमा मेदिनी क्षिति[3] निघण्टु के ही शब्दों का संग्रह है। अतः इस कोष के लिखने का मुख्य आधार, निघण्टु अमरकोष, अभिधान चिन्तामणि आदि। इसके अतिरिक्त व्याकरण, काव्य इत्यादि ग्रन्थ भी हैं।

---

१. शारदी नाममाला १।१।१

२. अभिधान चिन्तामणि २।१५५०

३. निघण्टु १।१

सिद्ध शब्दार्णव सहजी कीर्ति

प्रस्तुत कोष में शब्दों के संग्रह के लिए जो पद्धति का अनुकरण किया गया है। वह पद्धति अमरकोष, अभिधान रत्नमाला के अनुसार श्री सहजी कीर्ति ने अपने कोष 'सिद्धशब्दार्णव' में अपनाई है।

प्रस्तुत कोष में किसी भी क्रम का स्पष्ट उल्लेख नहीं है और न तो वर्णमाला के अक्षरों के क्रम के आधार पर शब्दों का संग्रह किया गया है। जो क्रम अपनाया गया है वह इस प्रकार से प्रथम काण्ड में पहले कुछ श्लोकों तक जैकाधिकार बताया गया है और उसमें जैन से सम्बन्धित ही शब्दों का संग्रह किया गया है, इसके पश्चात क्रमशः ब्राह्मण और उसके कर्म जाति आदि शब्दों का संग्रह है। द्वितीय काण्ड में सुराधिकार सरकाधिकार, शस्त्राधिकार, क्षत्रियाधिकार, शूद्राधिकार इत्यादि विभागों में सम्बन्धित शब्दों का ही संग्रह किया गया है।

कुछ लोगों का कहना है कि सहजी कीर्ति ने हेमचन्द्र के 'अभिधान चिन्तामणि' से शब्दों को अपने कोष में संग्रह किया है। कुछ ऐसे शब्द हैं जो क्रमशः कोषकार ने अपने कोष में संग्रह तो किया लेकिन उन शब्दों के अतिरिक्त और शब्दों को भी संग्रह किया है। अतः हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणि और सहजी कीर्ति के सिद्ध शब्दार्णव में शब्दों में एकरूपता तो है लेकिन कुछ शब्द या तो कम हैं या और ज्यादा हैं। जैसे—

प्रथम काण्ड

		सहजी कीर्ति	हेमचन्द्र
१.	साधु नाम	१६	११
२.	मोक्ष	२४	१८
३.	कृष्ण	१६४	७५
४.	बलभद्र	३१	२१
५.	महादेव	१०५	७८
६.	पार्वती	१०७	३२
७.	गणेश	१६	१०
८.	वचन	१०	४

द्वितीय काण्ड

१.	स्वर्ग	२०	१२
२.	देवता	३५	२७

३.	इन्द्र	५६	४२
४.	राक्षस	३५	१७
५.	कुबेर	३०	२२
६.	चन्द्र	५६	३२
७.	सूर्य	६८	७२
८.	वृहस्पति	२१	१३
९.	अगस्ति	१७	६
१०.	अर्जुन	२३	१७
११.	बान	२६	२०
१२.	तरवारि	३५	११

इस प्रकार उपर्युक्त शब्द संख्या देखने से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि कोषकार ने हेमचन्द्र के कोष से अपने कोष में शब्दों की संख्या ज्यादा की है लेकिन सभी शब्दों के क्रम और वही नाम क्रमशः प्राप्त होने से स्पष्ट रूप से यह कहना पड़ेगा कि कोषकार ने अभिधान चिन्तामणि के ही आधार पर अपना कोष लिखा।

और जो शब्द अभिधान चिन्तामणि के नहीं हैं वे शब्द अमरकोष के हैं और अमरकोष में भी इन्हीं समस्त शब्दों का संग्रह किया गया है, अतः कोषकार को भी अपने कोष निर्माण में आधार बनाया था।

इसके अतिरिक्त कोष में यज्ञ सम्बन्धी शब्दों का भी संग्रह किया गया है। होमकुण्ड, यज्ञ, यज्ञान्त, यज्ञ क्रिया, अग्निहोत्री, अग्निराषण होमधूम, होमराज, आचमन, होमाग्नि, यज्ञकुण्ड[1] इत्यादि जो वेद में यजुर्वेद में बताए गए हैं, इसी प्रकार प्रस्तुत कोष में वेद, वेदत्रयी, अथर्वण वेद, आदि वेदों के नाम बताए गए हैं। कोषकार ने वैदिक शब्दों का संग्रह किया वेदों का अध्ययन किया और निघण्टु का भी अध्ययन करके उससे भी संग्रह किया। निघण्टु का वज्रनाम[2] प्रस्तुत कोष में ठीक उसी शब्द में प्रयुक्त हुआ है।[3]

इस प्रकार कोषकार ने अपने कोष के लिए जिन-जिन ग्रन्थों को आधार बताया उसमें हेमचन्द्र का अभिधान चिन्तामणि, अमरसिंह का अमरकोष वैदिक कोष 'निघण्टु' के अतिरिक्त चारों वेदों, पुराणों, स्मृतियों दर्शन आदि ग्रन्थों का

---

१. सिद्धशब्दार्णव १।१३८ से १४२ तक

२. निघण्टु । २।२०

३, सिद्ध शब्दार्णव २।२८

अध्ययन किया था और इन्हीं समस्त कोष और ग्रन्थों के आधार पर ही अपने कोष में शब्दों का संग्रह किया है।

अनेकार्थ तिलक (महीप)

प्रस्तुत कोष 'अनेकार्थ समुच्चय' शाश्वत, अनेकार्थ ध्वनि मंजरी महाक्षपणक, अनेकार्थ संग्रह हेमचन्द्र आदि कोषकारों की पद्धति पर लिखा गया है, क्योंकि प्रस्तुत कोष में भी शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है और उपर्युक्त कोष में भी शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख है।

प्रस्तुत कोष में शब्द संग्रह का क्रम वर्णमाला के क्रम के आधार पर है। कोष में कुल चार काण्ड हैं—(१) प्रथम एकाक्षर काण्ड–इस काण्ड में जितने भी शब्दों का संग्रह किया गया है वे सब एक अक्षर के हैं और इनका क्रम, क्रमशः 'अ' से प्रारम्भ होकर 'क्ष' तक है। इस काण्ड में एक ही अक्षर के शब्द हैं। इसीलिए इसे एकाक्षर काण्ड कहा गया है, (२) द्वितीय द्वयक्षर काण्ड—इस काण्ड में दो अक्षर के शब्दों का अर्थ दिया गया है। शब्द संग्रह का क्रम पूर्ववत 'अ' से लेकर 'क्ष' तक है। प्रथम शब्द अर्थ और अन्तिम शब्द क्षिति है। इसी प्रकार (३) तृतीय काण्ड में तीन अक्षर के शब्दों और उनके अर्थों का संग्रह है। क्रम अ वर्ग से प्रारम्भ हो 'क्ष' तक से प्रारम्भ होने वाले शब्द और उनके अर्थ है। प्रथम शब्द अभितः है और अन्तिम शब्द क्षेत्रज्ञ है कोई भी शब्द हो वह क्रम से पहले 'अ' का क्रम फिर आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, लृ क, ख और क्ष तक के अक्षरों से प्रारम्भ होगा और तीन अक्षर के होंगे और आदि अक्षर क्रम से अ से लेकर क्ष तक के शब्द हैं। तीन अक्षर बाद के चाहे जो भी हों, पहले अक्षर क्रम से अ रहेगा और जब अ से प्रारम्भ चार अक्षर का शब्द नहीं रहेगा क्रमशः प्रारम्भ में दूसरा अक्षर आ जायगा। इस काण्ड का प्रथम अक्षर अपवर्ग और अन्तिम अक्षर क्षीराब्धिजं है। इस प्रकार वर्णमाला और काण्डों के ही आधार पर प्रस्तुत कोष में शब्दों का चयन किया गया है।

अनेकार्थ तिलक (महीप)

कोषकार महीप ने अपने कोष के लिए पाणिनि, अहीन्द्र, भागुरि, भोज, भेद, हेम आदि के ग्रन्थों से बहुत सहायता ली है।[1] इसके अतिरिक्त महीप ने

---

१. पाणिन्यहीन्द्रगुरु भागुरिभोज भेद, हेमाभरादि समुदीरित शास्त्र सारात।
नानार्थ रत्नतिलक सच सिद्ध शब्द रत्नाकरं समतनोत्सुमतिर्महीप ॥

अन्य पूर्व कोषकारों के कोषों के सहायता पर ही अपने शब्दों का संग्रह किया तथा कुछ कोषों की तो पंक्तियां ही उतार ली है जो नीचे दर्शायी जा रही है। जैसे —

(अनेकार्थ तिलक)	(अन्य कोष)
१—त्विट् प्रभायां जिगीषायां व्यवसाये रुचौगिरि १।२३	त्विट शोभायां जिगीषायां व्यवसाये रुचौगिरि। व्याख्या सुधा अमर १।४।३४
२—निर्निश्चयोनिषेधयो। १।२८	निर्निश्चयनिषेधयो। अमर ३।४ विश्वकोष में भी २५३
३—कष्टं तु गह्ने कृच्छ्रे। २।७५	कष्टं तु गहने कृच्छ्रे। व्याख्या सुधा अमर
४—खारिः किणे शवरथे २।८६	खारिः किणे शवरथे, अनेकार्थ संग्रह, हेम २।८७
५—खलुवारण जिज्ञासा वाक्य भूषासु सांत्वने। २।८७	खलुस्याद्वाक्य भूषायां जिज्ञासायां च सांत्वने। मेदिनी कोष।
६—गुडः कुंजर सन्नाहे गोलकेक्षु विकारयोः २।८६	गुडः स्याद्गोलके हस्ति सनाहेक्षु विकारयोः मेदिनी
७—गुडा स्नुहिगुटिकयोः २।८६	स्नुही गुडिकयोर्गुडा रुद्रकोष
८—गन्धो गर्वे गन्धके चामोदे सम्बन्ध लेशयाः। २।६२	गन्धः सम्बन्ध लेशयोः। गन्धकामोद गर्वेषु अभि अनेकार्थ संग्रह हेमचन्द्र २, २४२, २४३
९—ज्येष्ठा तु गृहगोधायां नक्षत्रौषधि भेदयोः २।११८	ज्येष्ठा तु गृहगोधाख्य जन्तु नक्षत्र मेदयोः। मेदिनी।
१०—त्रायमाणौषधे पि च २।१२७	त्रायमाणौषधावपि। अनेकार्थ संग्रह हेमचन्द्र २।१४४
११—तर्कोविचारे कांक्षायामूह कर्म विशेषयोः। २।१२८	तर्कों वितर्कों कांक्षायामूह कर्म विशेषयोः हेम, अनेकार्थ संग्रह २।६
१२—तिक्ता च कटुरोहिण्या २।१४०	तिक्ता तु कटुरोहिण्या, अनेकार्थ संग्रह हेम० २।१७४

(अनेकार्थ तिलक)	(अन्य कोष)
१३—धाना मृष्टयवेंकूर धन्याकचूर्ण सक्तषु २।१५३	धाना मृष्ट यवेंकूरे धान्या के चूर्ण सक्तुषु । अनेकार्थ सं० हेम० २।२७४
१४—यन्ता सूते हस्तियके २।२४६	यन्ता हस्ति यके सूते । अमर
१५—आसक्तिः संगमे लाभे	आसक्ति संगमे लाभे, हेम, अ०सं० ३।२६४
१६—आयस्तः कष्टिते क्षिप्ते तेजिते कुपिते हते । ३।२५	आयस्तस्तेजिते क्षिप्तेक्लेशिते हते । मेदिनी ।
१७—भृष्टे रुके बदान्ये स्यान्निभष्टा शिन्यतिथिद्विषि ४।१४६	भृष्टे रुके वदोन्येपि मिष्टाशिन्यतिथि द्विषि । मेदिनी

उपर्युक्त पंक्तियों के देखने से स्पष्ट होता है कि कोषकार ने इन्हीं समस्त ग्रन्थों से ये पंक्तियां अपने कोष में उद्धृत की थी और इन्हीं समस्त ग्रन्थों के ही आधार पर अपने कोष को लिखा है ।

राजव्यवहार कोष (पंडित रघुनाथ)

संस्कृत कोष साहित्य के पद्धति जिसमें शब्दों के पर्याय दिये जाते हैं । इस प्रकार के पद्धति का अनुसरण राज व्यवहार कोष में किया गया है, जैसे राजवर्ग में राजा के पर्यायों में बादशाह, स्वामी साहब[1] आदि का उल्लेख किया गया है । मन्त्री को शाहजादा, प्रधान, पेशवा, अमात्य आदि शब्दों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार इससे स्पष्ट होता है कि प्रस्तुत कोष में समानार्थक या एकार्थक पद्धति का अनुकरण किया गया है ।

इसी तरह दूसरी पद्धति अर्थात अनेकार्थक पद्धति का भी अनुकरण कोषकार ने किया है । जैसे कोषागार का अर्थ खजाना, कोष रक्षक जमादार कोषपाल हवलदार[2] इत्यादि विभिन्न शब्दों के विभिन्न अर्थ दिये गए हैं । अतः इससे स्पष्ट होता है कि राज व्यवहार कोष में कोषकार ने दोनों पद्धतियों का अनुसरण किया है ।

---

१. राज व्यवहार कोष १।१
२. राज व्यवहार कोष २।३४

कोषकार रघुनाथ पंडित ने प्रस्तुत कोष में यद्यपि १० विभागों में शब्दों का संग्रह किया है फिर भी राज्य मन्त्री होने से अधिकांश शब्द राज व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का ही प्रयोग किया है और इसे कोष में कोषकार जो विभाग भी किया है। वह सब राज व्यवहार में प्रयुक्त वर्ग ही है जैसे राजवर्ग जिसमें राजा[1], मन्त्री, राज दरबार आदि का क्रम से उल्लेख किया है। इसी प्रकार कार्य स्थान वर्ग में भी कोषागार, कोषपाल[2] हवलदार आदि राजकीय व्यक्तियों के नामों का उल्लेख है। इसी प्रकार भोग्यवर्ग में भोज्य सामग्री का उल्लेख किया गया है, जैसे जहाँ भोजन बनाया जाता था उस घर को रसोंई[3] कहा गया है। इसी प्रकार अन्य भोग्य पदार्थों में मादक वस्तुओं में अफीम, क़हवा[4] आदि का उल्लेख किया गया है। श्रृंगार की वस्तुओं में अगर, चाँबा, अर्गजा, गुलाल, अबीर, अतर, गुलाब[5] आदि शब्दों का संग्रह क्रम से किया गया है। शास्त्र वर्ग में युद्ध के शस्त्र और युद्ध सम्बन्धी अधिकारियों का उल्लेख प्राप्त होता है।। जैसे हवलदार, बागदार[6] आदि शस्त्रों में क्रम से गुर्गुजा, सौटा, कटार, परशु बाण, तीर, कमान[7] आदि उल्लेख प्राप्त होता है। पंचम वर्ग में राजा के चारों सेना को समस्त साधनों से वर्णन किया गया है। षष्ट वर्ग में सामन्तों का उल्लेख किया गया है, जिसमें वजीर, जुम्लेदार, जमातदार[8], आदि का क्रमशः उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार दुर्ग, लेखन, जनपद और पण्य वर्गों में क्रमशः इन्हीं से ही सम्बन्धित नामों का उल्लेख किया गया है।

कोषकार ने प्रस्तुत कोष में वर्ग के ही आधार पर उपर्युक्त वर्ग में ही उपयुक्त शब्दों का संग्रह किया है यों तो प्रस्तुत कोष ही राज्य इत्यादि से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह है, जो कि क्रम से वर्गानुसार किया गया है।

कोषकार ने राज व्यवहार कोष में समस्त राज्य में व्यवहारोपयोगी शब्दों का संग्रह किया है। मुख्य रूप से राजा के अंगों का विस्तृत विवेचन किया

---

१. राज व्यवहार कोष १।१
२. राज व्यवहार कोष २।३५
३. राज व्यवहार कोष ३।८१
४. राज व्यवहार कोष ३।८७
५. राज व्यवहार कोष ३।६३
६. राज व्यवहार कोष ४।१४,।१५
८. राज व्यवहार कोष ४।१८, १६, २०
८. राज व्यवहार कोष ६।७७

गया है, जैसे अमरसिंह ने स्वामी, अमात्य, सुहृत, कोष, राष्ट्र, दुर्ग बल और प्रजा ये आठ अंग बताए हैं।[1] कोषकार श्री रघुनाथ पंडित ने इन उपर्युक्त आठ अंगों पर अलग अलग वर्ग लिखे हैं। जैसे पहला वर्ग है राजवर्ग, अमरसिंह ने राज्य अंग का उल्लेख पांचवे में किया है। राज वर्ग में कोषकार ने राज दरबार में कार्यरत भालदार, चोपदार, अमात्य, सचिव, पेशवा इत्यादि का उल्लेख किया है। इसी प्रकार अमरसिंह ने चतुरंग का उल्लेख किया है, राज व्यवहार में भी चारों अंगों के वर्णन के लिए अलग से चतुरंग वर्ग लिखा है। हेमचन्द्र ने भी चतुरंग के उल्लेख में हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल का क्रम बताया है। राज व्यवहार कोष में भी यही क्रम है। सबसे पहले गज[3] का वर्णन किया गया है। इसके पश्चात अश्व का वर्णन फिर रथ का वर्णन तथा अन्त में पैदल सेना का उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार से अमर कोष में राजा के अंगों में दुर्ग[4] का उल्लेख किया है और राज व्यवहार कोष में दुर्ग वर्ग[5] स्वतन्त्र रूप से लिखा गया है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि कोषकार रघुनाथ पंडित के अमरकोष का मुख्य आधार लेकर अपने कोष का निर्माण किया। यद्यपि कोषकार ने केवल राज्य व्यवहारोपयोगी शब्दों का ही मात्र उल्लेख किया है। इसी से सभी अंगों का विस्त्रित विवेचन किया है और अमरकोष में समस्त शब्दों का संग्रह किया गया है। इससे संक्षिप्त विषय पर ध्यान दिया गया है।

●

१. स्वाम्यामात्यसुहृत्कोष राष्ट्रदुर्गबलानिच
राज्यांगानि प्रकृतयः पौराणां श्रेणयोऽपिच ॥ अमरकोष २।८।१७, १८

२. गजोवाजिरथः पत्तिः सेनांगं स्याच्चतुर्विधम् । अभि० चि० ३।४१५

३. राज व्यवहार कोष ५।३४

४. अमर कोष २।८।१७

५. राज व्यवहार कोष ७।१९०

चतुर्थ अध्याय

कोषगत सांस्कृतिक सामग्री

अमरकोष में सांस्कृतिक सामग्री

संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत अमरकोष का महत्वपूर्ण । स्थान है, संस्कृत साहित्य में कोष अपना विशेष महत्व रखते हैं, क्योंकि कोष के माध्यम से ही पद लिंग अर्थ इत्यादि का ज्ञान होता है,

यद्यपि सांस्कृतिक चित्र के अन्तर्गत मानवीय विकास का ही दर्शन होता है क्योंकि मनुष्य विकास की ओर अग्रसित होता है । उत्थान और पतन प्रकृति का नियम है जिसका विकास होता है उसका विनाश भी होता है । यह क्रम निरन्तर चलता रहता है ।

अमरकोष में सांस्कृतिक चित्र

साहित्य के अध्ययन से तत्कालीन सांस्कृतिक चित्र स्पष्ट दिखाई पड़ता है, अगर वैदिक कोष निघण्टु और निरुक्त का अध्ययन किया जाय तो वैदिक कालीन संस्कृति हमें अवश्य दिखाई पड़ती है । उसी प्रकार अमरकोष का अध्ययन किया जाय तो 'अमरकालीन' संस्कृति का ज्ञान हमें होता है । सांस्कृतिक चित्र देखने के लिए निम्न आधारों का आश्रय लेना नितान्त आवश्यक होता है ।

अमरकालीन भूगोल

किसी भी देश की भौगोलिक स्थिति का प्रभाव तत्कालीन साहित्य पर पड़ता है । साहित्य अपने समकालीन देश की स्थिति देश की सीमा किस प्रकार थी कहां से लेकर कहां तक का भाग इस देश की सीमा के अन्तर्गत आता है,

इस देश में कौन कौन से मुख्य पर्वत हैं । इनका विस्तार कितना है,

कितने ऊँचे हैं देश में किस ओर समुद्र है कितने समुद्र हैं कितने गहरे तथा इनकी कितनी सीमायें हैं। नदियाँ कितनी हैं, आदि का विस्तार से अथवा अप्रत्यक्ष रूप से वर्णन उस समय के साहित्य में जरूर रहता है।

अमरकोष में इस प्रकार की सामाग्री बहुत ही अल्प है। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी में भौगोलिक स्थिति का चित्रण बहुत ही विस्तृत किया है।

देश

'भारतवर्ष' का उल्लेख जो अमरसिंह ने किया ठीक उसी प्रकार अन्य काव्य किरातार्जुनीय, शिशुपाल बध में हुआ। श्रीमद् भागवत महापुराण में इसी अनुरूप का उल्लेख हुआ है।[1] इन समस्त सामाग्री के आधार पर भारतवर्ष की प्राचीनता का प्रमाण प्राप्त होता है। इसी प्रकार से प्राच्य और उद्दीच्य देशों का नाम प्राप्त होता है।[2] प्राच्य शरावती नदी के पूर्व और दक्षिण वाले देश को माना है। तथा उदीच्य शरावती नदी के पश्चिम उत्तर बताया है। पाणिनि ने भी प्राच्य और उदीच्य इन दो भागों का उल्लेख किया है।[3]

'विन्धाचल और हिमालय पर्वत के बीच वाले भाग को आर्यावर्त कहते हैं। इसी को पुण्य भूमि भी कहते हैं।[4] इसका उल्लेख करते हुए स्वयं मनु ने लिखा है—

'आसमुद्राच्च वैपूर्वादासमुद्राच्च पश्चिमात्
तपोरेवान्तरं गिर्योर्यावर्त्तं विदुर्बुधा ॥ मनु ।२।२२

इस प्रकार से उपर्युक्त देशों का उल्लेख कोष में प्राप्त होता है, जिसमें उस समय के भारतवर्ष का स्वरूप चित्रित किया गया है।

पर्वत

हिमालय—अमरसिंह ने पर्वतों में हिमालय का नाम सर्वप्रथम रखा है।[5] भारत के सीमा का प्रतीक हिमालय है जो आज तक बना हुआ है। हिमालय सबसे ऊँचा पर्वत है जो भारत के उत्तर में विराजमान है। कालिदास ने भी कुमार संभव के प्रारम्भ में ही हिमालय का नाम लिया है।

---

१. अमरकोष २।१।७

२. पा० का० भारतवर्ष पृष्ठ ४१ वासुदेव शरण अग्रवाल

३. अमरकोष २।१।८

४. भागवत ५।१९।२१। किरातार्जुनीयम्, शिशुपाल वध ।९४।५
अमरकोष २,१,६

५. अमरकोष २।१।८

त्रिकूट—इसका एक नाम चिक्कुद भी प्राप्त होता है। पाणिनि ने इसे 'त्रिक्कुत पर्वते' कहा है[1] इसका उल्लेख अथर्ववेद में भी प्राप्त होता है[2] अमरसिंह ने लिखा 'त्रिकूटः त्रिककुत्समो।[3] 'त्रीणि कूटानि यस्यं'। तीन शिखरों वाला। इसका उल्लेख रामायण में भी प्राप्त होता है।

सुमेरु—अमरकोष में इसका उल्लेख स्वर्ग वर्ग में किया गया है। यह सोने का पर्वत है, तथा यह देवताओं का पर्वत है। इस पर्वत का उपयोग देवता ही कर सकते हैं।

विन्ध्य—इस पर्वत का उल्लेख पुरवर्ग में किया गया है। यह भारतवर्ष के मध्य में स्थित है। बाणभट्ट ने इसे भारतवर्ष का स्तन बताया है। मेघदूत में कालिदास ने इसे 'अम्रकूट' नाम दिया है।[4] इसकी चोटियाँ बहुत दूर-दूर तक फैली हुई हैं।

उदय और अस्त पर्वत—उदयाचल और अस्ताचल पर्वत का उल्लेख यद्यपि अमरकोष[5] में प्राप्त होता है लेकिन अन्यत्र इस नाम का पर्वत नहीं प्राप्त होता है।

निषध—इस पर्वत का उल्लेख श्रीमद भागवत में भी प्राप्त होता है।[6] यह इलावृत के दक्षिण में स्थित है।

माल्यवान—'माल्याकारता स्यास्ति। इसका विस्तार बहुत दूर तक नील से लेकर निषध तक है। इससे यह प्रतीत होता है कि यह हिमालय का ही एक भाग है।

पारियात्रिक—इसका विस्तार विन्ध्य पर्वत के पश्चिम मालव देश तक मार्कण्डेय पुराण में भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।

गन्धमादन—अमरकोष में इस पर्वत का भी उल्लेख प्राप्त होता है। इसका विस्तार निषध एवं नील पर्वत पर्यन्त है।

इन पर्वतों के अलावा अमरकोष में जिन पर्वतों का उल्लेख प्राप्त होता है उनमें से हेमकूट, दर्दुर, मलय, चित्रकूट—जहाँ रामचन्द्र जी १२ वर्व व्यतीत

---

२. अष्टाध्यायी ५।४।१४७

३. प० का० भा० बासुदेव शरण अग्रवाल पृ० ४३

४. अमरकोष २।३।२

५. मेघदूत पूर्वमेघ १८

६. अमरकोष २।३।२

६. श्रीमद् भागवत ५।१६

किये थे । इसका वर्णन रामायण में भी प्राप्त होता है । इन उपर्युक्त पर्वतों की प्राचीनता अमरकोष में उपलब्ध होती है, इनमें से आज भी सभी पर्वतों का नाम एक सा ही बना हुआ है । कुछ का नाम बदल गया है ।

वन

'वन' का उल्लेख स्वल्प मात्रा में अमरकोष से प्राप्त होता है । पाणिनि ने छः वनों का नाम लिया है[1] वन में प्राकृतिक सौन्दर्य का असली रूप दिखाई पड़ता है, जहाँ जाकर शान्ति प्राप्त होती है । बाणभट्ट ने वनों को अति रमणीय और आत्म शान्ति के हेतु बताया है ।[2] अमरकोष के निर्माण के समय वनों की संख्या अधिक रही होगी, क्योंकि क्रमशः अब वनों की संख्या कम होती जा रही है । अमरसिंह ने वनों को निम्न श्रेणियों में विभक्त किया है ।

जंगल

इसमें ऐसे वनों की संज्ञा दी है जो अन्यन्त गहन हो तथा जहाँ केवल जंगली जानवर मात्र ही रहते हों इसमें दो प्रकार के जंगल एक तो ऐसा जो अत्यन्त गहन हो और दूसरा उससे कम घना अर्थात जहाँ मनुष्य ही आ जा सकते हों, तीसरे प्रकार का जंगल ऐसा जो मनुष्य द्वारा निर्मित हो और वह मनुष्य के घर के पास हो यह ऐसा जंगल भी हो सकता है, जिसमें मनुष्य अपने उपयोग के ही वृक्षों को लगाता हो अर्थात जैसे आम्र कटहल, अमरूद, नीबू, केला, इत्यादि वृक्षों को लगाकर अपना उपयोग करता हो ।

उद्यान

उद्यान भी उसी श्रेणी में आता है जो किसी मनुष्य के द्वारा निर्मित हो तथा जिसमें इमारती लकड़ी से लेकर दैनिक उपयोग के फल फूलों तक सुलभ हो जाते हों ।

उपवन

इस प्रकार के वन में राजा के मन्त्री या वेश्याएं जाकर मनोरंजन करते हैं ।

साधारण उपवन

इस उपवन में सब प्रकार के लोग स्त्रियों के सहित जाकर मनोरंजन करते हों । इस प्रकार के उपवन बड़े-बड़े नगरी में आज भी देखने को मिलते हैं ।

---

१. पा० का० भारतवर्ष पृष्ठ ४७

२. कादम्बरी पण्डित पुस्तकालय काशी, १९६४ पृष्ठ २२

फुलवारी

फुलवारी राजभवन से सम्बन्धित रहती है, इसमें केवल राजमहल के ही लोग जा सकते हों। अधिकांश रूप से रानियों के बिहार के लिए ही। इस प्रकार की फुलवारी का प्रबन्ध रहता है।

नदियाँ

भारतवर्ष नदियों का देश है। इसके चारों ओर महान नदियाँ हैं। भारत के लोग नदियों को बहुत उच्च स्थान देकर पूज्यभाव से इन्हें मानते थे। पुराण काल में नदियों का आदर्श गंगा जैसी नदी से माना गया है। गंगा नदी का जल अत्यन्त पवित्र माना गया है, जिसके स्पर्श मात्र से मनुष्य अपने समस्त पापों से मुक्त हो जाता है। पुराण काल में गंगा नदी का तात्पर्य बहुत लम्बी और पवित्र नदी से है।[1] और यही नाम इस प्रकार से दूसरे नदी से भी जोड़ दिया जाता रहा है। यही कारण है कि गंगा नदी से उद्बोधित अनेक नदियाँ आज भी प्राप्त होती हैं।

अमरकोष में निम्नलिखित नदियों के नाम आए हैं।[2] गंगा, यमुना, नर्मदा, सदानीरा, शैतवाहिनी, सतलज, विपाशा, शोण, शरावती, वेत्रवती, चन्द्रभागा, सरस्वती, काबेरी, कौशिकी, गण्डकी, चर्मण्वती, और गोदावरी।

गंगा—गंगा नदी एक आदर्श नदी में है। यह भारत के उत्तरी भाग में स्थित नगरों की प्राणदात्री है। गंगा का उद्‌गम हिमालय से होता है। इसके तट पर उत्तर प्रदेश के अधिकांश बड़े-बड़े नगर स्थित हैं, जिनमें हरिद्वार, प्रयाग, वाराणसी मुख्य है। अमरकोष में[3] गंगा के समस्त पर्यायों का अलग-अलग अर्थ नाम के अनुरूप है जैसे भागीरथी-भगीरथ के द्वारा मृत्युलोक में ले आने से इसका नाम भागीरथी[4] पड़ गया। त्रिपथगा तीन धार वाली होने से त्रिपथगा नाम पड़ा था।

यमुना—यह गंगा की सहायक नदी है। यह भी हिमालय से निकलती है। यह गंगा से इलाहाबाद में मिल जाती है, इसके तट पर दिल्ली बसा हुआ है। अमरकोष में इसको कालिन्दी, सूर्यतनया, यमुना, शमनस्वसा आदि कहा गया है।

---

१. भौगोलिक विचार धारणाएं जैन पुस्तक मन्दिर जयपुर ३, १९६९ पृष्ठ १९
२. अमरकोष १।१०।३१-३५
३. अमरकोष १।१०।३१
४. बाल्मीकि रामायण बालकाण्ड सर्ग ३४-४४

नर्मदा—भारतवर्ष की समस्त नदियाँ पूर्व की ओर बहती हैं, लेकिन नर्मदा और ताप्ती पूर्व से पश्चिम की ओर बहती हैं। यह मध्य प्रदेश के अमरकण्टक से निकलकर पश्चिम की ओर अरब सागर में जाकर गिरती है, इसका नाम रेवा भी है। इसी के नाम के आधार पर इसके तट पर बसे नगर के लोग रेवा खण्ड के कहलाते हैं।

सदानीरा—कोष में इस नदी का नाम सदानीरा आया है तथा करतीया भी है। इस नाम से अन्यत्र नदी नहीं मिलती है। आज भी इस प्रकार की कोई नदी नहीं जानी जाती है। उपर्युक्त नाम की नदी अमरकाल में होगी।

शैतवाहिनी—इसका दूसरा नाम बाहुदा प्राप्त होता है।[1] इस नदी के नाम पड़ने का कारण महाभारत में प्राप्त होता है।[2] लेकिन यह नदी का उद्गम कहाँ से है तथा यह नदी कहाँ को प्रवाहित होती है, इसके बारे में थोड़ा भी संकेत नहीं प्राप्त होता है।

शतद्रु—यह सतलज नदी है, जो कि पंजाब में प्रवाहित है, इसके विस्तार का वर्णन महाभारत में प्राप्त होता है, कहते हैं पुत्रशोक में वशिष्ठ ने कण्ठ में शिला बाँधकर इसमें प्रविष्ट हो गए थे तभी से इसकी धारा सौ भागों में बँट गई[3] 'वशिष्ठ शायात् शतधाद्रुता इति स्वामी।[4]

विपाशा—'विपाशा तु विपाट् स्त्रियाम्' विपाशा नदी का नाम आजकल व्यास है जो कि पंजाब में प्रवाहित है। यह सतलज नदी की सहायक है।

शोण—यह एक विशाल नदी होने के कारण इसका नाम नद पड़ गया है। इसका उल्लेख गोस्वामी तुलसी ने भी रामचरित मानस में किया है।[5] ''मिलेउ महानद शोण सुहावन।'' इसका उद्गम स्थान मध्य प्रदेश के शहडोल जिले के 'अमरकण्टक' नामक पर्वत शिखर के सोनमूड़ा नामक स्थान से होता है तथा यह पूर्वोत्तर की ओर प्रवाहित होकर के पटना के समीप गंगा में मिल जाती है।

शरावती—यह कुरुक्षेत्र के समीप में बहने वाली घग्घर नदी है। यह प्राच्य और उदीच्य देशों के बीच की सीमा थी।[6]

---

१. अमरकोष १।१०।३३
२. म० भा० १२।२३।१७-४०
३. म० भा० १।१७८
४. अमरकोष रामाश्रयी पृष्ठ १३४
५. रामचरित मानस तुलसीदास गीता प्रेस
६. पा० का० भारतवर्ष।

चन्द्रभागा:—इसका उदगम स्थान हिमालय पर्वत के चन्द्रभाग नामक शिखर है और आगे जाकर वितस्ता (झेलम) में मिल जाती है।

सरस्वती:—यह हिमालय की शिवालिक पहाड़ियों से निकलकर पटियाला के नीचे वाले भाग में बहती हुई राजपूताना के मरुभाग में विलुप्त हो जाती है।

काबेरी:—यह दक्षिण भारत की नदी है। यह सह्याद्रि से निकल कर पूर्व सागर (बंगाल की खाड़ी) में तेजोर के आसपास समुद्र में मिल जाती है। गंगा-यमुना जैसी पवित्र नदियों के साथ इसकी भी गणना है।

'गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती
नर्मदे सिन्धु काबेरी जलेऽस्मिन्निधिकुरु।

कौशिकी:—यह बिहार की आधुनिक कोसी नदी है। इसका उद्‌गम नेपाल राज्यान्तर्गत हिमालय की एक पर्वत शाखा है तथा बिहार में गंगा में मिल जाती है।

चर्मण्वती:—यह आधुनिक चम्बल नदी है। यह इन्दौर संभागस्थ विन्ध्याचल की श्रेणियों से निकलकर इटावा और हमीरपुर के मध्य यमुना में मिल जाती है। इस नदी के तट में बीहड़ जंगल हैं, जिसमें असंख्य लोग छिपे रहते हैं और अपने को सुरक्षित रखते हैं।

गोदावरी:—यह भी गंगा यमुना जैसे पवित्र नदियों के साथ गिनी जाती है।[1] इस नदी का उल्लेख तुलसीदास ने स्वयं रामचरित मानस में किया।[2]

इस प्रकार ऊपर्युक्त समस्त नदियां जो अधिकांशतः उसी नाम में आज भी उपलब्ध हैं अमरकाल में उपलब्ध थीं तथा अमरकाल के सांस्कृतिक चित्र प्रदर्शित करने में अग्रसर हैं।

नगर और ग्राम

अमर सिंह ने मनुष्य के रहने के स्थान को गांव और नगर विभागों में विभक्त किया है। गांव और नगर की सीमा प्रदर्शित करने वाली नदी ही थी।

ग्राम

गांव को कोषकार ने ऐसी संज्ञा दी है, जहाँ मनुष्य अपने परिवार के साथ रहकर जीवन-यापन करता है। उस समय अधिकांश लोगों का व्यवसाय

---

१. **गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वती।**
नर्मदे सिन्धु कावेरी जलेऽस्मिन्निधिमुक॥

२. **रामचरित मानस तुलसीकृत गीताप्रेस अरण्य काण्ड**

खेती ही था। खेती के लिए भूमि का उल्लेख अमरसिंह ने किया है। एक तो साधारण मिट्टी वाली जमीन, दूसरी ऐसी मिट्टी जो साधारण मिट्टी से अधिक उर्वरक हो जिसे मृत्सा, मृत्स्ना इत्यादि नामों से अभिहित किया जाता है।[१] तीसरी प्रकार की मिट्टी उपजाऊ मिट्टी है, जिसे उर्वरक कहा है[२] एक और मिट्टी का उल्लेख किया गया है जिसे रेह मिट्टी कहते हैं।[३] रेह मिट्टी ऊसर मिट्टी कहलाती है, जहां किसी भी प्रकार की कृषि नहीं की जा सकती और जहाँ कोई भी वनस्पति इत्यादि नहीं होती है। कुछ भूमि गायों को चरने के लिए चारागाह के रूप में छोड़ दी जाती है, उसे शादल कहते हैं।[४] घर के लिए उपयुक्त भूमि को वेश्यक् या वास्तु कहते थे। गांव के मध्य में व्यवस्थित गलियाँ होती थीं गांव में पानी पीने के लिए कुएँ होते थे, जिसमें अगाध पानी होता था उसे ह्रद कहा जाता था।[५] प्रकृति प्रदत्त जलाशय को अखात पादेव-खात कहा जाता था।[६]

नगर

गाव का बड़ा रूप नगर कहलाता था तथा आजकल की भाँति गाँव की अपेक्षा नगर का बड़ा महत्व था। अमरसिंह ने पुरवर्ग में गांव से पहले नगर का नाम ले करके इसके महत्व को और ज्यादा बढ़ा दिया है। अमरसिंह ने नगर के भेद को बताते हुए लिखा है कि जहाँ अनेक तरह के कारीगर व्यापारी आदि बसते हैं उनको पू: पुरी, नगरी इत्यादि नामों से कहा जाता है।[७] जहाँ राजा के नौकर आदि निवास करते हैं उनको पत्तन और पुटभेदन कहते हैं खाई या चहारदीवारी आदि से घिरे हुए नगर के स्थानीयम, निगम इन नामों से पुकारते हैं।[८] राजधानी के समीपवर्ती नगरों को शाखा नगर कहते

१. अमरकोष २।१।४
२. अमरकोष २।१।४
३. अमरकोष २।१।५
४. अमरकोष २।१।५
५. अमरकोष १।१०।२५
६. अमरकोष १।१०।२७
७. अमरकोष सुधा व्याख्या पृष्ठ ११३
८. अमरकोष सुधा व्याख्या पृष्ठ ११३

थे[१] नगर के चारों ओर यष्टिका (ईंट) के बने हुए प्राकार या वरण होते थे, जिसके द्वारा नगर की रक्षा होती थी।[२] नगर के समीप का स्थान जो कांटा आदि से घिरा हुआ होता था उसे 'प्राचीनम्' कहते थे।[३]

उस समय भी राज्य शासन के अधिकांश अधिकारी नगर में ही रहते थे अर्थात नगर में ही अधिकांश कार्यालय थे। नगर में उच्च लोग ही निवास करते थे। ऐसा कहा जाता है कि नगर में अच्छी प्रकार से पुण्य अर्जित करने वाले लोग निवास करते थे अर्थात नगर में निवास करने वाले लोग देवतुल्य थे और गांव में रहने वाले मृत्युलोक के मनुष्य थे। आजकल भी नगर में रहने वाले लोग अधिक विकसित माने जाते हैं। नगर का प्रतिशत अपेक्षाकृत गांव के अधिक शिक्षित रहता है। गांव के अधिकांश लोग अशिक्षित होते हैं और उनका एक मात्र व्यापार खेती होती है। गांव के समस्त लोग श्रमजीवी होते हैं और उन्हीं के श्रम से प्राप्त अनाज नगर के लोग प्राप्त करके अपना निर्वाह करते थे। गांव के लोगों का मात्र धन्धा कृषि होता था तथा नगर के लोगों का व्यापार कृषि के अलावा भी होता था।

इस प्रकार गांव और नगर का विभाग अमरकाल में था। अमरसिंह ने नगर गांव इत्यादि का वर्णन करते हुए तत्कालीन संस्कृति के भी स्पष्ट चित्र अंकित करने की कोशिश की है। युगीन भूगोल का समूचा वर्णन भी अमरकोष में प्राप्त होता है।

सामाजिक जीवन

मनुष्य सामाजिक प्राणी है मनुष्य का समाज से बहुत घनिष्ट सम्बन्ध होता है। समाज के बिना मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। समाज के बाहर जो मनुष्य रहता है या तो वह देवता है अथवा पशु[४]

सामाजिक जीवन से तात्पर्य तत्कालीन मनुष्यों की संस्कृति क्या थी? समाज में कितने वर्ण, कितने आश्रम, वैवाहिक विधि क्या थी, भोजन इत्यादि की क्या स्थिति थी, वेषभूषा, वासगृह क्रीड़ा इत्यादि समस्त ऐसे विषय जो

---

१. अमर २।२।२

२. अमर २।२।३

३. अमर २।२।४

४. अब्राहम लिंकन

समाज से सम्बन्धित हैं, इन सभी का उस समय में क्या महत्व था। उपर्युक्त सभी बातें इसके अन्तर्गत आती हैं। नीचे संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

वर्ण और आश्रम

अमरकोष में चातुर्वर्ण्य और चार आश्रमों का उल्लेख प्राप्त होता है। चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति इससे भी प्राचीन वैदिक काल में से है [1] इस कल्पना के आधार पर एक परम पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य और पैर से शूद्र के उत्पत्ति की कल्पना की गई है। उत्तर वैदिक काल में वृहदारण्यक उपनिषद् में यह उल्लेख प्राप्त होता है कि ब्रह्मा ने सबसे पहले ब्राह्मणों को जन्म दिया। लेकिन ब्राह्मणों के द्वारा विभूति युक्त कर्म न करने के कारण क्षत्रियों को जन्म दिया। इसके पश्चात भी जब सभी कार्यों को सफलता पूर्वक पूरा नहीं किया जा सकता तब वसु मरुत, रुद्र और अदिति के द्वारा वैश्यों को उत्पन्न किया गया। अन्त में सामाजिक जीवन को पूर्णता प्रदान करने के लिए ब्रह्मा ने शूद्रों को जन्म दिया।[2] महाभारत के शान्तिपर्व में महर्षि भृगु ने अपने शिष्य भारद्वाज को उपदेश देते समय कहा है कि आरम्भ में केवल एक वर्ण ब्राह्मण ही था, लेकिन बाद में यह वर्ण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चार वर्णों में विभाजित हो गया। ब्राह्मणों का रंग श्वेत, क्षत्रियों का लोहित, वैश्यों का पीत और शूद्रों का श्याम है। [3] इसके अतिरिक्त अधिकांश स्मृतियों और पुराणों में भी वर्ण की उत्पति से सम्बन्धित अनेक विचार प्रतिपादित किए गये हैं। श्री मद्भागवद् गीता में वर्णों की उत्पत्ति गुण कर्म के अनुसार बताई जाती है [4] अर्थात अध्ययन अध्यापन वाले को ब्राह्मण, युद्ध में निपुण क्षत्रिय, तथा व्यापारिक कार्य में कुशलता प्राप्त करने वाले को वैश्य तथा सेवा करने वालों को शूद्र संज्ञा दी गई है।

अमरकोष में चारो वर्णों का स्पष्ट उल्लेख है तथा प्रत्येक वर्ण के लिए अलग अलग संकेत किया गया है। सबसे पहले ब्राह्मण फिर क्षत्रिय फिर वैश्य फिर शूद्र का उल्लेख है।[5]

---

१. ब्राह्मणोस्य मुखमासीद् वाहू राजन्यः कृतः
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्या शूद्रो जायत। ऋग्वेद १०।९०।१२

२. भारतीय सामाजिक संस्थाएं, जी० के० अग्रवाल, साहित्य भवन आगरा ३, पृष्ठ ४३

३. ,, ,, पृष्ठ ४३-४४

४. श्रीमद्भगवद् गीता ४।१३

५. अमरकोष २।७।२

ब्राह्मण:—अमरकोष में ब्राह्मणों के कुल ६ कर्मों का उल्लेख है[1] जिनमें यज्ञ करना, पढ़ना, दान देना, यज्ञ कराना, पढ़ाना और दान लेना है। मनुस्मृति में उपर्युक्त ६ कर्मों का उल्लेख है।'

अध्यायनध्ययनं यजनं याजनं तथा
दानं प्रतिग्रहच्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ।। १।मनु१।।८८।

इसी आधार पर गीता में वर्णों की उत्पत्ति के लिए गुण कर्म का विभाग माना गया है।

क्षत्रिय—क्षत्रिय का तात्पर्य राजा से लिया जाता है। क्षत्रिय की उत्पत्ति के बारे में बताया गया है कि परम पुरुष के बाहु से क्षत्री की उत्पत्ति हुई है।[2] इसीलिए इसे बाहुज भी कहा गया है[3] श्रीमद् भगवद् गीता में क्षत्रियों के ७ धर्मों का उल्लेख प्राप्त होता है।[4] शूरवीरता, धैर्य, चतुरता, युद्ध में न भागना, दान देना और स्वामीभाव अर्थात निःस्वार्थ भाव से प्रजा का पालन करना आदि क्षत्रियों के स्वाभाविक धर्म हैं। अमरकोष में अधीश्वर शब्द सब ओर के राजाओं को वश में करने वाले को कहा गया है।[5] तथा समुद्र पर्यन्त पृथ्वी की रक्षा करने वाले राजा को चक्रवर्ती राजा कहा गया है।[6] इसके साथ ही साथ मण्डलेश्वर, सम्राट, महामात्र (राजा के प्रधानमंत्री) और राजा से सम्बन्धित समस्त नौकरों का उल्लेख इस वर्ग में प्राप्त होता है।

वैश्य—मनुस्मृति में वैश्यों के सात कर्तव्यों का उल्लेख किया गया है।

पशूनां रक्षणं दानं दानभिज्याध्ययनमेव च
वाणिकपथं कुशीदं च वैशस्य कृषिमेव च ।। १।६०।

अर्थात पशुओं की रक्षा करना, दान देना, यज्ञ करना, ब्याज पर धन देना तथा कृषि करना वैश्यों के प्रमुख धर्म हैं। श्रीमद् भागवत में श्री कृष्ण ने वैश्यों के चारक में बतलाये हैं। जिनमें कृषि, वाणिज्य, पशु पालन और रुपये पर

---

१. अमरकोष २।७।४
२. ऋग्वेद १०।६०।१२
३. अमरकोष २।८।१
४. शौर्यतेजोघृतिर्दाक्ष्यं युध्ये चाप्यपलायनम्
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्मस्वभावजम् श्रीमद्भागवत गीता। १८।४३
५. अमरकोष २।८।२
६. अमरकोष २।८।२

ब्याज देना ।[१] वैश्य को ऊरुजः भी कहा गया है[२] जिससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जो ऋग्वेद में परम पुरुष के अंगों से चातुर्वर्ण की उत्पत्ति की जो कल्पना की गई है उसी का आधार अमरसिंह ने भी अपनाया है। कुशीद शब्द का उल्लेख जो श्रीमद् भागवत में भी आया है उसका उल्लेख अमरकोष में भी प्राप्त होता है, जिसका तात्पर्य होता है, ब्याज पर रुपया देना।

शूद्र—शूद्र की उत्पत्ति के बारे में कहा गया है कि इसकी उत्पत्ति परम पुरुष के पैर से हुई।[३] शूद्र कई प्रकार के थे। प्रथम वर्ण धर्म से पतितःब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य भी शूद्र की श्रेणी में माने जाते थे, दूसरे जन्मा जो शूद्र कुल में उत्पन्न होते थे। त्रिकाल संध्यान करने वाले द्विज को भी शूद्र कहा जाता था तथा वेद का अध्ययन न करने वाले ब्राह्मण को भी शूद्र कहा जाता था।[४] मनु का कहना है कि शूद्रों का एक मात्र धर्म अपने से उच्च तीनों वर्णों की बिना किसी ईर्ष्या भाव से सेवा करना है।[५] शूद्रवर्ण के लिए अमरकोष में वर्णशंकर शब्द का भी उल्लेख किया गया है।[६] जिसका अर्थ होता है भिन्न-भिन्न जाति वाले माता पिता के संयोग से उत्पन्न अम्बष्ठ करण जाति से है। अर्थात अमरकोष में शूद्र वर्ग को निम्न माना गया है और कोई भी जाति अपने जाति से भिन्न स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न पुरुष को शूद्र माना गया है।

इस प्रकार से अमरकोष में चारों वर्णों का उल्लेख स्पष्ट प्राप्त होता है। चारों वर्णों की जातियाँ अलग-अलग हैं। पाणिनि ने लिंग या चिन्ह और रंग के अर्थ में प्रयुक्त वर्ण शब्द को लिया है। इसके ही आधार पर अमरसिंह ने भी वर्ण शब्द ब्राह्मादि वर्ण लिंग या चिन्ह और रंग के अर्थ में प्रयुक्त किया है। जाति शब्द का प्रयोग कोषकार ने तीन अर्थों में लिया है। पहला सामान्य[७] मालती[८] तथा गोत्र।[९]

---

१. श्रीमद् भागवत १०।२४।२१
२. अमर २।९।१
३. ऋग्वेद १०।९०।१२
४. मनुस्मृति २।१६८
५. मनुस्मृति १।९१
६. अमर २।१०।१
७. अमर १।५।३१
८. अमर २।४।७२
९. अमर ३।६८

आश्रम

आश्रम व्यवस्था प्रमुख रूप से मानसिक नैतिक व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति को अपनी आयु के विभिन्न स्तरों में पृथक-पृथक दायित्वों का निर्वाह करते हुए मोक्ष के अंतिम लक्ष्य को प्राप्त करना होता है।[१] आश्रम शब्द श्रम धातु से बना है जिसका अर्थ होता है उद्योग अथवा परिश्रम करना। शाब्दिक रूप में आश्रम का अर्थ रुकने अथवा विश्राम करने से है, अतः आश्रम व्यवस्था का अर्थ उस व्यवस्था से है जिसमें व्यक्ति अपने स्तरों के द्वारा विश्राम करता हुआ अपने अंतिम लक्ष्य मोक्ष्य को प्राप्त करता है। आश्रम व्यवस्था हिन्दू जीवन को विभिन्न स्तरों में विभाजित करके उसे आगामी जीवन के लिए इस प्रकार तैयार करती है कि जिससे वह अपने समस्त दायित्वों की प्राथमिकता के आधार पर क्रमबद्ध रूप से पूरा करते हुए जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति कर सके। भारतीय सांस्कृतिक विकास में वर्ण व्यवस्था आश्रम व्यवस्था ने अभूत पूर्व योगदान किया है जिसके कारण भारत की प्राचीन संस्कृति एक विशिष्ट स्थान रखती है। अमरसिंह ने क्रमशः ब्रह्मचारी, (ब्रह्मचर्य), गुहस्थ, वानप्रस्थ और भिक्षु नाम से चारों आश्रमों का उल्लेख किया है। (ब्रह्मचारी), गृही, वानप्रस्थो भिक्षुष्चतुष्ठये।)[२]

१. **ब्रह्मचर्य आश्रम**:—ब्रह्मचर्य आश्रम में अनुशासन, पवित्रता, सेवा, कर्तव्य-पारायणता, नैतिकता, आचरण की शुद्धता और ज्ञान इत्यादि का विशेष महत्व बतलाया गया है। ब्रह्मचर्य आश्रम जीवन का सबसे पहला आश्रम है जिसका आरम्भ उपनयन संस्कार के बाद होता है। यह प्रथम अवस्था २५ वर्ष पर्यन्त चलती थी ब्रह्मचारी के लिए वरणी संज्ञा का प्रयोग पाणिनि ने किया था।[३]

अमरकोष में सा ब्रह्मचारी शब्द आया है।[४] जिसका तात्पर्य आपस में समानवेद समान व्रत और समान आचार वाले ब्रह्मचारियों से है तथा संतीर्थयः[५] शब्द भी आया है, जिसका तात्पर्य होता है कि एक साथ पढ़ने वाले साथी जिनके एक ही गुरु हों।

---

१. **भारतीय सामाजिक संस्थाएं—साहित्य भवन मथुरा ३, पृ० ५६**
२. **अमर** २।७।३
३. **अष्टाध्यायी ५।२।१३४**
४. **अमर** २।७।११
५. **अमर** २।७।१२

५. **गृहस्थाश्रम** :—मानव जीवन का सबसे महत्वपूर्ण आश्रम है जिसका आरम्भ विवाह संस्कार से प्रारम्भ होकर पचास वर्ष की आयु तक होता है। यह आश्रम एक कर्मभूमि है जिसमें ब्रह्मचर्य आश्रम की शिक्षाओं को मूर्त्तरूप दिया जाता है। यह आश्रम भोग और विलास का काल न होकर साधना, तप और कर्म का महान स्थल है। यह एक साधन है साध्य नहीं[1] मनु ने इसे सभी आश्रमों का आधार बताते हुए लिखा है कि जिस प्रकार से सम्पूर्ण नदी और नद सागर में जाकर मिल जाते हैं ठीक उसी प्रकार से समस्त आश्रम गृहस्थ आश्रम में मिल जाते हैं।[2] दूसरे शब्द्रों में गृहस्थ आश्रम समस्त आश्रमों का जन्मदाता है, अर्थात समस्त आश्रमों का सृजन गृहस्थ आश्रम से ही होता है। गृहस्थ आश्रम में प्रवेश का विवाह करके पुत्र उत्पन्न करना आवश्यक होता है क्योंकि पुत्र के किये हुये श्राद्ध से ही पितृमोक्ष को प्राप्त होते हैं[3] और इसी से जीवन की पूर्णता प्राप्त होती है।

३. **वानप्रस्थ** :— वानप्रस्थ का तात्पर्य 'वन की ओर प्रस्थान करना' इससे स्पष्ट होता है कि वानप्रस्थ आश्रम त्याग की दिशा में एक स्तर और आगे की स्थिति है जिसमें व्यक्ति अपने परिवार कुल और समाज को छोड़कर निर्लिप्त भाव से सम्पूर्ण समाज को अपना कुटुम्ब समझकर उसकी सेवा करें। वानप्रस्थी का यह कर्त्तव्य है कि वह जंगल में एक कुटिया का निर्माण करके उसमें रहे, भूमि पर सोये और सभी प्राणियों की रक्षा करे।[4] मनु का कथन है कि गृहस्थ जन यह देख लें कि उसकी त्वचा ढीली पड़ गई है बाल सफेद हो गए हैं तथा सन्तान के भी सन्तान हो गयी है तब वह सभी को छोड़कर वन की ओर प्रस्थान करें।[5] अमरकोष में तपस्वियों की श्रेणियां बताई गयी हैं जिनमें तपस्या में रत तपस्वी, यातायस तथा ब्रह्मज्ञान का आकांक्षी व्यक्ति पारिकाक्षी कहलाता था[6] मौन व्रत धारण करने वाले तपस्वियों की एक श्रेणी वाचयन

---

१. भारतीय सामाजिक संस्थाएं—साहित्य भवन मथुरा-३, पृ०-६५
२. यता नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितम्
   तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थ यान्ति सस्थितम् मनु० ६।६०
३. शतपथ ब्राह्मण ५।२।१।१०
४. भारतीय सामाजिक संस्थाएं पृष्ठ ७०
५. गृहस्थस्तु यथापश्चेद बलिपलिते मात्मनः
   अपत्सस्सैव चापत्यं तरारण्णं समाश्रयेत्। मनुस्मृति।
६. अमर २।७।४२

या मुकि थी अत्यधिक कष्ट उठाकर तपस्या करने वाला तपःक्लेश सह या दान्त कहलाता था।[1]

४. सन्यास :—आश्रम व्यवस्था में सन्यास अन्तिम आश्रम है, सन्यासी वह जिसने संसार का पूर्णतया परित्याग कर दिया हो। जब वानप्रस्थी समस्त सांसारिक बंधनों को छोड़कर इन्द्रियों में विजय प्राप्त कर लेता है तब वह संन्यास आश्रम में प्रवेश करता है। इस आश्रम में व्यक्ति को केवल एक ही पुरुषार्थ को प्राप्त करना शेष रह जाता है, वह है मोक्ष। इस आश्रम में सन्यासी भिक्षा मांगते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान को भ्रमण करता रहता है इसके लिए मनु ने लिखा है कि आयु के तीसरे भाग को वन में व्यतीत करके आयु के चौथे भाग में प्रवेश करके ही वह सभी का साथ छोड़कर परिव्राजक हो जाय।

वनेषु चं विद्वर्त्येवं तृतीयं भागमायुषः
चतुर्थामायुषो भाग त्यक्त्वा संगान् परिब्रजेत्। मनुस्मृति।

अमरकोष में संन्यासी के लिए भिक्षु शब्द का प्रयोग हुआ है[2] जिसका तात्पर्य भिक्षणशील अर्थात भिक्षामात्र से आजीविका चलाने वाला। सन्यासी के लिए कर्मन्दी शब्द का भी प्रयोग हुआ है[3] जिसका तात्पर्य है कर्मन्द आचार्यकृत भिक्षु सूत्रों का अधोक्त संन्यास आश्रम की पूर्णता उपर्युक्त तीनों के आश्रमों की पूर्णता से निशचित होती है। अर्थात उपर्युक्त तीनों आश्रमों की पूर्ति के पश्चात ही इस आश्रम की पूर्ति आवश्यक है तथा तीनों आश्रम की पूर्ति के बाद ही इस प्रकार के विचारों का सृजन हो और फलस्वरूप संन्यास आश्रम का प्रवेश हो।

इस प्रकार उपर्युक्त चार आश्रम हैं जो कि वैदिक काल से चले आ रहे हैं तथा जिनका अनुसरण अमरकाल में भी था जिसका उल्लेख स्वयं अमर ने किया है।[4] कालान्तर में उपर्युक्त आश्रमों में उथल-पुथल मची और आश्रम व्यवस्था समाप्त सी हो गयी, जिसका परिणाम आज सामने उपस्थित है।

विवाह

विवाह हिन्दू संस्कारों में एक महत्वपूर्ण संस्कार माना गया है। हिन्दू धर्मावलम्बी विवाह संस्कार को अति आवश्यक संस्कार मानते हैं। पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए पुत्र का होना आवश्यक हो जाता है और उसी स्त्री से

१. अमर २।७।४२
२. अमर २।७।३
३. सुधा पृष्ठ २६२
४. अमर २।७।३

पुत्र होना चाहिए, जिसके साथ विवाह किया गया हो। पाश्चात्य विचारकों ने विवाह को एक ऐसी संस्था के रूप में स्पष्ट किया है जिसका उद्देश्य यौनि संतुष्टि और सन्तान को जन्म देना मात्र है लेकिन यह विचार एक पक्षपात पूर्ण धारणा के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[1] हिन्दू विवाह कोई संविदा नहीं है जिसके अन्तर्गत मात्र यौन सम्बन्ध और सन्तान को जन्म देना हो बल्कि यह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है।

विवाह के कारण पति का पत्नी पर स्वामित्व होना हिन्दू धर्म शास्त्र का नियम था कौमार्यावस्था में पिता की रक्षा की आवश्यकता यौवनावस्था में पति द्वारा रक्षा तथा वृद्धावस्था में पुत्र द्वारा स्त्री की रक्षा की आवश्यकता स्त्रियों के लिए अनिवार्य थी।[2]

अमरकोष में अन्य संस्कारों के अलावा विवाह संस्कार का उल्लेख स्पष्ट रूप से किया गया है। संस्कारों की अनिवार्यता के लिए 'व्रात्यः संस्कारहीनः स्यात्' २।८।५३ अर्थात संस्कार शून्य व्यक्ति व्रात्य अर्थात शारीरिक श्रम मात्र से व्याध आदि की भाँति जीविका करने वाला (नीची) कहलाता था।[3]

अमरकोष में विवाह के लिए स्त्री के कई नामों का उल्लेख प्राप्त होता है, इसमें सर्वप्रथम ऐसी पत्नी जो पाणिग्रहण के द्वारा प्राप्त हुई हो[4] इससे स्पष्ट होता है कि उस समय पाणिग्रहण प्रचलित था। विवाह के प्रकारों में १–ब्राह्म, २–दैव, ३–आर्य, ४–प्राजायत्थ, ५–आसुर, ६—गन्धर्व, ७–राक्षस, ८–पैशाच आदि आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख मनु ने किया है। जिसमें ब्राह्म विवाह का तात्पर्य होता है कि पाणिग्रहण विधि से विवाह करना। इससे स्पष्ट होता है कि अमर काल में ब्रह्म विवाह प्रचलित था। इस वाक्य की पुष्टि 'सुचरित्रा तु सती साध्वी प्रतिव्रता' इस वाक्य से और होता है, क्योंकि ब्रह्म विवाह विधि किया हुआ विवाह वाली पत्नी सती साध्वी पातिव्रत का पालन करती है। ऐसा उसका विधान है। उस समय उच्च कुल में स्वयंबर की भी प्रथा प्रचलित रही होगी। स्वयम्बर का तात्पर्य जहाँ पत्नी स्वयं पति को ढूंढ़ ले इसके लिए निश्चित स्थान में विवाहेच्छुक पतियों के कन्या के घर में बुलाया जाता था तथा कन्या जिसको अपना पति बनाना चाहे पसन्द कर

---

१. P. H. Prabhu Hindu social organization, page 145

२. पिता रक्षति कौमारे भर्त्तारक्षति यौवने
रक्षति स्थाविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। मनु। ४३।

३. सुधा व्याख्या पृष्ठ २६६

ले। अमरकोष में ऐसे विवाह में लिए स्वयंवरा, पतिंवरा, और वर्या शब्दों का उल्लेख किया गया है।[1]

इसके अलावा कोषकार ने विवाह के लिए उपयम, परिणय, उदवाह और उपयाम शब्दों का उल्लेख किया है।

अन्नयान

अन्नयान से तात्पर्य भोजन सामग्री से है। भोज्य सामग्री की आवश्यकता मनुष्य को जन्म के साथ ही होती है। मनुष्य अन्य सुविधाओं के न प्राप्त होने पर भी जीवित रह सकता है। अन्तर उसके विकास की गति में पड़ेगा लेकिन भोज्य सामग्री के बिना अर्थात भोजन किये बिना बहुत दिन तक जीवित नहीं रह सकता है, अतः भोज्य सामग्री मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

अन्नपान से तात्पर्य दो प्रकार के पदार्थों से है एक तो जो पदार्थ खाया जाय दूसरा वह पदार्थ जो पेय हो अर्थात जिसका पान किया जाय। भक्त शब्द से ही स्पष्ट होता है कि यह अन्न है। भोजन योग्य हो वकी भक्त उबला हुआ चावल (भात) के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।[2] अमरसिंह ने इस प्रकार के भक्त के लिए 'उख्यं तु पैठरम्' शब्द का प्रयोग किया अर्थात बटुआ में पकाया हुआ भात। भोज्य के लिए मांस का भी उपयोग होता रहा है।[3] उस समय अच्छे-अच्छे पकवान बनते रहे हैं जिनमें मुख्य रूप से घी, दही, नमक, हींग, होरहा, मुरमुरा, ऊमी आदि का प्रयोग होता रहा है।[4] जिनसे पूयः, अपूयः, पिष्ठकः (पुआ, मालपुआ) आदि पकवान बनते रहे।

उस समय में दूध का प्रयोग अत्यधिक होता रहा है अमरसिंह ने दूध और दूध से बने सामानों का उल्लेख बहुत किया है, जिनमें से करम्भः, दही से युक्त सक्त, पयस्यम्, दूध से बने दही, खोवा, मक्खन घी आदि, द्रप्सम्, पतले दही का नाम, घृतम्, नवनीतम्, दण्डाहतम्, तक्रम, श्वेतरसम्, उद्श्वितम्, मस्तु, पीयूष आदि शब्द प्रचलित थे।[5]

चावल मुख्य भोजन था। कई शब्दों का उल्लेख हुआ है। व्रीहि, सामान्य कोटि वाला चावल, शालि सबसे अच्छा चावल, हायन यह भी सामान्य कोटि

---

१. अमर २।६।६
२. पा० का० भारतवर्ष वासुदेव शरण अग्रवाल पृष्ठ ११४
३. अमर २।६।२६। प्र०
४. अमर २।६।४४,४५;४६
५. अमर २।६।४६ से ५३ तक

का चावल था, नीवार यह निम्न कोटि का चावल बिना बोए होने वाला है।[1] इस चावल को मुनि लोग फलहार के रूप में उपयोग करते थे।

पान—पान से तात्पर्य ऐसे पदार्थों से है जो पेय हो जैसे दूध, दही उस समय के लिए पंचगव्य अत्यधिक महत्वपूर्ण था क्योंकि गाय के दूध से बना हुआ पंचगव्य अत्यन्त पवित्र माना जाता है। अधिकांश लोग पंचगव्य का पान करते थे। पंचगव्य, गाय के दूध, दही, घी, गोबर, मूत्र को मिलाकर बनाया जाता था।[2] अधिकांशतया इसका उपयोग यज्ञापि कर्मों के लिए किया जाता था। यज्ञादि कर्म पवित्र माने गए हैं। और पंचगव्य भी अत्यन्त पवित्र माना गया है।

पेय पदार्थों में मद्यपान भी होता रहा। लेकिन भोजन से मद्यपान का कोई सम्बन्ध नहीं। मद्यपान भोजन के पहले या बाद में होता रहा। वैदिक काल के भी देवता मद्यपान के लिए सोमरसपान करते रहे। लेकिन आज के मद्यपान और वैदिक काल के सोमान में बड़ा अन्तर है। सोम एक प्रकार का ऐसा रस है जो मादक नहीं थी, इसीलिए वह पवित्र माना गया है, लेकिन मदिरा तो बहुत ही निन्दनीय पान है जिसका पान करने से आदमी अचेत सा हो जाता है।

स्वास्थ्य और रोग

स्वास्थ्य के बारे में वैदिक काल से ही विचार होने लगा था, रोग और औषधि का उल्लेख अथर्ववेद में किया गया है।[3] रोग और औधषियों से सम्बन्धित शब्द पाणिनीय अष्टाध्यायी में प्रयुक्त हुए हैं।[4] स्पर्श रोग छूत की बीमारी को कहते थे।[5] वैदिक काल के पश्चात वैद्यक शास्त्र का सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ चरक संहिता है इसमें अनेक रोगों को शान्त करने के लिए जड़ी बूटियाँ बताई गई हैं।

अमरकोष में वनौषधिवर्ग में वनस्पतियों के नाम गिनाए गए हैं तथा उन समस्त जड़ी बूटियों के नाम भी उपलब्ध होते हैं जो औषधि के रूप में प्रयुक्त थे जिनमें से पुन्नग, केसर, बकायन, बंजुल, तिनिश, आंमला, महुआ आदि।[6]

---

१. अमर २।९।६
२. अमर २।९।५०
३. अथर्ववद ६।८।६
४. पाणिनीय अष्टाध्यायी ६।३।७०
५. पाणिनीय अष्टाध्यायी ३।३।१६
६. अमर २।४।२५ से २७

कठिन से कठिन रोग में काम करने वाले गुग्गुल, लसोड़ा, चिरौंजी, भूमि जम्बू, पठानी लोध, सहतूत, इमली, विजय सार आदि औषधियों का भी उल्लेख है।[1]

अमरकोष में रोगों की चर्चा काफी विस्तार से की गई है। बाह्य रोगों में, सेहुँआ, खाज खुजली, फोड़ा, घाव या व्रण, गजकर्ण रोग, सफेद कोढ़ आदि मुख्य रूप से उल्लिखित हैं।[2] आन्तरिक रोगों को मुख्य रूप से जिनका उल्लेख किया गया है उनमें से, बवासीर, विबन्ध, संग्रहणी, प्रच्छदिका, प्रमेह, भगन्दर, मूत्रकृच्छ आदि है।[3]

उपर्युक्त समस्त रोग और इन समस्त रोगों के निवारण के लिए औधधियों का उल्लेख अमरकोष में है। अमरसिंह के समय वनौषधि ही प्रचलित थी जिससे उन्हीं सबका उल्लेख है। आज की भाँति नहीं था जंगली जड़ी बूटियाँ लुप्त हो गई और पाश्चात्य अँग्रेजी दवाइयाँ प्रचजित हो गई हैं।

वस्त्र तथा अलंकार

वस्त्र—अन्नपान के पश्चात मनुष्य की आवश्यकता के अन्तर्गत वस्त्र आता है। सर्दी, धूप से बचने लिए शरीर को ढकने के लिए वस्त्रों की विशेष आवश्यकता होती है। वैदिक काल से ही वस्त्रों का प्रयोग प्रारम्भ था। वैदिक काल में वस्त्र और वसन शब्द चालू थे पाणिनि के समय वस्त्र के लिए, चीर, चेल, चीवर, आच्छादन इन शब्दों का प्रयोग था।[4]

अमरकाल में वस्त्रों का प्रयोग बहुत ज्यादा था उस समय प्रचलित वस्त्रों में वाल्कम्, क्षौमम्, कौशेयम्, राकंवम्, अनाहम्, उद्गमनीयम्, पत्मोर्णम्, निवीतम्, दशाः, वस्तयः आदि नामों से प्रचलित थे[5] इनमें से अलग-अलग प्रकार के कपड़े हैं।

उस समय कपड़े ऊन से बने ऊनी, वृक्ष के छाल के एवं कृमि और रोएं से बने कपड़े रेशमी कहलाते थे।[6] तिसीवट और केले आदि के छाल से बने हुए कपड़ों को वाल्कम क्षौमलम कहते थे।[7] सूती बस्त्रों के लिए फालम्, कार्यासम्

---

१. अमर २।४।२६ से ४३

२. अमर २।६।५३, ५४

३. अमर २।६।५५-५६

४. पा० का० भारतवर्ष, वासुदेव शरण अग्रवाल पृ० ३१४

५. अमर २।६।१११ से ११३ तक

६. अमर २।६।११०

७. अमर २।६।१११

नाम प्रचलित थे। चद्दर के लिए प्रावृत और निवीत नाम प्रचलित थे।[1] अमर कोष में दशा और वास्ति ये दो शब्द आए हैं जो उस समय साड़ी या धोती के किनारा के लिए अभिहित था।[2]

अमरकोष में कर्पट शब्द के लिए टीकाकारों में मतभेद है—कर्पट शब्द का अर्थ मुकुट महेश्वर के अनुसार 'पुराने कपड़े का नाम, भानुजी दीक्षित के अनुसार कर्पट शब्द का तात्पर्य, रूमाल अथवा पसीना आदि को पोछने वाला छोटा वस्त्र और क्षीर स्वामी के मत में कर्पट शब्द दूध अथवा पानी छानने वाले वस्त्र का नाम।[3] उपर्युक्त तीनों टीकाकारों के मत में थोड़ा मतभेद होते हुए भी बहुत सामन्जस्य है। जैसे दूध छानने के लिए पुराना वस्त्र ही होता है, जो कि किसी प्रकार का दूसरा काम उससे न लिया जाय और वह वस्तु जिससे पानी अथवा दूध छाना जाता है। वह छोटा और रूमाल के आकार का होता है। अतः तीनों विद्वानों का मत एक ही अर्थ को प्रकट करता है।

अन्तरीयम् और उत्तरीयम शब्द भी आए हैं[4] वैसे भारतीय वस्त्र उत्तरीय और अन्तरीय ही मुख्य माने जाते थे। अन्तरीय कमर से नीचे पहने जाने वाला वस्त्र कहलाता था। अन्तरीय वस्त्र में धोती, पायजामा, और अन्य ऐसे वस्त्र जो कमर से नीचे पहने जांय, आते हैं और उत्तरीय वस्त्र में प्रवरः, उत्तरासंगः बृहत्तिका, संख्यानम् आदि वस्त्र जो कमर से ऊपर पहने जांय, जैसे दुपट्टा, चादर या पीताम्बर, पगड़ी आदि। इसके अतिरिक्त उस समय के प्रचलित अन्य वस्त्रों में से चोलः कूपीसकः, जो स्त्रियों की चोली कहलाती थी,[5] शीत से बचने के लिए रजाई होती थी, जिसको निशार कहा जाता था। स्त्रियों का लहंगा भी प्रचलित था जिसको अर्धोरुकम कहा जाता था।[6]

अलंकार

भारत में प्राचीन काल से लेकर आज तक अलंकारों का विशेष महत्व है। भारतीय स्त्रियां अलंकारों को धारण करना या अपने आप को सजाना अपनी प्रसन्नता का परिचय देना समझती थीं। किसी विशेष उत्सव में या

१. अमर २।६।११४
२. अमर २।६।११४
३ः अमर मणिप्रभाटीका पृ० २२८
४. अमर २।६।११७
५. अमर २।६।११८
६. अमर २।६।११९

किसी के यहां जाने में या अपने पति से मिलने के समय में स्त्रियां अपने शरीर को अलंकृत करती थीं। अपने शरीर में उबटन लगाना, नेत्र में काजल लगाना अथवा सोने चांदी आदि के आभूषण धारण करना मुख्य स्त्रियों के आभूषण थे। पाणिनीय अष्टाध्यायी में अलंकार के लिए, अंगुलीय, कर्णिका, ललाटिका और ग्रेबेयक ये चार शब्द प्रचलित थे।[1] गोपियां श्रीकृष्ण के पास जब मिलने जाती थीं तब उबटन, काजल और वस्त्राभूषण धारण करके जाती थीं।[2]

अमरकोष में अलंकारों का क्रम से वर्णन मिलता है। सर्वप्रथम सिर में धारण करने वाला मुकुट का नाम आता है। मुकुट बोधक दो शब्द में कीरीट और मुकुट[3] किरीट को पहनने वाले मात्र राजा लोग होते थे और मुकुट को सामान्य व्यक्ति भी धारण कर सकते थे। लेकिन विशेष मौके पर जैसे विवाह के समय में दूल्हा और कन्या। और चूड़ामणि यह कन्या का आभूषण है जो कि विवाह समय से ही कन्या धारण करती है। कण्ठ में धारण करने वाला हार होता है[4] जिसको अधिकांशतया स्त्रियां ही धारण करती थीं। स्त्रियों के बाल में धारण करने वाली सोने की पट्टी होती थी।[5] आजकल भी स्त्रियां धारण करती हैं लेकिन आज सोने की पट्टी नहीं होती है। लोहे की ही पट्टी को धारण करती हैं ललाट में धारण करने वाला आभूषण जो बन्दी और बेना कहलाता है[6] जिसको उस समय, पत्त्रपाश्या, ललाटिका आदि नाम से कहा जाता था ललाटिका को आजकल टीका कहा जाता है। यह अधिकांशतया सोने का ही होता है, इसको स्त्रियां धारण करती हैं। मस्तक के मध्य विन्दु से हो-कर यह शिर में सिंदुर पहनने वाले स्थान को जाता है। कान में पहनने वाला आभूषण कर्णिका और कुण्डल कहा जाता है, जिसमें कर्णिका के अन्तर्गत कनफूल, ऐरन, तरकी, झुमका आदि आता है, जिसको मात्र स्त्रियां पहन सकती हैं। कुण्डल को स्त्रियां और पुरुष दोनों धारण कर सकते हैं।[7] गले में धारण

---

१. पा० का० भारवर्षत वासुदेव शरण अग्रवाल पृ० १३७
२. लिम्पन्त्यः प्रभृजन्त्योन्या अन्जन्त्यः काश्च लोचने।
व्यस्त्यस्त वस्त्रामरणाः कश्चित कृष्णान्तिकं ययुः। श्रीमद्भागवत १०।२९।७
३. अमर २।६।१०२
४. अमर २।६।१०२
५. अमर २।६।१०३
६. अमर २।६।१०३
७. सुधा व्याख्या पृ० २२२

करने वाला ग्रैवेयकम् या कण्ठभूषा कहलाता था ।[1] गले से थोड़ा नीचा लटकने वाले आभूषण को लम्बनम्, ललन्तिका, प्रालम्बिका आदि नामों से पुकारा जाता था[2] हार के लिए अमरकोष में तीन शब्द आए हैं[3] उर: सूत्रिका जिसको मोती का हार कहा जाता था । तथा सामान्य हार और तीसरा देवच्छद हार जो कि सौ लड़ की होती थी । हार के लिए नक्षत्र माला भी शब्द आता है जो कि सत्ताइस मोतियों का हार कहा जाता था । हाथ के आभूषणों में आवायाक:, कटक:, वलय: आदि नाम हैं ।[4] इसके अलावा हाथ के आभूषणों में केयूर जिसे बाजूबन्द कहा जाता है[5] अंगुलियों में धारण करने वाली अंगूठी होती है जिसको अंगुलीयम् या उर्मिका कहा जाता था ।[6] एक दूसरे प्रकार की भी अंगूठी होती है जिसका उल्लेख है जिसमें कि नाम खुदा हो[7] अधिकांशतया लोग अंगूठी में अपना नाम खुदवा लेते हैं स्त्रियां कुछ तो अपने पति का नाम खुदवा लेती हैं और कुछ अपना नाम स्वयं खुदवा लेती हैं । कमर में पहनने के लिए स्त्रियों का विशेष आभूषण करधनी होती थी जिसके लिए अमरकोष में पांच नाम प्रयुक्त हुए हैं[8] मेखला, कांची सप्तमी, रसना, सारसनम्, इनमें से १ लड़ी वाली करधनी को कांची, ८ लड़ी वाली को मेखला, १६ लड़ी वाली को रसना, २५ लड़ी वाली को सारसनम् कहा गया है ।[9]

इस प्रकार से अमरकोष में उपरोक्त प्रकार के आभूषणों को बताया गया है, उस समय में यही सब आभूषण प्रचलित रहे होंगे ।

शालाएँ

मनुष्य शर्दी, धूप एवं वर्षा से बचने के लिए गृह अर्थात मकान का आश्रय लेता है । यह मकान मनुष्य का एक तरह का स्थायी अड्डा होता है, जहाँ पर दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाली समस्त वस्तु इकट्ठा की जाती है । मनुष्य

---

१. अमर २६।१०४
२. अमर २।६।१०४
३. अमर २।६।१०५
४. अमर २।६।१०७
५. अमर २।६।१०७
६. अमर २।६।१०७
७. अमर २।६।१०८
८. अमर २।६।१०८, १०९
९. अमर २।२।५

रातों दिन अपने उदर पोषण के लिए विभिन्न व्यवसाय करके रात्रि को अपने स्त्री एवं पुत्र के साथ घर में ही विश्राम करता है। घर मनुष्य के लिए अनिवार्यतः आवश्यक होता है।

अमरकाल में घर के लिए विभिन्न संज्ञाओं का प्रयोग हुआ है जो कि विभिन्न अर्थों को प्रकट करने वाले हैं जैसे गृह जो कि सामान्य शब्द है[१] वैश्य जो कि सामान्य से थोड़ा ऊपर और सद्मनि [२], सद्मनि शब्द माघ के शिशुपाल बध में प्रयुक्त हुआ है। वसुदेव के गृह निवार करने वाले भगवान श्री कृष्ण । सभाभवन के लिए शाला सभा का प्रयोग हुआ है।[३] सभाभवन में सब प्रकार के लोग एकत्रित होकर अपने विचार या किसी भी प्रकार के विरोध का निर्णय लेते रहे। चारों ओर से जिसकी दीवाल हो और बीच में बैठक का स्थान हो ऐसे मकान के लिए संजवनम् और चतुः शाला शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[४] मुनि महात्माओं के मकान पर्णशाला जो कि घास फूस, पत्ते इत्यादि की बनी हो। यज्ञ मण्डप के लिए चेत्यम् आयतनम् शब्द प्रयुक्त हुआ है।[५] जहाँ घोड़ा बाँधा जाय उस मकान को बाजिशाला कहा गया है तथा जहाँ पानी रखा जाय उसको पानीय शालिका कहा गया है।[६] पाठशाला या विद्यालय के लिए अमरकोष में शब्द आया है मठ।[७] मठ शब्द संन्यासियों के आश्रम को भी कहा गया है लेकिन यही शब्द पाठशाला के भी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है उस समय आज जैसी पाठशालाएँ नहीं थी कि हर एक गांव में एक पाठशाला, कुछ लोगों के मठ थे जहाँ पर दूर दूर के विद्यार्थी जाकर विद्यार्जन करते रहे। इसी तरह गंजा शब्द मदिरागृहम् के लिए प्रयुक्त हुआ है। उस समय मदिरा का प्रचार हो चुका था उपर्युक्त शब्द से यही प्रतीत होता है। उस समय फर्स संगमरमर आदि से बनाया जाता था। मकान पत्थर के ही बने हुए होते थे जिनमें छत पड़ी रहती थी ऐसे मकान जिनके ऊपर छत होती थी उसके लिए कोष में शिरोगृहम्[८] शब्द आया है मकान में प्रकाश आने के लिए

---

१. शिशुपाल बध १।१
२. अमर २।२।६
३. अमर सुधा व्याख्या पृष्ठ २२५
४. अमर २।२।६
५. अमर २।२।७
६. अमर २।२।८
७. अमर २।२।८
८. अमर २।२।५ प्र०

खिड़की भी बनी होती थी जिनको गवाक्ष[1] कहा जाता था। विशेष उत्सव या विवाह इत्यादि के समय मण्डप भी बनाने का प्रावधान था।[2] धनियों के रहने के लिए स्थान को हर्म्य कहा जाता था।[3] राजाओं के मकान को प्रासाद और राजा के घर को राज सदन कहा जाता था।[4] चारों तरफ से दरवाजा और तोरण वाले घर को स्वस्तिक, अनेक मंजिल घर सर्वतोभद्र, गोलाकार घर को नन्द्यावर्त और बड़े तथा सुन्दर घर को विछन्दक कहते हैं।[5] जहाँ रानियों का निवास हो उस स्थान को अन्तःपुर अवरोधनम् सुद्धान्तः, अवरोधः आदि नामों से कहा जाता है।[6]

उस समय मकान में दरवाजे बनाने का भी प्रावधान होता था दरवाजे के दोनों खम्भों के नीचे या तो काठ की अथवा लोहे की पट्टी अथवा पत्थर की पट्टी होती थी जिसको शिला कहा जाता था और दरवाजे के दोनों खम्भों के ऊपर जो लोहे पत्थर या लकड़ी की पट्टी होती थी उसको नासा कहा जाता था।[7] निम्न जातियों के मकान के नाम दूसरे होते थे जैसे अहिर के मकान के लिए घोष या अमीर पल्ली शब्द आया है और कोल भील, म्लेच्छ आदि जातियों के मकान के लिए पक्कणः, शवरालय आदि शब्द आया है[8] अमरकोष में मकानों का सम्पूर्ण चित्र दिया गया जो तत्कालीन संस्कृति को स्पष्ट करते हैं जिसका संक्षिप्त उल्लेख किया गया।

संगीत

उस समय संगीत वाद्यों में मुख्य वाद्य वीणा था वीणा के सात स्वरों का उल्लेख किया गया है, १--निषाद्, २--ऋषम, ३--गान्धार, ४—षडजः, ५—मध्यम, ६—ध्वैतः, ७—पंचमः। ये स्वर वीणा या कण्ठ से उच्चरित होते हैं। इसके मधुर ध्वनि को काकली कहा गया है। और अस्पष्ट मधुर

---

१. अमर २।२।६
२. अमर २।२।६
३. अमर २।२।६
४. अमर २।२।१०
५. अमर मणिप्रभा टीका पृष्ठ ११६
६. अमर २।२।११
७. अमर २।८।५६
८. अमर २।६।६५

ध्वनि को कलः कहा गया है। वीणा भारत का अत्यन्त प्राचीन वाद्य है। वाणभट्ट ने कादम्बरी में वीणा का उल्लेख किया है। विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का मुख्य वाद्य वीणा है। वीणा के गम्भीर ध्वनि को मन्द्रः और अत्यन्त ऊंचे स्वर को तार कहा गया है।[१] तार वाली वीणा के लिए सितार कहा गया है।[२] प्राचीन ग्रन्थों में अलग अलग देवताओं की अलग अलग वीणा के नाम बताए गए हैं। नालम्बी (शिव की वीणा) कच्छणी (सरस्वती) महती (नारद), प्रभावती (गणों की), वृहती (विश्वावसु), कलावती (तुम्बुरु) चान्डालिका या कण्डोल वीणा चाण्डालों की।[३] वीणा बजाने के लिए लकड़ी की एक धनुही होती रही जिसको कोणः कहा गया है।[४] वीणादण्ड के लिए प्रवाह नाम मिलता है। वीणा के नीचे वाले भाग को जिसे काण्ड कहा जाता है जो कि चमड़ा से ढका हुआ होता है जिसके लिए ककुमः शब्द प्रयुक्त हुआ है[५] जहां वीणा का तार बांधा जाता है उस स्थान को उपनाह और निबन्धनम् कहा जाता है।[६] वीणा वाद्य के अलावा भी वाद्य के जिसमें से मुख्य रूप से डमरू, ढोल, मड्डु, जलतरंग डुगडुगी, झांझ, मदेल आदि।[७]

उपर्युक्त वाद्यों के लय के आधार पर नृत्य भी होता रहा। नृत्य दो प्रकार के बताए गये हैं, नृत और नृत्य।[८] नृत्य में नर्तकी द्वारा, छोकड़ा और कत्थक नृत्य आदि। नृत्य स्थान स्थान पर अपना दूसरा रूप ग्रहण करता है नाचने वाले के लिए नर्तकी और लासिका शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[९] विलम्ब से नाचने बजाने के लिए ततवम, जल्दी से नाचने बजाने के लिए औद्यः। और सामान्य रूप से समयानुकूल नाचने गाने के लिए अमरकोष में 'धनम्' शब्द प्रयुक्त हुआ है।

---

१. अमर १।७।१
२. अमर १।७।२
३. अभिधान चिन्तामणि हेमचन्द्र २।२०२-२०४
४. अमर १।७।६
५. अमर १।७।७
६. अमर १।७।७
७. अमर १।७।८
८. दशरूमकम् १।१२
९. अमर १।७।८

उस समय ताल लय शब्द वाद्यों के साथ प्रचलित थे। ताल अर्थात जिसमें समय और क्रिया की कमी वेशी का प्रमाण रहता है और लय अर्थात जिसमें गाने बजाने और हाथ, भ्रू आदि चलाकर भाव दिखलाने के लिए समय और क्रिया की कमी वेशी का प्रमाण रहता है।[1] नृत्य अकेले भी होता था नृत्य ताल लय के साथ अर्थात वाद्य के साथ भी नृत्य होता रहा है और नाचना गाना बजाना ये तीनों एक साथ भी होते रहे[2] अर्थात नाचने वाला गाता भी था गाने के लय पर नाचता था बजाने वाले दूसरे होते थे जिस प्रकार वह गाता और नाचता जाता था उसी प्रकार वे बजाते जाते थे। अर्थात नृत्य के आधार पर वाद्य बजता था। नाचना गाना और बजाना इन तीनों के समुदाय के लिए अमरकोष में तौर्यत्रिकम नाट्यम शब्द प्रयुक्त हुआ है।

नाचने के लिए विशेष रूप से स्त्रियाँ होती थीं जिनका मात्र नाचना गाना व्यवसाय ही था जिनको गणिका, अंजुका कहा जाता था।[3] कुछ पुरुष भी होते थे जो स्त्री के रूप धारण कर नाचते थे जिनको संकुसः शब्द्र कहा गया हैं।[4]

इस तरह उस समय संगीत विद्या भी चरम सीमा तक पहुँची हुई थी। अधिकांश रूप से संगीत में दक्ष व्यक्ति राज सभा में प्रविष्ट होते रहे अर्थात राजा उनके संगीत को देखता रहा संगीत में दक्ष लोग राजा के द्वारा आश्रय पाते रहे और अपने संगीत का प्रदर्शन करते रहे। वाद्य यंत्रों का तो प्रचार अत्यधिक मात्रा में था जिनमें जो ऊपर बताया जा चुका है कि तत्कालीन मुख्य वाद्य यंत्रों में वीणा थी। वीणा एक ऐसा वाद्य था जो कि हर प्रकार के घेरा में उपस्थित होते हुए भी सब प्रकार के लोग वाद्य को बजाने में सक्षम होते रहें हैं।

३ आर्थिक दशा

आर्थिक दशा के ही आधार पर तत्कालीन संस्कृति का सुगम बोध होता है जहाँ कि आर्थिक स्थिति जितनी ही सुदृढ़ होगी वहाँ की संस्कृति उतनी ही

---

१. अमर १।७।६

२. अमर १।७।६

३. अमर १।७।११

४. अमर १।७।११

उत्कृष्ट मानी जायगी। तात्पर्य कि जो देश जितना ही सभ्य होगा वह उतना ही आत्मनिर्भर होगा और आत्मनिर्भरता तभी अच्छा माना जायगा जब उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी होगी।

आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले मुख्य रूप से वहाँ का व्यापार। भारतवर्ष में प्राचीनकाल से सभी लोग कृषि पर आश्रित रहे हैं। कृषि करने के लिए बैलों को पालना, गो सेवा करना, गाय के दूध का व्यापार करना और अन्य ऐसे व्यापार करना जिनसे आर्थिक दशा में सुधार हो।

अमरकोष में कृषि के लिए उपकरणों का उल्लेख किया गया है उनका क्रमशः नीचे विवेचन किया जायगा। आर्थिक क्षेत्र के लिए तीन व्यापारों का उल्लेख किया गया है—कृषि, पशु पालन एवं व्यापार।[१]

कृषि

कृषि का तात्पर्य खेत में हल चलाकर या जोतकर अन्न पैदा करना कृषि को 'अनृतम' भी कहते हैं।[२] कृषि करने के लिए किन किन साधनों की आवश्यकता होती है उनमें मुख्य रूप से भूमि, बैल, हल, कृषक, इत्यादि। कृषि करने वालों के लिए क्षेत्राजीवः, कर्षकः, कृषीवलः आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।[३] भूमि के प्रकार कई होते थे मुख्य जमीन जो अच्छी उपजाऊ मध्यम कम उपजाऊ और इससे भी निकृष्ट अर्थात बिलकुल ऊसर। अमर कोष में भूमि के लिए अच्छी भूमि व्रैहैय्म, शालेय्म, यव्यम् यवक्यम् षष्ठिक्यम् कहा गया है।[४] जिसमें अच्छी किस्म की धान, व्रीही, शालि, टूड़बाला जौविना टूंड़ वाला जौ और साठी धान (साठ दिन में तैयार होने वाली धान) के पैदा होने योग्य जमीन है। जिन जमीन में तिल पैदा हो अर्थात तिलयोग्य भूमि को तिल्यम्, उड़द पैदा होने योग्य जमीन को माध्यम, माषीणम् अलसी पैदा होने योग्य जमीन को उम्यम्, औमीनम्, चीना पैदा होने योग्य जमीन को अणव्यम् और आणवीनम तथा सनई पैदा होने योग्य जमीन को भंगम्, भंगीनम् कहा गया है।[५] मध्यम श्रेणी के भूमि जिसमें मूंग, कोदो, मटर, चीना, चना आदि पैदा हो उसके लिए मौदीनम्, कौद्रवीणम्, गोधुमीनम कालायीनम्

---

१. अमर २।९।२
२. अमर २।९।२
३. अमर २।९।५
४. अमर २।९।६
५. अमर २।९।७

कौलस्थीनम्, प्रैयंगवीणम्, चाणमीनम् आदि नामों से कहा गया हैं।[१] जिस भूमि में साग भाजी लगाया जाता था उसको शाक शाकटनम्, शाक शाकनम कहा गया है।[२] उस समय साग भाजी का व्यापार भी होता रहा है। कुछ ऐसे भी बीज होते हैं जिनको बोने के बाद भी जोता जाता है, जैसे कोदो, रहर इसके लिए ऐसी जमीन को बीजाकृतम्, उप्तकृष्टम कहा गया है।[३] जमीन को जितना अधिक जोता जायगा उसमें उतनी ही अच्छी फसल होगी, जो जमीन तीन बार जोती गयी है उसको त्रिगुणाकृतम्, जो दो बार उसको द्विगुणाकृतम[४] कहा गया है। जिस जमीन को सीधा जोतने के बाद तिरछी जोता जाय उसको शम्बाकृतम् तथा जिसमें एक द्रोण और एक आढक आदि बोने के योग्य को द्रौणिक, आढ़किकः कहा गया है।[५] उस समय छोटे छोटे खेत के टुकड़े ऐसे बनाए जाते रहे जिनमें अच्छी तरह पानी पहुँचाया जा सके उस प्रकार जमीन को व्रप्रः, केदारः कैदारकम्, कैदार्यकम आदि नामों से कहा गया है।[६]

उपर्युक्त प्रकार से अमरकाल में खेतों का विभाग किया गया था जिनमें कृषि कार्य होता रहा है।

खेती के लिए जितनी ही आवश्यक जमीन होती है, उसी प्रकार जिन उपकरणों से खेती की जाती है उन सभी उपकरणों की महान आवश्यकता पड़ती है। खेत को जोतने के पश्चात अगर खेत में बड़े बड़े ढेले आते हैं तो उसको लोष्ट भेदन[७] या कोटिशः नाम के औजार से समतल या ढेलों को फोड़ा जाता है, जिसको आजकल, कोपल, हेंगा या पाटा कहा जाता है। खेती में जमीन के चारों कोने में हल नहीं जा सकते अर्थात खेत के कोने में थोड़ा थोड़ा बिना जोता खेत बचा रहता है, उसको खन्ता, या कुदाल आदि से उसी प्रकार से बनाया जाता है जिस प्रकार जोती हुई जमीन होती है।

---

१. अमर २।९।२८ प्र०
२. अमर २।९।२८ प्र०
३. अमर २।९।८
४. अमर २।९।९
५. अमर २।९।१०
६. अमर २।९।११
७. अमर २।९।१२

जिसको खनित्रम् अवदारण कहा गया है ।[१] जिससे जमीन जोती जाती है उसे हल कहा जाता है । अमरकोष में हलम् लांगलम् गोदारणम् शब्दों का प्रयोग हुआ है ।[२] हल के अग्रभाग में जो बैलों के कन्धे पर रखी जाती है जुंआ कहलाती है और जुआं के दोनों किनारों में छेद होता है । जिस छेद में रस्सी डालकर रस्सी को आवन्धः कहा गया है । रस्सी को शम्या युगकीलकः (शैला) से बैलों के गले में ऐसा बाँधा जाता है जिनसे न तो बैलों को तकलीफ हो और न तो बैल उसको छोड़ा सकें । हल का मुख्य भाग ईषा, लांगलदण्डः[३] (हरिश) कहा जाता है, जो कि काफी लम्बा होता है । हरिश के नीचे की ओर नोकीला लोहे का फार (फलम)[४] लगा होता है जिसके द्वारा जमीन की जुताई होती है । बैलों की जुताई के बाद घर में लाकर के उनकी अच्छी सेवा की जाती है अर्थात उनको अच्छा भोजन, पानी दिया जाता है । आपस में बैल लड़ें न इसके लिए उनको (खूंटा) मेघिः, खलेदारु[५] में बाँधा जाता है ।

इस प्रकार से हल बैल के द्वारा जमीन में जोत के फसल बोया जाता रहा। फसल के लिए जिससे उसको कोई नुकसान न हो बार बार रखवाली होती रही या धान कोदौ के फसल को बार बार निराई गोड़ाई होती रही, निराई और कटाई के लिए जिस उपकरण का प्रयोग होता रहा उसमें मुख्य रूप से दात्रम्, लवित्रम्[६] है जिनको खुरपी और हंसुवा कहा जाता है ।

फसल

उस समय की मुख्य फसल धान थी । अधिकांश लोग धान की खेती करते थे । धान कई प्रकार की थी जिनमें कुछ तो जो बहुत दिनों में पकती थी और कुछ जल्दी ही पक जाती रही । सबसे जल्दी पकने वाली धान साठी जो कि साठ दिन में ही पक जाती रही जिसको आशुः, व्रीहिः, पाटलः आदि नामों में

१. अमर २।९।१२
२. अमर २।९।१३
३. अमर २।९।१४
४. अमर २।९।१३
५. अमर २।९।२५
६. अमर २।९।१३

कहा गया है[1] धान के बाल को कणिशम, शस्यमन्जरी आदि नामों से कहा गया है। क्षीरस्वामी ने सत्रह प्रकार के धान्य के नामों का उल्लेख किया है।[2]

धान के बाद एक प्रकार की दूसरी फसल जो धान के ही प्रकार का होता है जिसे कोद्रव[3] कहा गया है जिसको निम्न वर्ग के लोग खाते हैं। दाल के लिए मूंग उड़द होता रहा जिसका विशेष प्रकार के भी भोजन तैयार होता है, जैसे मुगौड़ी इत्यादि। मूंग दो प्रकार की होती रही एक जो गाँव में तैयार हो और दूसरी बिना बोए ही जंगलों में तैयार हो जाय मकुण्टकः या मयुष्टक नामक शब्दों का उल्लेख किया गया है।[4]

धान के बाद मुख्य फसल गेहूँ की थी, गेहूँ की फसल समस्त लोग करते रहे। गेहूँ को गोधूमः, सुमनः[5] कहा गया है। गेहूँ के पश्चात चना का नाम आता है। चना समस्त फसलों का राजा माना गया है। चना से विविध प्रकार के पकवान तैयार होते हैं। चना के लिए चणकः, हरिमन्थकः शब्द प्रयुक्त हुए हैं। चना की दाल भी बनाई जाती थी, दाल के लिए मसूर की भी खेती होती रही। मसूर के लिए मंगलकः और मसूरः शब्द प्रयुक्त हुए हैं। गेहूँ के समान जौ की फसल होती रही; जौ के लिए शितशूर तथा हरे जौ के लिए तोक्यः शब्द प्रयुक्त हुए हैं[6] और ऐसे जौ जिनमें टूंड़ न हो क्योंकि जौ में टूंड़ होते हैं बिना टूंड़ वाले जौ को यावकः कुलमाषः शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[7]

सामान्यतः उपर्युक्त फसलों की खेती की जाती रही जो कि खाद्य पदार्थ में आते रहे। इन फसलों को अपने भोजन के लिए रखकर शेष को बेंचकर अन्य काम किया जाता रहा, व्यापारिक दृष्टि से तिलहन की खेती की जाती रही है जिसको बेंच ही दिया जाता रहा है तिलहन में मुख्य रूप से तिली जिसके लिए

---

१. अमर २।६।१५

२. अमर २।६।१३

३. अमर २।६।१५
   व्रीहिर्यवो मसूरो गोधूमो।

४. मुग्दमाषतिलचणका.
   अणवः प्रियगु कोद्रवमयुष्टकाःशालिराढक्यः
   द्वय च कुलयकुत्थौ शणः सप्तदशानि धन्यानि।

५. अमर २।६।१६

६. अमर २।६।१७

७. अमर २।१।१८

तिलयेज:, तिलपिन्ज:, सरसो, सरसो दो प्रकार के एक तो काला सरसों जिसको राई कहा जाता है जो कि क्षव[1] नाम से प्रयुक्त है दूसरा सफेद सरसों जिसको सिद्धार्थ[2] कहा गया है। तिलहन में अलसी भी थी जिसको अतसी, उमा, क्षुभा आदि नामों से कहा गया है।[3] अन्य तिलहनों में कंक: (ककुनी) अणु: (चीना) आदि है इस प्रकार तिलहनों के नामों के देखने से यह स्पष्ट होता है कि, उस तिलहन की खेती अधिकांश लोग करते रहे। अपने नित्य प्रयोग होने वाले फसलों के अलावा तिलहन की खेती मुख्य रूप से करके अपना व्यापारिक धन्धे को मजबूत बनाए हुए थे।

वनस्पति

अमरकोष में वनस्पतियों को तीनों भागों में विभक्त किया गया है। १—फूल कर फलने वाले पेड़[4], जैसे आम, लीची, अमड़ा, २—बिना फूले फलने वाले पेड़[5] जैसे गूलर, कटहल, पीपल, बड़, ३—फलकर पकने के बाद नष्ट होने वाले वनस्पतियों जैसे धान, चना, जौ, गेहूँ आदि कुछ वनस्पतियां पुष्प फल देती रहीं। कुछ नहीं देती रहीं। न फलने वाली वनस्पतियां वन्ध्य:, अफल: अवकेशी आदि नामों से प्रसिद्ध थीं। कुछ वनस्पतियाँ बारहों मास फल देती रहीं। कुछ अपने समय अर्थात् मौसम आने पर फल देने वाली इनको अवन्ध्य:, फलग्रहि कहा गया है।[6] कुछ पेड़ों में बहुत शाखाएँ कुछ बिना शाखा की बिना शाखा वाले वृक्ष को स्तम्ब: गुल्म[7] और छोटी शाखा वालों के लिए क्षुप:[8] कहा गया है। वृक्ष की शाखा, जड़ के लिए प्रकाण्ड: स्कन्ध: आदि शव प्रयुक्त हुए हैं। अवरोह: शब्द भी आया है जो पेड़ के ऊपर एक अमरबेल फैल जाती है, उसी का नाम गुड़ची लता। इसको महेश्वर और मुकुट ने वृक्ष की लता बताया है। भानुजी दीक्षित के अनुसार अवरोह डाल की जड़ का नाम

१. अमर २।६।१६
२. अमर २।६।१८
३. अमर २।६।२०
४. अमर २।४।६
५. अमर २।४।६
६. अमर २।४।७
७. अमर २।४।६
८. अमर २।४।८

है।[1] वृक्ष के जड़ को मूल, ऊपरी हिस्सा, शिर, अग्रम बीच के भाग को सार तथा छिलके को वल्कलम बताया गया हैं।[2] वृक्ष के हरे भरे पत्तों को पत्रम पलाशम छदनम तथा नवीन पल्लव की पल्लव किसलय शब्द प्रयुक्त हुए हैं। फ़ल शब्द फल अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है।[3] कच्चे फल को शलाटुः सूखे फल को वानार कहा गया है। फली को क्षारक कहा गया है।

पीपल के लिए आश्वत्थम, वैणवम् प्लाक्षम, न्यग्रोध शब्द आया है। आश्वत्थ और न्यग्रोध पौराणिक काल के शब्द हैं। श्रीमद भागवत में अश्वत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध, कुरबक, अशोक, नागपुन्नग, चम्पक, चूत, पनस, कोविदार जम्बु, अर्क, विल्ब, बकुल आम्र, कदम्ब आदि वनस्पतियाँ[4] उल्लिखित हैं। अश्वत्थ अर्थात पीपल का वृक्ष सब वृक्षों में उत्तम माना गया है भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि सभी वृक्षों में पीपल का वृक्ष है।[5]

अमर कोष में ये समस्त वनस्पतियों को बताया गया है अर्थात समस्त वनस्पति उस समय भी विद्यमान थी, जिनमें मुख्य रूप से अश्वत्थः (पीपल) कपित्था (कैथा, उदुम्बरः (गूलर) कोविदारः कचनार, सप्तपर्ण अमलतास, जम्बीरुः (नीबू) पुन्नाग (नागकेसर) प्रारिमद्र (बकायन) णीतनः आंमला, मधूक (महुआ) अक्षोट, अंकोट, पलाश, वेतस, शोभःजन, रीठः, श्रीफल (बेल) प्लक्ष (पाकड़) आम्र, कुम्भक (गुग्गुल) राजादनम कर्कन्धू (बेर) नागरंगः (नारंगी) कुचिला, गोलीढ़ः, तिलकः पिचुलः, तूद आदि वनस्पतियां विद्यमान थीं।[6]

आर्थिक स्थिति को मजबूत बनाने में वनस्पतियों का विशेष योगदान था। कुछ वनस्पतियां मात्र व्यापार के लिए ही थीं जैसे तिन्तिडी (इमली) पीतसारकः साल (विजयसार) साल, नदीसर्णः इंगुदी, भूर्णः (भोजपत्र) पिच्छिला (सेमल) प्रकीर्यः (करिंज) गायत्री (खैर) एरण्डः[7] आदि पवित्र वृक्षों की लकड़ियां यज्ञ इत्यादि

१- सुधाव्याख्या पृष्ठ १२७

२- अमर २।४।१२

३- अमर २।४।१५

४- श्रीमद भागवत महापुराणम् १०।३०

५- श्रीमद् भगवत गीता १०।२६।५ से ६ तक

६- अमरकोष २।४।२१ से ४३ तक

७- अमरकोष २।४।४३ से ५२ तक

के हवन के लिए होती थी जिनमें शमी[1], पलास, आम्र आदि मुख्य पुनीत वृक्ष थे। औषधि के लिए मुख्य फूलों में आमलकी (आंवला) अभया (हर) और विभीतकः (बहेड़ा)[2]। तीनों फल त्रिफला नाम से ख्यात हैं। ये पेट (कब्ज) के लिए अत्यन्त लाभदायक औषधियां हैं। टिकाऊ एवं अत्यन्त शालयुक्त लकड़ियां जिनसे फर्नीचर आदि बनते हैं उनमें अरिष्ठः (नीम) पिच्छिला (शीशम)[3] शकपादपः (देवदारु)[4] आदि मुख्य थे। पुष्पों में मुख्य रूप से सर्वप्रथम शिरीष[5] का उल्लेख किया गया है इससे लगता है लेखक को शिरीष पुष्प पसन्द था जैसे कालिदास[6] ने शिरीष पुष्प का उल्लेख कई स्थानों में करके उपनी पसन्दगी को सूचित किया है। यह अत्यन्त सुन्दर पुष्प जो कि वर्षा एवं वसन्त ऋतु में फूलता है इसमें जो बेला, घर के पास लगाया जाता है वह दूसरे प्रकार का एवं जो जंगलों में बिना लगाए ही हो जाता है वह दूसरे प्रकार का होता है। जंगली बेला को आस्फोटा[7] नाम से कहा गया है। निर्गुण्डी पुष्प जिसको नेवारी कहा जाता है, यह दो प्रकार की होती है एक तो काली नेवारी जिसे शेफालिका,[8] निर्गुण्डी कहा गया है। यह वर्षा ऋतु में पुष्पित होती है दूसरे प्रकार की नेवारी जिसे वासन्ती नेवारी कहा गया है उसको सप्तला, नवमालिका[9] आदि शब्दों से सम्बोधित किया गया है। वर्षा ऋतु में पुष्पित होने वाला जुही पुष्प जिसका मागधी[10] कहा गया है, पीले पुष्प के जुही को हेमपुष्पिका[11] कहा गया है। इसके अलावा अन्य पुष्पों में माधवी, मल्लिका मालती सुमनाः (चमेली) कुन्द, रक्त (दुपहरिया फूल) कटसरैया, प्रतिहास शतप्रास (बनइल कनेर) करील आदि पुष्पों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार अमरकाल में अनेकानेक वनस्पतियां उपलब्ध थीं। इनके माध्यम से समस्त लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति किया करते थे।

---

१. अमरकोष २।४।५२
२. अमरकोष २।४।५७-५८
३. अमरकोष २।४।६२
४. अमरकोष २-४।५३
५. अमरकोष २।४।६३
६. कृर्त न कर्णापित बन्धन सखे, शिरीष
माागण्ड विलम्ब केसरम (अभिज्ञान शाकु० ५ अंक)
७. अमरकोष २।४।७०
८. अमरकोष २।४।७०
९. अमरकोष २।४।७२
१०. अमरकोष २।४।७१
११. अमरकोष २।४।७२,७३,७६

पशु पक्षी

पशु पालन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन हैं । पशु मनुष्य के आर्थिक जीवन को प्रभावित करते हैं पशु पालन से मनुष्य अपने अन्य आवश्यकताओं को पूरा करता है । अमरकाल में पशु पालन अत्यधिक मात्रा में किया जाता था । पशु पालन करने वाले लोगों को गोप: अहीर या गोप ग्वाला कहा जाता था ।[१] पशु पक्षियों को दो भागों में विभक्त किया गया १— प्रकार के वे समस्त पशु पक्षी जो पालतू हों जैसे गाय, भैंस, बैल, ऊँट, हाँथी, घोड़ा, कुत्ता, इत्यादि । दूसरे प्रकार के ऐसे समस्त पशु पक्षी जो बिना पाले जंगलों में रहते हों ।

बैल

कृषि कार्य में सहायक बैल पाले जाते थे । बैलों के झुण्ड के झुण्ड को औक्षकार[२] बड़े डील वाले बैल को महोक्ष:, बूढ़े बैल को वृद्धोक्ष: तथा जवान बैल जो हल चलाने योग्य होते थे उसको जातोक्ष: कहा गया है ।[३] शीघ्र पैदा हुए बछवे को तर्णक:, छोटे बछवे को शकृत्करि: ऐसा बैल जो हल चलाने योग्य हो गया है उसको यम्प:, वत्सतर: तथा जोसाड़ स्वच्छन्द विचरण करने वाला होता है उसको षण्ड: कहा गया है ।[४] बैल हल चलाने के लिए तथा इसके साथ गाड़ी को ढोने वाले होते थे । हल को चलाने वाले बैल को युग्य: एवं गाड़ी को ढोने वाले बैल को प्रासंग्य: कहा जाता था ।[५]

गाय

दूध के लिए गाय विशेष रूप से पाली जाती थी । कुछ लोग बहुत गायें पालते थे । गायों के झुण्ड को गोकुल कहा जाता था ।[६] गायों को चराने के लिए दूर-दूर ले जाया जाता था जिसको 'आशितंगवीनम्' कहा जाता था ।[७] गायों का वर्ण कई प्रकार का होता था जैसे काली, लाल, चितकबरी, भूरी

---

१. सुधा व्याख्या पृष्ठ ३२६
२. अमरकोष २।९।६०
३. अमरकोष २,९।६१
४. अमरकोष २।९।६२
५. अमरकोष २।९।६४
६. अमरकोष २।९।५८
७. अमरकोष २।९।५९

सफेद इत्यादि प्रकार की गाय। कुछ गाय प्रति वर्ष बछड़े पैदा करके एक ही वर्ष दूध देती थी और कुछ गाय तीसरे वर्ष बछड़ा पैदा करती थी और लगातार दो वर्ष दूध देती थी। ऐसी गायों को चिरप्रसूता बस्कयिणी कहा गया है।[1] दूध देने वाले पशुओं में एक मात्र गाय ही उस समय थी बकरी का भी दूध प्रचलित था भैंस को दूध के लिए नहीं पाला जाता था। भैंस का उल्लेख नहीं मिलता है।

हाथी

सेवांगों में हाँथी घोड़ा का उल्लेख किया गया है। हाथी उस समय का स्थूलकाय पशुओं में मुख्य था हाँथी के अलग-अलग गुणों के आधार पर अलग-अलग नामों से सम्बोधित किया गया है। हाँथी के १५ नामों का उल्लेख किया गया है। दन्ती, दन्तावली, हस्ती, द्विरदः, अनेकमः, द्विपः मतंगजः, गजः, नागः, कुंजरः, वारुणः, करी, इमः, स्तम्बेरमः, पद्मी इत्यादि[2] हाथी के गण्डस्थल से मद चूता है। ऐसी हाँथी के लिए प्रभिन्नः गर्जितः मतः आदि नामों का प्रयोग हुआ।[3] हाँथी राजा की सवारी होती थी जिसको राजवाह्यः औपवाह्यः कहा जाता था।[4]

अमरकोष क्षत्रिय वर्ग में ३४ से ४३ तक हाँथी का वर्णन किया गया है। जिसमें हाँथी के सम्पूर्ण अंगों प्रत्यंगों का चित्र स्पष्ट किया गया है। हाँथी का मद, सूंड़, मस्तक के ऊपर माँस पिण्ड, माँस पिण्ड के बीच का भाग हाँथी का ललाट, आँख के किनारे वाला भाग, कनपटी, दोनों दाँत, हाँथी का कन्धा, हाँथियों के मुख में कमलाकार छोटे लाल चिन्ह, पीछे का भाग, आगे का भाग पूर्वार्द्ध, और पूरार्द्ध शरीर, जंघा, हाँथी का अंकुश, और हाँथी का सजावट इत्यादि का वर्णन बहुत ही रोचक ढंग से किया गया है[5] जिससे स्पष्ट होता है कि अमर सिंह ने हाँथी को सामने रखकर लिखा हो।

घोड़ा

चतुरंगिणी सेना में हाँथी के बाद घोड़ा ही आता है। अतः हाँथी से कम महत्वपूर्ण घोड़ा नहीं होता है। घोड़े का भी विधिवत अंग प्रत्यंगों सहित वर्णन

---

१. अमरकोष २।६।७०
२. अमरकोष २।८।३४
३. अमरकोष २।८।२५ प्र०
४. अमरकोष २।८।२५ प्र०
५. अमरकोष २।८।३३ से ४३

किया गया है। घोड़े के १३ नामों का उल्लेख किया गया है। घोटकः, वीतिः, तुरगः, तुरंगः, अश्वः, तुरंगम्, वाजि, वाह, अर्वः, गन्धर्वः, हयः, सैन्धवः, सप्तिः आदि[१] घोड़ा अधिकांशतः सिन्धु प्रान्त में मिलते हैं इसीलिए इन्हें सैन्धवः कहा गया है। यह शब्द पाणिनीय अष्टाध्यायी में ही आया है। इसके अलावा अश्व वनायु, पारस कम्बोज और वान्हिक देशों में पैदा होते थे इसीलिए वनायुजः, पारसीकः, काम्बोजः और वान्हीकः कहा गया है।[२] घोड़े एक ही रंग के नहीं वरन कई रंगों के होते थे जैसे लाल, सफेद, चितकबरा आदि, सफेद घोड़े का नाम कर्कः था[३] अन्न जिस पर लादा जाय उसे पृष्ट्यः और जो घोड़े रथ में चलने वाले हों उनको रथ्यः कहा गया है।[४] घोड़े की आवाज को हेषा कहा गया है।[५] घोड़े बहुत चंचल जानवर होते हैं, वे कभी-कभी तो बहुत तेजी से दौड़ते हैं कभी बैठ जाते हैं कभी उछाल मारकर चलते हैं। इन सभी चालों का उल्लेख अमरकोष में किया गया है।[६]

वन्य पक्षी

वन्य पशुओं में मुख्य रूप से सिंह जिसको सिंह मृगोः पंचास्यः हर्यक्षः केसरी, हरिः आदि नामों से ऊद्धृत किया है।[७] सिंह जंगली जानवरों में मुख्य जानवर होता है। यह वनराज भी कहा जाता है। सिंह के अलावा वन्य जानवरों में चीता जिसे तरक्षुः, तेंदुआ, मुगादनः, वाराह, शूकर, मृग, बन्दर, महिष ? श्रृगाल (सियार), मार्जाकी, भल्लुकः (भालू) गोधारः (गोह) श्वावित् (साही) कोकः (भेड़िया) आदि जंगली जानवरों का उल्लेख किया गया है।[८] हिरन जंगली जानवरों में सिंह के बाद मुख्य जानवर था। इसकी सींग काफी नोकीली होती थी, चमड़े और सींग के लिए ऐणेपम शब्द का प्रयोग हुआ है मृग को कई नामों से कहा गया है, जैसे कदली, कन्दली, चीनः, चमरू, प्रियकः समूकः आदि नामों का उल्लेख किया गया है।[९]

---

१. अमरकोष २।८।४४
२. अमरकोष २।८।४५
३. अमरकोष २।८।४६
४. अमरकोष २।६।४६
५. अमरकोष २।८।४७
६. अमरकोष २।८।४८
७. अमरकोष २।५।१
८. अमरकोष २।५।२ से ७ तक
९. अमरकोष २।५।६

पक्षी

समग्र पृथ्वी पर पक्षी प्राचीन काल से विद्यमान थे। जब से मानव जाति इस स्थिति में आया कि वह कुछ जान सके तब उसे अपने जैसे जीवधारी पक्षी भी दिखाई पड़ने लगे। अमरकोष में बहुत से पक्षियों का उल्लेख प्राप्त होता है। सर्व प्रथम कबूतर का नाम मिलता है। कबूतर दो प्रकार के होते थे। एक वे जो पाले जाते थे जिनको पारावत कहा जाता था।[1] पारावत (कबूतर) अर्थ में बाणभट्ट ने भी प्रयोग किया है।[2] दूसरे प्रकार के कबूतर जो जंगली कबूतर कहलाते थे इनके लिए कलरव कपोतशब्द आए हैं। बाज पक्षी के लिए शशादनः[3] शब्द का प्रयोग किया गया है। बाज पक्षी खतरनाक पक्षियों में आता है। यह अपने से दुर्बल पक्षियों को अचानक दबोच लेता है। इसके अलावा अमरकोष में जिन पक्षियों का उल्लेख किया गया है, उनमें उल्लूक, भारद्वाज, खड़इच, सफेद चील, चास (नीलकण्ठ) कलिंग (भुजंगी), शतपत्रकः (कठखोलबा) सारंगः (चातक) कृकवाकुः (मुर्गा) चटकः (गवरा चटकपक्षी) चटका (गवरैया) कर्कटेतुः (टिटिहरी) वनप्रियः (कोयल) काक (कौआ) दाक्षाप्यः (गीध) कीरः शुकः (तोता) कुङ् (क्रौंच) बकः (बगुला) पुष्कराह्‌व : (सारस) कोरः (चकवा) कादम्बः (बतख) उत्क्रोशः (कुरर) हंसः, शरारिः (आडी पक्षी) जतुका (चमगादड़ दादुर) भृंगारी (झींगुर) पतंगा (फतिगा) खद्योतः (जुगुनू) षट्पदः (भौरा) मयूर (मोर) आदि सारे पक्षियों का उल्लेख किया गया है।[4] लेखक की दृष्टि पशु पक्षियों की ओर अत्यधिक मालूम पड़ती है।

जलचर

अमरसिंह की दृष्टि केवल जंगली और वायु मण्डलीय पक्षियों तक ही नहीं रही बलि्क जल में रहने वाले जीवों में एक-एक उनके दृष्टि में थे मछलियों में तो ऐसा लगता है कि कोई मछली छूट ही नहीं पाई है। सर्वप्रथम मछली वाचक शब्दों पृथुरोगः झषः मत्स्यः मीनः वैसारिणः आदि शब्दों का उल्लेख किया है।[5] गडकः (गडक मछली) सहस्त्रद्रष्टा (पहिना मछली) यह बहुत दाँतों वाली एक प्रकार की मछली है नलमीन, प्रोष्ठी (सहमी मछली) रोहू,

१. अमरकोष २।५।१४
२. कादम्बरी रामतेजशास्त्री पंडित प्रकाशन काशी पृष्ठ १००
३. अमरकोष २।५।१४
४. अमरकोष २।५।१४ से ३७ तक
५. अमरकोष १।१०।१७

मोंगरा, शाल, बराकी, शकुल तिमिंग्रिल, आदि प्रकार की मछलियों का उल्लेख किया है।[१] अन्य जलचरों में कुलीरः (केकड़ा) कूर्मः (मछुआ) ग्राह (घड़ियाल) नक्रः (मगर) महीलता (केचुआ) निहाका (गोह) रक्तपा (जोंक) मुक्तास्फोट (शीप) शंख शम्बूकः (घोंघा) मेकः (मेढ़क) आदि जलचरों का उल्लेख किया गया है।[२] इसके अलावा जिन जलचरों का उल्लेख अन्यत्र प्राप्त होता है उनमें जलमुर्गा, जलकौवा आदि[३] है।

शिल्पी

शिल्पी का तात्पर्य परम्परागत चले आए वैश्यों या रुद्रों के आजीविका चलाने वाले काम से है। पहले नाचने गाने वालों को भी शिल्पी कहा जाता था। नागेश भट्ट ने शिल्पियों को, कुम्हार, लुहार, सुनार, नापित, धोबी आदि को ही बताया है।[४] कभी तो शिल्पियों के अर्थ में केवल पत्थर की जोड़ाई करने वाले को ही माना गया है। इसका उल्लेख रामायण में भी किया गया है।[५] कालान्तर में शिल्पी शब्दार्थक शब्द कारीगर प्रयुक्त हुआ। अमरकोष में भी यही लिखा गया है।[६] कारीगर बोधक शब्द का बाद में मिस्त्री शब्द से अर्थ लगाया गया है। अमरकोष में शिल्पी के लिए पाँच कर्मों का उल्लेख हुआ है। १—लुहार, २—जुलाहा, ३—बढ़ई, ४—धोबी, ५—चमार अन्यत्र भी पाँच ही शिल्पियों का उल्लेख है।[७]

अमरकोष में शिल्पी बोधक जिन कार्यों का उल्लेख हुआ है, उनमें घड़े का कार्य करने वालों को कुम्भकार[८] कहा गया है। यह समस्त मिट्टी के बर्तन मिट्टी के बने समस्त सामान बनाने वाला शिल्पी होता है। यह शूद्र वर्ग में आता है। शिल्पियों में यह चर्मकार के तुल्य माना जाता है, अन्य स्थानों में शिल्पियों में चर्मकार ही कहा गया है। कुम्भकार अलग से अमरकोष में ही आया है।

---

१. अमरकोष १।१०।१७ से १९ तक
२. अमरकोष १।१०।२१
३. अमरकोष २।५।३४
४. पा० का० भारतवर्ष वासुदेव शरण अग्रवाल पृष्ठ २२०
५. शिल्पकर्म जानहि नलनीला। का० मा० लंका काण्ड २२।५
६. अमरकोष २।१०।५
७. अमरकोष २।१०।६
८. तक्षाचतन्तवायश्च नापितो रजकस्तथा
पंचमश्चर्मकारश्च कारवः शिल्पिनोमता। सुधा व्याख्या पृष्ठ ३५२

लोह के काम को करने वालों को लोहार कहा जाता है। अमरकोष में लोहार के लिए व्योकारः, लोहकारः[1] शब्द आए हैं। लुहार उस समय लोह के सामानों में दात्रम्, विव्रम[2] (हंसिया, खुरपी) फार अन्य हथियारों के लिए कुशी[3] आदि शब्दों का प्रयोग हुआ। लकड़ी के सामान बनाने वालों को बढ़ई कहा जाता था। बढ़ई के लिए तक्षा[4] शब्द प्रयुक्त हुआ। हजामत करने वालों को क्षुरी, मुण्डी आदि कहा गया है। मकान बनाने वाले कारीगर होते थे, इनको पलगण्ड लेपक[5] आदि नामों से कहा गया है। मकान पत्थर और चूने से बनाए जाते रहे हैं। इसीलिए उसमें लेप से किया जाता रहा है। आभूषण आदि बनाने वाले स्वर्णकार कहे जाते थे, आभूषण अधिकांश रूप से स्त्रियाँ पहनती थीं। आभूषण सोने और चाँदी के होते थे आभूषणों में मुख्य रूप से मुकुट, हार, बालपाश्या (स्त्रियों के चोटी में लगाने की एक तरह की सोने की पट्टी होती है) पत्त्रा, पाश्या, ललाटिका, कर्णिका, कुण्डल, ग्रैवेयक (टीका) ललन्तिका, उरःसूत्रिका (हार) शतपण्टिका (सौलर की हार) एकपष्टिका (एकलर) की हार, नक्षत्र माला आवायाकः (कड़ा) केयूरम (बाजूवन्द) अंगुलीयकम् (अँगूठी) कंकणम् (ककना) मेखला (करधनी) किंकिणी (घूघूर) नूपुर (पावर्णव) आदि[6] आभूषणों के निर्माणकर्त्ता स्वर्णकार होते थे।

कपड़े बुनने की प्रथा थी, आज की भाँति उस समय मिलें नहीं थीं हाथ से कपड़े बनाए जाते थे। कपड़े बनाने वालों को तन्तुवाय, कुविन्दः आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[7] कपड़े सूती और रेशमी होते थे। ऊनी कपड़ों का भी प्रयोग होता था। कपड़े धोने वाले रजक कहलाते थे। इनको निर्णेजकः भी कहा गया है।[8] धुलाए कपड़ों को उद्गमनीय कहा जाता था[9] कपड़े सूती, रेशमी और ऊनी सभी प्रकार के धोये जाते थे रेशमी धोये हुए कपड़ों को पत्त्रोर्णम, कौशेयम्[10] कहा गया है।

---

१. अमरकोष २।१०।७
२. अमरकोष २।६।१३
३. अमरकोष २।६।६७
४. अमरकोष २।१०।१०
५. अमरकोष २।१०।६
६. अमरकोष २।६।१०२ से १०६ तक
७. अमरकोष २।१०।६
८. अमरकोष २।१०।१०
९. अमरकोष २।६।११२
१०. अमरकोष २।६।११२

इस प्रकार शिल्पी का कार्य करने वालों में कुम्हार, कुलाल, लुहार, नापित, रजक इत्यादि के अलावा जो कार्य करते थे उनमें फूल माला का काम करने वाले मालाकार, कपड़ा सीने वाले तुन्नवाय, कपड़ा रंगने वाले रंगाजीवः, जूता बनाने वाले चमार पादूकृत, तामे का काम करने वाले शौल्विक, मद्य बनाने वाले शौम्लिक आदि और शिल्पी उल्लिखित हैं।[1]

वाणिज्य और व्यापार

अमरकोष में व्यापार के लिए स्वतन्त्र रूप से वैश्य वर्ग लिखा गया है। अर्थात व्यापार से सम्बन्धित सभी वस्तुओं का उल्लेख अमरकोष के वैश्य वर्ग में किया गया है। वर्ण आश्रम व्यवस्था का उल्लेख सामाजिक स्थित के प्रकरण में किया गया है। वर्णभेद के कारण वैश्य को ही व्यापार करना[2] बताया गया है। श्रीमद् भागवत में भी वैश्य के लिए व्यापार बताया गया है। कोष कार ने भी इसी परम्परा के आधार पर वैश्य वर्ग में व्यापार से सम्बन्धित समस्त बातों का उल्लेख करके वैश्य को ही व्यापार के लिए लिखा है। वैसे आज की परम्परा में तो कोई ऐसा वर्ग न होगा जो व्यापार न करता हो।

सर्वप्रथम वैश्य के संज्ञाओं में उरुव्यः, उरुणः, अर्थः, वैश्यः, भूमिस्पृक् विक् आदि का उल्लेख किया है।[3] और तत्पश्चात वृत्ति के नामों का उल्लेख किया गया है। वृत्ति शब्द जीविका के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। वार्ता इसी का पर्याय है। वार्ता शब्द का उल्लेख श्रीमद् भागवत में भी किया गया है।[4] जिसका तात्पर्य जीविका से है, वैश्यों की जीविका के चार साधन बताए गए हैं—(१) कृषि, (२) वाणिज्य, (३) गोपालन, (४) कुसीद। अमरकोष में भी इन्हीं वार्ताओं का उल्लेख किया गया है।[5] जैसा कि ऊपर लिखा गया है कि उस समय कृषि कार्य तेजी में था, व्यापार का मुख्य साधन कृषि ही था। वैदिक काल में भी कृषि आर्यों का मुख्य व्यापार था। गोरक्षा भी उस समय में थी लेकिन मुख्य रूप से नहीं। उत्तर वैदिक काल में यज्ञों के साधन पूर्ति हेतु गोरक्षा आवश्यक थी।

---

१. अमरकोष २।१०।४ से १० तक
२. श्रीमद् भागवत १०।२४।२०
३. अमरकोष २।९।१
४. श्रीमदभागवत १०।२४।२१
५. अमरकोष २।९।२

जीविका के अन्य साधनों में सेवा भी प्रचलित थी[१] सेवा के माध्यम से भी जीवन निर्वाह चलता था। लेकिन इस प्रकार की प्रथा के लोग बहुत कम ही थे। जीविका निर्वाह हेतु कुसीद का तात्पर्य ब्याज में पैसा देना। व्याज पर पैसा देने वाला व्यापारी कुसीदिकः, वार्धुषिकः वृद्ध्याजीवः, वादुर्धुषिः आदि नामों से कहा जाता था।[२] व्यापार क्रय विक्रय के माध्यम से होता था। व्यापारियों को उनके व्यापार के आधार पर कई नामों से पुकारा जाता था। वैश्यवर्ग के अन्तर्गत बनिया व्यापारी को वैदेहकः, सार्थवाहः, नैगमः वाणिजः वणिक आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[३] सामान बेचने वालों को विक्रेता और खरीदने वालों को क्रायकः .कहा जाता था।[४] वस्तु के खरीदने के लिए जो पैसा दिया जाता था उसको मूल्य, वस्त्र अवक्रय कहा जाता था।[५] व्यापारी, व्यापार के लिए जो पैसा लगाता था उसको नीवी, परिपण, मूलधन आदि नामों से कहा जाता था।[६] व्यापार में कुल लगाए हुए कीमत और पारिश्रमिक के पश्चात जो बचता था वह लाभ और अधिकम कहलाता था।[७] वस्तु के परिवर्तन अदल बदल की भी प्रथा थी जैसे किसान अनाज के बदले बाजारू वस्तुएं लेता था। यह विनिमय (Exchange) प्रथा बहुत प्राचीन है। विनिमय के लिए परिदान, परिवर्त, नैमेय निमः आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।[८] समाज के अन्य लोग जो व्यापार नहीं करते थे या जिनके पास द्रव्य इत्यादि अधिक मात्रा में होने के कारण चौर्यादि भय से व्यापार करने वाले लोगों के यहां थाती के रूप में रख देते थे, जिसको उपनिधि, न्यास कहा जाता था और समय में आवश्यकता पड़ने पर वे वापस लेते रहे, वापस लेने के लिए, उपनिधि, न्यास शब्द कहे गए हैं।[९] खरीदने वाली वस्तु को जो दुकान में चारों ओर फैलाई गई है, क्रय्यम तथा वस्तु को क्रेयम कहा गया है और बेचने योग्यवस्तु को विक्रेयम कहा जाता था[१०] लेने देन

---

१. अमरकोष २।६।२
२. अमरकोष २।६।५
३. अमरकोष २।६।७८
४. अमरकोष २।६।७६
५. अमरकोष २।६।७६
६. अमरकोष २।६।८०
७. अमरकोष २।६।८०
८. अमरकोष २।६।८०
६. अमरकोष २।६।८१
१०. अमरकोष २।६।८१

के लिए अथवा वस्तु मंगाने के लिए जो पहले अग्रिम धन (एडवांस) दिया जाता था, उसे सत्यापन कहा जाता था[१] वस्तुएं द्रव्य के आधार पर दी जाती थीं अर्थात कीमत के अनुसार जितना द्रव्य दिया जाता था उसी आधार पर वस्तु दी जाती थी। वस्तु तौली या नापी जाती थी जो तौलने योग्य होती थीं वह तौली और जो नापने योग्य होती थी उसे नापना जैसे तेल, घी इत्यादि नापने तौलने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है उनमें यौतवम्, द्रुवयम्, पाय्यम मानम् हैं।[२] अन्यत्र भी नापने तौलने के लिए, ऊर्ध्वमान, किलोन्मान, परिमाण[३] इन शब्दों का उल्लेख हुआ है।[४] हेमचन्द्र ने तो यौतवम्, द्रुवयम्, पाय्यम् को तराजू से तौलने का, सेर, पौवा, छटाक, आदि से तौलने का और हांथ, गज, फुट आदि से नापने का बताया है।[५]

इस रत्ती परिमाण को आद्यमाषक कहा है।[६] जिसको १ आना भर माना जाता है। १ तोला भर अर्थात सोलह आना भर के लिए कर्षः, अक्षः कहा है। इसी अर्थ में पलम भी आया है। सोने की एक मोहर का परिमाण सोलह आने भर अर्थात १ तोला अथवा अस्सी रत्ती भर सोने की एक मोहर को सुवर्णः विस्तः कहा गया है।[७] कुरुविस्तः को एक पल अर्थात ४ तोला कहा गया है। तुला की सोविस्त अर्थात १०० पल कहा गया है। यह ५ सेर के बराबर होता है। भार बीस तुला अर्थात २० पसेरी ढाई मन के बराबर जिसको आजकल एक क्विन्टल कहा जाता है इतना ही आदमी का बोझ बताया गया है। आचितः २५ मन के तौल को कहा गया है।[८]

मुद्राएं

मुद्रा को कार्षापणः और कर्षिकः कहा जाता था। यह एक रुपए का बोध कराता था पैसे के बोध के लिए पणः, शब्द प्रचलित था। चतुर्थांश के लिए

---

१. अमरकोष २।६।८२

२. अमरकोष २।६।८५

३. ऊर्ध्वमानं किलोन्मानं, परिमाणंतु सर्वतुः
आयामस्तु प्रमाणं स्यत्संख्या भिन्नातुसर्वतः।१।हेमचन्द्र अभिधान चिन्तामणि

४. सुधाव्याख्या, पृ० ३३८। तुलाद्यैः
पोतव, मान द्रवयं कुडवादिभिः
पाय्य हस्तादिभिः ३।४ हेमचन्द्र अभिधान चिन्तामणि

५. अमरकोष २।६।८५

६. अमरकोष २।६।८६

७. अमरकोष २।६।८७

८. अमरकोष २।६।८८

पादः और भाग के लिए अंशः शब्द प्रयुक्त हुआ है । चतुर्थांश बोधक 'पाद' शब्द वैदिक काल से प्रचलित था[१] उस समय यही मुद्राएँ प्रचलित थीं । कार्य, अक्ष, माष, सुवर्ण, काषपिण, पण, निष्क, दीनार । ऊपर जैसा उल्लेख किया जा चुका है कि पण की कीमत १ पैसे मानी जाती थी इससे भी कम मान की कोई मुद्राएं नहीं होती थीं, अर्थात पण सबसे कम कीमत का उस समय का सिक्का था सबसे बड़ा सिक्का दीनार था जिसका उल्लेख नानार्थ वर्ग में किया गया हैं ।[२] वैसे यह गले में पहनने वाला आभूषण था, फिर इसका मान बहुत ज्यादा था । जैसा कि अमरकोष की रचना के बारे में यह स्पष्ट किया गया है कि गुप्तकाल की है । अतः अमरकोष में गुप्तकालीन सिक्कों का उल्लेख होना आवश्यक है । तदनुकूल अमरसिंह गुप्तकालीन मुद्रा दीनार थी, यह वजन में १३२ ग्रेन की रही होगी क्योंकि गुप्तकालीन सिक्के तीन ही तोले के थे १२१ ग्रेन १२५ ग्रेन और १३२ ग्रेन । सबसे ज्यादा १३२ ग्रेन[३] । सुवर्ण भी सिक्का से वेस कीमती होते थे । सुवर्ण के अलावा जिन धातुओं के सिक्के होते थे उनमें से चांदी, तांबा, गिल्टी आदि ।[४] तांबा के पैसे मात्र होते थे । चांदी के पाद अर्थात एक रुपए का चौथाई अर्थात चार आना । आधा अर्थात आठ आना (अठन्नी) । गिल्टी धातु के चवन्नी, दुअन्नी और इकन्नी बनती थीं ।[५] सुवर्ण के असर्फी, गिन्नी आदि बनते रहे थे । सुवर्ण के सिक्कों का चयन कम था क्योंकि ज्यादा कीमती होने के कारण समाज के उच्च वर्ग के ही लोग इसका उपयोग करते रहे निम्न वर्ग के लोग तांबा, चांदी और गिल्टी के ही सिक्कों का उपयोग करते थे । इस प्रकार अमरकोष में मुद्राओं के प्रमाण के लिए इतना ही उल्लेख प्राप्त होता है ।

धातुएं

धातुओं का प्रचलन अत्यधिक था । लोगों में यह धारणा थी कि धातुओं का क्रय विक्रय करना चाहिए । धातुओं में मुख्य रूप से जिनका व्यापार किया जाता था उनमें सोना मुख्य था । सोना के १९ नामों का उल्लेख अमरकोष

---

१. त्रिपादूध्र्वं उदेत पुरुषः पादोऽस्येहात्भवत पुनः । ऋगवेद पुरुष सूक्त १२५।४

२. अमरकोष ३।३।१४

३. प्राचीन भारत पृष्ठ २५५

४. सुधा व्याख्या पृष्ठ ३४२

५. सुधा व्याख्या पृष्ठ ३४२

में किया गया है।[१] सुवर्ण वाचक रुक्म जाम्बूनद, आदि शब्दों का उल्लेख किया गया है।[२] चांदी के ५ नामों का उल्लेख किया गया है। दुर्वर्ण रजत, रूप्य, खर्जूर, खेत[३] पीतल के २ नाम आए हैं रीति और आरकूट। ताम्रक, गुल्व, म्लेच्छमुख, द्वयष्ट, वरिष्ट, उदुम्बर, आदि ताँबे के ६ नामों का उल्लेख किया गया है।[४] उस समय लोहा का प्रचलन भी अत्यधिक मात्रा में होता रहा है। लोहा, तीक्ष्णम्, पिण्ड्म, कालायसम्, अयः अश्मसार, शस्त्रक आदि लोहे के सात नामों का उल्लेख किया गया है।[५] सब प्रकार की तंजस धातु लोह के अन्तर्गत ही मानी गयी है।[६]

"सुवर्ण रजसं ताम्रं रीतिः कांस्यं तथा त्रयु।
सीरां कालायसं चैवमष्टौ लोहानि चक्षते॥

लोहे के अधिकाधिक सामान बनाए जाते थे लोह के बने सामान को कुशी कहा जाता था[७], कांच के लिए क्षार कांच शब्द कहे गए हैं। चपल, रस, सूत, पारद पारे के लिए कहे गए हैं।[८] अभ्रक गिरजामल (अभ्रक के लिए कहे गए हैं)।[९]

अन्य धातु एवं वस्तुएं

अन्य धातुओं में सुर्मा जिसको स्त्रोतोंजनम, सौवीरम, इत्यादि नामों से कहा गया है[१०] यह एक प्रकार की औषधि के रूप में होता है, जो आँखों को शीतल करता है। आंखों में लगाने के लिए एक प्रकार का अंजन भी होता है, जिसको कर्पूरी, दार्विका कहा गया है।[११] इसको आंख में लगाने से किसी प्रकार की आंख में रोग नहीं उत्पन्न होता है। आंख में लगाने के लिए एक प्रकार का रसांजन भी होता है। यह तुतिया (जिसका उल्लेख[१२] किया गया है) और कर्पूर के

---

१. अमर २।६।६४
२. अमर २।६।६५
३. अमर २।६।६६
४ अमर २।६।६७
५. अमर २।६।६८
६. अमर २।६।६८
७. अमर २।६।६६
८. अमर २।६।६६
९. अमर २।६।१००
१०. अमर २।६।१००
११. अमर २।६।१०१
१२. अमर २।६।१०१

साथ मिला कर बनाया हुआ एक प्रकार का अंजन है । महेश्वर ने इसको कर्पूरी तुतिया कहा है और इसके बनाने की विधि का उल्लेख करते हुए लिखा है कि "दारु हल्दी के क्वाथ (काढ़ा) के सम भाग बकरी के दूध में तुतिया को घिसकर तैयार किया हुआ एक प्रकार का अंजन विलेप" क्षीरस्वामी ने तो तुतिया ही मात्र बताया है।[1] गन्धक (गन्धश्यामा) पिंजरम् (हरताल) गैरेयम (शिलाजीत) बोलः (गन्धरसः) डिण्डीरः[2] (समुद्र फेन) ये समस्त दवाइयों से सम्बन्धित हैं। इन सबके योग से दवाइयां बनती हैं जो कई बीमारियों के लिए उपयुक्त होती हैं। स्त्रियों के सौभाग्य सूचक सिन्दूर होता है जिसको माथे पर स्त्रियां धारण करती हैं। सिन्दूर को नाग संभव भी कहा गया है। सिन्दूर को धारण करने के लिए शीशे की भी आवश्यकता पड़ती है। इसलिए कोषकार ने शीशा का उल्लेख सिन्दूर के पश्चात किया है।[3]

अन्य वस्तुएं जो व्यापार से सम्बन्धित हैं उनमें रांगा, जिसको त्रयुः, पिच्चटम्, रंगम्, वंगम् आदि नामों से[4] तथा शहद के ३ नामों में मधु, क्षौद्रम, माक्षिकम् आदि नामों से उल्लेख किया है।[5] मनसिल बोधक मनःशिला, मनोगुप्ता, मनोह्वा, नागजिह्विका शब्दों का प्रयोग नेपाल देश में उत्पन्न या प्राप्त होने वाले नैपाली, कुनटी गोला भी मनसिल बोधक शब्द आए हैं।[6] लवण (नमक) बोधक शब्दों के लिए यवक्षार, यवाग्रजः, पाम्यः आदि (जवा क्षार) के लिए, सर्जिकाक्षारः कापोतः, सुख वर्चकः आदि सज्जीकवार के लिए और सौवर्चलम् रुचकम आदि (सोचर खार) के लिए शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[7] तकक्षीरी, वंशरोचना (वंशलोचन) शिगृजम, श्वेतमरिचम (सहजिन के वीज) (पिपरामूल) के लिए ग्रन्थिकम्, गोलोभी भूतकेशः (जटामांसी) त्रिकटु व्यूषणम्, व्योषभ (पीपल, मिर्च और सोठ के समुदाय का नाम) त्रिफला (हर्रे, अम्बला, बेहेर का चूर्ण) आदि समस्त वस्तुओं का उल्लेख व्यापार से सम्बन्धित होने से उसी प्रकरण में किया गया है।

---

१. सुधा व्याख्या पृष्ठ ३४६
२. अमर २।६।१०३, १०४
३. अमर २।६।१०५
४. अमर २।६।१०७
५. अमर २।६।१०८
६. अमर २।६।१०६
७. अमर २।६।११०, १११

रत्न

बहुमूल्य धातुओं में रत्न आते हैं। उस समय रत्नों का भी प्रचलन था। रत्न के अन्तर्गत सोना, हीरा, नीलमणि, पद्मराग और मोती ६ पंच रत्न आते हैं।[१] महारत्न में मोती, सोना, वैदूर्यमणि, पद्मराममणि, पुखराज, गोमेदमणि, नीलमणि, पन्ना और मूंगा ये नवरत्न माने गए हैं।[२] वाचस्पति ने आठ रत्नों का उल्लेख किया है, जिसमें हीरा, मोती, स्वर्ण, चांदी, चन्दन, शंख, चर्म, वस्त्र आदि को गिनाया है[३]

इस प्रकार रत्नों के सहित व्यापार अत्यन्त उच्चकोटि का होता रहा है। व्यापार से सम्बन्धित सभी वस्तुओं का उल्लेख किया गया।

शिक्षा और साहित्य

भारतवर्ष शिक्षा क्षेत्र में अत्यन्त प्राचीन काल से श्रेष्ठ रहा है यहां के लोग दूसरे देशों के लोगों को अपनी शिक्षा प्रदान करते रहे हैं। वैदिक काल से ही यहां की शिक्षा का सहज ही पता लगाया जा सकता है। जिन वेदों की रचना तीन हजार वर्ष ईषा पूर्व हुई (३००० बी० सी०) और जिन वैदिक मन्त्रों का अर्थ लगाना आज भी कठिन कार्य है उस समय की शिक्षा पद्धति कितनी उच्च कोटि की रही होगी यह इसी से पता लगाया जा सकता है। वर्ण आश्रम व्यवस्था से यहाँ की शिक्षा का पता लगाया जा सकता है। चातुर्वर्ण्य अर्थात ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र ये अलग अलग वर्ण होते थे तथा इन सभी वर्णों का अलग अलग कार्य होता था। ब्राह्मण को ब्राह्मण इसलिए कहा जाता था क्योंकि वह ब्रह्म के बारे में जानता, 'ब्रह्म जानाति से ब्राह्मण' अर्थात जो ब्रह्म को जाने वही ब्राह्मण है। ब्रह्म को जानना अर्थात सभी दर्शनों का अच्छा अध्ययन करना, वर्ण व्यवस्था के आधार पर ब्राह्मण वेद पढ़ता था और पढ़ाता था[४] अर्थात अध्ययन अध्यापन का कार्य ब्राह्मण करता था इसलिए ब्राह्मण को वेद पढ़ना आवश्यक हो जाता था। मनु ने लिखा है कि जो ब्राह्मण वेद नहीं

---

१. कनकं, कुलिशं, नीलं, पद्मरागं च मौलिकम्।
एतानि पंचरत्नानि रत्नशास्त्र विदो विदुः।

२. मुक्ताफलं हिरण्यं च वैद्र्यं पद्मरागकम।
पुष्पराग च गोमेद नीलं गारूत्मतं तथा।
प्रवाल युक्तान्युक्तानि महारत्नानि वैनष।

३. हीरकं मौक्तिकं स्वर्ण रजतं चन्दनानि च।
शंखश्चम च वस्त्र च चेत्यष्टौ रत्नस्य जातयः (वाचस्पति)।

४. यो नधीत्य द्विजोवेदन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः। (मनु० २।१६८)

पड़ता है वह ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होता है।[1] इस प्रकार ब्राह्मण ही उस समय के शिक्षक होते थे और उनके लिए अध्ययन आवश्यक हो जाता था। दूसरी ओर आश्रम व्यवस्था के अनुसार प्रथम आश्रम में मनुष्य ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर शिक्षा अध्ययन करते थे अर्थात सभी लोगों को आवश्यक शिक्षा प्रदान की जाती थी। उस समय सभी लोग शिक्षित थे। आजकल राजकीय व्यवस्था होते हुए समाज के ५० प्रतिशत ही लोग विद्याध्ययन करते हैं।

वेदों की पद्धति ब्राह्मण, आरण्यक, ज्ञान-विज्ञान तथा अन्य शास्त्रों के ही आधार पर अमरकोष की रचना हुई। इसका उल्लेख स्वयं अमरसिंह ने किया है।[2] अतः उस समय की शिक्षा पद्धति अत्यधिक उच्च कोटि की थी।

भाषा

भाषा का उल्लेख सर्वप्रथम अमरसिंह ने किया है।[3] भाषा का अर्थ समय के अनुसार भिन्न होता गया। आज भाषा साहित्य के रूप में प्रचलित है। उस समय भाषा का अर्थ शब्द और अर्थ से है अर्थात शब्दार्थ को ही भाषा कहा गया है। कालिदास ने इसी आशय को प्रगट करते हुए भाषा के अधिष्ठाता शंकर पार्वती का स्मरण किया है।[4]

अमरसिंह ने भाषा की अधिष्ठात्री देवी के साथ भाषा का स्मरण किया है ब्राह्मी, भारती, भाषा, गीः, वाक्, वाणी, सरस्वती आदि सरस्वती बोधक शब्द हैं। हम लोगों की ऐसी मान्यताएं हैं कि भाषा के अधिष्ठात्री सरस्वती को ही मानते हैं। इसीलिए सरस्वती का नाम भाषा है। गिरा, वाणी, वाक् इन तीनों शब्दों का तात्पर्य शब्द से है। शब्द का तात्पर्य भाषा से है। भाषा का स्वरूप समय के अनुसार अलग अलग होता है। जैसे वैदिक काल की भाषा वैदिक भाषा, पौराणिक काल की भाषा पौराणिक भाषा, बौद्धकालीन भाषा बौद्ध भाषा अथवा बौद्ध साहित्य इत्यादि इसी प्रकार से भाषा को प्रभावित करने वाले कारणों में स्थान भी आता है, जैसे मराठी, (महाराष्ट्र की भाषा) अंग्रेजी (केरलमद्रास की भाषा) उड़ीया (उड़ीसा की भाषा), गुजराती, हिन्दी।

---

१. अमरकोष २।७।४
२. समाहृत्यान्यतन्त्राणि। अमर १।१।२
३. अमर १।६।१
४. वागार्थाविव संपृक्तो, वागार्थाप्रतिपत्तए।
जगतः पितरौ बंन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥ रघुवंश। १।१

उस समय देशकाल के अनुसार अध्ययन होता था। शिक्षक को आचार्य कहा गया है[१] आचार्य का तात्पर्य 'आचार: सहितो आचार्य:' आचरण के सहित अर्थात आचरण से युक्त को ही आचार्य कहा गया है।[२] आचार्य अर्थात मन्त्रों की व्याख्या करने वाले या शिष्य का यज्ञोपवीत संस्कार कर कल्प और रहस्य के सहित वेद को पढ़ाने वाले ब्राह्मण को आचार्य कहा गया है।[३] शिक्षक के लिए उपाध्याय, अध्यापक, गुरू शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'उपेत्याधीयते स्मात्'। उपाध्याय का लक्षण बताते हुए मनु ने लिखा है कि वेद के एकदेश को वा वेदांगों की वृत्ति के लिए पढ़ाने वाले को उपाध्याय कहते हैं।[४] अध्यापक का 'तात्पर्ययो अध्यापयति स: अध्यापक:, जो अध्ययन करावे वही अध्यापक है। गुरू शब्द की व्याख्या करते हुए मनु ने लिखा है कि निषेकादि संस्कार को सविधि करके अन्नादि से पालन करते हुए पढ़ाने वाले को गुरू कहा जाता था।[५] इस प्रकार गुरू का कर्तव्य अन्य समस्त ब्रह्मचर्य पूर्व निषेकादि संस्कारों को करके विद्यार्थी को उत्तम ज्ञान प्रदान करे वही गुरू वही आचार्य और उपाध्याय कहे जाते थे[६]

गुरु के द्वारा दिए गए उपदेश को शिष्य ध्यान पूर्वक हृदयंगम करता था। शिष्य के लिए अन्तेवासी शब्द प्रयुक्त हुआ।[७] छात्र, अन्तेवासी, शिष्य थे तीनों एक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। गुरुदोषाच्छादनं छत्रम्। तच्छीलमस्य। तथा अन्त समीपे वस्तुं शीलं। गुरु के समीप निवास करने के कारण शिष्य को अन्तेवासी कहा गया है। विद्याध्ययन के योग्य ब्रह्मचारी के लिए शैक्षा:, प्राथमकल्पिका शब्द प्रयुक्त हुआ है।[८] एक आश्रम में बहुत विद्यार्थी होते थे। एक साथ पढ़ने

---

१. अमर १।६।१
२. वागार्थाविव संपृक्तौ, वागार्थ प्रतिपत्तए।
जगत: पितरौ बन्दे पार्वती परमेश्वरौ। रघुवंश। १।१
३. अमर २।७।७
४. सुधाव्याख्या पृ० २४१
५. एकदेशं तु वेदस्य वेदांगान्यचि वा पुन:
यो ध्यापयति वृत्यर्थमुपाध्याय: स उच्यते। मनु १।१४१
६. निषेकादीनि कर्माणि य: करोति यथाविधि।
सम्भावयति चान्नवेन स विप्रोगुरुरुच्यते। मनु। २।१४२
७. अमर २।७।७
८. अमर २।७।११

वाले विद्यार्थी को जो एक समान जानते हों एक व्रत वाले हों तथा एक आचरण वाले हों ऐसे ब्रह्मचारी को सब्रह्मचारिणः शब्द प्रयुक्त हुआ है। शिष्य सर्वप्रथम जब प्रत्येक दिन गुरु के पास विद्याग्रहण करने जाता है तब वह गुरु के चरण छूता है और चरण स्पर्श के पश्चात विद्या ग्रहण करता है। चरण स्पर्श को ब्रह्मांजलि शब्द कहा गया है।[1]

इस प्रकार छात्र गुरु के पास प्रथमावस्था तक शिक्षा ग्रहण करता है। शिक्षा ग्रहण के पश्चात दूसरे आश्रम में प्रवेश करता है। छात्र को गुरु किस विषय्र का अध्ययन कराते रहे अध्ययन के विषयों में वेद, वेदांग, इतिहास, तर्कशास्त्र, अर्थशास्त्र, आख्यान, आख्यायिका, पुराण इत्यादि समस्त शास्त्रों का अध्ययन होता रहा है।

वेद

आश्रम व्यवस्था के माध्यम से वेदों का अध्ययन होता था। ब्रह्मचर्य अवस्था में ब्रह्मचारी अर्थात विद्यार्थी को विशेष नियम धारण करना पड़ता था। दण्ड, कमण्डलु, मृगचर्म, पात्र इत्यादि ब्राह्मण को पलाश दण्ड धारण करना बताया गया है। जिसको 'आषाढ़' कहा जाता है। क्षत्रिय के वट का दण्ड और वैश्य उदुम्बर के दण्ड शास्त्रविहित माने गए हैं।[2] कमण्डल, और अजिन चर्म (मृग चर्म) ब्रह्मचारी को धारण करना आवश्यक होता था और इसके पश्चात ब्रह्मचारी नियम से वेदाध्ययन करता था, जिसको स्वाध्याय और जाय कहा जाता था। तीन वेदों का ही अध्ययन बताया गया है—(१) ऋगवेद जिसमें इन्द्र अग्नि इत्यादि देवताओं से सम्बन्धित ऋचाएं हैं, (२) यजुर्वेद, जिसमें यज्ञ इत्यादि से सम्बन्धित मन्त्रों का उल्लेख है, (३) सामवेद यह संगीत सम्बन्धी ऋचाओं का शास्त्र है। इन्हीं तीनों वेदों का अध्ययन होता रहा। इन्हीं तीनों वेदों को त्रयी कहा गया है,।[3]

---

१. अमर २।७।११

२. अमर २।७।३९
ब्रह्मारम्भे वसाने च पादौ ग्राह्यौ गुरोः सदा।
सहत्य हस्तावध्येयं सहि ब्रह्मांजलिः स्मृतः। १।मनु।

३. **ब्राह्मणो वैल्यपालाशौ क्षत्रियो वटखादिरौ,**
वैलवौदुम्बरौ वैश्या दण्डानर्हन्ति धर्मतः मनु। २।४५

वेदांगानि

वेदों के साथ वेदांगों का भी अध्ययन होता रहा है। वेदांगों में (१) शिक्षा —इसके अध्ययन से वेद का अध्ययन सरल हो जाता है। वेद के स्वरों का ज्ञान शिक्षा नामक वेदांग के माध्यम से होती है।[1] (२) कल्प—यज्ञयाग के यथोचित ज्ञान कराने वाला वेदांग कल्प शास्त्र बोला जाता है, वेदों के अध्ययन के लिए इसका अध्ययन आवश्यक हो जाता है, (३) व्याकरण—समस्त शब्दों के अंग प्रत्यंग, उत्पत्ति आदि के बारे में पूर्ण जानकारी के लिए व्याकरण शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है, (४) निरुक्त वैदिक कोष निघण्टु है जिसमें कठिन वैदिक शब्दों का संकलन किया गया है, उन्हीं की व्याख्या निरुक्त नामक वेदांग में की गई है, (५) छन्द—वेद के अध्ययन के लिए छन्द का भी ज्ञान आवश्यक होता है क्योंकि समस्त वैदिक मन्त्र छन्दों में ही लिखा गया है, (६) ज्योतिष —वेद यज्ञ के प्रतिपादन के लिए प्रवृत्त हुए हैं और काल के उचित निवेश को यज्ञ का सम्बन्ध है और यह काल गणना ज्योतिष के ही माध्यम से सम्भव है।[2] अतः वेद के अध्ययन के लिए ज्योतिष का ज्ञान आवश्यक है। यही उपर्युक्त वेदांग[3], जिनका अध्ययन वेदार्थ के लिए आवश्यक था। इन षड वेदांगों का अध्ययन आवश्यक था।[4]

इतिहास

इतिहास का भी अध्ययन होता था[5] पूर्वकाल में बीती हुई कथा को इतिहास कहते हैं, जैसे महाभारत इत्यादि। इतिहास का अध्ययन आवश्यक था क्योंकि इतिहास के ही अध्ययन से किसके साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए किस प्रकार से धर्म का पालन करना चाहिए, इत्यादि बातों की जानकारी इतिहास द्वारा ही प्राप्त होती है।

तर्कविद्या

तर्कविद्या का भी अध्ययन होता रहा है।[5] तर्कविद्या से तात्पर्य दर्शनशास्त्र से है। भारतवर्ष में दर्शनशास्त्र की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक

---

१. संस्कृत साहित्य का इतिहास बल्देव उपाध्याय पृष्ठ ३४
२. संस्कृत साहित्य का इतिहास बल्देव उपाध्याय पृष्ठ ३४
३. शिक्षा कल्पोऽथ व्याकरणं ज्योतिषां गतिः
छन्दोविचितिइत्येष षडंगो वेद उच्यते। सुधाव्याख्या पृष्ठ ५६
४. अमरकोष १।६।४
५. अमरकोष १।६।४
६. अमरकोष १।६।५

काल में ही दर्शन सम्बन्धी सूक्तों का संकलन हो चुका था।[१] उस समय में भी लोग तर्क की दृष्टि से जीव क्या है, ब्रह्म क्या है, मृत्यु के बाद क्या होता है इन समस्त बातें पर विचार होता रहा है।

अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र का भी अध्ययन आवश्यक था।[२] अर्थशास्त्र विषयक ग्रन्थों की रचना पौराणिक काल से भी पूर्व मानी जाती है। गुप्तकाल में तो विष्णुगुप्त जिसे कौटिल्य कहा जाता है उन्होंने अर्थशास्त्र की रचना की थी उस समय अमरकोष की भी रचना हुई थी। अतः अर्थशास्त्र जैसे विषय का अध्ययन उस समय होता रहा है।

आख्यान, आख्यायिका

भारतीय लोक साहित्य के परिज्ञान के लिए संस्कृत आख्यानों का अनुशीलन परमावश्यक है। आख्यानों में शुद्ध काल्पनिक जगत का चित्रण किया गया है। संस्कृत आख्यान साहित्य दो भागों में विभक्त है। नीति कथा लोक कथा[३]। अमरकाल में आख्यान साहित्य का अध्ययन होता था।[४]

पुराण

भारतीय साहित्य में पुराणों का विशेष महत्व है। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को साधारण जनता में प्रचारित करने का श्रेय इन्हीं पुराणों को है। आज भी हिन्दू धर्म के मूलाधार ये पुराण ही हैं। यद्यपि आज इनका अध्ययन कम लोग ही करते हैं परन्तु प्राचीन काल में इनका अध्ययन एक धार्मिक बन्धन मानकर किया जाता था। पुराणों को पांचलक्षणों से युक्त बताया गया है।[५] (१) सर्ग या सृष्टि (२) प्रतिसर्ग अर्थात सृष्टि का विस्तार, लय तथा पुनः सृष्टि (३) सृष्टि की आदि की वंशावली, (४) मन्वन्तर अर्थात किस किस मनु का समय कब कब रहा और उस काल में कौन सी महत्व की घटना हुई, (५) वंशानुचरित सूर्य अथवा चन्द्रवंशीय राजाओं का वर्णन। यही

---

१. ऋग्वेद, नासदीप सूक्त, पुरुष सूक्त
२. अमरकोष १।६।५
३. संस्कृत साहित्य की रूप रेखा च० शे० पा० ना० रा० पृ० ३४६
४. अमर १।६।५
५. अमर १।६।५

पुराणों के पांच विषय हैं[१] वैसे हमारे पुराण ही सच्चे तथा आदर्श इतिहास हैं इन्हीं पुराणों में ही हमारे इतिहासों का रूप दिखाई पड़ता है।

पुराणों के अध्ययन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। अमरकाल के भी पूर्व पुराणों का अध्ययन होता रहा है। पुराण संख्या में १८ बताए गए हैं। (१) पद्म पुराण, (२) ब्रह्म पुराण, (३) शिव पुराण, (५) देवी भागवत पुराण (५) नारद पुराण (६) मार्कण्डेय पुराण (७) अग्निपुराण (८) भविष्य पुराण (९) ब्रह्म वैवर्त पुराण (१०) लिंग पुराण (११) वाराह पुराण (१२) स्कन्द पुराण (१३) वामन पुराण (१४) कूर्म पुराण (१५) मत्स्य पुराण (१६) गरुण पुराण (१७) ब्रह्माण्ड पुराण (१८) भागवत पुराण। इत्यादि अठारह पुराणों का उल्लेख मिलता है।[२] अमरसिंह ने यह स्पष्ट लिखा है कि पंच लक्षण वाले पुराणों का अध्ययन होता था।[३]

पुराणों का समय विवादास्पद होते हुए भी ६०० ई० पू० माना जाता है। इस तरह ४ सदी का अमरकोष के समय पुराणों का अत्यधिक प्रचलन था। लोगों में पुराणों के प्रति अत्यन्त आस्था थी। यहां तक कि मोक्ष प्राप्ति के साधन स्वरूप पुराणों को मानकर उसकी कथा के सुनने का भी नियम उसी काल से चला आ रहा है।

कथा

कथा का भी अत्यधिक प्रचलन था। लौकिक संस्कृत का आद्य ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकि कृत रामायण ही कथा के अन्तर्गत आता है। राम के आदर्श का चित्रण जो रामायण में किया गया है, उसी आदर्श पर चलने वाला भारतीय समाज उस कथा को मोक्ष का द्वार ही समझता है। पुराणों जैसा कथा साहित्य में भी लोगों में आस्था अत्यधिक थी तथा कथा को धार्मिक दृष्टि से भी अत्यधिक पठन पाठन करते थे। दूसरी बात रामायण लौकिक संस्कृत का आद्यग्रन्थ होने के कारण संस्कृत का कोष ही है। इस दृष्टि से संस्कृत कोष का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक होने के कारण ही कोषकार ने इसके अध्ययन की महत्ता बतलाई है।[४]

---

१. **सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।**
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच-लक्षणम्।
संस्कृत साहित्य का इतिहास बल्देव उपाध्याय पृष्ठ ४४

२. **सं० सा० का इतिहास बल्देव उपाध्याय पृष्ठ ४८**

३. **अमरकोष १।६।५**

४. **अमरकोष १।६।६**

इसके अलावा अन्य शास्त्रों में प्रवह्लिका, प्रहेलिका का अध्ययन होता था ।[१] स्मृतियों का भी अध्ययन होता था । स्मृतियों के अन्तर्गत मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति वसिष्ठ स्मृति इत्यादि बीस स्मृतियों का उल्लेख प्राप्त होता है ।[२] स्मृतियों के लिखने वाले धर्मशास्त्र के प्रवर्तक होते थे ।

संग्रह ग्रन्थों के हितोपदेश, पंचतन्त्र इत्यादि आते हैं, जिससे मानवीय अनुकरण का रास्ता मिलता है अर्थात किस प्रकार से काम करने से कैसा परिणाम होता है । इन समस्त बातों का ज्ञान संग्रह ग्रन्थों के अध्ययन से होता है । अमरकाल में संग्रह ग्रन्थों का अध्ययन होता था ।

अमरकाल में समस्त शास्त्रों षडवेदांगों, आख्यान आख्यायिका, कथा, इतिहास, पुराण, इत्यादि समस्त व्यवहारों का अध्ययन होता था ।

संस्कृत साहित्य का विशालतम भण्डार जो आज देखने को मिलता है वह समस्त प्राचीन ही है अर्थात अमरकाल या इसके पूर्व ही समस्त अधिकांश ग्रन्थों का निर्माण हुआ व्याकरण शास्त्र में पाणिनि ने जो योगदान किया वह अविस्मरणीय है जो कि अमर पूर्व ही माना जाता है, पुराणों का काल जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कि ६०० ई० पू० तक माना जा सकता है । वेद वेदांग तो समस्त प्रथम कृतियाँ मानी ही गई हैं । ब्राह्मण, अरण्यक, उपनिषद् आदि समस्त वैदिक काल से ही सम्बन्धित हैं । कथा साहित्य का सृजन लौकिक संस्कृत का आद्य ग्रन्थों में आता है । रामायण, महाभारत ये दो भारतीय धर्मों के स्तम्भ स्वरूप हैं, जिनका निर्माण अमरकाल से बहुत पूर्व हो चुका था । जिन समस्त काव्यों की छाप अमरकोष में पड़ी है इस प्रकार इन समस्त शास्त्रों का निर्माण अमरकोष से पूर्व हो चुका था । अतः इन सभी का अध्ययन अमरकाल में होना स्वाभाविक ही है । इसी कारण इनका उल्लेख अम रसिंह ने किया है ।[३]

इस प्रकार शिक्षा साहित्य के क्षेत्र में उस समय काफी उन्नति हो चुकी थी ।

---

१. अमरकोष १।६।६

२. मनुयर्मोवसिष्ठोऽत्रिदक्षो विष्णुस्तथांगिरा:
उशना वाक्यतिर्व्यास आपस्तम्बोऽथ गौतम:
कात्यायनो नारदश्चैव याज्ञवल्क्यश्च पराशर:
संवर्तश्चैव शंखरच, हारीतो लिखितस्तथा
एतां विशतिराख्याता धर्मशास्त्र प्रवर्तका ।

३. अमरकोष । १।६।१ से ६ तक ।

धर्म और दर्शन

भारतवर्ष धर्म प्राण देश है और भारतीय संस्कृति धार्मिक भावनाओं से ओत प्रोत है और भारतीयों का धर्म ईश्वर के प्रति विश्वास में छिपा है। दैनिक कार्यों में भी भारतीयों की धारणा है कि सभी कार्यों के साथ धर्म का सम्बन्ध है। अप्रत्यक्ष रूप से सभी कार्यों के पीछे धार्मिक भावना छिपी हुई है। 'धर्म की परिभाषा में कहा गया है कि 'धारणा करने के कारण धर्म कहा जाता है। धर्म प्रजा को धारण करता है, जो धारणा शक्ति से युक्त हो वह धर्म कहलाता है।'[1]

दूसरी ओर धर्म के लिए यह बताया गया है कि आध्यात्मिक शक्तियों पर विश्वास करना ही धर्म है, जीव प्राणान्त के बाद ईश्वर में विलीन हो जाता है। ईश्वर पाप पुण्य का उचित फल दूसरे जन्म में देता है ईश्वर की सत्ता विद्यमान है, बिना ईश्वर के कुछ नहीं होता है इत्यादि समस्त बातों पर विश्वास करना ही धर्म है।

धर्म से मनुष्य से श्रेष्ठ उन शक्तियों की सन्तुष्टि अथवा आराधना से है जिनके सम्बन्ध में यह विश्वास किया जाता है कि वे प्रकृति और मानव को मार्ग बताकर नियन्त्रित करती है अर्थात मनुष्य को रास्ता दिया जाता है कि यह रास्ता धर्मानुकूल है तथा प्रकृति आपका इस रास्ते से इस प्रकार का सहयोग प्रदान करेगी इसके साथ ही साथ अगर आप इतने में भी प्रकृति का सहारा लेकर अनुचित रास्ते में जाने के लिए सोचेंगे तो फिर भी अपने कड़े से कड़े दण्डों को दिखाकर अपने अधिकार में करेगी और आपके मन में भाव बदल जायगा कि यह कार्य धर्मानुकूल नहीं है, अतः यह नहीं करना चाहिए। धर्म के प्रतिकूल चलने से दो प्रकार के दण्ड दिए जाते रहे एक तो वे जो समाज के द्वारा दण्ड बताए गए हैं और दूसरे ईश्वर पर विश्वास के प्रति उसकी अवहेलना की डर के कारण आध्यात्मिक शक्तियों का भय रहेगा।

भारतीय धर्म का हिन्दू धर्म अँग्रेजी के (Relision) से भिन्न है। (Relision) शब्द केवल कुछ अलौकिक शक्तियों से सम्बन्धित है, जबकि हिन्दू धर्म अलौकिक मात्र न होकर वास्तविक कर्त्तव्यों का बोध कराता है। अतः हमारे देश में स्थान, समय और परिस्थिति सामाजिक स्थिति के अनुसार जो भी हमारा कर्त्तव्य है वही हमारा धर्म है और इतना ही नहीं जो हम वेदों

---

१. **धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः**
यत्स्यात् धारण संयुक्त स धर्मऽति निश्चयः ।। महाभारत कर्णपर्व (६९।५८).

की ऋचाओं को अलौकिक मानकर उसको चरितार्थ करने के लिए कहते हैं वह भूल है। समस्त वेदों की ऋचाएँ ऋषियों के लम्बे सामाजिक अनुभवों पर आधारित हैं। अर्थात धर्म हमको कर्त्तव्यों के मार्ग दिखाते हुए एक ऐसी शक्ति से प्रेरित है जिसका परिणाम कर्त्तव्यों के द्वारा ही धर्म का पालन कहा गया है। और वे समस्त कर्त्तव्य सामाजिक मान्यताओं पर आधारित है।

धार्मिक देवता

अमरकोष में जिन धार्मिक देवताओं का उल्लेख किया गया है उन देवताओं की पूजा अर्चना करते रहे। विशेष रूप से जब किसी प्रकार का संस्कार होता था उस मौके पर धार्मिक देवताओं का पूजन करते थे। याज्ञिक देवताओं का तो पूजन होता ही था लेकिन धार्मिक देतताओं का भी पूजन उल्लेखनीय है। सर्वप्रथम देवता वाचक शब्दों में अमर, निर्जर, देव त्रिदश, सुर, सुपर्वा आदि का उल्लेख किया गया है।

देवता स्वर्ग में रहते हैं अच्छे कर्मों का फल भोगते हैं यह धारणा लोगों में व्याप्त हो चुकी थी। अच्छे कर्म करना चाहिए धर्म की रक्षा करना चाहिए धर्म ही मुख्य है धर्म के नष्ट हो जाने पर महान अनर्थ होता है। धर्म नष्ट होने पर उसके शान्त करने के लिए ईश्वर का अवतार होता है।[१] अवतारों का डर लगने लगा था। अवतारों में राम, कृष्ण, बुद्ध आदि की सत्ता मालूम हो चुकी थी।[२] स्वर्ग में वैदिक देवताओं की सत्ता थी जैसे इन्द्र, अग्नि, वरुण, यम, वायु, कुबेर आदि। इसके अलावा अन्य देवता भी थे देवताओं की जातियों में विद्याधर, अप्सरा (देवताओं की स्त्रियाँ रम्भा घृताची मेनका) यज्ञ (कुबेर) गन्धर्व (देवताओं के गाने वाले) किन्नर, सिद्ध, आदि देवताओं की जातियों का उल्लेख किया गया है।[३] मुख्य देवता जिनको इष्ट देवताओं के रूप में मान्य किया है ब्रह्मा विष्णु महेश हैं।

ब्रह्मा—समस्त जीवों की रचना करने वाला ब्रह्मा देवता माना गया है। ब्रह्मा का जन्म कमल से होता है। इसीलिए इसको नाभिजन्मनः, कमलोद्भवः कहा[४] गया है। ब्रह्मा का वाहन हंस है तथा इसका प्रधान गुण रज है जिसका

---

१. यदा यदा ह्यधर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदांत्मानम् सृजाम्यहम् ॥

२. मत्स्यकूर्म वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा
रामो रामश्च रामश्च कल्की बुल्दोदशास्मृता ।

३. अमर १।१।११

४. अमर १।१।१६,१७.

रज प्रजा की सृष्टि करता है। त्रिदेवों इनका नाम सर्वप्रथम लिया जाता है इसीलिए इन्हें अग्रजन्मनः कहा गया है। चार मुख होने के कारण चतुरानन कहा गया है।

विष्णु—सत्व गुण से अभिभूत प्रजा की रक्षा करने वाले विष्णु देवता है। इनका उल्लेख वेदों में भी मिलता है। सभी देवताओं के देवता विष्णु हैं अर्थात सभी देवों में श्रेष्ठ बताए गए हैं। अवतारों में अंशरूप से कभी राम, कभी कृष्ण और कभी नृसिंह वामन का रूप धारण कर लेते थे केशव शब्द का तात्पर्य होता है क+ईशव—ब्रह्मा, रुद्र आदि देवताओं के स्वामी। अर्थात ब्रह्मा और रुद्र देवताओं की भी रक्षा करने वाले विष्णु भगवान। त्रेता में राम का रूप धारण किया और रावण राक्षस का वध किया। राम शब्द का तात्पर्य रा (संसार वाचक) म (ईश्वर वाचक) अर्थात राम संसार से अभिभूत समस्त जीवों के स्वामी हैं।[1] कश्यप अदिति के तपस्या और भगवान को पुत्र रूप में बरदान तथा वही दशरथ कौशल्या के रूप में श्री रामचन्द्र को पुत्र रूप में प्राप्त किए। वही भगवान विष्णु द्वापर में कृष्ण के रूप में अवतार लेकर कंस दैत्य का संहार किया। वसुदेव के पुत्र होने से वासुदेव नाम पड़ा। बालि को मारने के कारण विष्णु का नाम बलिध्वंसी पड़ा। अमरकोष में भगवान विष्णु के ३९ नामों का उल्लेख[2] किया गया है जो कि अलग-अलग वीरता के कारण अलग-अलग नाम पड़ गए हैं।

विष्णु के पत्नी का नाम लक्ष्मी, जिसका उल्लेख लक्ष्मी, पद्मालया, पद्मा, कमला श्री हरि प्रिया आदि नामों से किया गया है।[3] विष्णु के शंख का नाम पांचजन्य था जो कि महाभारत युद्ध के पूर्व भगवान कृष्ण ने बजाया था।[४] भगवान विष्णु का सुदर्शन नाम का चक्र, कौमोदकी नाम की गदा नन्दक नाम की तलवार, कौस्तुभ नाम की मणि का उल्लेख किया गया है।[५] वाहन गरुण था।[६] श्री कृष्ण के बड़े भाई बलराम थे तथा पिता का नाम वसुदेव था।[७]

---

१. **रा शब्दो विश्वबचनो म, च, ईश्वरवाचकः**
विश्वेषाम ईश्वरो वाचा रामः इत्यप्रकीर्तितः।

२. **अमर १।१।१८ से २१ तक**

३. **अमर १।१।२७**

४. **पांचजन्य हृषीकेशो देवदत्त धनन्जयः।**
पाँड्रु दध्य महाशख भीमकर्मा वृकोदरः।

५. **अमर १।१।२८**

६. **अमर १।१।२९**

७. **अमर १।१।२२,२३**

विष्णु के ही समान सुन्दर उन्हीं का अंश कामदेव माना गया है। कामदेव प्राणियों को काम शक्ति को जागृत करता है। उसका रूप इतना सुन्दर होता है कि उसको देखकर लोग स्वयं ही अपनी सुधि भूल जाते थे। इसके कुल १६ नामों का उल्लेख किया गया है।[1] कामदेव के पांच बाण बताए गए हैं।[2] जिससे वह प्रहार करता है। श्री कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का अवतार माना गया है, प्रद्युम्न के पुत्र का नाम ब्रह्म सूः विश्वकेतु, अनिरुद्ध, उषापति आदि [3]

शंकर :—शंकर से तात्पर्य है कल्याण करने वाले भगवान शंकर मनुष्य का सबसे बड़ा दुख है मृत्युलोक में बास करना अर्थात यहां रहकर हमेशा इस बात की चिन्ता बनी रहती है कि कल मृत्यु हो जायगी। इसीलिए इसको मृत्यु लोक कहा गया है, जीव को मनुष्य अर्थात कोई भी शरीर को त्याग कर ब्रह्म में मिल जाना ही उसके लिए कल्याणकारी होता है। शंकर तमोगुण से युक्त होने के कारण मनुष्य को बहुत जल्दी मृत्युलोक से विदा करा देने के कारण शंकर कहे गए हैं[4] मस्तक में चन्द्र को धारण करने के कारण चन्द्रशेखर, बैल की सवारी के कारण पशुपति तथा मुण्डमाला को धारण करने के कारण कपाल मृत और मृत्युन्जय गिरीशः अन्य नाम शंकर के गिनाए गए हैं।

लोक माताएं:—सात लोकमाताओं का उल्लेख किया गया है, (१) ब्राह्मी, (२) माहेश्वरी, (३) कौमारी, (४) माहेश्वरी, (५) बाराही (६) इन्द्राणी, (७) चामुण्डा[5]। क्षीर स्वामी ने काली, संकर्षणी, ब्रह्माद्या इत्यादि और अन्य मताओं का भी उल्लेख किया है।[6]

पार्वती:—पर्वतस्यायत्यं पार्वती, अर्थात पर्वत हिमालय की पुत्री पार्वती। पार्वती शंकर की पत्नी, पहले जन्म में सती के रूप में लेकर शिव की पत्नी बनी, दक्ष यज्ञ में जल कर मृत्यु हो जाने से हिमालय के जन्म लिया और

---

१. अमर १।१।२५,२६
२. उन्मादनं शोचनं च तथा। सम्मोहनं विदुः
शोषणं मारणं चैव पंच बाजामनोभुव।१। क्षीर स्वामी पाठ
३. अमर १।१।२७
४. अमर १।१।३०
५. अमर १।१।१५,१६ प्रक्षिप्त।
६. ब्राह्मी, माहेश्वरी, चैन्दी, वाराही वैष्णवी तथा कौमारी चर्ममुण्डा च काली संकर्षणीति च ब्राह्मयविद्या मारतः स्मृताः। क्षिरस्वामी।

भगवान शंकर को फिर से पति रूप में प्राप्त किया। इसके कुल १७ नामों का उल्लेख किया गया है।[1]

गणेशः—गणानामीशः, गणेशः देवताओं में अग्रगण्य गणेश। सर्वप्रथम पूजा गणेश की ही होती है। इसलिए इन्हें गणेश कहा गया है। ये आदि देव बताए गए हैं। वैदिक देवों में भी इनकी गणना की गई है। उनके गुण और स्वरूप के अनुसार उनके नाम बताये गए हैं द्वैमातुर (पार्वती और चामुण्डा से पालित) उकदन्तः एक ही दांत वाले, लम्बोदर और गजानन उनके आकृति के अनुसार रखे गए नाम, हेमचन्द्र ने भी गणेश के नामों का उल्लेख किया है।[2]

कार्तिकेयः—तारक राक्षस का बध करने वाले शिव पार्वती के ज्येष्ठ पुत्र स्वामिकार्तिक हुए, ये महान पराक्रमी, देवसेना के सेना नायक हुए। इन्हीं के द्वारा तारक राक्षस का बध होना था देवताओं ने शंकर जी से प्रार्थना की कि आप पार्वती से विवाह कीजिए जिससे कार्तिकेय का जन्म हो जो राक्षस का बध करे।[3] तदनुसार शंकर पार्वती विवाह कार्तिकेय का जन्म तारकासुर का बध हुआ[4] छः मुख होने के कारण इन्हें षडानन कहा गया है।[5] इनके अन्य नामों में महासेन, शरजन्मा, पार्वती नन्दनः स्कन्दः सेनानी, अग्निभूः गुहः बाहुलेय, तारकजित विशाखः शिखिवाहन षण्मातुरः शक्तिधरः कुमारः आदि हैं।

इन्द्रः—ये वैदिक देवता हैं। आरम्भ में विद्युत का देवता माना जाता था, जो वर्षा को रोकने वाले दैत्यों का संहार करता था और जो अन्धकार को दूर करता था इन्द्र को युद्ध का भी देवता कहा गया है।[6] ऋग्वेद में अधिकांश मन्त्र इन्द्र के परिचय के लिए लिखे गए हैं उसकी क्या इस प्रकार प्राप्त होती है। एक ऋषि ने तपस्या की और इन्द्र के समान महान शक्तिशाली बन गया। आकाश और द्युलोक में उसका प्रभाव व्याप्त हो गया उसे इन्द्र समझकर धुनि और चुमूर नाम के दो दैत्य शस्त्र उठाकर मारने के लिए दौड़े। ऋषि ने उनके भाव को समझकर इन्द्र की मन्त्रों[7] द्वारा पहचान बताई। ऋग्वेद में इन्द्र के

---

१. अमर १।१।३५,३६
२. हेरम्बशौर्यगर्विते ! महिणेविघ्नराजे वा। हैम ३।४७९-४८०
३. कुमार संभव ५
४. पुनि जनमेउ षट बदन कुमारा। तारक असुर समर जेहि मारा।
   रा० च० मा० तुल० बालकांड
५. अमर १।१।३९
६. ऋक् सूक्त संग्रह पृ० ५२
७. ऋक् सूक्त संग्रह पृ० ५४

रूप का वर्णन किया गया है।[१] अमरकोष में इन्द्र के ३५ नामों का उल्लेख किया गया है। प्रत्येक नाम अलग अलग गुणों के आधार पर अलग अलग हैं जैसे वज्र को धारण करने के कारण वज्री[२] वृत्र को मारने के कारण वृत्रहा सुर (देवताओं का) मालिक होने के कारण सुरपति आदि नामों का उल्लेख किया गया है। इन्द्र के पत्नी का नाम पुलोभजा और इन्द्राणी शची[३] है। इन्द्र की नगरी का नाम अमरावती, घोड़े का नाम उच्चैश्रवा, सारथि का नाम मातलि, उद्यान का नाम नन्दन, अटारी का नाम बैजयन्त तथा पुत्र का नाम जयन्त, हांथी का नाम ऐरावत, वज्र का नाम कुलिश है [४]

अग्नि

ऋग्वेद में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। यह एक ऐसा देवता है जिसकी जिह्वा के द्वारा देवता हवि भक्षण करते हैं। दीप्यमान मूर्धा से ज्वालाओं से यह सब दिशाओं में विचरण करता है। वेद में इसकी उपमा पशुओं से दी गई है।[५] अग्नि तेज का स्वामी बताया गया है। अग्नि का हंसना मनुष्यों के समान वर्णित है। अग्नि को सहस्त्र ऋंग यविष्ठय (ever young) मेध्य (ever pure) कविशस्त (Praised by the wise) दमुना (intiment hound friend) भी कहते हैं।[६] दूसरे जन्म के ही कारण अग्नि का नाम अयानपात ही पड़ा है। अग्नि काण्डों से उत्पन्न होता है जल से उत्पन्न होता है और द्युलोक में जन्म लेने के कारण इसके तीन जन्म माने गए हैं। अग्नि को (Butter baeked) घृतपृष्ठ Flaime haired शोचिप केश[७] Toumy beard रक्तुश्मश्रु Sharb jaw तीक्ष्ण द्रष्टं और Golden teath रुक्मदन्त पुरुष माना गया है।[८] वैदिक यज्ञों में अग्नि का विशेष महत्व बताया गया है। अन्य नामों में वैश्वानगर, वीतिहोत्र, धनन्जय, कृपीट योनिः ज्वतनः, जातवेदाः तनून पात, बर्हिः कृष्णवर्मा सहित ३४ नामों का उल्लेख किया गया है।[९]

---

१. ऋकवेद २।१२।१ से १५ तक
२. अमर १।१।४२
३. अमर १।१।४५
४. अमर १।१।४५, ४६, ४७
५. ऋक सूक्त सं० १।१४३
६. ऋक् सूक्त संग्रह पृष्ठ ४८
७. अमर १।१।५४
८. ऋक सूक्त संग्रह पृष्ठ ४७
९. अमर १।१।५४ से ५६ तक।

अन्य देवता

अमरकोष में अन्य विविध देवताओं का उल्लेख किया गया जिनमें १२ आदित्य[1] (धाता, मित्र, यम, रुद्र, वरुण, सूर्य, भगो, विवस्वान, पूषा, सविता, त्वष्टा, विष्णु) अलग-अलग सूर्य अलग-अलग मास में तपता है[2] मुख्य रूप से यम भाद्पद में, चैत्रमास में धाता ज्येष्ठ में इन्द्र, आषाढ़ में रवि इत्यादि।[3] इसी तरह विश्वेदेवा, देवता भी मुख्य रूप से पूज्य थे। इनकी संख्या दश बताई गई है। इन देवताओं की पूजा श्राद्ध में की जाती है।[4] इनके नाम, ऋतु, दक्ष, वसु, सत्य, काम, काल, धुरि, रोचन, आद्रव, पुरुरवा, दस नाम बताए गए हैं।[5] वसू नाम के देवताओं की संख्या आठ बताई गई हैं। धर, ध्रुव, सोम, सावित्र, अनिल, अनल, प्रत्यूष, प्रभावस।[6] तुषिता देव की संख्या कहीं कहीं २६ और कहीं कहीं ३६ बताई गई है और कहीं तो इनके १२ ही नाम बताए गए हैं, उनमें प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, रस, घ्राण, स्पर्श, बुद्धि, मन।[7] आभास्वरा देव की संख्या ६४ बताई गई है, अनिल की संख्या ४६। इनको मरुत नाम से जाना जाता है।[8]

अन्य देवों में महाराजिका का उल्लेख किया गया है। इनकी संख्या २२० बताई गई है।[9] कहीं कहीं २३६ या ४००० तक इनकी संख्या मानी गई है। इसके बाद गण देवों में साध्याः का नाम आया है। ये संख्या में १२ बताए गए हैं, जिनके नाम, मनो, मन्ता, प्राण, मर, अपान' वीर्यवान, निर्भर, नरक देश, नारायण' वृष, प्रभु इत्यादि।[10] रुद्र एकादश बताए गए हैं अब, एकपाद अहिब्रघ्नः, पिनाकी, अपराजितः, त्रयम्बकः, महेश्वर, वृषाकपि, शम्भुः हरण,

---

१. अमर १।१।१०
२. श्रीमद भागवत महापुराण १२
३. वाचस्पत्यम् पृष्ठ ६६६
४. विश्वेवा भवन्त्येते दश श्राद्धेषु
पूजिता वाचस्पत्यम् पृ० ४६२६
५. शब्दकल्पद्रु कोष पृष्ठ ४४०
६. कूर्म पुराण अध्याय १४
७. वाचस्पत्यम् पृष्ठ ३३३७
८. एकोनाश्चपचासन्मरुतः। वह्नि पुराण गण अध्याय
९. सुधा व्याख्या पृष्ठ ८
१०. वाचस्पत्याभिधान पृष्ठ ५२७६

ईश्वर इस प्रकार अमरकोष में उपरोक्त गण देवताओं का संकेत किया गया है।[1]

यज्ञ

प्राचीन काल में यज्ञों का विधान अत्यधिक था विधि पूर्वक यज्ञ होते थे। और यह विधि वैदिक प्रकार की होती थी। यज्ञ, सवः, अध्वरः यागः सप्ततन्तु मरव क्रतु आदि नामों का उल्लेख किया गया है। पाँच प्रकार के यज्ञों का उल्लेख किया गया है[2] (१) ब्रह्मयज्ञ (२) देवयज्ञ (३) नृपज्ञ, (४) पितृयज्ञ (५) भूतयज्ञ।

(१) **ब्रह्मयज्ञः**—विद्यार्थियों को पढ़ाना, वेद का ज्ञान सिखाना; दीक्षा देना आदि ब्रह्मयज्ञ के अन्तर्गत आता है।

(२) **देवयज्ञः**—होम हवन करना ही देवयज्ञ है।

(३) **नृपज्ञः**—अतिथियों को भोजन देना उनका सत्कार करना, अतिथि पूजा ही नृपज्ञ है।

(४) **पितृयज्ञः**—तर्पण, अन्स, जल, पिण्डदान आदि से पितरों को सन्तुष्ट करना ही पितृयज्ञ करना है।

(५) **भूतयज्ञः**—बलि वैश्वदेव अर्थात काकादि को बलि देने या बलिदान करने को भूतयज्ञ कहते हैं[3]

ब्रह्मयज्ञ उस समय तो मुख्य रूप से होता था अर्थात वेद पठन पाठन का कार्य होता रहा है, नृपज्ञ उस समय का आदर्श व्यवहार के अन्तर्गत आता था अधिक से लोग नृपज्ञ में दक्ष होते थे। यज्ञ का भी काफी प्रचार था। देवयज्ञ के लिए सर्वप्रथम यज्ञ भवन बनाया जाता था। इसके पश्चात यज्ञ शाला के अन्दर यज्ञ के लिए वेदि[4] बनाई जाती रही। वेदी के पास ही साफ स्वच्छ चबूतरा होता रहा है। यज्ञ मण्डप के चारों ओर चबूतरा बनाया जाता रहा है जिससे चाण्डाल इत्यादि यज्ञ को न देख सकें,

---

१. अमर१।१।१०
२. अमर २।७।१४
३. अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितयज्ञस्तु तर्पणम्
होमो दैवो बलिर्भातो नयज्ञोतिथिपूजनम्।
पंचएतानि महायज्ञान्—मनु ३।७०।७१
४. अमर २।७।१८

जिसे कुम्बा[१] कहा जाता था। यज्ञ में दो अरणियों[२] को रगड़कर आग उत्पन्न की जाती थी। अग्नि उत्पन्न करने वाले को अग्निहोत्री (अग्निचित) कहा जाता था।[२] जब मन्त्र के द्वारा अग्नि शुद्ध की जाती थी उसको प्रणीतः[३] शब्द कहा गया है। अग्नि पत्नी का नाम, अग्नायी, स्वाहा, हुतभुक्प्रिया बताया गया है।[४] अग्नि में हवन सामग्री को मन्त्रों द्वारा छोड़ा जाता था। ये मन्त्र विभिन्न छन्दों में होते थे, जिनमें प्रमुख रूप से गायत्री छन्द माना गया है।[५] अग्नि में हवन के लिए जो सामग्री होती थी उसे चरु कहा गया हैं।[६]

पितृयज्ञ में पितरों को सन्तुष्ट करने के लिए श्राद्ध, तर्पण होता था। तर्पण या श्राद्ध दही मिले हुए घी[७] खीर हविष्य आदि से होती थी। पितरों को सन्तुष्ट करने के लिए ब्राह्मण भोजन इत्यादि कराया जाता था जिसे कव्यम् कहा गया है। भूत यज्ञ में भूतों के सन्तुष्ट के लिए पशुओं की बलि दी जाती थी जिसे वेद मन्त्र से अभिमन्त्रित किया जाता था जिसको उपकृत[८] कहा गया है। इस प्रकार इन समस्त यज्ञों का प्रचार था जिसका संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

दर्शन

अमरकोष में दार्शनिक प्रवृत्तियों को अत्यधिक मात्रा में उभारा गया है, उसमें साख्य, न्याय योग, मीमांसा, वैशेषिक, वेदान्त, वौद्ध, जैन चार्वाक तथा लोकायत आदि समस्त दर्शन पर विचार किया गया है। साख्य दर्शन में प्रकृति पुरुष का संयोग बताया गया है। पुरुष के लिए ब्रह्म और प्रकृति के लिए माया वेदान्त दर्शन में बताया गया है। दो अनादि शक्तियाँ हैं प्रकृति और पुरुष।

---

१. अमर २।७।१८
२. अमर २।७।१९
३. अमर २।७।१२
४. अमर २।७।२०
५. अमर २।७।२१
६. अमर ३।७।२२
७. सुधा व्याख्या पृष्ठ २४७
८. अमर २।७।२४
९. अमर २।७।२५

इन दोनों का संयोग आवश्यक है। इन्हीं के संयोग से जगत का आविर्भाव होता है। प्रकृति जड़ है तथा एक है। पुरुष चेतन तथा अनेक है।[१] साख्य दर्शन आस्तिक दर्शन माना गया है। न्याय दर्शन में प्रभिति या प्रभा[२] को ज्ञान कहा गया है। प्रभा के करण को प्रमाण कहा गया है और प्रमाण के द्वारा अर्थ का परिज्ञान ही न्याय है।[३] न्याय दर्शन का अध्ययन विक्रम पूर्व से लेकर आज तक अवच्छिन्न रूप से चला आ रहा है। यह भी आस्तिक दर्शन माना गया है। योग दर्शन का प्रतिपादन सर्वप्रथम महर्षि पतंजलि योग दर्शन' में किया है। इन्होंने योग के आठ अंग बतलाए हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।[४] अमरकोष में योग से सम्बन्धित संनहन उपाय, ध्यान संगति आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।[५] उपर्युक्त आठ अंगों के अभ्यास से चित्र वृत्तियों के विलीन हो जाने पर मन एकाग्र हो जाता है। योग दर्शन में तीन ही प्रमाण माने गए हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, और आगम।[६]

अमरकोष में वेदान्त दर्शन का भी उल्लेख अस्पष्ट प्राप्त होता है। वेदान्त का मुख्य सिद्धान्त है कि ब्रह्म सत्य है संसार काल्पनिक है। जीव ही ब्रह्म है, जिस प्रकार से रस्सी को देखकर अँधेरे में सपी की प्रतीति होती है उसी प्रकार जीव माया में फँस कर ब्रह्म के असली रूप को नहीं पहचानता है। अज्ञान, अविद्या और अहम्मति[७] के कारण वास्तविकता को नहीं जान पाता है। उपर्युक्त सभी दर्शन आस्तिक है नास्तिक दर्शनों में जैन, बौद्ध और चार्वाक हैं। जैन और बौद्ध दर्शन का अस्पष्ट उल्लेख अमरकोष में प्राप्त होता है। बौद्ध के १८ नामों का उल्लेख किया गया है।[८] इससे बौद्ध दर्शन के लिए पर्याप्त सामग्री प्राप्त हो सकती है। चार्वाक दर्शन जिसको लोकायत भी कहा गया है। पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते इनका भी संक्षिप्त उल्लेख प्राप्त होता है।

---

१. संस्कृत सा० का इति० बल्देव उपा० पृ० ६८२
२. अमर ३।२।१०
३. 'प्रमाणैः अर्थ परिज्ञानम् न्यायः'
४. पातंजल योग दर्शन २।२९
५. अमर ३।३।२२
६. पातंजल योग दर्शन १।७
७. अमर १।५।७
८. अमर १।१।१३,१४,१५

कला कौशल

भारतवर्ष में अति प्राचीन काल से ही कला कौशल का स्वरूप दिखाई देता है । सिन्धु घाटी सभ्यता इसके लिए प्रत्यक्ष उदाहरण है । विभिन्न ललित कलाएं अत्यन्त प्रचुरता के साथ साथ अपना मूल रूप ग्रहण कर इस देश का नाम रोशन किया है । चित्रकला में तो यह देश सर्वोपरि था । बहुत से इस देश के लोग तो व्यक्ति का साक्षात रूप आकृति कर उसके रूप पर अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया है ।

इस देश में मूर्तिपूजा बहुत प्राचीन काल से चली आ रही है इष्ट देव के रूप को पत्थर पर चिन्हित करके उसकी पूजा करते रहे हैं । पत्थर पर मूर्ति बनाना सिन्धु सभ्यता की ही देन है ।

अमरकोष में चौसठ कलाओं का उल्लेख किया गया है । उस समय तक प्रचार अत्यधिक था । इसका उल्लेख अमरसिंह ने स्वतन्त्र रूप से पुरवर्ग में किया है । नाट्य वर्ग में नाटक के समस्त कार्यों रसों का परिचय उसके समस्त अंगों का परिचय आदि समस्त कलाओं का उल्लेख किया गया है शब्दादि वर्ग में भाषा की रचना, इतिहास, वेद वेदांग, दण्डनीति दर्शन, अर्थशास्त्र आदि समस्त भाषा सम्बन्धी कलाओं का विस्तृत विवेचन किया है ।

संगीत कला

संगीत का प्रचार बहुत मात्रा में हो चुका था । शास्त्रीय संगीत पर आधारित गानों का ही प्रचार था । स्वरों का ज्ञान हो चुका था स्वर के ही आधार पर वीणा के शब्द को निक्काण[१] कहा गया है । पाणिनि ने भी क्वण को वीणा के स्वर को ही कहा है "क्वणो वीवायाच्चै"[२] । उस समय गीत, गाना[३] दो प्रकार के गाने प्रचलित थे । मधुर स्वर, गंभीर अर्थ को प्रगट करने वाला गीत कहलाता था और इसके अतिरिक्त गाया जाने वाला गाना कहलाता था । परम्परागत संगीत के सात स्वर बतलाए गए हैं । षडज, (२) ऋषभ (३) गान्धार (४) मध्यमः (५) पंचमः (६) ध्वैतः (७) निषाद इत्यादि इसी स्वर के आधार पर क्रमशः प्रथम अक्षर के अनुसार स रे ग म प ध नि ये स्वर

---

१. अमर १।६।२५
२. पाणिनीय अष्टाध्यायी ३।३।६५
३. अमर १।६।२६

व्यवहार में उच्चारित किए जाते हैं। गम्भीर ध्वनि को मन्द्रः[१] कहा गया है। स्वर और ध्वनि में भी भेद बताया गया। स्वर उपर्युक्त प्रकार से बताया गया है ध्वनि के कई भेद बताए गए। ध्वनि मुख से उच्चरित होकर अपनी तरंगों को दूसरे के कान तक पहुँचाती हैं। चाहे वह ध्वनि, गीत की हो चाहे गाना की हो चाहे कठोर ध्वनि हो।

इनके उच्चारण स्थान भी भिन्न भिन्न हैं। मनुष्य के हृदय में २२ प्रकार की ध्वनियाँ रहती है उनमें कण्ठ के बीच वाले को मन्द्रः कहा गया है। मन्द्र और शिर से बीच वाले को तार[२] कहा गया है[३] तार का स्वर कठोर होता है। वाद्य के साथ गाना और वाद्य को एक स्वर में मिलाने का भी प्रचलन था। इसको एकताल[४] कहा गया है। संगीत कला का प्रचार अत्यधिक हो चुका था वंशी, शंख, मुरली, तुतुही, सींगा, वेन आदि वाद्य यन्त्रों का प्रचार हो चुका था।[५] समय समय घड़ी झाल, जोड़ी मजीरा आदि का भी वादन होता था[६] विशेष अवसरों पर मृदंग जैसे वाद्य का भी वादन होता था। मृदंग के भेदों में अंक्य आलिंग्य और ऊर्ध्वकः है[७] महान उत्सव विजय इत्यादि में नगाड़े भी बजाए जाते थे ढक्कः भी बजाया जाता था ढक्कः डमरू के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[८] समूह गान में कई वाद्यों के साथ गाना गाए जाते थे। स्वर भिन्न भिन्न वाद्यों का गाना के साथ मिलाया जाता था जिनमें वीणा जल तरंग, झांझ ढोल आदि मुख्य हैं।

वाद्य यन्त्रों के ताल के आधार पर नृत्य भी होता रहा है। नृत्य जो विलम्ब से वाद्यों में प्रारम्भ होता था उसे तत्वम् तथा जो शीघ्रता से प्रारम्भ होता था उसे ओद्यः और जो अपने समय के अनुसार प्रयुक्त होता था उसे धनम[९] शब्द प्रयुक्त हुए हैं; नृत्य में हांथ से इशारे दिये जाने का संकेत प्राप्त होता है। इस इशारे को लय कहा गया है।

---

१. अमर १।७।२
२. मणिप्रभा व्याख्या पृष्ठ ६७
३. अमर १।७।३
४. मणिप्रभा व्याख्या पृष्ठ ६८
५. अमर १।७।४
६. अमर १।७।५
७. नृत्यावसाने नटराज राजो ननाद ढक्का नवपंचवारान
उद्धर्तु कामः सनकादि सिद्धोएतत् विमर्शः शिवसूत्र जालम्। लघुकौमुदी
८. अमर १।७।६
९. अमर १।७।१०

नृत्य के भेदों में ताण्डव, नटनम्, नाट्य लास्यम् नृत्यम् नर्तनम् आदि मुख्य बताए गए हैं[१] नृत्य वाद्य पर चलता है अर्थात वाद्य यन्त्र के लय पर नृत्य किया जाता है और वाद्य गाना पर आधारित रहता है अर्थात नृत्य, वाद्य और गाना ये तीनों एक ही साथ चलते हैं । इसको तौर्यत्रिकार नाट्यम् कहा गया है । नृत्य के लिए विशेष रूप से पेशे वाली होती थीं जिनको वेश्या या गणिका कहा गया है[२] कुछ स्थानों में स्त्री का वेश बनाकर नाचने वाले पुरुष को बताया गया है, जिसको भ्रंकुश कहा गया है ।

इस प्रकार संगीत कला में नृत्य, वाद्य और गीतों का प्रचार बहुत ही मात्रा में हो चुका था ।

नाट्य कला

नाट्यकला का अस्तित्व वैदिक काल से ही था । वेद में उषा के वर्णन प्रसंग में उसकी उपमा एक नर्तकी से ली गई है । „पुरुरवा, उर्वशी, यमयमी, इन्द्र इन्द्राणी वृषकपि, सरमा पाणिस आदि ऋग्वेदोक्त संवाद प्रसंगों में नाट्य कला के बीच यथेष्ठ रूप में बिखरे हुए मिलते हैं ।[३] उत्तरवर्ती साहित्य में अष्टाध्यायी, रामायण, अर्थशास्त्र बौद्धजातक और महाकाव्यों आदि में नाट्य कला के विभिन्न अंगों उसके पात्रों और साथ ही पारिभाषिक शब्दों का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है । आचार्य भरत भारतीय नाट्य शास्त्र के आदि निर्माता हैं उन्होंने ही बताया है कि नाट्य नामक पंचम वेद तीनों लोकों के भावों का अनुकरण है । सभी प्रकार के मनुष्यों का अनुकरण होने के कारण नाटक में सभी प्रकार का ज्ञान, शिल्प, विद्याएं, कलाएं और शास्त्र समन्वित रहते हैं ऐसा भरत मुनि का मत है । अमरकोष में पर्याप्त नाट्य सामग्री प्राप्त होती है । लेखक ने स्वतन्त्र रूप से नाट्य वर्ग नामक वर्ग का प्रणयन किया है । नाट्य के अभिनय के लिए वट[४], नटी, (जो समयानुकूल अपना रूप परिवर्तित करके आवश्यक वेश धारण करता है) नृत्य[५], वाद्य[६] संगीत, संवाद कथा वस्तु और रंगमंच आदि का उल्लेख प्राप्त होता है । नाटक का नायक कोई राजा होता था जिसको भट्टारक, राजकुमारी को भर्त्तृदारिका, रानी को

---

१. अमर १।७।१०

२. अमर १।७।११

३. संस्कृत सा० का सं० इतिहास पृ० ४३७ वा० गैरोला

४. अमर १।७।११

५. अमर १।७।१०

६. अमर १।७।८

देवी, राजा के दूसरी सामान्य स्त्री को भट्टिनी राजा के पुत्र को युवराज आदि नामों का उपयोग किया गया हैं।[१]

नाटक में पाँच संधियों का उल्लेख प्राप्त होता हैं।[२] (१) मुख (२) प्रतिमुख (३) गर्भ (४) विमर्श (५) उपसंहृत, उपसंहृत को निर्वहण भी कहते है[३] जहाँ पर नाटक का किया गया कार्य अधूरा रहता है। वहाँ निर्वहण शक्ति ही पूरी करती है।[४] नाटक में जहाँ महान अनर्थ हो जाता है वहां 'अब्रह्मण्यम्' शब्द प्रयुक्त होता है।[५] जैसे 'उत्तर रामचरित' में जब राम सीता के परित्याग के लिए निश्चय कर चुके थे उसी समय नेपथ्य से 'अब्रह्मण्यम्' शब्द उच्चरित होता है।[६] नीच को बुलाने के लिए 'हण्ड' दासी को बुलाने के लिए 'हज्जे' और सखी को बुलाने के लिए 'हला' शब्द नाटकों में प्रयुक्त होते हैं।[७] नाटक के उदात्त पात्रों के सात्विक गुणों का भी उल्लेख किया गया है।[८] सात्विक गुण आठ प्रकार के बताए गए हैं (१) स्तम्भ (२) स्वेद (३) रोमांच (४) स्वरभंग (५) वैपथु (६) वैवर्ण्य (७) अश्रु (८) प्रलय।[९]

नाटकों में रसों की प्रधानता रहती है। अमरकोष में आठ रसों का उल्लेख किया है।[१०] (१) शृंगार (२) हास्य (३) करुण (२) रौद्र (५) वीर (४) भयानक (७) वीभत्स (८) अद्‌भुत। इन्हीं रसों का उल्लेख भरत मुनि ने भी किया है।[११] प्रत्येक रस के अलग अलग स्थायी भाव बताए गए हैं। रसों को उत्पन्न करने वाले आन्तरिक विकारों को भाव कहते हैं।[७] भाव

---

१. अमर १।७।१२, १३
२. सा० द० ६।७५-७६
३. उपसंहृतनिर्वहणभित्यर्थ
४. अमर १।७।१५
५. अमर १।७।२४ प्र०
६. उत्तर रामचरित प्रथम अंक ५०
७. अमर १।७।१५
८. अमर १।७।१६
९. स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमांचः स्वरभंगोऽथ वैपथुः
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्विका गुणाः। सा० द० ३।१३५-१३६
१०. अमर १।७।१७
११. नाट्य शास्त्र ६।३७
१२. अमर १।७।२१

स्थायी और संचारी (व्यभिचारी) अलग अलग होते हैं । 'विरुद्ध अथवा अविरुद्ध भावों से अप्रभावित जो अन्य भावों को आत्मसात कर लेता है उसे स्थायी भाव कहा जाता है ।'[१] स्थायी भाव भी प्रत्येक रस के अलग अलग होते हैं, जैसे शृंगार का रति, हास्य का हास, करुण का शोक, रौद्र का क्रोध, वीर का उत्साह, भयानक का भय, वीभत्स का जुगुप्ता, अद्‌भुत का विस्मय, भरत मुनि ने नवमें रस शान्त के लिए लिखा है कि निर्वेद स्थायी भाव में शान्त रस[२] का उल्लेख किया गया है । अमर ने भी जहाँ रसों का उल्लेख किया है वहाँ 'च' शब्द का प्रयोग करके आठ रसों से ज्याद रसों का भी भाव व्यन्जित किया है । मुनीन्द्र के मत में दशमें रस वात्सल्य का भी उल्लेख हुआ है ।[३]

व्यभिचार भाव संख्या में ३३ बताए गए हैं जिस प्रकार सागर में तरंगें उत्पन्न होती हैं तथा तिरोहित होती उसी प्रकार रति आदि स्थायी भावों में उत्पन्न होने वाले अथवा विलीन होने वाले भाव संचारी या व्यभिचारी भाव कहलाते हैं । [४] इनके नाम गर्व, मान, लज्जा, तितिक्षा, ईर्ष्या, असूया, विरोध, शोक, क्रोध, शील, उन्माद, प्रेम आदि[५] का उल्लेख किया गया है । इस प्रकार कोषकार नाट्य कला का विधिवत् उल्लेख किया है । नाटक केक्या गुण हैं कितने रस हैं कौन कौन से भाव हैं कहां सम्बोधन के लिए कौन शब्द प्रयुक्त हुआ है इत्यादि समस्त आवश्यक बातों पर ध्यान दिया गया है । इससे यह स्पष्ट होता है कि अमरकाल तक भरत का नाट्यशास्त्र का प्रचार अत्यधिक हो चुका था जिस कारण से नाट्यकला उस समय अत्यधिक विकसित हो चुकी थी ।

वास्तुकला

वास्तुकला का इतिहास भारत में अत्यन्त प्राचीन है । ज्योतिष विज्ञान के एक अंश में वास्तुविद्या का ही अध्ययन होता है । वास्तुविद्या के अन्तर्गत गृह का निर्माण ज्योतिष गणना के आधार पर की जाती थी । कहां पर किस दिशा की ओर घर बनाया जाय कितने दरवाजे कितने फुट लम्बा कितना चौड़ा द्वार की दिशा गृह में लगाए गए काष्ठ पर विचार इत्यादि समस्त बातों का अध्ययन वास्तुकला के ही परिचायक हैं ।

---

१. दशरूपक ४।३४
२. साहित्य दर्पण ३।१८२
३. स्फुटं चमत्कारितया च संविदु सा० द० ३।२७
४. दशरूपक ४।७
५. अमर १।७।२२ से ३६

अमरकोष में वास्तुकला का विवेचन पुरवर्ग में किया गया है। सर्व प्रथम गृह निर्माण हेतु किन किन उपकरणों की आवश्यकता होती है इसके लिए उस समय मकान मिट्टी के[1] सामान्य लोगों के बनते थे। कुछ लोगों के मकान पत्थर के बनते थे दीवाल के अन्दर जिससे कि दीवाल मजबूत हो उसके लिए हड्डी, लोहा, लकड़ी आदि के जोड़ से दीवाल बनाई जाती थी, जिसको 'एड्कम' कहा जाता था।[2] अलग अलग कार्य के लिए अलग अलग मकान होते थे। मकान चौशाला[3] होता था अर्थात चारों ओर से मकान बनाए जाते थे। मकान के अन्दर आंगन होता था। मकान की फर्स संगमरमर पत्थर से भी बनाई जाती थी, जिसको कुट्टिम[4] कहा गया है, मकान कई मंजिले बनाये जाते थे ऊपर वाली मंजिल शिरोगृह[5] कहा जाता था। मकान के चारों ओर हवा धूप आने के लिए खिड़कियां होती थी जिन्हें गवाक्ष[6] कहा जाता था। मकान के चारों ओर दरवाजा और तोरण होते थे जिन्हें स्वास्तिक कहा जाता था जिस मकान में अनेक मंजिलें होती थीं उसे सर्वतोभद्र तथा गोलाकार मकान भी बनाने की प्रथा थी जिसे नन्द्यावर्त[7] कहा गया है। अन्तःपुर जहां सामान्य लोगों का प्रवेश नहीं हो पाता था केवल रानियां वहां रहतीं थीं। मकान के दरवाजे में किवाड़ लगाये जाते थे जो कि अनेक कलाओं से चित्रित होते थे। किवाड़ में चौखट होती थी जिसके आधार पर किवाड़ होते थे। चौखट के बाहरी जगह को प्रघाण[8] कहा जाता था तथा डेहरी के नीचे वाले भाग गृहावग्रहणी कहा जाता था।[9] दरवाजे के ऊपर जो छत पड़ती वह लोहा, काष्ठ या पत्थर की होती थी, इसी प्रकार दरवाजे के खम्भे के नीचे भी लोहा काष्ठ या पत्थर लगाया जाता[10] था। मुख्य द्वार दरवाजे से होता

---

१. अमर २।२।३
२. अमर २।२।४
३. अमर २।२।६
४. अमर २।२।५ प्र०
५. अमर २।२।९
६. अमर २।२।१०
७. अमर २।२।१२
८. अमर २।२।१३
९. अमर २।२।१३
१०. अमर २।२।१४

था, जहां से सामान्य पुरुष आ जा सकते हैं मुख्य द्वार के बगल में पक्षद्वार[1] होता था जिससे केवल घर की स्त्रियां ही प्रवेश कर सकती थीं। दरवाजे में बाहर की ओर छान्ह बनाया जाता था जिससे पानी के बौछार घर के अन्दर न प्रवेश कर पाये। मकान की छत लकड़ी से भी बनाई जाती थी और जो मकान मिट्टी के बनाये जाते थे उनके ऊपर लकड़ी के गोपानसी वलभी[2] (धरन कैंची) लगाये जाते थे। कुछ मकान लकड़ी के भी बनाये जाते थे लेकिन लकड़ी के मकान में मनुष्य नहीं रहते थे। लकड़ी के मकान में पालतू पक्षी रहते थे, जैसे कपोत इत्यादि और ऐसे मकान को कपोतपालिका कहा जाता था लकड़ी के अन्य सामानों में किवाड़ अर्गलम (किल्ली) तथा मकान के ऊपरी भाग अर्थात छत में जाने के लिए सीढ़ी भी लकड़ी की बनती थी जिसको निश्रेणी, अधिरोहिणी[3] कहा जाता था। कुछ मकान पत्ते भाड़ इत्यादि के बनते थे। जिनमें साधु सन्यासी या समाज के निर्धन वर्ग के लोग रहते थे। ऐसे मकानों में पशुओं को भी रखा जाता था। इस प्रकार के मकान को पर्ण-शाला[4] कहा जाता था। कुछ में घोड़े बांधे जाते थे, जिसको वाजिशाला तथा कुछ मकान ऐसे बनाए जाते थे जिसमें यज्ञ इत्यादि होता था। इसको आयतनम् चैत्यक कहा गया है। कुछ लोगों के लिए भोपड़े इत्यादि होते थे अधिकांश रूप से अहिर इत्यादि अपने बकरियों के साथ ऐसे मकान बनाकर रहते थे जिसको घोष आमीर पल्ली[5] कहा गया है। समाज के निम्न वर्ग के लोगों का मकान छोटा होता था और वह भी पत्ते घास इत्यादि का बनाया जाता था जिसकी पक्कण और शवरालय कहा गया है।[6]

इस प्रकार उस समय में वास्तुकला के भी कई स्तर थे। कुछ लोगों के लिए अच्छे भवन जो पत्थर का बनाया जाता था जो चतुःशाला होता था जिसकी फर्श संगमरमर की होती थी, जिसके द्वार में लकड़ी के नक्कासीदार किवाड़ लगाए जाते थे जिसमें ऊपर छत इत्यादि होती थी और कुछ लोगों का मकान घास पत्ता, लकड़ी इत्यादि का होता था।

इस प्रकार उपर्युक्त समस्त कलाएं अमरकाल में विद्यमान थीं।

राजनैतिक व्यवस्था

राजनैतिक व्यवस्था का तात्पर्य तत्कालीन प्रजा को पालने के लिए किस प्रकार की व्यवस्था थी, राजतन्त्र था या प्रजातन्त्र। राजा के लिए कौन अभि-

---

१. अमर २।२।१५
२. अमर २।२।१८
३. अमर २।२।६
४. अमर २।२।२०
५. अमर २।८।१
६. अमर २।८।२

षिक्त होता था। राजा के कौन कौन मन्त्री होते थे, आय का साधन क्या था इत्यादि समस्त बातों की चर्चा इसी प्रकरण का विषय है

राजा और मन्त्री

छोटे छोटे राज्यों का पालनकर्त्ता राजा होता था [१] और इस प्रकार के कई राजाओं को वश में करने वाला राजा अधीश्वर कहलाता था[२]। समस्त भूमण्डल को अपने वश में करने वाला राजा चक्रवर्ती कहलाता था। हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि में चक्रवर्ती १२ भारत वर्ष में हुए ऐसा लिखा है।[३] उनके नाम (१) भरत, (२) सगर, (३) मधवा (४) सनत्कुमार (५) शान्ति (६) कुन्थु (७) अर (८) कार्त्तवीर्य (९) पद्म (१०) हरिषेण (११) जय (१२) ब्रह्मदत्त। इस प्रकार से हैं। मण्डल के स्वामी को मण्डलेश्वर कहा जाता था मण्डल के १२ भेद बताए गए हैं।[४] राजा संज्ञक एक अन्य नाम में सम्राट[५] आता है सम्राट सभी प्रकार के राजा नहीं हो सकते थे भा० दी० के मत से जिसने राजसूय यज्ञ किया हो मण्डल का स्वामी हो और जिसने समस्त राजाओं को जीत लिया हो वही सम्राट हो सकता था।

मंत्री

राजा के अलग अलग कार्य के लिये अलग मन्त्री होते थे जैसे बुद्धि विषयक सहायता देने वाले मन्त्री धी सचिव।[६] राजकाज के सम्बन्ध में सहायता देने वाले कर्म सचिव, व्यवहार इत्यादि को देखने वाले प्राडविपाक अक्षदर्श इत्यादि। राजा का खास मन्त्री जो महामात्र कहलाता था।

राजा का कर्त्तव्य

राजा का धर्म होता था कि चारों वर्णों और आश्रमों के आचार की रक्षा करे और नष्ट होते हुए न्याय की स्थापना करे।[७] राष्ट्र के विकास में राजा का प्रधान हॉथ रहता था कृषि की संवर्धन के लिए वह किसानों की सब प्रकार की सहायता करता था।

---

१. अमर २।८।१
२. अमर २।८।२
३. अभिधान चिन्तामणि ३।३५५—३५८
४. मणि प्रभा व्याख्या पृष्ठ २६४
५. अमर २।८।
६. अमर २।८।४०
७. अमर २।८।५
८. चतुर्वर्णाश्रमस्यायं लोकास्याचार रक्षणात्
नश्यतांश्चर्वधर्माणां राजा धर्म प्रवर्तकः ॥अर्थशास्त्र ३।१

अर्थशास्त्र में राजकार्य की विशद व्याख्या मिलती है। इसके अनुसार राजा सतत जागरुक और प्रयत्नशील रहकर योग क्षेम का साधन करता था और कार्यानुशासन से प्रजा को स्वधर्म में प्रतिष्ठित करता था। प्रजा को धन धान्य सम्पन्न बनाकर तथा उनका उपकार कर वह लोकप्रिय बन जाता था। राजा का प्रधान कार्य था समुचित दण्ड विधान।[1] कोष में भी दण्ड देने की चर्चा की गई है[2] राजा अपराधियोंको समुचित दण्ड देता था। अगर कोई अपराधी बहुत भारी अपराध किए हुए है तो उसको दुगुना दण्ड दिया जाता था[3] राजा का दण्ड देना कर्त्तव्य था।

राजा के अन्य सहयोगी

राज व्यवस्था चलाने के लिए राजा के अन्य सहयोगी मन्त्री के अलावा भी होते थे। राजसभा में रहने वाले राजा के पुरोहित[4] होते थे जो कि राजा को हमेशा मांगलिक बातें श्लोक अथवा राजा को अभिषिक्त करते थे। प्रायः सदा ही कवियों, कलाकारों, दार्शनिकों, विद्वान एवं पुरोहितों को राजसभा में आश्रय मिलता रहा है। पुरोहित ब्राह्मण ही होता था। राजद्वार पर निरन्तर खड़े रहने वाला और राजा के समक्ष सभी प्रकार के बातों को पहुँचाने वाला प्रतीहारी कहलाते थे।[5] कंचुकी-जो यह अन्तःपुर की रानियों के अंगरक्षक का कार्य करता था यह सात्विक और वृद्ध ब्राह्मण होता था कंचुकी नाम संभवतः इसलिए पड़ा है कि वह कंचुक (चोंगा] पहनता था कंचुकी का लक्षण नाट्य शास्त्र में इस प्रकार किया गया है।

''अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रोगुणगणान्वितः
सर्वकार्यार्थ कुशलः कंचुकीत्यमिधीयते । नाट्य शास्त्र
ये नित्यं रात्यसम्पनाः कामदोष विर्वजिताः
ज्ञान विज्ञान कुशलाः कंचुकीयास्तु ते स्मृताः। मातृगुप्त

---

१. अर्थशास्त्र १।४।१६

२. अमर २।८।२६

३. अमर २।८।२७

४. अमर २।८।५

५. अमर २।८।६

अमरकोष में कंचुकी बोधक चार नामों का उल्लेख किया गया है।[१] सौविदल्ल, कंचुकी, स्थापत्य, सौविदः इत्यादि , बहुत से ग्रामों के अध्यक्ष को गोप[२] कहते थे। एक ग्राम के मालिक को स्थायुक कहते थे। राजा के कोष के अलग अलग मालिक होते थे। सुवर्ण के अध्यक्ष को भौरिक या कनाध्यक्ष कहते थे। यह राजा के कोष में सोने का पूर्ण अध्यक्ष होता था। अर्थात सुवर्ण का सम्पूर्ण हिसाब किताब रखता था। इनसे मुद्रा इत्यादि सिक्का ढालने वाले तथा मुद्रा के पूर्ण अधिकारी रूप्याध्यक्ष[३] कहलाते थे। राजा की मित्रता समान अवस्था वाले पुरुष से होती थी जिसको वयस्य कहा जाता था। मित्र सदा मित्र के साथ चलने वाला एक ही प्रकार कि क्रिया करने वाला मित्र सुहृद सखा इन तीन नामों से कहा जाता था। अनुकूल रहने वाले को अनुरोध और अनुवर्त्तन कहा गया है। राजा में गुप्त रीति से यह देखा जाता था कि प्रजा की आवाज राजा के प्रति क्या है। दूसरी बात यह कि प्रजावर्ग में कोई उपद्रव तो नहीं करता, चोरी करने वाला या अन्य अपराध करने वाला जो समाज और राष्ट्र द्रोही होता था उसको जानने के लिए राजा के या गुप्तचर[४] होते थे जो गुप्तरूप से राजा को हो रहे देश की परिस्थिति को बताते थे। मुहूर्त को बताने के लिए ज्योतिषी[५] होते थे, जो राजा को समय एवं शुभ अशुभ बातों का ज्ञान कराते थे, राजा इन्हीं ज्योतिष गणना के ही आधार पर यात्रा करते थे।

राज्य और राजनीति

कोषकार ने राज्य के सात अंगों का उल्लेख किया है १—स्वामी, २—आमात्य, २—सुहृत, ४—कोष, ५—राष्ट्र, ६—दुर्ग, ७—बल।[६] कामन्दक सूत्र में भी यही राजंगों का वर्णन प्राप्त होता है। १—स्वामी, २—आमात्य, ३—राष्ट्र, ४—दुर्ग, ५—कोष, ६—बल, ७—सुहृत। मनु ने भी उपर्युक्त राज्य के सात अंगों को स्वीकार किया है।[७]

---

१. अमर २।८।८
२. अमर २।८।७
३. अमर २।८।१३
४. अमर २।८।१४
५. अमर २।८।१७-१८
६. स्वाम्यमात्यश्च राष्ट्रश्च दुर्गं कोषो बलं सुहृत।
   परस्परोपकारीदं सप्तांक राज्यमुच्यते। कामन्दक सूत्र
७. मनु। ९।२९४

कोषकार ने आठवें राज्य अंग को भी स्वकार किया है, जिसको पौराणां श्रेणयः कहा है। मुख्य राज्य के सात ही अंग माने गये हैं। आठवां अंग प्रजा होता है, प्रजा तो स्वयं राज्य का अंग होगा अगर प्रजा ही नहीं होगी तो राज्य ही कैसा होगा। राज्य का प्रमुख अंग स्वामी होता है। स्वामी से तात्पर्य राजा से है राजा क्षत्रिय कुल का होता था। अमरकोष में इसी लिए क्षत्रिय वर्ग में राज्य और राजा से सम्बन्धित समस्त बातों का उल्लेख किया गया है। राजा परम्परागत होता था अर्थात जो राजा होता था उसी की सन्तान राजा होगी राजा उच्च कुल का उदात्त, तेजस्वी प्रतिभावान प्रजा के हित के लिए सदैव तत्पर तथा वृक्षों के आदेश का पालन करने वाला हो।[1] (२) अमात्य राजा का और राज्य का सम्पूर्ण कार्य करने वाला होता था राजा अमात्य के ही बताए गए कार्यों को करता था। अमात्य को अनेक गुणों से सम्पन्न होने से राज्य का समस्त कार्य बड़े ही कुशलता पूर्वक होता है। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में अमात्य के लिए बताया है कि अमात्य सर्वगुणों से सम्पन्न हो[2] तथा अमात्य राज्य में आवश्यकता के अनुसार कितने भी हो सकते हैं। (३) राज्य का तीसरा महत्वपूर्ण अंग सुहृत माना गया है। राजा को अच्छे सुहृद की आवश्यकता हमेशा रहती है, राजा क्या उचित कर रहा है या अनुचित इत्यादि बातों की जानकारी सुहृद ही देता है। दूसरी बात यह है कि शत्रुओं की रीतिनीति को जानने के लिए सुहृद की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। राजा को बुद्धिमान नीतिवेत्ता एवं अनुभवी सुहृद बनाना चाहिए (४) कोष-"कोशश्चैव महीणानां कोशश्च विदुषांमपि।" जिस प्रकार विद्वानों को कोष की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार से राजा को भी समृद्ध कोष की आवश्यकता पड़ती है। राज्य की समृद्धि कोष (खजाने) के ही समृद्धि पर आधारित है जिसका कोष जितना ही ऊँचा होगा वह राजा सभी तरह से उतना ही सम्पन्न होगा और प्रजा उस पर प्रसन्न रहेगी। राष्ट्र भी राज्य का मुख्य अंग माना गया। छोटे छोटे गांवों को मिलाकर पुर होता था, अमरसिंह ने पुर वर्ग का स्वतन्त्र उल्लेख किया है। ग्रामों के मुखिया को ग्रामणी कहा है।[3] मनु ने दश ग्राम के मालिक दशग्रामपति बीस ग्राम के मालिक को विंशग्रामाधिपति सौ ग्राम के मालिक को शतग्रामाधिपति कहा है।[4] दुर्ग-राष्ट्र रक्षा के लिए

---

१. अर्थशास्त्र ६।१
२. अर्थशास्त्र १।१५
३. अमर ३।३।४६
४. मनु ७।११५

दुर्गों को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया गया है। प्रत्येक राजा दुर्ग का निर्माण करके राज्य की शत्रुओं से रक्षा करता था। दुर्गधारी एक व्यक्ति सैकड़ों शत्रुओं का बध कर सकता था। मनु ने ६ दुर्गों को बताया है, जिसमें राजा के लिए गिरि दुर्ग[१] का ही महत्व बताया है। बल का तात्पर्य सेना से है। सेना कितने प्रकार की होनी चाहिये क्या शस्त्रार्थ इत्यादि बल के अन्तर्गत आते हैं इसका विस्तार से वर्णन सेना और युद्ध के प्रकरण में किया जायगा।

षडगुणाः

नीति जानने वालों राजा के ६ गुण बतलाए गए हैं। १-सन्धि, २-विग्रह, ३-यान, ४-आसन, ५-द्वैध, ६-आश्रय।[२] मनु ने भी इन्हीं गुणों का उल्लेख किया है।[३] राजा को शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए इन गुणों का आश्रय लेना आवश्यक बताया गया है। (१) सन्धि का तात्पर्य मित्रता से है। एक राजा अपने विरोधी राजा को सुवर्ण, धन, हांथी, घोड़ा आदि देकर मित्रता कर ले जिससे वह उसके ऊपर आक्रमण न करे।[४] (२) विग्रह का तात्पर्य शत्रुता करना[५] अर्थात राजा आक्रमण करके राज्य लूट ले युद्ध करे या राज्य में अग्नि लगवा कर बैर बढ़ा ले (३) यान-जीतने की रक्षा से चढ़ाई या युद्ध यात्रा को यान कहते हैं। (४) आसन अपने पक्ष के दुर्बल होने से किला आदि को पुष्ट तथा सुरक्षित कर चुपचाप बैठ जाने को आसन कहते हैं। (५) द्वैध-भाव-बलवान के साथ मित्रता और दुर्बल के साथ बैर करने को या आधी सेना के साथ चढ़ाई करने को द्वैध कहते हैं, (६) आश्रय-आश्रय का तात्पर्य है कि दूसरे राजा का आश्रय लेना यह आश्रय आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए अथवा शत्रु से पीड़ित होकर अपनी रक्षा के लिए उदासीन का मध्यम राजा के शरण में जाने को आश्रय[६] कहते हैं। मनु ने भी उपर्युक्त लक्षण आश्रय के दिए हैं।[७]

---

१. मनु ७।७०

२. अमर २।८।१८

३. सन्धि च विग्रह' चैव यानमासनमेव च
द्वैधीभावं संश्रयं च षडगुणांश्चिन्तयेस्तदा। मनु ७।१६०

४. मणिप्रभा व्याख्या पृष्ठ २७०

५. मनु ७।१६४

६. मणिप्रभा व्याख्या पृष्ठ २७०

७. अर्थसम्पादनार्थं च पीड़यमानस्य शत्रुभिः
साधुषु व्यपदेशार्थं द्विविध सश्रयंः स्मृतः। मनु ७।१६८

उपर्युक्त गुण का समयानुकूल राजा को ग्रहण करना आवश्यक होता था।

शक्ति

अमरसिंह ने तीन शक्तियों का उल्लेख किया है—१-प्रभावशक्ति २-मन्त्र शक्ति, ३-उत्साह शक्ति।[1] कोष और दण्ड बल प्रभावशक्ति के अन्तर्गत आते हैं। विक्रम, पौरुष, सेना, बल इत्यादि उत्साह शक्ति के अन्तर्गत आते हैं। उपर्युक्त बताए गये षडगुण साम इत्यादि भेद आदि का उपयुक्त प्रयोग मन्त्र शक्ति के अन्तर्गत आते हैं।[2]

त्रिवर्ग

अमर कोष में त्रिवर्ग के अन्तर्गत क्षय, स्थान और वृद्धि आये हैं। राजा के लिए इन त्रिवर्गों का ज्ञान आवश्यक होता था। क्षय का तात्पर्य अष्टवर्ग की कमी अर्थात कृषि, धन की कमी को क्षय कहते थे। सामान्य रूप से रहने को अर्थात वृद्धि और कमी न हो उसको स्थान कहा गया है तथा वृद्धि अर्थात बढ़ने को वृद्धि कहा गया है। अर्थात अष्ट वर्ग के संरक्षण एवं वृद्धि को वृद्धि कहा जाता है।

नीति

प्रजा के पालन हेतु राज्य व्यवस्था के लिए शत्रुओं के दमन हेतु चार नीतियों का उल्लेख प्राप्त होता है। यह व्यवस्था अमरकाल से भी पूर्व मानी गयी है। चार नीतियों में १-भेद, २-दण्ड, ३-साम, ४-दान[3]

भेद—शत्रु राजा के मन्त्री आदि को फोड़कर अपने वश में करने को तथा शत्रु पर अधिकार करना भेद नीति का काम माना गया है। दूसरे प्रकार से शत्रु के मित्रों में भेद डालकर अपना कार्य सिद्ध करना।

दण्ड—शत्रुओं को उनके अपराधों के कारण दण्डित करने को दण्ड कहा गया है कामन्दक नीति में इसके तीन भेद बताए गए हैं।[4]

साम—मीठे बचन या अन्यान्य उपायों से क्रोध दूर करने को साम कहा गया है।[5] अग्नि पुराण में साम के चार[6] भेद बताए गए हैं। किसी वस्तु

---

१. अमर २।८।१९
२. मणिप्रभा व्याख्या पृष्ठ १७१
३. अमर २।८।२०
४. कामन्दक नीति १७।१९
५. मणिप्रभा व्याख्या पृ० २७१
६. चतुर्विधं स्मृतं साम उपकारानुकीर्तनम्
मिथः सम्बन्ध कथनं मृदुश्वंच भाषणम
आयतेर्दर्शनं वाचा तवाहमिति चार्पयम्।

को देने को दान कहा गया है। यह प्रतिकूल शत्रु मित्र को वचन, भूमि धन आदि का दान माना गया है। इसके ५ भेद बताए गए हैं।

राज्य के आय के साधन

राज्य का स्वामी राजा होता था। राजा सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा करता था। राजा प्रजा के लिए हमेशा तत्पर रहता था। राजा प्रजा को अनेक प्रकार की सुविधाएं प्रदान करते थे, जिससे वे अपने जीवन को अच्छे ढंग से व्यतीत कर सकें। राजा प्रजा से कुछ शुल्क लेता था वह शुल्क कृषि, जंगल, व्यापार इत्यादि से प्राप्त होता था।

महाभारत के अनुसार राजा के आय के साधन उपज का छठां भाग बलि रूप में तथा अपराधियों से प्राप्त हुआ धन दण्ड रूप में थे। राजा इस धनागम को शास्त्रानुसार अपना वेतन मानता था।[1] जातकों के अनुसार राजकीय आय का साधन भूमिकर था। संभवतः राजकम्मिकों ने भूमि की माप कर डाली थी और कर नियत कर दिया था। उत्पन्न की हुई वस्तुओं में जो कुछ मिलता था उसका नाम रज्जोभाग (राजभाग) था।[2] अमरकोष में आयंक साधनों में दण्ड, कर, शुल्क, प्राकृत, उपायन आदि शब्द उल्लिखित हुए हैं।[3] इसके अतिरिक्त अन्य आय के साधनों में राजनीति के अष्ट वर्ग कृषि वाणिज्य, दुर्ग, सेन, कुंजर वन्धन खन्याकर इत्यादि।[4]

दण्ड—दण्ड दो प्रकार का बताया गया है। प्रथम, अंगकर्त्तन, कारागार बन्धन मृत्युदण्ड दूसरे प्रजा के दण्ड में आर्थिक दण्ड जो कि विभिन्न अपराधों में दिये जाते थे।१ आर्थिक दण्ड से प्राप्त राशि राजा के आय का साधन होती थी।

कर—कृषि इत्यादि में छठां भाग राजा का होता था, जिसको कर कहा जाता था। यह राजा के आय का मुख्य साधन होता था।

शुल्क—नदी, तालाब, जंगल इत्यादि पर राजा के ओर से शुल्क लगा रहता है। उसका उपयोग करने वाले निर्धारित शुल्क राजा को देते थे।[5] आज भी इसी प्रकार का शुल्क लगाया जाता है।

---

१. महाभारत शान्ति पर्व १७।१०
२. प्रा० भारत की सामाजिक संस्कृति डा० रामजी उपाध्याय पृ० ५१५
३. अमर २।८।२७।२८
४. सुधाव्याख्या पृष्ठ २७२
५. मनुष्मृति आठवां अध्याय

उपायन–यह राजा को स्वेच्छा से प्रजा प्रदान करती थी। राजा वर्ष भर में एक बार अपने राज्य के अधिकांश भागों में जाता था। जहां राजा जाता था वहाँ की प्रजा राजा को नजराना भेंट करती थी जो कि राज्य के आय का साधन बनता था।

उपर्युक्त ही राज्य के आय के साधन विद्यमान थे।

सेना और युद्ध

जिस प्रकार राष्ट्र रक्षा हेतु प्रजा का पालन अर्थात लोकाराधन आवश्यक हो जाता है उसी प्रकार से राष्ट्र रक्षा हेतु सेना का पालन आवश्यक होता है। देश में आन्तरिक शान्ति सुरक्षा हेतु भी सेना का महत्व विशेष रूप से है। अधिकांश राजाओं को अकारण युद्ध की इच्छा होती थी तथा कुछ राजा अकारण किसी राजा का राज्य बांट लेने के लिए शत्रु राजा संघ बनाकर आक्रमण कर सकते थे।[1] ऐसी स्थिति में सेना का रखना आवश्यक हो जाता था। युद्ध भारत वर्ष में वैदिक काल से चला आ रहा है। देवासुर संग्राम और आर्यों और दासों का युद्ध वैदिक काल में हुए। इसके पश्चात महाभारत में युद्ध का ही वर्णन प्राप्त होता है। संस्कृत साहित्य के महाकाव्य, नाटक इत्यादि में युद्ध का ही वर्णन प्राप्त होता है। अतः युद्ध की प्रथा प्राचीन है। आजकल तो बहुत छोटी छोटी बातों को लेकर अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध हो रहे हैं।

शस्त्र

अमरकोष में युद्ध के निमित्त रखे गये सेना, योद्धाओं का वर्णन प्राप्त होता है। उस समय युद्ध बाण[2] शक्ति[3] से होता था। शक्ति एक प्रकार का शस्त्र माना गया है। अन्य शास्त्रों में याष्टीक (लाठी) कसिकेति (तलवार) प्रासिक कौन्तिक (भाला) तथा चर्म[4] नामक हथियार होता था जिनको धारण करके सैनिक युद्ध करते थे। भारतीय युद्ध की परम्परा धनुष बाण पर ही आधारित हैं। आर्यकालीन युद्ध धनुष बाण के द्वारा ही हुआ, रामायण, महाभारत कालीन युद्ध का भी मुख्य शस्त्र धनुष बाण ही था। अमर काल में भी धनुष[5] वाण का प्रचलन था। धनुष के कई प्रकारों का उल्लेख किया गया है। कर्ण

---

१. मणि प्रभा पृष्ठ २७४
२. प्रा० भा० सा० सं० रामजी उपाध्याय पृ० ५३५
३. अमर २।८।६८
४. अमर २।८।६९
५. अमर २।८।७१

का धनुष 'कालपृष्ट' अर्जुन का धनुष 'गाण्डीव'[1] इत्यादि । बहादुरों के धनुषों का भी उल्लेख मिलता है। धनुष के बीच भाग को लस्तक डोरी को मौवी कहा जाता है।[2]

धनुष के द्वारा बाण चलाया जाता था । बाण लकड़ी वा लोहे[3] के होते थे। बाण में पंख लगा होता था कुछ बाण विष से बुझाए[4] जाते थे जिनके प्रहार से शत्रु का बचना मुश्किल हो जाता था। बाण को रखने के लिए चमड़े का बना एक तरकस[5] होता था जो कन्धे में पीछे की ओर लटकाया जाता है।

तलवार

प्राचीन काल में राजाओं का मुख्य शस्त्र तलवार मानी जाती थी। इसको खड़ग और चन्द्रहार नामों से कहा जाता है। इसके मूठ[6] जो हांथ में पकड़ी जाती है को 'स्तरु' तथा ढाल को फलक[7] कहा जाता है। मेखला जिसमें तलवार लटकाई जाय, तलवार को लटकाने के लिए चमड़े इत्यादि की बनी हुई कमर में कसी जाने वाली पेटी, लड़ाई में तलवार हांथ से छूट न जाय इस वास्ते कलाई पर बांधे हुए चमड़े को म्यान भी कहते हैं।[8]

अन्य शस्त्रास्त्रों में मुद्गर, करबालिका (एक तरफ धार वाली छोटी तलवार या गुप्ती) भिन्दिपाल[9] (नालिका नामक हथियार) परिध (लोहे का मढ़ा हुआ डंडा)[10] कुठार (फरसा) धुरिका (आधुनिक छूरा या चाकू) तोमर (गड़ासा) कुन्त (फरसा) इत्यादि जो कि अमरकोष में उल्लिखित किए हैं[11] वस्तुतः उस समय राजा के यहाँ युद्धार्थ यही शस्त्र होते थे।

युद्ध की प्रक्रिया

प्राचीन भारत में युद्ध की प्रक्रिया में एक दो विशेष परिवर्तन मिलते हैं। अधिकतर राजा धर्मवादी होते थे। वे युद्ध सूर्योदय के बाद युद्धघोष होने पर

---

१. अमर २।८।८३
२. अमर २।८।८५
३. अमर २।८।८७
४. अमर २।८।८८
५. अमर २।८।८९
६. अमर २।८।९०
७. अमर २।८।९०
८. मणिप्रभा व्याख्या पृ० २९७
९. मणिप्रभा व्याख्या पृ० २९८
१०. सुधा व्याख्या पृष्ठ २९४
११. अमर २।८।९२-९३

ही युद्ध करते थे तथा शाम को सूर्यास्त हो जाने पर युद्ध बन्द हो जाता था। महाभारत का युद्ध उदाहरण है। इसके बावजूद भी युद्ध छल कपट का होता था बिना छल कपट युद्ध में विजय में सन्देह रहता है। महाभारत धर्म युद्ध होते हुए भी कठिन से कठिन व्यूहों के द्वारा छल कपट से युक्त था। अमरकाल में भी युद्ध में व्यूह रचना[1] प्रचलित था। व्यूह चार प्रकार के बताए गए हैं। (२) भोग (३) मण्डल (४) असंहत। तिर्यंग वृत्ति दण्ड, एक दूसरे के पीछे किया गया सैन्य विन्यास भोग चारी और किया गया सेना का विस्तार मण्डल तथा सैनिकों को पृथक पृथक रखना असंहत कहलाता है[2] मनुस्मृति में आठ प्रकार के व्यूहों को बताया गया है।[3] महाभारत में क्रोंच व्यूह, श्येन व्यूह, चक्रव्यूह, गरुड़ व्यूह, मकरव्यूह, सर्वतोभद्र व्यूह, पद्म व्यूह आदि का विवरण प्राप्त होता है। अमरकाल तक व्यूहों की संख्या कम हो चुकी थी। चार ही व्यूहों का उल्लेख किया गया है।

सेनांग

सेना के अंग चार बताए हैं। (१) हस्ति, (२) अश्व, (३) रथ, (४) पदाति। इन सबका सं० प्रमाण इस प्रकार से दिया गया है।

१—**पत्ति**[4]—जिसमें १ हांथी, १ रथ तीन घोड़े और पांच पैदल हों उस सेना विशेष को पत्ति कहा गया है। महाभारत में पत्ति के लक्षण इसी प्रकार से बताया गया है।[5]

२—**सेनामुख**—३पत्ति (३ हांथी ३ रथ ९ घोड़ा और १५ पैदल) को सेना मुख, ३ सेना मुख को गुल्म (९ हांथी ९ रथ २७ घोड़ा और ४५ पैदल) कहते हैं। ३ गुल्म (२७ हांथी, २७ रथ ८१ घोड़े और १३५ पैदल) को गण कहते हैं। तीन गण की एक वाहिनी, ३ वाहिनी का एक पृतना ३ पृतना का एक चमू तथा ३ चमू का एक अनाकिनी तथा दश अनाकिनी की एक अक्षौहिणी होती थी।[6]

---

१. अमर २।८।७८

२. अमर २।८।८०

३. तिर्यग्वृत्तिस्तु दण्ड स्याद्भोगोऽन्वावृत्तिखेच
मण्डलः सर्वतो वृत्तिः पृथग्वृतिरसंहत ।। कामन्दक सूत्र

४. मनु० ७।१८७,१९१

५. एको गजो रथ्यो को नराः पंच पदातपः ।
त्रयश्च तुरगार तज्ज्ञौ पत्तिरित्यभिधीयो ।

६. मणि प्रभा व्याख्या पृष्ठ २९२

निम्नांकित तालिका के आधार पर यह संख्या स्पष्ट हो जायगी।[1]

क्रम संख्या	इकाई	रथ	हस्ती	अश्व	पदाति	योग
१.	पत्ति	१	१	३	५	१०
२.	सेनामुख	३	३	९	१५	३०
३.	गुल्म	९	९	२७	४५	९०
४.	गण	२७	२७	८१	१३५	२७०
५.	वाहिनी	८१	८१	२४३	४०५	८१०
६.	पृतना	२४३	२४३	७२९	१२१५	२४३०
७.	चमू	७२९	७२९	२१८७	३६४५	७२९०
८.	अनाकिनी	२१८७	२१८७	६५६१	१०९३५	२१८७०
९.	अक्षौहिणी	२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०	२१८७००

इस प्रकार उपर्युक्त तालिका में सेना के विभिन्न अंगों में विभिन्न इकाइयों पर संख्याएं बताई गई हैं। जिस प्रकार से आज सेक्शन, प्लाटून और कम्पनी आदि की सेनाओं की टुकड़ियां होती हैं, उसी प्रकार पहले सेनाओं की टुकड़ियां पत्ति, सेना, गुल्म, गण, वाहिनी' पृतना, चमू, अनाकिनी और अक्षौहिणी में विभक्त थीं।

●

परवर्ती कोषों पर उनका प्रभाव

अमरकोष संस्कृत साहित्य का एक ऐसा कोष है जिसमें ब्रह्माण्ड के अधिकाधिक शब्दों को ढंग से सजाया गया है। इस कोष में तत्कालीन संस्कृति का स्पष्ट चित्र अंकित है, परवर्ती कोषों के लिए यह कोष उपजीव्य रहा है। तात्पर्य यह कि किस प्रकार से अमरकोष में भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक आदि तत्वों का प्राचुर्य है उसी प्रकार से परवर्ती कोषों में भी समस्त तत्वों को संग्रह करने का प्रयास किया गया है। अमरकोष के ही समान मूलतः लिखे गए कोषों में अभिधान रत्नमाला, वैजयन्ती, त्रिकाण्ड शेष, अभिधान चिन्तामणि आदि मुख्य हैं। इन कोषों की सांस्कृतिक सामग्री का आधार अमरकोष ही है। अतः यह स्पष्ट होता है कि अमरकोष से ही प्रभावित

१. मणि प्रभा पृष्ठ २९४

होकर इन कोषों में कोषकारों ने शब्दों का संग्रह किया है। अमरकोष का प्रभाव परवर्ती कोषों में निम्न प्रकार से पड़ा।

१. कोष का विभाग :—अमरकोष में शब्दों का संग्रह विभाग के आधार पर किया गया है। भूमि वर्ग, पुरवर्ग, दिग्वर्ग, स्वर्ग वर्ग, ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि वर्ग और इन समस्त वर्गों में वर्ग से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह है। इसी प्रकार से परवर्ती कोषों में वर्गों का विभाग किया गया है और सम्बन्धी वर्गों में शब्दों का संग्रह किया गया है। अभिधान रत्नमाला में जैसे स्वर्गकाण्ड, भूमिकाण्ड, पाताल काण्ड आदि, इसी प्रकार वैजयन्ती में, स्वर्गकाण्ड, अन्तरिक्ष काण्ड, भूमिकाण्ड, पाताल काण्ड, अभिधान चिन्तामणि में, देवाधि देवकाण्ड, देवकाण्ड, मर्त्यकाण्ड, तिर्यक् काण्ड, नारक काण्ड, सामान्य काण्ड। परवर्ती कोषों का यह अनुकरण अमरकोष का ही है।

२. शब्द चयन का क्रमः—अमरकोष में शब्द चयन के लिए किसी भी प्रकार से वर्णमाला का आश्रय नहीं लिया गया। सम्बन्धित वर्गों में शब्दों का संग्रह किया गया है। इसी प्रकार से परवर्ती कोषों में जो अमरकोष से प्रभावित होकर लिखे गये हैं शब्दों का संग्रह किया गया है।

३. कोष का आधार :—जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है कि अमरकोष-प्राचीन महाकाव्य, पुराण, वैदिक कोष, पाणिनि अष्टाध्यायी आदि के आधार पर लिखा गया है। इसी प्रकार से अमरकोष से प्रभावित कोष उपर्युक्त ग्रन्थों को तो आधार बनाया ही साथ ही अपने कोष के लिए अमरकोष से भी पर्याप्त सामग्री ली है।

४. कोष की पद्धतिः—शब्दार्थ संग्रह के लिए अमरकोष में समानार्थक, अनेकार्थक और उभयार्थक पद्धतियों का आश्रय लिया गया है। इसी प्रकार से बाद के कोषों में भी इसी प्रकार की पद्धतियों का अनुकरण किया गया है। जैसे हारावली, अभिधान रत्नमाला, वैजयन्ती, त्रिकाण्ड शेष, अभिधान चिन्तामणि आदि।

५. भाषाः—अमरकोष में शब्दों का संग्रह श्लोकों में किया गया है। बाद के कोषों में भी शब्दों का संग्रह श्लोकों में किया गया जो अमरकोष का ही प्रभाव है क्योंकि अमरकोष के पूर्व उपलब्ध कोष निघण्टु (वैदिक कालीन कोष) श्लोकों में नहीं है। अतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि कोषों में श्लोकों में शब्द संग्रह की प्रणाली अमरकोष की है। जिसको परवर्ती कोषों में भी स्वीकार किया गया है। इसके साथ ही अमरकोष में जिस प्रकार साधारण

स्पष्ट श्लोकों में शब्दों का संग्रह किया गया है। उसी प्रकार से सरल श्लोकों में शब्दों का संग्रह बाद के कोषों में भी किया गया है।

६. **सांस्कृतिक सामग्री**:––अमरकोष की सांस्कृतिक सामग्री का अनुकरण बहुत से कोषों में किया गया है। जिन सबका अलग अलग नामोल्लेख नहीं है। अमर कोष से ही आधार की पूर्ण सांस्कृतिक सामग्री अभिधान चिन्तामणि (हेमचन्द्र) में प्राप्त है जिसको निम्न आधारों पर प्रस्तुत किया जा सकता है।

१. **भौगोलिक सामग्री**:—अमरकोष में भारतवर्ष का उल्लेख प्राप्त होता है।[१] जिसके उत्तर में हिमालय और दक्षिण पूर्व में समुद्र है। भारतवर्ष की राजधानी हस्तिनापुर प्राचीन काल से मानी गई है जिसका उल्लेख हेमचन्द्र ने अभिधान चिन्तामणि में किया है।[२] पर्वतों में उदय, अस्त, हिमालय, मैनाक, कैलास, क्रौच, मलय, माल्यवान, विन्ध्य, सुबेल, आदि का उल्लेख अभिधान चिन्तामणि में किया गया है।[३] जिनका उल्लेख अमरकोष में भी किया गया है।[४] इसी तरह से गंगा, यमुना, गोदावरी, तापी, शतद्रु, काबेरी, करतोया, गोमती, सरस्वती, विपाशा आदि नदियों का उल्लेख किया गया है।[५] देश के विभिन्न नगरों में गया, कन्नौज, काशी, अयोध्या, मिथिला, चेदिपुरी, कौशाम्बी, उज्जयिनी, पाटलीपुत्र, मथुरा, द्वारका आदि का उल्लेख प्राप्त है। ये सभी स्थान अमरकोष में भी उल्लिखित है।

इस प्रकार से अगर देखा जाय तो जिस भौगोलिक सामग्री का संचय अमरकोष में किया गया है उसी का अनुकरण अभिधान चिन्तामणि में भी किया गया है।

२. **सामाजिक व्यवस्था**:—प्रस्तुत कोष में चातुर्वण्य का क्रमशः उल्लेख किया गया है[६] साथ ही ब्रह्मचारी, गृही, वानप्रस्थ, संन्यास चारों आश्रमों का उल्लेख है।[७] ब्रह्मचारी भिक्षा से अपनी भूख मिटाता था।[८] ब्रह्मचर्यावस्था

---

१. अमर कोष २।१।६
२. अभिधान चिन्तामणि ४।४४
३. अभिधान चिन्तामणि ४।६३ से ६६ तक
४. अमरकोष २।३।२,३,४
५. अभिधान चिन्तामणि ४।१४७ से १५२
६. अभिधान चिन्तामणि ३।४७१
७. अभिधान चिन्तामणि १।४७१
८. अ० चि० ३।४७८

में ही यज्ञोपवीत संस्कार का विधान बनाया गया है। इस समय ब्रह्मचारी पलाश धारण करता है।[१] ब्रह्मण जातीय ब्रह्मचारी का दण्ड पलाश या बांस का, क्षत्रिय जातीय ब्रह्मचारी का दण्ड बेल या पीलु का और वैश्यजातीय ब्रह्मचारी का दण्ड पीपल या गूलर का होता है।[२] इन सबका क्रमशः उल्लेख किया गया है। गृही के अन्य रिश्तों में भाई चाचा, शाला, मामा, मामी, बहन, शाली आदि का क्रमशः उल्लेख किया गया है।[३] विवाह की प्रथा थी। क्वारी स्त्री को कन्या, कनी, कुमारी कहा गया है तथा विवाह से मुक्त स्त्री को सधर्मिणी, पत्नी, सहचरी आदि शब्दों को कहा गया है।[४] स्त्रियों के दस अलंकारों का उल्लेख किया गया है।[५] मनुष्य के समस्त अवयवों का क्रमशः उल्लेख किया गया है।[६] स्त्रियां शरीर में लेप लगाती थीं जो कर्पूर, अगर, कंकोल और चन्दन द्रव को मिश्रित करके बनाया जाता था।[७] चन्दन, कस्तूरी, कपूर, कुंकुम आदि भी लगाने की प्रथा थी।[८] चूड़ामणि स्त्रियां धारण करती थीं।[९] माला भी धारण करती थीं माला के बीच में कुछ बड़े दाने कीमती आभूषणों के बनाये जाते थे।[१०] स्त्रियां बालों के बीच फूल की माला स्थापित करती थीं जिसको गर्मकः कहा गया है।[११] कान में पुष्प लेगाती थीं जिसको कर्ण पूर कहा गया है।[१२] अन्य आभूषणों में सोने के बने हुए कर्णभूषण को प्रालम्बिका, मोती के बने हुए कण्ठ भूषण को उरः सूत्रिका, कंकण, अंगूठी करधनी, घुंघुरू, नूपुर आदि का उल्लेख किया गया है।[१३] यन्त्रों का भी उल्लेख किया गया है।[१४]

---

१. अ० चि० म० ३।४७८
२. मणि प्रभा व्याख्या पृ० २०२
३. अ० चि० म० ३।२१५,१६,१७
४. अ० चि० म० ३।१७६
५. अ० चि० म० ३।१७२
६. अ० चि० म० ३।२३० से २९५
७. अ० चि० म० ३।३०२
८. अ० चि० म० ३।३०९
९. अ० चि० म० ३।३१४
१०. अ० चि० म० ३।३१४
११. अ० चि० म० ३।३।१५
१२. अ० चि० म० ३।३१८
१३. अ० चि० म० ३।३१९ से ३२६ तक
१४. अ० चि० म० ३।३३०

कोष में सभी मास और ऋतुओं का उल्लेख क्रमशः किया गया है। अगहन मास, पौष, माघ, फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक, ।[१] ६ ऋतुओं के क्रमशः नाम हेमन्त शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद है।[२] इसी प्रकार रात दिन और समस्त तिथियों का क्रमशः उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था का उल्लेख विधि पूर्वक अभिधान चिन्तामणि में किया गया है जो क्रमशः अमरकोष का ही अनुकरण है जिससे स्पष्ट होता है कि अमरकोष से ही प्रभावित होकर ही इस प्रकार से शब्दों का उल्लेख किया गया है।

आर्थिक व्यवस्थाः—मनुष्य का जीवन पूर्ण अस्तित्व के साथ तभी पनप सकता है, जब उसकी आर्थिक शक्ति मजबूत हो। व्यापार में मुख्य कृषि कार्य होता था कृषि करने वाले व्यक्ति को किसान कर्षकः क्षेत्री, हली आदि नामों से कहा गया है।[३] कृषि कार्य सम्पन्न करने के लिए अन्य उपकरणों में हल, फाल, कुद्दाल, कोटिशः आदि नामों का प्रयोग किया[४] गया है।

पशुपालन का भी कार्य होता था इसके लिए पाशुपाल्यम् और जीववृत्तिः शब्द प्रयुक्त किये गए हैं। इसके स्वामी को गोस्वामी, गोमान और गवीश्वर कहा गया है[५] कलाकारों को कारीगर या कारुः कारी कहा गया है[६] ये लोग अपने कला के द्वारा जीवन वृत्ति चलाते थे। समाज के कुछ अन्य वर्ग विभिन्न पारंपरिक कार्य करके अपना जीवन यापन करते थे, जैसे फूलमाला का कार्य करने वाले मालाकार, तांबे के बर्तन आदि बनाने वाले शौल्बिकः, कपड़े सीने वाले तुन्नवाय, जुलाहा, तुन्तवाय आदि नामों का उल्लेख है।[७] इसी तरह अन्य व्यापारियों में लोह का काम करने वाले को लोहकार गांव का बढ़ई जो किसानों के आधीन रहकर हल आदि का कार्य करता है उस साधारण बढ़ई को ग्रामतक्ष, हलवाई को मक्ष्यकार, चित्रकार को रंगाजीवः, नाई को नापित आदि कहा गया है।[८] इसी तरह कुछ लोग अन्य कला के माध्यम से अपना जीवन यापन करते थे जैसे कुछ संगीत के द्वारा जीवन यापन करते थे और कुछ लोग जदू, माया या इन्द्रजाल प्रदर्शन करके अपना जीवन यापन करते थे।

---

१. अ० चि० म० २।६५ से ६९ तक
२. अ० चि० म० २।७० से ७३ तक
३. अ० चि० म० ३।५५५
४. अ० चि० म० ३।५५६,५७,५८
५. अ० चि० म० ३।५५२,५३
६. अ० चि० म० ३।५६४
७. अ० चि० म० ३।५७४ से ७६
८. अ० चि० म० ३।५८६

इस प्रकार से आर्थिक स्थिति सुदृढ़ करने के लिए मनुष्य विभिन्न व्यापारी में लगे हुए थे जिन सबका उल्लेख प्रस्तुत कोष में अमरकोष के आधार पर किया गया है।

धर्म और दर्शन

अभिधान चिन्तामणि में धार्मिक और दार्शनिक दोनों तत्वों का विवेचन है। श्री हेमचन्द्र जैन धर्म को स्वीकार किया था। इसलिए सर्वप्रथम कोषकार ने जिनेन्द्र के ही नामों का उल्लेख करके यह स्पष्ट कर दिया है कि मैं जैन धर्म मतावलम्बी हूँ और ऋषभदेव, सहित २४ तीर्थंकरों के नामों का क्रमशः उल्लेख किया है।[1] सम्पूर्ण देवकाण्ड में जैन धर्म के ही देवताओं का क्रमशः उल्लेख किया गया है। द्वितीय देवकाण्ड में वैदिक देवताओं का उल्लेख किया गया है। सूर्य, उषा आदि मुख्य हैं। लौकिक देवताओं का भी उल्लेख है जिसमें शिव, विष्णु, बलराम, कामदेव आदि देवों का उनके गणों सहित उल्लेख किया गया हैं।[2]

पंच महायज्ञों का भी क्रमशः उल्लेख किया गया है।[3] वैदिक यज्ञों का भी विधान था। यज्ञ में हवन कुण्ड का भी विधिवत उल्लेख किया गया है।[4]

प्रत्यक्ष तौर पर दार्शनिक सामग्री स्वयं अल्प है। अप्रत्यक्ष रूप दार्शनिक तत्वों का उल्लेख किया गया है। जिसमें सांख्य के २५ तत्व वेदान्त का ब्रह्म आदि।

इस प्रकार स्पष्ट रूप से इस सामग्री का आधार भी अमरकोष रहा है।

राजनैतिक व्यवस्था

देश में प्रजा का पालन राजाओं का मुख्य धर्म था, राजा को पृथ्वी का इन्द्र कहा गया है। इसके लिए पृथ्वी शक्रः शब्द प्रयुक्त हुआ है।[5] छोटे छोटे राजाओं पर शासन करने वाला सम्राट कहा गया है।[6] और सम्पूर्ण विश्व का

---

१. अ० चि० मणि ३।५८९
२. अ० चि० म० १।२४ से ७१
३. अ० चि० म० २।१२९
४. अ० चि० म० ३।४८९
५. अ० चि० म० ३।४९०
६. अ० चि० म० ३।३५३

शासक चक्रवर्ती राजा कहलाता था। बारह चक्रवर्तियों का उल्लेख किया गया है।[1] राजा के षडंगों का वर्णन किया गया है, जिसके आधार पर राजा प्रजा की रक्षा करते हुए अपनी राज्य पर शत्रुओं के आक्रमण को बचा सकता है। राजा के आय के साधन प्रजा ही होते थे। राजा के समस्त नौकर सेवकों का भी क्रमशः उल्लेख किया गया है।[2] राजा का मन्त्री राजा का बहुत विश्वासी होता था।[3] राजा का अंगरक्षक भी होता था।[4] भोजन बनाने वाला अलग ही व्यक्ति होता था।[5]

उपर्युक्त राजनैतिक व्यवस्था का संक्षिप्त चित्रण जो इस कोष में प्राप्त है उसका मूल आधार अमरकोष ही है। इस तरह से अमरकोष के सांस्कृतिक तत्वों का प्रभाव परवर्ती कोषों में अत्यधिक पड़ा है। जिन सबका उल्लेख करना संभव नहीं है।

●

---

१. अ० चि० म० ३।३५४
२. अ० चि० म० ३।३८२
३. अ० चि० म० ३।३८३
४. अ० चि० म० ३।३८५
५. अ० चि० म० ३।३८६

पंचम अध्याय

पालि प्राकृत कोष

प्राकृत कोष

•

संस्कृत भाषा काल में जैन और बौद्ध, तत्काल की काव्य भाषा में धर्मोपदेश को लिपिबद्ध करने की प्रथा प्रारम्भ की थी, जिससे दो भाषाओं का जन्म हुआ (१) अर्ध मागधी, (२) पालि । ये दोनों भाषाएं प्राकृत भाषा के नाम से व्यवहृत हैं । कोई भी भाषा सदैव एक समान गति में न रहकर परिवर्तनशील होती हैं । साहित्य की भाषा और कथ्य भाषा में अन्तर के साथ ही जन साधारण के अप्रचलित मातृभाषा में परिणत होती है और इसके पश्चात कथ्य भाषा से नये साहित्य का सृजन होता है । कथ्य भाषा से ही लौकिक संस्कृत उत्पन्न हुई थी और मातृभाषा में परिणत हो गई । इसके पश्चात अर्धमागधी और पालि आदि प्राकृत भाषाओं ने अपना साहित्य में स्थान प्राप्त किया । साथ ही संस्कृत भाषा के समस्त पहलुओं का अनुकरण करके साहित्य में अपना स्थान बताया ।

कुछ विद्वान प्राकृत के वैयाकरण-गण प्राकृत शब्द की व्युत्पत्ति में प्रकृति शब्द का अर्थ संस्कृत करते हुए प्राकृत भाषाओं की उत्पत्ति लैकिक संस्कृत मानते हैं ''प्रकृतेः संस्कृतादागतं प्राकृतम्''[1] कुछ विद्वानों का कथन है कि प्राकृत शब्द 'प्रकृत' शब्द से बना है । 'प्रकृति' का अर्थ है संस्कृत भाषा, संस्कृत भाषा से जो उत्पन्न हुई है वह है प्राकृत भाषा । प्राकृत भाषा का स्थान साहित्य में निम्न समयानुसार तीन युगों में था ।

(१) प्रथम युग ४०० ई० पू० से १०० ई० तक

(२) मध्य युग १०० ई० से ५०० ई० तक

(३) शेष युग ५०० ई० से १००० ई० या १२०० ई० तक ।

---

१. वाग्भट्टालंकार टीका २,२ संस्कृत रूपायाः 'प्रकृतेरुत्पन्नत्वात् प्राकृतम्'

उपर्युक्त युगों में प्राकृत साहित्य का अत्यन्त विकास हुआ। प्रथम दो युगों में तो कोई कोष लिखे जाने के प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं। प्राकृत साहित्य में कोष का प्रणयन तीसरे अर्थात शेष युग में हुआ है। इस युग में संस्कृत भाषा के निम्न पद्धति के अनुकरण के साथ कोष की रचना हुई।

संस्कृत कोषों की परम्परा पर निर्मित अन्यान्य कोष

प्राकृत-पालि आदि

संस्कृत भाषा की भाँति प्राकृत और पालि में भी कोष लिखे गए हैं। संस्कृत भाषा की निम्न परम्परा प्राकृत और पालि कोषों में भी उपलब्ध है।

१. प्राचीन संस्कृत कोष श्लोकबद्ध लिखे गए हैं।

२. संस्कृत कोषों की केवल दो पद्धतियाँ प्राप्त होती हैं।
 १—अनेकार्थक २—एकार्थक।

३. शब्द संग्रह के क्रम में काण्ड, वर्ग, अध्याय आदि का उल्लेख मिलता है।

४. मंगलाचरण में देवता के स्तुति के श्लोक मिलते हैं।

५. लिंग भेद का भी उल्लेख मिलता है।

६. किन्हीं-किन्हीं कोषों में शब्द संग्रह श्लोकबद्ध नहीं हैं।

७. वर्ग से सम्बन्धित ही शब्द संग्रह किया गया है जैसे-स्वर्ग वर्ग में स्वर्गस्थ देवताओं का ही उल्लेख है। आदि।

आगे पालि और प्राकृत भाषा कोषों का परिचय प्रस्तुत किया गया है।

लेखक का परिचय

पाइअलच्छी नाममाला (धनपाल)

पाइअलच्छी के लेखक धनपाल ने अपना सम्पूर्ण परिचय कोष के अन्त में स्वयं दिया है "विक्रम के १०२६ वर्ष जीत जाने पर जब मालव के राजा ने मान्यखेट-मलेखडा नगर पर धावा किया तब धारा नगरी के निर्दोष मार्ग पर रही हुई सुंदरी नाम की अपनी छोटी बहिन के लिए धनपाल कवि ने यह देशी कोष "प्राकृत लक्ष्मी नाममाला" बनाया।[1]

मध्यप्रदेश में संकाश्य नामक गाँव में देवर्षि नाम का ब्राह्मण था अपने देश में मालव देश की राजधानी धारा नगरी में रहने लगा था। उसके पुत्र का

---

१. **विक्कम कालस्स गए अउणत्ती सुत्तरे सहस्सम्मि (१०२६)
मालवनरिंदधाडीए लूडिए मन्नखेडम्मि ॥ पाइअलच्छी
धारानयरीय परिट्ठिएण मग्गेठिआए अणवज्जे । नाममाला
कज्जेकणिट्ठ बहिजीए 'सुंदरी' नामधिज्जाए ॥ २७६, २७७**

नाम सचदेव था[1] और सर्वदेव के दो पुत्र हुए (१) घनपाल, (२) शोभन। पिता के आज्ञा से शोभन चंद्रगच्छ के आचार्य महेन्द्र सूरि का शिष्य हो गया था और जैन धर्म के प्रचार प्रसार में इधर उधर ग्राम छोड़कर घूमता था। धनपाल ब्राह्मण था वैदिक परम्परा में श्रद्धा रखता था तथा धारा नगरी के राजा भोज का सभापण्डित था, भोज से धनपाल अत्यन्त सम्मानित था एक बार अपने भाई के साथ आए हुए जैन आचार्यों से वार्ता हुई और उन सबसे प्रभावित होकर धनपाल जैन धर्म स्वीकार कर लिया और तभी से जैन धर्मावलम्बी हो गए। एक बार राजा भोज ने धनपाल को आदेश दिया कि कोई रचना करो। उस पर धनपाल ने तिलक मंजरी नाम की एक जैन कथा की रचना की। यह कथा १२ हजार श्लोकों वाली थी।[2] इस कथा के अन्तर्गत ४ नाम ऐसे थे जिनको परिवर्तित करने के लिए राजा भोज ने कहा (१) अयोध्या नगर के स्थान में धारा नगरी (२) भगवान वृषभदेव के स्थान में वृषभध्वज महाकाल (३) शक्रावतार तीर्थ के स्थान के महाकाल तीर्थ तथा मेघवाहन राजा के नाम के स्थान में राजा भोज का नाम ऐसा परिवर्तित करने के लिए राजा ने कहा लेकिन धनपाल विमुख हो गए तब राजा ने इस पुस्तक को अग्नि में जलवा दिए। धनपाल खिन्न मन घर आये। उनकी लड़की ने पूछा पिताजी आप खिन्न मन क्यों हैं। धनपाल ने पूरी कथा बता दी तब लड़की ने कहा पिताजी जब आपकी कथा गूंथी जाती थी तभी मैं सुनकर याद कर लेती थी जिससे मुझको याद है। आप फिर से लिख लीजिए चिन्ता की कोई बात नहीं तब धनपाल ने फिर से कथा लिखी और अपनी लड़की के नाम पर ही उस कथा का नाम तिलक मंजरी रखा।[3]

धनपाल राजा से अपमानित होकर धारा नगरी से पश्चिम की ओर सात्य पुर (साचार जि० जोधपुर) में चला गया वहाँ भगवन्त महावीर स्वामी का पुराना एक बड़ा चैत्य मन्दिर था कवि ने वहाँ रहकर भगवंत महावीर की आराधना में मन लगा दिया और सत्यपुरीय महावीर स्वामी की एक बड़ी उत्तम काव्यमय विरोधाभास अलंकार संयुक्ति स्तुति प्राकृत भाषा में लिखी यह सम्पूर्ण स्तुति ३० पद्यों में की गई है।[4]

---

१. **पाइअलच्छी नाममाला, टीकाकार बेचरदास दोसी भूमिका पृ० १६**
२. ,, ,, पृ० २७
३. **पाइअलच्छी नाममाला भूमिका बेचरदास दोसी पृ० २७-२८**
४. ,, ,, पृ० ३०

इस प्रकार धनपाल बहुत ही विद्वान था। राजा भोज फिर से ऐसे प्रतिभाशाली विद्वान को बुलाया और अत्यन्त सम्मान दिया। राजा भोज के यहाँ दुबारा आने पर धनपाल ने जैन धर्म के अनुकूल निस्पृह हो गए थे तथा किसी प्रकार का द्वेश नहीं रह गया था।[1] धनपाल ने पाइअलच्छी के अलावा अन्य ग्रन्थों की भी, उसमें मुख्य तौर पर (१) श्री ऋष पंचाशिका बृहट्टिपनिका नाम की प्राचीन जैन ग्रन्थ सूची में इसका नाम धनपाल पंचाशिका लिखा है तथा प्रभानन्द सूरि ने इस पर वृत्त बनाई है।[2] (२) सत्य पुरीय महावीर उत्साह (३) महावीर स्तुति विरोधाभास अलंकार सहित महावीर स्तुति का नाम बृहट्टिपनिका में 'बीरस्तव' लिखा है[3] (४) तिलकमंजरी यह कथा चंपूरूप वर्णन प्रधान है, (५) और शोभनमुनिकृत शोभनस्तुति ऊपर वृत्ति। इस प्रकार धनपाल द्वारा कुल (६) ग्रन्थ लिखे गए हैं।

धनपाल की उम्र मर्यादा—पाइअलच्छी नाममाला की रचना १०२९ में की गई, जिसका उल्लेख स्वयं लेखक ने किया है।[4] १०८१ में जो भूतिभंजन हुआ धनपाल भी उल्लेख उस्ताहेम किया। अतः जब पाइअलच्छी बनाई गई तब उसकी उम्र करीब २० वर्ष मानी जाय तो भी 'उत्साह' बनाने के समय उसकी उम्र का अंदाज बहत्तर वर्ष का किया जा सकता है। अनुमान है कि उत्साह बनाने के बाद दस बीस वर्ष तक और कवि जीवित रहा हो अतः ८२ या ९२ वर्ष की उम्र धनपाल की रही होगी।[5] चाहे जो भी हो ८० वर्ष से कम तो उम्र हो ही नहीं सकती है क्योंकि जब वह २० वर्ष का ही था तभी कोष लिखा और १०८१ में उत्साह में बनाया अतः ८० वर्ष से कम अवस्था धनपाल की नहीं हो सकती है। उत्साह में धनपाल का नाम दो बार आया है (१) एकजीह धनपालु मणड (एकजिह्वो धनपाला भणति (२) "तइ तुट्ठई धनपालु" (त्वयं तुष्ठेधनपालः)।

पाइअलच्छी नाममाला (धनपाल)

परिचय—पाइअलच्छी नाममाल प्राकृत साहित्य का एक छोटा कोष है। कोष में सब मिलकर शब्द पर्याय सूचक २७५ पद्य हैं। अन्त में २७६ से २७९ तक के पद्यों में ग्रंथकार ने अपना परिचय समय, नाम तथा ग्रंथ निर्माण का उद्देश्य इत्यादि बातें बताई हैं। इस प्रकार कोष में कुल २७९ पद्य हुए।

---

१. पाइलच्छी नाममाला भूमिका बेचरदास दोसी पृ० ३०
२. पाइअलच्छी नाममाला धनपाल बेचरदास दोसी भूमिका पृ० ३७
३. वही
४. पाइअलच्छी नाममाला २७६
५. पाइअलच्छी नाममाला धनपाल बेचरदास दोषी भूमिका पृ० ३१

सर्वप्रथम कोष प्रारम्भ करने के पूर्व कोषकार परम पुरुष की वन्दना की है और लिखा कि पुरुषोत्तम नाभिसंभव को नमस्कार करके 'पाइअलच्छि नाममाला नामक कोष की रचना करता हूँ।[1] केवल एक ही श्लोक में अपने इष्टदेव की प्रार्थना करने के पश्चात ही कोष लिखना प्रारम्भ कर दिया।

दूसरे पद्य से लेकर साढ़े अठारह श्लोक तक कोषकार ने एक-एक पद्य में अमुक अमुक शब्दों के पर्याय बताए हैं, जैसे ब्रह्मा के १० पर्याय पार्वती के १२ पर्याय, सूर्य के १०, चन्द्र के ११, अग्नि के ११, कामदेव के ९ इत्यादि इस प्रकार साढ़े अठारह पद्य तक ग्रन्थकार ने १ पद्य में एक ही शब्द के अमुक अमुक नामों का उल्लेख किया है। अब बीसवीं गाथा से कोषाकार एक पद्य के अर्थभाग अर्थात् आधीगाथा में ही एक शब्द के पर्याय बताता है। इस बात को स्वयं लेखक ने लिखा है।[2] कि यहां तक मैं पूरे पद्य में शब्दों के पर्याय बताते हैं और तब आधे ही पद्य में पर्याय बताऊँगा तथा ९३॥ पद्य तक लेखक आधे ही पद्य में ही शब्दों के पर्याय बताता है। ९३॥ पद्य के आगे से लेखक प्रत्येक चरण में अमुक शब्दों के पर्यायों का उल्लेख किया है अर्थात् अब एक पद्य में चार शब्दों के पर्यायों को बताने लगा। ९३॥ श्लोक के बाद लेखक ने लिखा है[3] इस प्रकार से ९५ श्लोक से २७५ तक लेखक प्रत्येक चरण में एक एक शब्दों के पर्यायों को बताया है अर्थात् प्रत्येक श्लोक में चार शब्दों के पर्यायों का उल्लेख किया है। सम्पूर्ण कोष में अनेक नाम शब्द का पर्याय दिया गया है अर्थात् एक ही नाम के कई नामों का उल्लेख किया गया है, जैसे-पार्वती के १२ नामों में दाक्षायणी, भवानी, शैलशुता, पार्वती, उमा, गौरी, आर्या, दुर्गा, सिवा, कात्यायनी[4] चंडी इत्यादि उपर्युक्त सभी नाम पार्वती के हैं। पार्वती के ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं।

इस प्रकार प्रस्तुत कोष का विषय केवल नामों के पर्यायों का उल्लेख मात्र है अर्थात् एक ही शब्द के अनेक नाम दिये गए हैं भाषा प्राकृत होते हुए भी

---

१. नमिउण परमपुरिस पुरिसुत्तमनाभिसंभवदेवं।
वुच्छं 'पाइअलच्छि' ति नाममालं निसामेह ॥१॥

२. इत्याहे गाइद्धेहिं वण्णिमो वत्थुपज्जए। पा० ना० मा० १९

३. इत्तो नामग्गामं गाहाचलणेसु चित्तेमि। पा० ना० मा० ९४
अर्थात् अब यहाँ से गाथा के एक एक चरण द्वारा वस्तु के पर्याय नाम रूप समूह को बताता है।)

४. दक्खायणी भवाणी सेलसुआ पव्वई उमागोरी
लज्जा दुग्गा काली सिवा य कच्चायणी चंडी। पा० ल० ना० ३

बहुत सरल है। छोटे-छोटे पद पढ़ने मात्र से ही अर्थगम्य हो जाते हैं जैसे प्रस्तुत श्लोक की भाषा संस्कृत भाषा से कितनी मिलती हुई स्पष्ट है।

मंदाइणी सुरणई गंगा भागीरथी य जरणसुआ।[1]
मंदाकिनी सुरसरी गंगा भागीरथी या जन्हु सुता॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भाषा बहुत ही स्पष्ट है। प्राकृत के श्लोक की दो पंक्ति के हैं जिससे पढ़ने में कोई कठिनाई नहीं मालूम होती है। संस्कृत भाषा से मिलती हुई प्राकृत भाषा है बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनमें संस्कृत और प्राकृत में कोई अन्तर नहीं मालूम होता है, जैसे परिरम्भण[2] परिमल[3] परम्परा इत्यादि शब्द हैं जो संस्कृत और प्राकृत के एक ही मिलते हैं जिससे इनको समझने में कोई कठिनाई नहीं मालूम होती है।

पद्धति एवं प्रणाली

पाइअलच्छी नाममाला प्राकृत साहित्य का पहला कोष है अर्थात् इसके पहले प्राकृत साहित्य में कोई कोष नहीं लिखे गए। प्रकृति शब्द का अर्थ स्वभाव है अर्थात् जो भाषा मनुष्य की स्वाभाविक भाषा है उसका नाम प्राकृत भाषा है जो भाषा जिनकी मातृभाषा है जिस भाषा को बोलने के लिए किसी भी प्रकार के पुस्तक ज्ञान का अभ्यास आवश्यक नहीं है अर्थात् जो भाषा जन्म से ही प्राप्त हो जाती है वह भाषा प्राकृत भाषा है इस अर्थ में संसार की समस्त भाषाएं प्राकृत के अन्तर्गत आ जाती हैं।

जिस प्राकृत में यह कोष लिखा गया वह भाषा भी एक समय साधारण बोलचाल की भाषा थी। भाषा साहित्य के इतिहास से यह पता चलता है कि जो भाषा जिस समय में प्रचलित थी वह उसी समय की बोलचाल की भाषा थी। वैदिक काल में वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत काल में लौकिक संस्कृत, पालिभाषा काल में पालिभाषा, प्राकृत भाषा काल में प्राकृत भाषा तथा हिन्दी के समय में आज हिन्दी भाषा है।

पाइअलच्छी नाममाला यों तो प्राकृत साहित्य का पहला कोष है फिर भी इसके पूर्व संस्कृत भाषा के कई कोष लिखे जा चुके हैं। इसके पूर्व वैदिक कोष

---

१. पाइअलच्छी नाममाला ३१
२. पाइअलच्छी नाममाला १६८
३. वही १४७

निघण्टु, अमरकोष, अनेकार्थ समुच्चय शाश्वत, अनेकार्थ ध्वनि मंजरी महा-क्षपणक, पर्याय रत्नमाला माधवाचार्य, पर्याय मुक्तावली हरिचरण सेन, अभिधान रत्न माला हलायुध इत्यादि कोषों की रचना, पाइअलच्छी नाममाला प्राकृत कोष के पूर्व हो चुकी थी। अतः उपर्युक्त कोषों से ही प्रभावित होकर के ही धनपाल ने प्राकृत कोष की रचना की है तथा उपर्युक्त कोषों की ही पद्धति एवं प्रणाली के ही आधार पर पाइअलच्छी नाममाला नामक कोष लिखा है। जैसे वैदिक कोष निघण्टु में अमुक अमुक के पर्यायों का उल्लेख किया गया है भूमि के १९ नाम, देव के ७ नाम इत्यादि बातों का उल्लेख निघण्टु में किया गया है। यह पद्धति अमरकोष में भी अपनाई गई है कामदेव के अमुक नाम अग्नि के अमुक नाम कृष्ण के अमुक अमुक नाम वीणा के अमुक अमुक नाम इत्यादि बातों को धनपाल ने भी उपर्युक्त पद्धति के आधार पर अपने कोष में अमुक अमुक के पर्यायों का उल्लेख किया है जैसे हाथी के १०, कमल के १०, स्त्री ११ इत्यादि प्रकार से एक ही शब्दों के पर्यायों का उल्लेख किया है। इस प्रकार पाइअलच्छी नाममाला कोष की रचना पूर्ववर्ती कोषकार के प्रणाली के ही आधार पर की गई है।

शब्द चयन का क्रम

कोषकार ने पाइअलच्छी नाममाला नामक कोष की रचना में कोई वर्णमाला के अक्षरों का क्रम नहीं रखा है जिस प्रकार से अन्य कोषकारों ने अक्षरों का क्रम न रख करके शब्द चयन के विषय का क्रम जरूर ध्यान में रखकर लिखा है, सर्वप्रथम कोषकार ने परम्परानुसार ही परम पुरुष की वन्दना की है और कोष लिखना प्रारम्भ कर दिया। कोष लिखने में सर्वप्रथम कोषकार ब्रह्मा जो आदि पुरुष हैं उन्हीं के ही नामों का उल्लेख किया है अर्थात् प्रथम श्लोक में अप्रत्यक्ष रूप से परम पुरुष विष्णु की वन्दना की है और दूसरे श्लोक में ब्रह्मा के[1] नामों का उल्लेख किया है तथा कोषकार की सबसे बड़ी चतुरता तीसरे श्लोक में परिलक्षित होती है। वह इस प्रकार हैं कि जब उपर्युक्त दो श्लोकों में विष्णु और ब्रह्मा के नामों का उल्लेख किया तो ब्रह्मा विष्णु और महेश ये तीन आदिदेव माने गए हैं तो तीसरे में महेश अर्थात शंकर का उल्लेख करना चाहिए, लेकिन कोषकार ने ऐसा न किया शंकर के पत्नी पार्वती का उल्लेख किया है। पार्वती भी आदि शक्ति मानी गई है अगर तीनों देवों का स्मरण किया गया है, वहाँ आदि शक्ति का भी स्मरण करना आवश्यक हो जाता है, तब कोषकार ने आदिशक्ति में पार्वती का ही क्यों

---

१. **कमलासणो संयंभू पिआमहो चउमुहो य परिमिट्ठी**
थेरो विही विरिंचो पयावई कमलजोणी य।२।

स्मरण किया, उसका कारण स्पष्ट है कोषकार ने एक ही श्लोक में आदिदेव शंकर और आदिशक्ति का उल्लेख करना चाहा और इसीलिए पार्वती के नामों का उल्लेख किया। पार्वती शिव की पत्नी थीं इसीलिए पार्वती के अन्य नामों में शिवा नाम भी लिया है 'शिवस्य भार्या' शिवा। शिवा पार्वती का नाम क्यों पड़ा क्योंकि पार्वती शिव की भार्या थीं, शिवा नाम लेने से पहले शिव का स्मरण होता है बाद में पार्वती का, अतः कोषकार ने शब्दों के चयन में चतुरता दिखाकर क्रमशः विष्णु, ब्रह्म, शिव और आदि शक्ति देवी का स्मरण किया है।

शब्द चयन में कोषकार ने समय का भी विशेष ध्यान दिया है जैसे पहले सूर्योदय होता है, उसको प्रातःकाल कहते हैं। जिसका उल्लेख पहले[1] बाद में सूर्य जब दोपहर को ज्यादा चमकता है तब ताप बढ़ जाता है, उसका उल्लेख बाद में तथा शाम को जब सूर्य का तेज समाप्त होता है तब उसकी किरणें स्पष्ट दिखने लगती हैं उसका उल्लेख क्रमशः बाद में शाम के बाद रात्रि[2] का उल्लेख तथा रात्रि में अंधकार और फिर प्रकाश का उल्लेख समय को ध्यान में रखकर ही कोषकार ने किया है। इसी प्रकार अन्य स्थल में भी कोषकार शब्द के चयन में क्रम का ध्यान दिया है, जैसे भयावह जंगल जिसको अरण्य[3] कहा है, उस अरण्य में शिखरचोटी, और उस शिखर में वृक्षों की शाखा और उसमें लता[4] और लता में फूल और फूल के अन्दर पराग और पराग में मकरंद[5] इत्यादि का क्रम बहुत ही अच्छे ढंग से लेखक ने रखा है जिससे यह स्पष्ट होता है कि लेखक ने शब्दों के चयन में वर्णमाला के क्रम को कोई स्थान न देकर विषय और समय स्थान का विशेष क्रम दिया है। अन्य कोषों की भांति अक्षरों का क्रम नहीं दिया क्योंकि इसमें विषय, समय, इत्यादि का क्रम समाप्त हो जाता है।

शब्द संग्रह के आधार

पाइअलच्छी नाममाला में कोषकार धनपाल ने कुल ९९८ शब्दों का संग्रह किया। कोषकार ने इन शब्दों को कहाँ से अपने कोषों में संकलित किया अर्थात किन ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर इन समस्त शब्दों को संग्रहीत किया, यह प्रश्न सामने आता है।

---

१. गोसो रयणिविरामो गोसग्गो दिणमुंह च पच्चूसो
   धम्मो तावो डाहो उम्हा उण्हं निरो होय । ४६ पाइअलच्छी नाममाला
२. रयणी विहावरी सव्वरी निसा जामिणी राई ।।४७
३. पाईअलच्छी नाममाला १३५
४. पाइअलच्छी नाममाला १३६
५. पाइअलच्छी नाममाला १३७

पाइअलच्छी नाममाला के पूर्व शाश्वत ने अनेकार्थ समुच्चय महाक्षपणक ने अनेकार्थ ध्वनि मंजरी, माधवाकर ने पर्यायरत्न माला, हरिचरण सेन ने पर्याय मुक्तावली, और हलायुध ने अभिधान रत्नमाला नामक कोष की रचना की तथा इसके बहुत पूर्व अमरसिंह ने अमरकोष की रचना की और वैदिक काल का कोष निघण्टु भी कोषकार के सामने था। कोषकार ने उपर्युक्त सभी ग्रन्थों के ही आधार पर अपने कोष की रचना की जो नीचे के शब्दों से समझा जा सकता है।

कोषकार ने पार्वती के नामों में 'शिवा'[१] शब्द लिया है। इसी प्रकार गौरी शब्द भी और पार्वती के लिए ही शिवा[२] गौरी शब्द शाश्वत कोष में प्राप्त होता है, इसी तरह अम्वर वस्त्र[३] का प्रयोग कोष में हुआ जो शाश्वत ने भी किया[४] है, अतः शाश्वत के कोष का आधार भी था।

इसी प्रकार कोषकार ब्रह्म, पार्वती, सूर्य, चन्द्र अग्नि, कामदेव बुद्ध, शिव, इन्द्र, रामबलराम के नामों का वर्णन किया है और अमरकोष में भी ब्रह्म, पार्वती, सूर्य चन्द्र अग्नि कामदेव बुद्ध, शिव, इन्द्र रामबलराम[५] के इन्हीं नामों का उल्लेख है।[६] अतः कोषकार ने अमरकोष से भी शब्दों को संग्रहतीत किया।

इसी प्रकार वैदिक कोष निघण्टु में भी जिन शब्दों के पर्यायों का उल्लेख प्राप्त होता है उसी का पाइअलच्छी नाममाला में भी उल्लेख प्राप्त होता है, जैसे निघण्टु में अश्व[७] के २६ नाम, पृथ्वी[८] के २१ नाम, मेघ[९] के ३० नाम और रात्रि[१०] के २३ नामों का उल्लेख प्राप्त होता है। उन्हीं नामों में 'पाइअलच्छी' में भी अश्व[११] के ७ नाम, पृथ्वी[१२] के नाम, मेघ[१३] के ५ नाम और रात्रि[१४]

---

१. पाइअलच्छी नाममाला ३
२. अनेकार्थ समुच्चय शाश्वत ।१
३. पाइअलच्छी नाममाला ६८
४. अनेकार्थ समुच्चय शाश्वत ।४८६
५. पाइअलच्छी नाममाल १-६, २०-२५
२. अकरकोष १।१।१६, १७
७, निघण्टु १।१४
८. निघण्टु १।१
६. निघण्टु १।१०
१०. निघण्टु १।७
११. पाइअलच्छी नाममाला ३३
१२. पाइअलच्छी नाममाला २६
१३. पाइअलच्छी नाममाला २७
१४. पाइअलच्छी नाममाला ४७

के ६ नामों का उल्लेख प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट होता है कि कोषकार ने अपने कोष पाइअलच्छी नाममाला के लिखने के पूर्व वैदिक कोष निघण्टु का भी अध्ययन किया था।

इसी प्रकार इस कोष में बहुत से शब्द पाणिनि अष्टाध्यायी के प्रयुक्त हुए हैं जिससे स्पष्ट होता है कि कोषकार पाणिनि अष्टाध्यायी का भी ज्ञाता था और इसके साथ ही साथ बहुत शब्द महाकवियों के काव्यों से लिए गए हैं जैसे कुमार संभव कालिदास से पार्वती[1], गौरी[2] और रघुवंश महाकाव्य में भी पार्वती[3] शब्द प्रयुक्त हुआ है, अद्र[4] शब्द पर्वत अर्थ में प्रयुक्त हुआ है मेघदूत में भी अद्र[5] शब्द पर्वत अर्थ में आया है। अतः इससे स्पष्ट होता है कि कोषकार को कालिदास आदि महाकवियों के भी काव्यों का अध्ययन था।

इस प्रकार कोषकार घनपाल ने अपने कोष पाइअलच्छी नाममाला के लिए जिन अन्य ग्रन्थों से शब्दों का चयन किया है उनमें वैदिक कोष निघण्टु अमरकोष पाणिनीय व्याकरण, शाश्वतकोष और कालिदास के काव्यों के ही आधार पर शब्दों का संग्रह किया है।

सांस्कृतिक अध्ययन

पाइअलच्छी नाममाला घनपाल

कोषकार घनपाल ने अपने समय के बारे में स्वयं लिखा है[6] तथा यह स्पष्ट है कि घनपाल राजा भोज (धारा नगरी के राजा) के आश्रित थे। अतः प्रस्तुत कोष में जो सांस्कृतिक सामग्री आयी है वह ११वीं शदी की है जिसका क्रमशः विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. भौगोलिक सामग्रीः—घनपाल ने अपने देश का नाम उद्धृत किया है। घनपाल के पूर्वज मालवदेश की राजधानी धारा नगरी में आकर बस गए थे और घनपाल ने भी धारानगरी में निवास किया, इसका उल्लेख अन्तिम पद्यों

---

१. कुमार संभव ५।१
२. कुमार संभव ५।८
३. रघुवंश ११।१
४. पाइअलच्छी नाममाला ५०
५. मेघदूत १।२
६. पाइअलच्छी नाममाला २७६-२७९

में किया है।[1] घनपाल राजाओं के सभामण्डित बताए जाते हैं। राजाभोज ११वीं शदी का धारानगरी का राजा था। घनपाल अपने कोष में किसी विशेष पर्वत का उल्लेख नहीं किया। पर्वत के लिए ३ शब्दों को बताया 'पाया कइया[2] साणू' जिसका तात्पर्य पर्वत का मूल होता है जंगल अर्थ में; 'कंतारं काणण'[3] रत्नं' का उल्लेख किया है। पर्वत की चोटी के लिए सिगं[4] सिहरं कूडं शब्द प्रयुक्त किए हैं। नदी अर्थ में लेखक ने ६ नामों का उल्लेख किया है। सरिता, तरंगिणी, निम्नगा, नदी, आयगा, सिन्धु।[5] इसके अतिरिक्त विशेष रूप से तीन नदियों का उल्लेख किया है (१) गंगा—उस समय की पूज्य नदी मानी जाती है जिसका उदगम हिमालय से है और जो बड़े शहरों से होकर निकलती है तथा जिनका नाम अलग अलग है। लेखक ने इसके ५ नामों का उल्लेख किया है १-मंदाकिनी, २-सुरसरि, ३-गंगा, ४-भागीरथी[6], ५-जन्हुसुता। यह प्रयाग, वाराणसी, पाटलीपुत्र आदि नगरों में बहती है। दूसरी नदी में नर्मदा का उल्लेख किया है यह नदी मध्य प्रदेश के शहडोल जिले में अमरकंटक से निकलती है तथा मध्यप्रदेश के विभिन्न स्थानों में बहती है। जबलपुप में इससे बना प्रपात बहुत ही मनोरम है कोष में इसके तीन नामों का उल्लेख किया गया है १-मेकलकन्या[7] मेकलपर्वत से निकलती है, २-नर्मदा ३-रेबा और गोदावरी नदी का भी उल्लेख किया है[8] गोदावरी और गोला दो शब्द प्रयुक्त किये हैं। इस प्रकार लेखक ने भौगोलिक स्थिति में अपने देश का तथा अपने देश से सम्बन्धित नदी पर्वतों का उल्लेख किया है।

२. **सामाजिक व्यवस्था**—कोष में समाज के चारो वर्णों का उल्लेख किया गया है। ब्राह्मण के लिए विप्र द्विज[9] द्विजाति शब्दों का उल्लेख किया गया है। क्षत्री के लिए नरनाह, पार्थिव, नृप राजा ये शब्द प्रयुक्त[10] हुए हैं। वैश्य

---

१. **पाइअलच्छी नाममाला** २७६, २७९
२. **वही** ३५
३. **वही** १५३
४. **वही** १३६
५. **सरिआ तरंगिणी निण्णया नई आक्या सिंधू**-२८.
६. **मंदाइणी। सुरणई, गंगा, भागीरथी य जण्डुसुआ।** ३१
७. **मेअलकन्ना या नम्मया रेवा।** १३०
८. **गोआवरी या गोला** १३२
९. **विप्पो दिअो दिमाई** १०२
१०. **पाइअलच्छी नाममाला** १००

की जातियों में ग्वाल[1] वणिक आदि का उल्लेख हुआ है। शूद्र जातियों में कंमार, धीवर[2] ढीमर, मच्छीमार आदि जातियों को बताया है। विवाह की प्रथा थी। बिना व्याहे स्त्री को कुमारी तथा व्याही स्त्री को ऊढा[3] परिणीया आदि कहा जाता था। व्याही स्त्री जो घर की समस्त जिम्मेदारियों को जानती हो तथा पति को समस्त कार्यों में सहायता देती हो उसको गृहिणी[4] कहा गया है। बिना व्याही कुमारी कन्या[5] और उससे भी छोटी लड़की को धुआ[6] दुहिआ और लड़के की पत्नी को सुण्डा पुत्तवंक[7] आदि कहा गया है। अन्य सम्बन्धियों में देवर, मौसी, सासू[8] भाई, भाभी, बुआ, फूफी आदि को बताया है। भोज्य सामग्री में दही और चावल के मिश्रण से बना हुआ खाद्य पदार्थ जिसे करंबा[9] कहते थे। चावल को ओदन[10] कहते थे। चावल मुख्य भोजन मालूम पड़ता है। स्त्रियों के आभूषणों का बहुत उल्लेख प्राप्त होता है। मनुष्य के सम्पूर्ण अंग प्रत्यंगों का वर्णन बड़े ही अच्छे ढंग से किया गया है। नख, पैर, हांथ, केश, स्तन' चमड़ा, दांत, गर्दन, मुंह, नेत्र, आंख, नाक, माथा, सिर, ललाट, दाढ़ी, मूछ, उदर, पेट, आंसु, इन्द्रिय, कांति, लावण्य, मांस, रुधिर, खून इत्यादि[11] समस्त अंग प्रत्यंग का वर्णन किया है। आभूषणों का भी उल्लेख विधिवत किया गया है। स्त्रियां कमर में मेखला बांधती थीं जिसको करधनी या रसना[12] कहा गया है। जो चांदी या सोने का होता था। गले में हार[13] पहना जाता था जो सोने का होता था या मोती का। मांथ में बांधने का मुकुट होता था जिसको किरीट कहा गया है। कान का आभूषण कर्णावतंस[14] कहलाता

---

१. पाईअलच्छी नाममाला १०४, १०५
२. वही १०५
३. वही २०२२
४. जाया पत्तीदारा घरिणी भज्जा पुरंधी, पाइअलच्छी नाममाला ५६
५. पाइअलच्छी नाममाला २५२
६. वही २५२
७. वही २५२
८. वही २५३
९. पाइअलच्छी नाममाला ४६३
१०. वही १०९-११३
११. वही ११५
१२. वही ११५
१३. वही ११६
१४. वही ११७

था। पैर में स्त्रियां नूपुर[१] पहनती थीं, अन्य आभूषण सोने चांदी या बैडूर्य मणि से बनते थे जो स्त्रियां और पुरुष दोनों पहनते थे। कान में पहनने के गहने को कर्णफूल[२] कहा जाता था।

कोष में सभी मास और ऋतुओं का उल्लेख क्रमशः किया गया है। ग्रीष्म ऋतु वैशाख ज्येष्ठ, वर्षा ऋतु अषाढ़ श्रावणः शरद भादों क्वार, बसंत[३] फागुन चैत्र हेमंत पौष मृगशिर इत्यादि प्रकार से किया गया है।

मनुष्य के वस्त्रों का भी उल्लेख किया गया है। पुरुष के पहनने का वस्त्र और स्त्री के पहनने का वस्त्र ये दोनों अलग अलग बताए गए हैं। स्त्रियों के वस्त्रों को चोली[४] कहा जाता था तथा जो कटि में स्त्रियां पहनती थीं उसको घाघरा[५] कहा गया है।

गृह भी बहुत ही अच्छे ढंगों से बना होता था। घर चारों ओर से बन्द होता था चारों ओर खिड़की लगी होती थी जिससे हवा आती हो उसे गवाक्ष[६] कहते थे तथा गवाक्षों में जिससे बन्द करने पर भी प्रकाश आवे शीशा[७] लगा रहता था। गाँव के नेता मुखिया[८] कहलाता था, जो कि कुलीन[९] एवं बुद्धिमान होता था।

इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था में उपर्युक्त समस्त वस्तुओं का क्रमशः उल्लेख किया गया।

आर्थिक व्यवस्था—मनुष्य के जीवन को आर्थिक व्यवस्था सबसे अधिक प्रभावित करती है। मनुष्य के आय के साधन क्या हैं। मनुष्य का आर्थिक स्तर कैसा है व्यापार की स्थिति कैसी है इत्यादि बातें आर्थिक व्यवस्था से सम्बन्धित हैं।

---

१. पाइअलच्छी नाममाला ११७
२. वही ११६
३. वही ५२
४. वही २०६,२०७
५. वही ६८
६. वही ६६
७. वही ११६
८. वही १०४
९. वही १०२

पाइअलच्छी नाममाला में कृषि का उल्लेख किया गया है। कृषि करने वाला गृहर्यति[1] कहलाता था, कृषि कार्य ग्वाला[2] जाति के ही लोग करते थे फसलों में धान्य[3] फसल मुख्य थी। पकी फसल को 'पक्कं पिकक परिणयं[4] ये तीन शब्दों का उल्लेख किया गया है। कृषि कार्य करने वाला पुरुष कृषि को रक्षा के लिए खेत में ही जाकर सोता था ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

पाइअलच्छी नाममाला में समस्त वनस्पतियों का उल्लेख किया है। बांस, खजूर, आम, कोयले की बेल, बरू एक प्रकार की घास, कणेर, निद्रा लाने की लता कंकोडा, बीला विल्व[5] कोरंट वृक्ष, मृणाल, कमलिनी, अशोक वृक्ष[6] आसोपालक इत्यादि का उल्लेख किया गया है।

जिन पशुओं का उल्लेख पाइअलच्छी नाममाला में किया गया है उनमें मुख्य रूप से गाय[7], बैल[8] हैं। गायों की सेवा के द्वारा ही दूध और उत्तम बछड़े जो आगे चलकर बैल बन जाते हैं तथा जो कृषिकार्य में मुख्य रूप से होते हैं। पशुपक्षी और जीव जन्तुओं का भी उल्लेख किया गया है, जिनमें हंस, मछली[9] कोयल मोर, बंदर[10], कुत्ता[11], सिंह, कौआ, बाघ[12] हरिणी, वराह, सियार हांथी, भ्रमर, जलहांथी, छोटी मछली, रीछ, केकड़ा[13], कछुआ, बिल्ली[14], उल्ली, मकड़ी मर्दन इत्यादि पशुपक्षी, जानवर और विविध जीवजन्तुओं का उल्लेख किया गया है। पक्षियों में मुख्य तौर पर कोयल[15] और कौआ को ही बताया है, जंगली जानवर भी पर्याप्त बताए हैं।

---

१. पामरखाहवेह सँग्राल कासया दोणया हलिग्रा ।७१
२. पाइअलच्छी नाममाला । १०४
३. पाइग्रलच्छी नाममाला । १४३
४. परिपासउत्तिछेत्ते जो पुरिसो सुअइ राईए । २१९
५. पाइअलच्छी नाममाला । १४४ से १४९ तक
६. वही २२२
७. वही ४५
८. वही १५१
९. वही ४०
१०. वही ४३
११. वही ४१
१२. वही ४४
१३. वही १२९
१४. वही १५०
१५. वही ४२

४. धर्म और दर्शन—पाइअलच्छी नाममाला में धार्मिक देवता याज्ञिक देवताओं का उल्लेख किया गया है। अप्रत्यक्ष रूप से दार्शनिक तत्वों का भी विवेचन है, धार्मिक देवताओं में कोषकार ने सर्वप्रथम परम पुरुष का बाद में ब्रह्मा जी का तथा शंकर और पार्वती का उल्लेख किया है।[१] और इसके अनन्तर अन्य धार्मिक देवताओं में बुद्ध के १० नामों[२] का उपेन्द्र के ५, शिव[३] के ७, कार्तिकेय ५, इन्द्र के ५, रामबलराम के ५ नामों का उल्लेख किया है। ये सभी देवता धार्मिक देवता हैं। विशेष अवसरों पर पूजा अर्चना इन देवो की जाती है। आदि देव ब्रह्मा, विष्णु और महेश ये तीन ही देव बताए गए हैं, आशिक्ति के रूप में पार्वती का उल्लेख किया गया है। ये समस्त देवता स्वर्ग में निवास करते हैं जिसे अमरावती कहा जाता है। विष्णु की पत्नी का नाम लक्ष्मी[४] है। पूजा सबसे पहले गणेश को की जाती है। याज्ञिक देवता में सूर्य[५] वेदों में जो सविता के नाम खे विश्रुत हैं चन्द, तथा अग्नि[६] का उल्लेख किया गया है, अग्नि यज्ञ के मुख्य देवता बताए गए हैं। अन्य याज्ञिक देवता में पवन[७] जिन्हें मरुत कहा जाता है, का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार पाइअलच्छी नाममाला में धार्मिक देवता और याज्ञिक देवताओं का उल्लेख किया गया। घनपाल पहले ब्राह्मण कुल में जन्म लिया और हिन्दू धर्म मानता था अन्त में जैन धर्म अपने भाई के प्रभाव द्वारा ग्रहण किया। अतः उन्होंने हिन्दू धर्म के ही देवताओं का उल्लेख किया है। एक स्थान में जिन भगवान के ३ नामों का भी उल्लेख किया है (१) तीर्थाधिपति (२) जिन, (३) अर्हन[८]। दर्शन के ऊपर को कोषकार कुछ नहीं लिखा। अस्पष्ट रूप दर्शन के ३ शब्द प्रयुक्त हुए हैं। साँख्यके २५ तत्वों के अहंकार[९] बुद्धि[१०], आकाश[११] आदि का उल्लेख किया है। अतः कोषकार समस्त विषयों की ओर इस छोटे से कोष में अपनी दृष्टि डाली है।

---

१. पाइअलच्छी नाममाला १, २, ३
२. वही २०
३. वही २१
४. वही ६६
५. वही ६६
६. वही ६६
७. वही २५
८. तित्थाहिवर्ड जिणो अरहा
९. पाइअलच्छी ५५
१०. पाइअलच्छी नाममाला ३१
११. वही २७

कला कौशलः—कलाकौशल के अन्तर्गत क्या उस समय के लोगों की रुचि अपने दैनिक कार्यों के अलावा विनोदार्थ अन्य और भी थी? मनुष्यों का नैतिक स्तर कितना ऊँचा था इत्यादि बातें। इसके अन्तर्गत यह देखना है कि किन किन कलाओं में उस समय लोग अग्रसर थे। कोष में संगीत की ओर कई स्थानों में उल्लेख प्राप्त होता है। उस समय की मुख्य वाद्य यंत्रों में वीणा[१] थी। इसके सात स्वर होते हैं, इसका अच्छी तरह से उल्लेख अमरकोष में किया गया है। वास्तुकला भी उस समय की मुख्य कला थी। वास्तुकला के अन्तर्गत गृह निर्माण का कार्य माना जाता है। गृह का वर्णन कई स्थानों में प्राप्त होता है। इस प्रकार इस छोटे से कोष में भी विभिन्न कलाओं का वर्णन करके कोषकार ने उस समय के सांस्कृतिक चित्र का स्पष्ट झलक प्रस्तुत किया है।

शिक्षा और साहित्यः—उस समय शिक्षा की ओर बहुत लोग अग्रसित थे। कोषकार धनपाल राजा भोज के सभापण्डित थे और राजा भोज के यहाँ स्वयं १४००० पंडितों का इतिहास प्राप्त होता है जो साहित्य, धर्म, दर्शन, योग, मीमांसा और अन्य समस्त कलाओं से राजा का विनोद किया करते थे। शिक्षा के क्षेत्र में बेदों[२] का उल्लेख मिलता है जिससे स्पष्ट होता है कि वेदों का अध्यन होता था। पुराण, मीमांशा आदि समस्त विद्याएँ उस समय प्रचलित थीं और लोगों में मानसिक चेतना की अभिवृद्धि थी।

राजनैतिक व्यवस्थाः—एक देश में एक राजा होता था जो कि सम्पूर्ण प्रजा की रक्षा करता था राजा के लिए नृप राया, नरनाह, पार्थिव आदि शब्द प्रयुक्त[३] हुए हैं, जो राज्याभिषिक्त होता था वह राजमुकुट[४] मस्तक में बांधता था और राज्य सिंहासन[५] पर बैठता था उसके चारों ओर नौकर चामर डुलाते थे सिंहासन के ऊपर राजा बैठता था और ऊपर छत्र[६] लगा रहता था। राजा को उचित अनुचित एवं हर प्रकार के सलाह देने वाला मंत्री[७] होता था, जो

---

१. विवंचिआ वल्लई वीणा १२२
२. सुई वेओ। पा० ल० नाममाला २१३.
३. नरनाही पत्थिवो निवो राया पाइअलच्छी नाममाला १००
४. पाइअलच्छी नाममाला ११५
५. वही ११८
६. वही ११८
७. वही १००

कि विद्वान, अनुभवी कुलीन होता था । सारा राज्य कार्यभार उसी के ऊपर रहता था तथा राजा का अत्यन्त विश्वासी व्यक्ति होता था जो कुछ भी मंत्री करदे राजा उसको इंकार नहीं कर सकता था और मंत्री भी राजा, राज्य के उन्नति के ही बारे में सदैव संलग्न रहता था, मंत्री ही राजा का मित्र, सहयोगी, साथी और सखा होता था, दूसरा शत्रु राजा आक्रमण न कर दे इससे सभी राजा भयभीत रहते थे और उससे बचने के लिये सेना[१] भी रखते थे । सेना चार प्रकार की होती थी-रथ, हाथी [२] घोड़ा[३] और पैदल । कभी कभी एक राजा का दूसरे राजा से युद्ध[४] भी हुआ करता था । शस्त्रास्त्रों में मुख्य रूप से धनुष, खंड्ग[५] तलवार थीं, तलवार और धनुष के अतिरिक्त एक प्रकार का चक्र[६] भी होता था राजा के अंगों में सेना, मंत्री, कोष मुख्य थे । राज्य में आय के साधन कृषि और कृषि से प्राप्त अन्य साधनों से ही राज्य की आर्थिक व्यवस्था सुदृढ़ की जाती थी ।

इस प्रकार राजनैतिक व्यवस्था उस समय ठीक थी । राज्य बहुत छोटे छोटे होते थे । राजा, मंत्री, कोष, सेना इत्यादि राजा के मुख्य अंग थे, जिनके माध्यम से राज्य और प्रजा की सर्वतोमुखी, विकास करके राज यश और मुक्ति की प्राप्ति करता था ।

देशी नाममाला (हेमचन्द्र)

देशी नाममाला नामक प्राकृत कोष आचार्य हेमचन्द्र द्वारा लिखा गया है । वे जब अनहिलापुर (पटना) राजा कुमार पाल के यहां रहते थे (१०८८-११७२) तब ही इस कोष की रचना की थी । व्याकरण ग्रन्थों के पश्चात् हेमचन्द्र ने देशी नाममाला प्राकृत कोष की रचना की, उन्होंने अपने प्राकृत व्याकरण सिद्ध हेम व्याकरण जो कि आठ प्रकरणों में है के पश्चात् प्राकृत कोष लिखा । हेमचन्द्र ने प्रस्तुत कोष का नाम रत्नावली रखा था जो कि अष्ठम वर्ग ७७ गाथा में लिखा है ।

"इयं रयणावलिणामो देशीसद्दाण संगहो एसो
वायरण सेसलेसो रइओ सिरि हेमचन्द मुणिवइणा" ।८।७७

---

१. **पाइअलच्छी नाममाला** ३४
२. वही ८
३. वही ३३
४. वही ३३
५. वही ३७
६. वही १२२

(इस प्रकार से रत्नावली नाम देशी शब्द संग्रह श्री हेमचन्द्र ने लिखा)। वैसे इस कोष को रत्नावली भी कहते हैं लेकिन इसमें देशी शब्दों का संग्रह होने से देशी नाममाला कहा गया है और स्वयं हेमचन्द्र ने कहा है कि देशी शब्द संग्रह नामक कोष मैंने लिखा।

देशी नाममाला प्राकृत भाषा में लिखा गया है। देशी शब्द और उसके अर्थ तद्भव एक ही प्रकार के हैं। यह कोष आठ वर्गों में विभक्त है।

प्रथम वर्ग	स्वर	१७४ गाथा
द्वितीय वर्ग	व्यंजनक द्वयक्षर से छ तक	११२ गाथा
तृतीय वर्ग	व्यंजन च से झ तक	६२ गाथा
चतुर्थ वर्ग	ट से ण तक	५१ गाथा
पंचम वर्ग	त से घ तक	६३ गाथा
षष्ट वर्ग	प से म तक	१४८ गाथा
सप्तम वर्ग	र से व तक	९६ गाथा
अष्टम वर्ग	स से ह तक	७७ गाथा
		७८३ गाथा।

देशी नाममाला प्राकृत कोष में कुल ३९७८ शब्दों का संग्रह किया गया है जिसमें

ततसम शब्द	१००
ततभव	११५०
तदभव	५२८
देशी	१५००
	३९७८

निम्नलिखित लेखकों ने देशी नाम माला कोष का उल्लेख किया है—

(१) अभिमान सिंह (१-१४४, ६-९३, ७-१, ८-१२, २८)

(२) अवन्ति सुन्दरी (१, ८१, १४४, १५७)

(३) गोपाल (१-२५, ३१, ४५, २-८२, ३-४७, ६-२५, ५८, ७२, ७-२, ७६, ८-१, १६, ६७).

(४) देवराज (-५८, ७२, ८-१७)

(५) द्रोण (१-१८, ५०, ७-७)

(६) द्रोणाचार्य (८-१७)
(७) धनपाल (१-१४१, ३-२२, ४-३०, ५-१०१, ८-१७)
(८) पथदुकाला (८-१२)
(९) पादलिप्ताचार्य (१-२)
(१०) राहुलक (४-४)
(११) शाम्बा (२-४८)
(१२) शिलांक (२-२०,६-९६, ७-४०)
(१३) शतवाहन (३-४१, ४-११, ५-१५, १८, १९, ११२, १२५)

उपर्युक्त लेखकों ने देशी कोष का उल्लेख किया है। लाला दीक्षित मृच्छकटिक ने अपने भाष्य में देशी कोष का उल्लेख किया है, जिसका नाम देशी प्रकाश बताया। क्रमादिश्वर (संक्षिप्त सार ८ पृ० ४७ में दूसरे देशी कोष देशी सार का नाम मिलता है।

अतः उपर्युक्त समस्त उद्धरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रस्तुत कोष देशी नाममाला के ही लिए समस्त ग्रन्थों में लिखा गया है। इसमें किसी भी बात का सन्देह नहीं होना चाहिए । दूसरी बात उपर्युक्त प्रमाणों के ही आधार पर प्रस्तुत कोष को हम देशी कोष कह सकते हैं। इसका नाम रत्नावली नहीं था बल्कि देशी नाममाला ही था।

पद्धति एवं प्रणाली

प्रस्तुत कोष 'देशी नाममाला' में आचार्य हेमचन्द्र ने प्राकृत शब्दों का उल्लेख किया है। प्रकृति भाषा को ही प्राकृत कहा गया है। प्रकृति का तात्पर्य स्वभाव अर्थात जो भाषा साधारण बोलचाल की भाषा हो उसको प्राकृति भाषा कहा गया है। बोलचाल की भाषा को ही देशी भाषा कहा जाता है। जैसे महाराष्ट्र की देशी भाषा मराठी, गुजरात की देशी भाषा गुजराती, बंगाल की देशी भाषा बंगाली आदि समस्त भाषाएं अपने देश में देशी भाषा कहलाती हैं। भारतीय आर्य भाषाओं के इतिहास देखने से यह पता चलता है कि जो भाषा समय के अनुसार जब तब वह साधारण बोलचाल की भाषा थी और उसी में काव्य लिखे गए जैसे वैदिक काल में आर्यों की वैदिक भाषा फिर लौकिक संस्कृत की भाषा फिर पालि भाषा और प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषा। इस प्रकार समस्त भाषा अपने समय में साधारण बोलचाल की भाषा थी। प्राकृत भी अपने समय में बोलचाल की भाषा थी और जो शब्द किसी देश विशेष तक ही सीमित रहते हैं उसे देशी शब्द कहते हैं। इसीलिए इस प्राकृत कोष में देशी शब्दों का उल्लेख किया गया है। श्री हेमचन्द्र ने प्राकृत भाषा का कोष

लिखा है। प्राकृत भाषा का एक और कोष प्राप्त होता है। 'पाइअलच्छी नाममाला' जिसको धनपाल ने लिखा है धनपाल का समय पहले का है या हेमचन्द्र का इसमें विद्वान मतैक्य नहीं हैं फिर भी धनपाल ही को अधिक लोग श्री हेमचन्द्र से पूर्व मानते हैं। अतः धनपाल के ही पद्धति का अनुकरण श्री हेमचन्द्र ने किया और प्राकृत 'देशीनाममाला' का बोध लिखा।

प्रस्तुत कोष में बहुत से ऐसे देशी शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो उस कोष से सर्वथा भिन्न है अतः इस कोष की पद्धति धनपाल से भी अलग दिखाई देती है। अतः श्री हेमचन्द्र की देशी नाममाला नामक कोष लिखने की पद्धति एवं प्रणाली अलग ही है।

शब्द चयन का क्रम

प्रस्तुत कोष देशी नाममाला में कुल आठ वर्ग हैं प्रथम वर्ग में स्वर अ से प्रारम्भ करते हैं, शब्द चयन वर्ण के अनुसार किया गया है। द्वयक्षर के शब्दों के पश्चात तीन अक्षर के शब्द और फिर चार और पांच अक्षर के शब्दों का संग्रह किया गया है। प्रथम वर्ग में केवल स्वर से ही प्रारम्भ होने वाले शब्दों का संग्रह है।

द्वितीय वर्ग में व्यन्जन वर्णक्रम के अनुसार क अक्षर के दो अक्षरों के शब्दों से प्रारम्भ किया गया है फिर तीन अक्षर क से प्रारम्भ शब्द और फिर चार इसी प्रकार इन ग और घ से भी प्रारम्भ शब्दों का संग्रह किया गया है।

तृतीय वर्ग में च अक्षर से झ अक्षर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों का उल्लेख है। सर्वप्रथम दो अक्षर के ही शब्दों का चयन किया गया है।

चतुर्थ वर्ग में ट से प्रारम्भ ण तक के अक्षरों से प्रारम्भ शब्दों का संग्रह ट वर्ग में प्रथम तीन अक्षर के शब्दों का संग्रह है।

पंचम वर्ग में त अक्षर से प्रारम्भ शब्दों का संग्रह ध अक्षर पर्यन्त तक किया गया है। प्राकृत में न अक्षर नहीं होता है, इसमें सर्वप्रथम दो अक्षर के शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है।

षष्ठ वर्ग में प अक्षर से म अक्षर तक के शब्दों का संग्रह और उसके अर्थ को बताया गया है।

सप्तम वर्ग में र अक्षर से स तक के शब्दों का उल्लेख है। प्राकृत में तीनों स के लिए एक ही स प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार अष्ठम वर्ग में स से ही शब्द प्रारम्भ होता है और ह तक के शब्दों का उल्लेख किया गया है। अन्तिम श्लोक में कोषकार अपना और अपने कोष का नाम बताकर कोष समाप्त करता है।

शब्द संग्रह के आधार

देशी नाममाला नामक कोषकार श्री हेमचन्द्र, अन्य प्राकृत कोष 'पाइअ लच्छी नाममाला' श्री धनपाल के बाद हुए । अतः कुछ शब्द धनपाल के कोष से ग्रहण किए होंगें । इनके पूर्व अन्य प्राकृत कोषों का धनपाल के अतिरिक्त निर्माण हुआ था, अतः अन्य प्राकृत कोषों से शब्दों का ग्रहण कैसे किया होगा, इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र ने १०० शब्द देशी शब्दों को दिया है। जो अन्य स्थानों में कहीं नहीं प्राप्त होते हैं, वे केवल साधारण बोलचाल की भाषा के शब्द हैं, इन्होंने अन्य कहीं से उन शब्दों को नहीं ग्रहण किया था।

कोषकार स्वयं सिद्ध हेम व्याकरण लिखा था, जिसके लिखने के लिए पाणिनीय आदि के व्याकरण ग्रन्थों का सहारा लिया था, इसके अतिरिक्त अन्य ३ कोषों की भी रचना की है जिसमें धन्वन्तरि, अमरसिंह, कालिदास आदि ग्रन्थकारों के ग्रन्थों से तथा वैदिक निघण्टु, पाणिनीय अष्टाध्यायी आदि समस्त ग्रन्थों से काफी सहारा लिया था । इसके अतिरिक्त हेमचन्द्र ने अपने कोष अभिधान चिन्तामणि की स्वयं वोपज्ञ टीका भी लिखी है जिसमें ५६ ग्रन्थकारों और ३१ ग्रन्थों का उल्लेख किया है । उन्हीं समस्त ग्रन्थों और ग्रन्थकारों से हेमचन्द्र पर्याप्त सामग्री ले ली थी और समस्त ग्रन्थों का निर्माण इन्हीं पर्याप्त सामग्री के आधार पर किया था । देशी नाममाला नामक कोष की रचना सबसे बाद में की है अर्थात समस्त ग्रन्थ लिखने के पश्चात देशी नाममाला नामक ग्रन्थ की और उसमें अपने समस्त कोष, और व्याकरण तथा जो अन्य सामग्री अन्य कोषों के लिए लिया था, उन सबका देशी नाममाला के लिए की ।

उपर्युक्त समस्त कोष और व्याकरण ग्रन्थ लिखने के पश्चात् कोषकार स्वयं इतना दक्ष हो चुका था कि अन्य स्थानों से सामग्री लेने देने की कोई आवश्यकता नहीं थी । इसीलिए इस कोष में जो शब्द संग्रहीत किए हैं वे सर्वथा भिन्न हैं ।

पाइअ सद्दमहार्णव

यह प्राकृत भाषा का आधुनिक युग का एक विशालकाय कोष है । इस कोष में विविध प्राकृत भाषा के शब्दों का, संस्कृत प्रतिशब्दों से युक्त, हिन्दी अर्थों से अलंकृत किया गया है । प्रस्तुत कोष के कर्त्ता स्व० पं० हरगोविन्द त्रिकमचन्द्र सेठ प्राध्यापक कलकत्ता विश्वविद्यालय ने, कोष लिखने का संकल्प १९३१ में किया था, उन्हीं के शब्दों में "प्राकृत साहित्य के उपलब्ध कोष

पाइअलच्छी नाममाला, और देशी नाममाला के सिवाय अन्य कोई प्राकृत का कोष न होने से मुझे अपने प्राकृत ग्रन्थों के अनुशीलन में असुविधा प्राप्त होती थी, तभी आज (१६२८) से पन्द्रह साल पूर्व मैंने प्राकृत कोष लिखने का विचार किया था।[१]'

"सर्वप्रथम प्रस्तुत कोष में लेखक ने ३ श्लोकों में क्रमशः महावीर स्वामी, जिन देव की वन्दना एवं कोष लिखने की प्रस्तावना लिखा है।[२]

प्रस्तुत कोष में शब्द संग्रह की पद्धति में सर्वप्रथम प्राकृत शब्द वर्णमाला के क्रम से इसके साथ ही लिंग आदि का निर्देश उसके पश्चात प्राकृत शब्द का संस्कृत प्रति शब्द और हिन्दी में अर्थ तथा साथ ही प्रमाण देने का प्रयास किया गया है। उदाहरण के लिए "अइरवथ पुं (एरावत) इन्द्र का हांथी (भवि)[१] शब्दों का क्रम नागरी वर्णमाला के अनुसार इस तरह रखा गया है अ आ इ ई उ ऊ ए ऐ ओ औ अं क ख ग आदि जहाँ स्त्रीलिंग का विशेष रूप पाया गया है वहाँ उस अर्थ के बाद 'स्त्री-निर्देश करके संदर्भ के साथ दिया गया है। धातु के भिन्न भिन्न रूप वाले सन्दर्भों में जो अर्थ पाए गए हैं वे सब १-२-३ के अंकों से देकर क्रमशः धातु के आख्यात तथा कृदन्त के रूप दिया गया है।

प्राकृत साहित्य का विशाल एवं नवीन प्रक्रिया के साथ लिखा हुआ यह कोष अद्वितीय है जो कि प्राकृत साहित्य के विकास में सहायक सिद्ध हुआ है।

पालिकोष

वर्तमान युग में पालि साहित्य का अध्ययन आवश्यक हो गया है इसका तात्पर्य यह है कि अगर हम पालि साहित्य का अध्ययन नहीं करते तो भारतीय इतिहास के १००० वर्ष (५०० ई० पू० से ५०० ई०) तक की जानकारी से अछूते रह जाते हैं। भारतीयों के विचार, साहित्य समाज सभी क्षेत्रों में इन हजार वर्षों में अत्यधिक कार्य हुआ है। हमारे इतिहास के कितने ही अन्धकारावृत्त भागों पर पालि साहित्य ने प्रकाश डाला है। हमारे ऐतिहासिक नगरों और गांवों में बहुतों को प्रकाशित का श्रेय पालि साहित्य को है और भारत के

---

१. पाइअ सद्द महार्णव प्र० पृ० १
२. पासिअ दोस समूह, भासिअणंगंतवाय—ललिअत्थं।
पासिअ—लोआलोअ, वंदामि जिणं महावीरं ॥१॥
३. पा०स० महा० पृष्ठ ३

सर्वश्रेष्ठ मानव गौतम बुद्ध के सम्बन्ध की सम्पूर्ण जानकारी के साथ ही उनके धर्मोपदेश को प्रस्तुत करने वाला मूल साहित्य पालि साहित्य ही है।

संस्कृत साहित्य के समान ही साहित्य के सभी क्षेत्रों में विकास हुआ है। वेद के षड्अंगों की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए पालि साहित्य मर्मज्ञों ने अपनी लेखनी सभी ओर उठाई है। शिक्षा कल्प आदि अंगों के साथ ही पालि व्याकरण कुछ बातों में संस्कृत व्याकरण से भिन्न है।

इसी तरह पालि साहित्य में कोषों का भी प्रणयन हुआ है। पालि शब्दों का संग्रह विद्वानों ने किया। पालि साहित्य में दोनों प्रकार के (सम,नार्थी और एकार्थी) कोषों की रचना प्राप्त होती है। पालि साहित्य का आदिकोष अभिधानप्पदीपिका है, इसके साथ ही, एक्कखर कोष का भी प्रणयन हुआ है। आधुनिक युग में पालि टेक्स्ट सोसायटी द्वारा विभिन्न पालि ग्रन्थों के साथ प्राचीन पालि कोषों को प्रकाशित कराया गया है, जिनमें आलोचनात्मक पालि शब्द कोष मुख्य है। आगे कुछ पालि कोषों का परिचय दिया जा रहा है।

अभिधानप्प दीपिका

पालि भाषा का शब्द कोष (मोग्गलान थेर)

अभिधानप्पदीपिका' पालि समानार्थी शब्दों का एक अधिकृत कोष है। इसे पालि साहित्य में वही स्थान प्राप्त है जो संस्कृत साहित्य में अमरकोष को प्राप्त है। इसका संकलन सिंहलद्वीप के विद्वान मोग्गलान थेर द्वारा किया गया है। अभिधानप्पदीपिका की रचना महान पराक्रमवाहु (ई० ११५३-१६८६) के शासन काल में हुई। जिसका उल्लेख स्वयं मोग्ललान थेर ने किया है कि लंकाधिपति 'परक्कम भुज नामक' 'भूपाल' के शासन काल से इन्होंने इस ग्रन्थ की रचना की।[1] मोग्गलान थेर पोलोन्नरुवा नगर में जेतवाने बौद्धमठ में रहते थे, तथा उन्हें पराक्रमवाहु का संरक्षण प्राप्त था।[2]

अभिधानप्पदीपिका तीन भागों या काण्डों में विभक्त है, (१) संग्गकंड (स्वर्गकांड)-जिसमें देवता, बुद्ध, शाक्यमुनि, देवयोनि, इन्द्र, निर्वाण आदि के पर्यायवाची शब्दों का संकलन है, (२) भूकंड (भूकाण्ड) जिसमें पृथ्वी आदि सम्बन्धी शब्दों के पर्यायवाची शब्दों का संकलन है, (३) शामंजकण्ड (श्रामण्य-काण्ड) जिसमें प्रव्रज्या सम्बन्धी आदि शब्दों के पर्गायवाची शब्दों का संकलन

---

१. "परक्कमभुजो नाम भूपालो गुण भूसणो।
लंकायमासि तेजस्सी जयी केसरिविक्कमो" पृ० १५६

२. प्रस्तावना वास्कदुवे सुभूति की अंग्रेजी और सिंहली टिप्पणी।

है। यह कोष पूर्णतः समानार्थी है ग्रन्थ के अन्त में ऐसे शब्दों की सूची है जो सदृश रूप वाले हैं किन्तु भिन्नार्थक हैं।

एक्खर कोस (एकाक्षर कोष) बरमीभिक्षु सद्धम्मकित्ति (सद्धर्मकीर्ति)

अभिधानप्पदीपिका पी० एन० एम० आर० बौद्ध महाभिक्षु द्वारा प्रकाशित तृतीय संस्करण के परिशिष्ट में एकाक्षर कोष जोड़ा गया है। यह कोष बरमी-भिक्षु सद्धम्मकित्ति द्वारा लिखा गया है। ये अरियवंश के शिष्य थे। १४६५ ई० में इस कोष की रचना की गई है।[1] यह कोष एकाक्षरात्मक शब्दों की पद्यबद्ध सूची है। संस्कृत भाषा के एकाक्षरी कोष का यह पालि रूपान्तर मात्र कहा जा सकता है। इस कोष के अन्त में लिखा है—"इति सद्धम्मकित्ति नाम महाथेरेन सक्कत मासाती परिवेत्तत्वा विरचितं एकक्खर कोसं नाम सद्दप्पकरणं परिसमत्त" (सद्धर्म कीर्ति नामक महास्थविर द्वारा संस्कृत भाषा से रूपान्तरित करके विरचित 'एकाक्षर कोष' नामक शब्द प्रकरण समाप्त)।[2]

एकाक्षर कोष पालि साहित्य का एक लघुकाय कोष है, इसमें अनेक अनेकार्थक शब्दों का संग्रह है। पालिसाहित्य का यह एक महत्वपूर्ण कोष है क्योंकि पालि साहित्य का मुख्य कोष समानार्थी है अनेकार्थी कोष में यह पहला कोष है।

पालि अंग्रेजी शब्द कोष—(ए० पी० बुद्धदत्त महाथेरा)

इस कोष में पालि भाषा के शब्दों को अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया गया है, जिससे अंग्रेजी माध्यम से पढ़ने वाले पालि पाठकों को सुविधा होगी। यह पुस्तक इसीलिए विदेशों में ज्यादा लोकप्रिय हुई है। इस कोष के अतिरिक्त जो पालि इंगलिश कोष उपलब्ध होते हैं, वे आकार प्रकार में अत्यन्त बड़े जिनका अध्ययन स्कूल और कालेज में सम्भव न हो यह छोटी सी पुस्तक इन्हीं कमियों के पूर्ति के उद्देश्य से लिखी गई। इस कोष के कर्त्ता का कहना है कि इसके पहले, पालि टेक्स्ट सोसायटी इंगलैण्ड से पालि इंगलिश डिक्शनरी प्रकाशित हो चुकी थी, जिससे मुझको इस कोष के निर्माण में बहुत सुविधा मिली लेकिन बहुत कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया गया है जिनका विगृह व्याख्या मुझसे भिन्न है। उदाहरण के लिए अनाभाव शब्द दिया गया है, जिसकी व्याख्या एवं व्युत्पत्ति में निम्न भिन्नता है।

---

१. पालि साहित्य का इतिहास पृ० ६६०

२. पालि साहित्य का इतिहास पृ० ६६०

१. पालि टेक्स्ट सोसायटी	पालि इंगलिश डिक्शनरी
अना + अभाव	अन + अभाव

यहाँ पालि भाषा में न के पहले का स्वर बल कर अन हो गया।

पाली क्रियायें यहाँ पर वर्तमान काल, एकवचन तथा अन्य पुरुष में दी गई है। क्रियाओं के आसन्न (Arist) तथा असमायिका (Past Participle) रूप बताने की अनेक विधियाँ हैं, अतः इन दोनों रूपों को प्रत्येक क्रिया के असमायिका रूप को कहीं कहीं अलग से भी दिया गया है, जब इसका पूर्ण अर्थ मूल क्रिया द्वारा व्यक्त नहीं होता अथवा जहाँ यह समझने में कठिनाई प्रतीत होती है कि यह किस मूल क्रिया से बना है। सामान्य पूर्ण क्रियायें (Absalutiues) जिनके अन्त में 'त्व' तथा त्वन् आता है, साधारणतया उन्हें क्रियाओं के पश्चात् नहीं दिया गया है। परन्तु उनके विशेष रूप जैसे निक्खम्म (Nikkhamma) पहाय (Pahaya), उच्छिज्ज (Uchhijja) दिये गये हैं। इसका यह आशय नहीं है कि इस प्रकार (Stams) वंश के शब्दांश सामान्य रूप जो 'त्व' अथवा 'त्वन्' से समाप्त होता है, है ही नहीं।

पाली पाठ्य समिति (Pali Text society) द्वारा प्रकाशित पाली अंग्रेजी शब्दकोष (Pali English Dictionary) में पाली संज्ञाओं के कुछ रूप (Stems = वंश) ऐसे दिये गये हैं जो व्यंजन से समाप्त होते हैं, जैसे सल्थार पिटल (Salthar Pitel) ब्रह्मन (Brahman) परन्तु इसका अनुसरण नहीं किया है। उन्होंने हमेशा इन शब्दों के वही रूप दिये हैं जो स्वरान्त है।

अनुपूरक साधित शब्द (Secondary Derivatives) जो 'त' (ta) से समाप्त होते हैं उन्हें स्त्रीलिंग में सम्मिलित किया गया है। उनका नपुंसक रूप (Neuton Forms) 'त्त' (tta) और 'त्तन' (ttana) से समाप्त होता है, परन्तु संक्षिप्तता की दृष्टिकोण से केवल एक ही रूप का 'त्त' (tta) इसका 'त्तन' (ttana) को एक स्थान पर दिया गया है।

पुल्लिग संज्ञायें जिनके अन्त में 'ई' (i) है उनका स्त्री रूप (Feminine Stems) 'इन्नी' (ini) से अन्त होता है, जैसे 'हाथी' (Hathi) हथिनी (Hathini) अन्नेन संज्ञायें जिनके अन्त में 'अ' (व) होता है, जैसे काका (Kaka) मिगा (Miga), नाग (Naga) उनका स्त्री रूप उनके अन्त में 'ई' (i) और कभी-कभी 'इनी' (ini) जोड़कर बनाया जाता है।

पुरुष (Masculine)	स्त्री (Feminine)
काका (Kaka)	काकी (Kaki)
मिग (Miga)	मिगी (Migi)
नाग (Naga)	नागी, नागिनी (Nagi, Nagini)

इसी प्रकार के अन्त वाले कुछ अन्य शब्दों का स्त्री रूप (आ) (व) अथवा 'आनी' (ani) से अन्त होता है—

खत्तिया (Khattiya)	खत्तिया (Khattiya)
मातुला (Matula)	मातुलानी (Matulani)

वन्तु (Vantu) और मन्तु (Mantu) से समाप्त होने वाले विशेषण शब्दों का स्त्री रूप (Feminine Form) कभी कभी प्रत्यय (Suffix) के 'उ' (u) के स्थान में (i) ई लगाकर और कभी-कभी 'न' (n) हटाकर प्रत्यय के अन्त में 'उ' (u) के स्थान पर 'ई' (i) लगा कर बनाये जाते हैं।

Gunvantu (गुणवन्तु)	Gunvanti (गुणवन्ती) Gunvati (गुणवती)
Satimantu (सतिमन्तु)	Satimanti (सतिमन्ती) Satimati (सतिमती)

वर्तमान असमायिका (Present Participle) के दो रूप होते हैं। एक को अन्त 'न्त' (nta) से होता है उनके स्त्री रूप (Feminine Form) प्रत्यय के 'अ' (a) के स्थान पर 'इ' (i) रखकर तथा 'मान' (mana) से अन्त होने वाले शब्दों के प्रत्यय के 'अ' (ka) के स्थान पर 'आ' (a) के स्थान पर आ (a) रखकर स्त्री रूप बताये जाते हैं।

गच्छत्त (Gacchanta)	गच्छन्ति (Ghcchanti)
पंचमान (Pachamana)	पचमाना (Pachmana)

इनके नपुंसक रूप पुरुष रूपों के समान होते हैं। कुछ प्रारम्भिक साधित शब्द (Prumary derivatives) जैसे 'द्रायक' (Dayaka) का स्त्री रूप (Feminine Stems) के प्रत्यय में 'अक' (aka) के स्थान पर 'इका' (ika) जोड़ कर बनता है —

दायक (Dayaka)	दायिका (Dayika)
आरोचक (Arocaka)	आरोचिका (Arocika)
पालक (Palaka)	पालिका (Palika)

आलोचनात्मक—पालि शब्द कोष

इनका पूरा नाम विल्हेम ट्रेन्कनर था, परन्तु वे हमेशा अपने को वी० ट्रेन्कनर लिखते थे, इनके पिता जर्मन जाति के थे इन्होंने १८४१ में विश्वविद्यालय की शिक्षा प्राप्त की और आगे अध्ययन जारी रखा।

अध्ययन के पश्चात इन्होंने पालि शब्दों का संग्रह किया, अध्ययन के समय इन्हें जो कठिनाई पड़ती थी उसी कठिनाई को ध्यान में रखकर इन्होंने इस कोष का संकलन किया। इस संकलन की मुख्य सामग्री पालि भाषा की संज्ञायें (Nouns) और अव्यय है। जब जन्य क्रियापदों से बने हुए शब्द एक अन्य शब्द कोष में अलग से उसी प्रकार संग्रह किये गये हैं जैसे कि वेस्टर गार्ड के संस्कृत भाषा के मूल शब्दों का संग्रह (Radious linguage Sanskratac) है। परन्तु शब्दों के पालि रूप जो संस्कृत के विभिन्न मूल शब्दों से संबंधित हैं उन्हें वर्णानुक्रम में रखा गया है।

उपसंहार

संस्कृत का कोष साहित्य वेदकाल से वर्तमान तक के इस विशाल अन्तराल में समुचित समृद्धि को प्राप्त कर संस्कृत भाषा और भारतीय संस्कृति के विकास में अत्यधिक सहायक सिद्ध हुआ। १७६० ई० तक समस्त संस्कृत कोष हस्त-लिखित रूप में सुरक्षित थे, क्योंकि उस समय तक मुद्रण की व्यवस्था नहीं थी, सर्वप्रथम १७६० ई० में अमरकोष का प्रकाशन रोम से हुआ है और इसी समय से लगभग सभी कोष विभिन्न संस्थानों से प्रकाशित होने लगे। संस्कृत कोष साहित्य का ही नहीं, वरन् अन्य साहित्यिक सामग्रियों का भी प्रकाशन इसी समय से प्रारंभ हुआ है। संस्कृत साहित्य के प्राचीन नाटकों (मास के त्रयोदश नाटक) का प्रकाशन १६१२ में हुआ और इन नाटकों का पता टी० गणपति शास्त्री ने १६०६ में लगाया है। इसी प्रकार संस्कृत कोषों का ज्यों ज्यों पता लगता गया, विभिन्न संस्थानों से उनका प्रकाशन होता गया। इससे स्पष्ट है कि जिन बहुत से कोषों का मात्र उद्धरणों से पता लगता है वे उपलब्ध नहीं हैं, वे कालान्तर में प्राप्त हो सकते हैं, यदि नष्ट न हुए होंगे।

सर्वप्रथम इसे मैंने जब अपना शोध विषय चुना और कोषों के अध्यन में संलग्न हुआ क्रमशः कोषों के अध्ययन से प्राप्त सामग्री के संकलन से विशेष आनन्द का अनुभव प्राप्त किया, तभी यह धारणा उठी कि इस प्रबन्ध में प्रायः वैदिक काल से लेकर आज तक के समस्त संस्कृत कोषों का परिचय देने का प्रयास किया जायगा, लेकिन इस प्रबन्ध में सौ से भी अधिक कोषों का परि-चय देना संभव न हो सका, वैसे इस आकार प्रकार के प्रबन्ध में एक कोष के लिए भी पूर्ण सामग्री देना कम ही होगा। इस प्रबन्ध में वैदिक काल से लेकर बीसवीं सती तक के कोषों के परिचय देने का प्रयास किया गया है। साथ ही द्विभाषिक कोषों की सूची भी प्रस्तुत की गई है, जिन कोषों का परि-चय नहीं दिया जा सका, उनका उल्लेख प्रारम्भ में किया गया है। जिन कोषों का परिचय द्वितीय अध्याय में दिया गया है, उन्हीं कोषों के शब्द-चयन क्रम, पद्धति एवं प्रणाली तथा शब्द संग्रह ये आधार आदि विषयों की चर्चा तीसरे अध्याय में की गई है।

संस्कृत कोषों की पद्धति एवं प्रणाली समय समय पर परिवर्तित होती गई प्रथम पद्धति कोषों की एकार्थक है, इस पद्धति के अनुसार शब्दों के अनेक पर्यायों का उल्लेख किया गया है। जैसे राम के २५ नाम, कृष्ण के २० नाम, इत्यादि। इस पद्धति का आदि कोष वैदिक निघण्टु है और परवर्ती बहुत से कोषकारों ने इसका अनुकरण भी किया है। द्वितीय अनेकार्थक है, इस पद्धति के अनुसार एक शब्द के अनेक अर्थों का उल्लेख किया गया है। यथा अर्क के ४ अर्थ, शिव के ३ अर्थ, विष्णु के २ अर्थ इत्यादि। इस प्रकार के कोषों में स्वतन्त्र रूप से लिखा जाने वाला प्रथम कोष शाश्वत कृत अनेकार्थ समुच्चय है और बाद में बहुत से अनेकार्थक कोषों का प्रणयन हुआ। उपर्युक्त दो पद्धतियों के अतिरिक्त एक तृतीय पद्धति से भी कोषों का प्रणयन हुआ, जिसमें दोनों पद्धतियाँ मिश्रित रहती हैं। इस प्रकार का कोष अमरकोष है।

वस्तुतः कोष में शब्दों का संग्रह किया जाता है, वे, शब्द किस प्रकार से अर्थ को प्रतिभासित करते हैं यह काम पूर्णतः कोष का नहीं है, अन्य अंग अर्थों को बताते हैं शब्दों के विभिन्न अवयवों के साथ व्याख्या व्याकरण के द्वारा होती है, कोष केवल शब्दों को जीवित रखता है। लेकिन परम्परा का निर्वाह करते हुए, कोष में भी शब्दार्थ प्रक्रिया का संकलन किया जाता है, जिन कोषों में शब्दों के पर्यायों मात्र हैं उनमें प्रयोग के अनुसार ही शब्दों के विभिन्न अर्थों का ज्ञान होता है। पर्व में ही स्पष्ट किया जा चुका है कि कोष का अर्थ है शब्दों की रक्षा के साथ उनके विभिन्न अर्थ को प्रकट करता है। संसार में जो शब्द उत्पन्न हुए है वे कभी नष्ट नहीं होते, चाहे उनका संग्रह ग्रन्थों में किया गया हो अथवा नहीं। शब्द राशि ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं, कवि या लेखक या तो पूर्व विद्वानों के अनुसार या अपनी कल्पना के अनुसार उनका प्रयोग करते हैं। शब्द राशि पृथ्वी की उपज नहीं इस सन्दर्भ में जानसन् का कहना है कि—

"I am not so lost in lexico Iraphy as to forget that words are the daughters of earth, and that things (iucluding deeds) are the sonsot heaven"

इससे स्पष्ट होता है कि कोषों में संग्रहीत शब्द या तो पूर्व में जिनका प्रयोग हो चुका है, अथवा जो प्रगट हो चुके हैं उन्हीं का कोषकारों ने संग्रह किया है।

संस्कृत कोषों का नाम पहले कोषकारों के नाम के अनुसार पड़ता था जैसे अमरसिंह का कोष अमरकोष, हलायुध कोष, हेमचन्द्र का हेमकोष, वररुचि का वररुचिकोष, मेदिनीकर का मेदिनी कोष आदि। कुछ कोषों का नाम विषय के आधार पर रखा जाता था जैसे वैदिक शब्दों का कोष वैदिक, लौकिक

कोष, पालिकोष, प्राकृत कोष आदि। इसके अलावा कुछ कोषो' का नाम पद्धति के आधार पर रखा गया है, जैसे अनेकार्थक शब्दों के कोष को अनेकार्थ समुच्चय अनेकार्थ संग्रह, अनेकार्थ रत्नमाला, नानार्थ संग्रह आदि समानार्थक कोषों में पर्यायरत्न माला आदि। कुछ कोषों का नाम विषय के आधार पर जैसे एकाक्षर कोष, द्विरूप कोष, उणादि कोष आदि रखा जाता था। इस प्रकार से कोषों के विभिन्न प्रकार से रखे गए नामों का विशेष महत्व होता था। कोष के अध्येता कोष के नामों से ही उसके सामग्री का ज्ञान कर लेते थे।

इसी प्रकार से कोष के अन्दर विभिन्न शब्दों के संग्रह का क्रम विभिन्न प्रकार से किया जाता रहा है जैसे भूमिवर्ग में भूमि सम्बन्धी शब्दों का संग्रह, स्वर्गवर्ग में स्वर्ग से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह, दिग्वर्ग में दिशाओं से संबंधित शब्दों का संग्रह, ब्राह्मण वर्ग में ब्राह्मण से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह। इसी प्रकार से क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्ग एवं अन्य वर्गों में वर्ग से सम्बिन्धित शब्दों का ही संग्रह किया जाता रहा। इस प्रकार में शब्दार्थ देखने की प्रक्रिया विषय के आधार पर है अगर किसी को भूमि से सम्बन्धित शब्द की आवश्यकता है तो भूमि वर्ग में ही देखेगा। किसी भी वर्ग से सम्बन्धित शब्द को उसी वर्ग में देखेगा। कुछ कोषों के नाम भी इसी प्रकार से रखे जाते थे। उस कोष में उसी तरह से शब्दों का संग्रह होगा। जैसे पौराणिक व्यक्तियों और स्थानों के नामों के कोष, ऐतिहासिक व्यक्तियों के नामों के कोष (चरित्रकोष या जीवनी कोष) भौगोलिक स्थानों, भूमि, पुर, नदियों, पर्वतों आदि के नामों और विवरणों के कोष, भिन्न भिन्न विद्वानों जैसे कृषि, गणित दर्शन, भौतिक विज्ञान, वैद्युत शास्त्र आदि के पारिभाषिक शब्दों के कोष आदि। इस प्रकार के कोषों में शब्दों को ढूंढ़ने में कठिनाई अवश्य होती थी जैसे राजा से षड अंगों को देखना है तो यह शब्द कहां मिलेगा, इस पर पहले विचार करना होगा और आगे सम्बन्धित वर्ग में देखना होगा, वर्ग के पता लगने पर भी यह पता लगाना पड़ेगा कि इस प्रकार के शब्दों की चर्चा इस वर्ग में कहां पर है इसमें निश्चय ही पाठकों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। कालान्तर में इस पद्धति में विद्वानों ने सुधार किया और वर्णक्रम के आधार पर शब्दों का संग्रह किया। लेकिन वर्णक्रम में भी कुछ कठिनाइयां पड़ने लगी। कुछ कोषों में तो वर्णक्रम का ध्यान दिया गया, लेकिन वर्णक्रम का प्रारम्भ आदि से न कर अन्त से किया गया। जैसे दो अक्षरों के शब्दों को अगर कोषकार बता रहा है दो अक्षरों का क्रम अन्तिम अक्षर पर रहेगा, जैसे क वर्ग में अर्क कर्क तर्क आदि। इसी प्रकार ३,४,५ अक्षरों से निर्मित शब्दों का भी क्रम था। इस पद्धति के

कठिनाइयों को देखते हुए कोषकारों ने पूर्णरूपेण वर्गक्रम आरम्भ से करके कोषों का निर्माण किया और यह पद्धति आज बीसवीं शती में सफल सिद्ध हुई। इस पद्धति से शब्दार्थ देखने की प्रक्रिया सरल हो गई। इस तरह के कोषों में 'शब्द कल्पद्रुम,' 'वाचस्पत्यम्' आदि मुख्य हैं।

प्राचीनकाल में कोषों में परिशिष्ट के रूप में अनुक्रमणिकाएं भी रहतीं थीं जैसे प्रतीकानुक्रमणिका, विषयानुक्रमणिका, शब्दानुक्रमणिका आदि। इन अनुक्रमणिकाओं में ऐसे शब्दों का संग्रह किया जाता था जिन शब्दों का कथन विषयाभाव के कारण यथा स्थान नहीं किया जा सका, और साथ ही ऐसे शब्द जिनका उल्लेख वह व्यक्ति करना चाहता था, लेकिन किन्हीं कारणों से उल्लेख नहीं कर सका, उन सभी शब्दों को अनुक्रमणी में जोड़ दिया जाता था।

प्राचीन-काल में कोष लिखने के उद्देश्य आज से बिल्कुल भिन्न थे, कोष के उद्देश्य कई प्रकार के होते हैं, कुछ कोष बालकों के लिए लिखे जाते हैं, प्रारम्भिक अवस्था में बालकों को किस प्रकार से शब्दों का अभ्यास कराया जाय कुछ कोष विद्यार्थियों के लिए परीक्षा पास करने हेतु कितने प्रकार के शब्दों को विद्यार्थियों को याद करना चाहिए। इसी तरह कुछ कोष साधारण पाठकों के लिए, कुछ अधिक शिक्षितों और सुधी पाठकों के लिए, कुछ कोष वकीलों के लिए होते हैं, जिनमें उनसे सम्बन्धित शब्दों का क्या अर्थ होता है आदि समस्त बातों की जानकारी रहती है, इसी प्रकार से ज्योतिषियों के लिए कुछ अलग प्रकार के कोष लिखे जाते हैं, जिनमें ज्योतिष से सम्बन्धित शब्दों का संग्रह किया जाता है। कुछ कोष कृषकों के लिए होते हैं, जिनमें कृषि सम्बन्धी जानकारी रहती है, कुछ वैद्यों और अन्य समस्त प्रकार के लोगों के लिए अलग अलग प्रकार के कोष होते हैं।

इस प्रकार से अलग अलग विषय से सम्बन्धित अलग अलग कोष होते हैं, देखा जाय तो वैदिक काल से लेकर आज तक जितने कोष प्राप्त होते हैं उन सबमें एकरूपता किसी भी विषय में नहीं है न तो कोषों के उद्देश्य एक हैं न तो विषय विभाग शब्द चयन क्रम आदि। कुछ समय तक समय के अनुसार कोषों में एकरूपता दिखाई देती है, निघण्टु के बाद अमरकोष तक एक परम्परा दिखाई देती है। बीच बीच में भी इसी परम्परा का निर्वाह किया गया है और बाद में भिन्न भिन्न परम्पराएं उत्पन्न और समाप्त होती गई, कोई भी परम्परा स्थिर नहीं रही।

संस्कृत कोषों में एक बात और विचारणीय है कि कुछ कोषकारों ने अपने से पूर्ववर्ती कोषकारों के कोषों का नकल किया है, शब्द संग्रह में बहुत से

कोषकार अक्षरशः पंक्तियां उतार ली है। इस सम्बन्ध में पूर्ण तो नहीं फिर भी कुछ जानकारी प्रस्तुत की गई है। बहुत से कोषकारों ने पूर्ववर्ती कोषकारों के कोषों से सामग्री ली, लेकिन भ्रान्ति से शब्द का अर्थ बदलकर चूक कर दी है। यद्यपि शब्दों का संग्रह वही करना है जो कि अन्य कोषकारों ने अपने कोषों में किया है, लेकिन अक्षरशः पंक्ति उतारने पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि इन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन न करके अपने पूर्ववर्ती कोषकारों का अनुकरण किया है।

यद्यपि कोषों में शब्दों का संग्रह किया गया है लेकिन उनके अध्ययन से यह पता चलता है कि इन कोषों में सूक्ष्म तत्वों का किस प्रकार से संकलन किया गया है, दार्शनिक तत्वों में मनन चिन्तन, के साथ ही अन्य तत्वों का संकलन यह स्पष्ट करता है कि कोष में न केवल ऐसे ही शब्दों का संकलन होता है जो शब्दार्थ प्रक्रिया को ही प्रगट करते हों वरन वे समस्त तत्व जिनका उल्लेख स्वतन्त्र रूप से ग्रन्थों में होता हैं उन सबका अप्रत्यक्ष रूप से कोषों में भी वर्णन रहता है। इसी तरह से कोषों में सांस्कृतिक सामग्री भी स्पष्ट रूप से प्राप्त होती है। तत्कालीन संस्कृति का समुचित दिग्दर्शन जितना कोषों में होता है उतना अन्य ग्रन्थों में संभव नहीं । कवि या लेखक जब कुछ लिखता है तो उसके न चाहते हुए भी उस समय की संस्कृति अप्रत्यक्ष रूप से उसकी कृति में व्यक्त होती है। भारत की संस्कृति अत्यन्त प्राचीन है विद्वानों ने यहाँ की संस्कृति का अच्छे ढंग से उल्लेख किया है। हमारी संस्कृति सभी क्षेत्रों में पुष्पित होकर पल्लवित हुई है क्या भौगोलिक स्थिति का वर्णन और कितना ही सजीव सामाजिक स्थिति का चित्रण और आर्थिक, राजनैतिक आदि समस्त तत्वों का स्पष्ट चित्रण कोषों में उपलब्ध होता है।

जिस प्रकार से विद्वानों में कोष निर्माण में प्रतिस्पर्धा की भावना से अधिकाधिक कोषों का निर्माण किया उसी प्रकार से विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न कोषों की टीका करके अपनी विद्वत्ता प्रगट की है । अमरकोष की लगभग शताधिक टीकाएं विश्रुत हैं। संस्कृत के प्राचीन कोषों की टीकाएं लिखी गईं, क्योंकि प्राचीन संस्कृत श्लोकों में प्राप्त होते हैं, जिनकी टीका आवश्यक थी, संस्कृत कोषों के लिए एक विचारणीय प्रश्न है कि जो शब्दार्थ को बताया है उसी की व्याख्या करना कहां तक उचित है, लेकिन जहाँ तक प्राचीन संस्कृत कोषों का प्रश्न है जो श्लोकबद्ध हैं उनकी टीका आवश्यक है बीसवीं शती के कोष जैसे 'वाचस्पत्यम्' शब्द कल्पद्रुम आदि कोषों की टीका लिखने की कोई आवश्यकता ही नहीं दिखती है। अधिकांश संस्कृत कोषों की टीका आज भी उपलब्ध है, जिसके माध्यम से शब्दार्थ का वास्तविक ज्ञान सुगम हो गया है।

इस प्रबन्ध में कोष सम्बन्धी समस्त आवश्यक जानकारी दी गई है। आज के युग में शब्द कोषों का अध्ययन अति आवश्यक हो गया है। मनुष्य बिना कोषों के अध्ययन से शब्दों के विभिन्न अवयवों की पूर्ण जानकारी नहीं प्राप्त कर सकता। जो व्यक्ति जितने अधिक कोषों का अध्ययन करेगा वह उतना ही विद्वान होगा। इसीलिए विद्वानों के लिए कोषों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि जिस प्रकार से राजा को धन कोष की आवश्यकता होती है उसी प्रकार विद्वानों को शब्दकोष की महान आवश्यकता होती है। राजा धन के बिना महान संकट को प्राप्त होता है और विद्वान शब्द-कोष के बिना महान संकट को प्राप्त होता है।

''कौशश्चैव महीपानां, कौशश्च विदुषामपि
उपयोगो महान्येष क्लेशस्तेन विना भवेत ॥''.

शब्द ब्रह्म अनादि है, वही शब्द तत्व अर्थ तत्व में परिणत होता है। वही सृष्टि का कारण है; वही सृष्टि का आधार है—

''अनादि निधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम्
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतोयतः ॥ वा०॥

अन्त में 'शब्द तत्व' की महत्ता दण्डी के इस वचन से कि 'अगर संसार में शब्द नामक ज्योति न उत्पन्न हुई होती तो संसार अज्ञानान्धकार में लीन हो जाता' के साथ शब्द तत्व का विवेचन समाप्त करता हूं।

''इदम अन्धतमः कृत्सनं जायते भुवनत्र्यम्
यदि शब्दाह ज्योतिरआसंसारान्न दीप्यते ॥ का०॥

●

परिशिष्ट—१

प्रकाशित कोषों की सूची

१. अगस्त्या—शब्द संग्रह जिसका संपादन श्री पारवस्तु रंगनाथ स्वामी विजागपाटम ने १८६५ में किया तेलुगू हस्तलिपि "ग्रन्थ प्रदर्शनी" से प्रकाशित हुई।

२. अजयपाल—नानार्थ संग्रह—श्री टी० आर० चिन्तामणि ने संपादन किया तथा मद्रास विश्वविद्यालय से १९३७ में प्रकाशित हुई।

३. अमरसिंह—जिसको कि नामलिंगानुशासन भी कहते हैं, कूप्पाभट्ट ने तंजौर से १८०३ में संपादित करके प्रकाशित कराया।

४. अमरकोष—त्रिकाण्डशेष और हारावली लेखक श्री पुरुषोत्तम देव और मेदिनीकर का नानार्थ कोष श्री बाबूराम के द्वारा एच० टी० कूलब्रूक के निर्देशन में संपादित और विद्याकर मिश्रा द्वारा कलकत्ता, १८०७

५. अमरकोष एच० टी० कूलब्रूक से पुनः प्रकाशित सूरत, १८२७ में

६. अमरकोष मद्रास असीलम प्रेस १८३५

७. अमरकोष बेल्लारी १८४८ अमरकोष मानुवी दीक्षित की टीका 'रामाश्रयी' जिसको कि 'व्याख्या' सुधा' भी कहते हैं बनारस, १८५४ दूसरा प्रकाशन श्री शिवदत्त का, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १८८९।

८. संपादन वासुदेव लक्ष्मण पनासीकार १८९७

९. "अमरकोषाभिधानम्" कलकत्ता इंग्लो इंडियन यूनियन प्रेस, १८५५

१०. अमरकोष कलकत्ता कविता प्रकाशन यन्त्र १८५७

११. नामलिंगानुशासनम् काण्ड प्रथम, मद्रास ज्ञान रत्नाकर प्रेस १८५७

१२. नामलिंगानुशासनम् मद्रास कलानिधि प्रेस १८५८

१३. अमरकोष व्याख्या रत्नगिरि मोघे बाम्बे बापू सदाशिव सेठ प्रेस १८६०

१४. नामलिंगानुशासनम् व्याख्याकार महेश्वर "सुबोधिनी" व्याख्या रघुनाथ तजे कोला बाम्बे १८६२

१५. अमरकोष कलकत्ता सुधानिधि प्रेस १८६५ बंगाली लिपि।

१६. अमरकोष कलकत्ता १८६३ वंगाली लिपि।

१७. अमरकोष नामलिंगानुशासनम् महेश्वर की सुबोधिनी व्याख्या सहित बनारस १८६७

१८. अमरकोष कलकत्ता हिन्दू प्रेस १८६९

१९. नामलिंगानुशासनम् मद्रास हिन्दू भाषा संजीवनी प्रेस १८७० ग्रन्थ लिपि

२०. नाम लिंगानुशासनम् संपादन, बाविल्ला रामस्वामी शास्त्री और सारस्वती तिरुवेंकटाचार्य मद्रास १८७०

२१. अमरकोष कलकत्ता सम्वद ज्ञान रत्नाकर प्रेस १८७२ बंगाली लिपि।

२२. अमरकोष काण्ड प्रथम् बाम्बे श्री प्रार्थनाकर प्रेस १८७२

२३. अमरकोष कलकत्ता नृत्य लाल सिला १८७४

२४. अमरकोष जीवनन्द विद्यासागर भट्टाचार्य कलकत्ता १८७५

२५. अमरकोष, बाम्बे सखाराम सेठ खाती का प्रेस १८७७

२६. अमरकोष मूल, सुब्रमण्यम् परिमल रोची "एस० टी० थामस प्रेस" १८७७ मलयालम् लिपि।

२७. नामलिंगानुशासनम् प्रथम काण्ड, बनारस हिन्दू विद्या निलय प्रेस १८७८ तेलगू लिपि।

२८. अमरकोष पूना बृत्त प्रसार का प्रेस १८७८

२९. सविग्रह अमरकोष हरिविनायक पंडित 'विग्रह' व्याख्या पूना दत्त प्रकाशन प्रेस १८८१

३०. अमरकोष महेश्वर की व्याख्या सहित रघुनाथ शास्त्री तेलकारा द्वारा, संपादन चिन्तामणि शास्त्री थाटे सुपरिन्टेन्डेन्ट डा० एफ० कीलहार्न के नेतृत्व में, बाम्बे गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल बुक डिपो १८८२
षष्ठ संस्करण वामनाचार्य झलकीकर, सुपरिन्टेडेन्ट
डा० रामकृष्ण गोपाल भंडारकर के नेतृत्व में बाम्बे १९०७

३१. अमरकोष—गणपति तर्करत्न कलकत्ता, (पाण्डवाचरण डी) १८८४ बंगाली लिपि।

३२. अमरकोष व्याख्या रघुनाथ चक्रवर्ती और राय मुकुट मुकुट भरत सेन नयनानन्द की कमेन्ट्री संपादन चन्द्रमोहन भट्टाचार्य कलकत्ता पी०एम० सूरा एन्ड को० १८८६

३३. नामलिंगानुशासनम् व्याख्या क्षीरस्वामी और रायमुकुट और आनन्द राम बरुआ की व्याख्या सहित बरहानपुर (मुर्शीदाबाद), १८८७

३४. नामलिंगानुशासनम् प्रथम काण्ड अलग से मद्रास १८९६

३५. अमरसिंह कालीकट विद्या विलास प्रेस १६०० मलयालम लिपि।
३६. नामलिंगानुशासनम् बाम्बे नेटिव ओपीनियन प्रेस १६०६
३७. नामलिंगानुशासनम् 'अमरकोषोद्घाटन' क्षीरस्वामी की व्याख्या सहित आलोचनात्मक टिप्पणी तथा अमरसिंह और क्षीरस्वामी के समय के बारे में लेख, कृष्ण जी गोविन्द ओका का, पूना ला प्रिंटिंग प्रेस १६१३
३८. नामलिंगानुशासनम्, दो व्याख्याओं सहित प्रथम क्षीरस्वामी की अमर-कोषोद्घाटन और दूसरी वन्दघाटीय सर्वानन्द की टीका सर्वस्व संपादित टी० गणपति शास्त्र त्रिवेन्द्रम कुरेहर विभाग संस्कृत लिपि प्रकाशनार्थ १६१४
३६. अमरकोष संस्कृत व्याख्या सहित 'रसाल व्याख्या' शक्तिधर शास्त्री लखनऊ नवलकिशोर प्रेस १६१६
४०. अमरकोष, हरिपद चट्टोपाध्याय कलकत्ता दि इडीटर १६२२ बंगाली लिपि।
४१. नामलिंगानुशासनम् टी० एम० नारायण शास्त्री, कुम्भकोनामः शरद विलास प्रेस १६२३
४२. नामलिंगानुशासनम्, क्षीरस्वामी की टीका 'अम कोषोद्घाटन के साथ, हरदत्त शर्मा और एन० जी शरद देशाई पूना ओरिएन्टल प्रेस एजेन्सी १६४१
४३. अमरकोष, मद्रास वी० रामस्वामी शत्रुला एन्ड सन्स १६४६ तेलुगू लिपि।
४४. अमरकोष, महेश्वर की परिवर्धित व्याख्या नौमा संस्करण फुट नोट सहित नारायण राम आचार्य बाम्बे निर्णय सागर प्रेस १६५०
४५. अमरकोष काण्ड प्रथम संपादन सी० एन० नामदेव शास्त्री मद्रास सी० वी० कृष्ण बुक डिपो १६५५ तेलुगू लिपि भण्डारी चन्द्रराज।
४६. वनौषधिचन्द्रोदय इन्दौर ज्ञान मन्दिर १६३८

तृतीय संस्करण इन्दौर ज्ञान मन्दिर और वाराणसी चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो १६५१—५७ और भारतीय वनस्पति और उसके प्रत्यंगोंका विश्वकोष प्रथम खण्ड चौथा संस्करण १६५६ में प्रकाशित।

४७. कोष संग्रह—गुरुनाथ विद्यानिधि भट्टाचार्य द्वारा संपादित अमरकोष के आधार पर सांख्यकोष के शब्दों का संग्रह, नक्षत्र कोष, राशिकोष, एकाक्षर कोष, द्विरूप कोष, बीजकोष, नानार्थ ध्वनि मंजरी, ग्रह विधान और सारस्वत विधान कलकत्ता १६०७ में प्रकाशित, छठवां

संस्करण श्री राम शास्त्री द्वारा संपादित कलकत्ता जानकीनाथ कवि तीर्थ द्वारा प्रकाशित ।

४८. शब्द स्तोमहानिधि तारानाथ तर्कबाचस्पति भट्टाचार्य द्वितीय संस्करण कलकत्ता बीडन प्रेस १८७४—पेज १३४६ आकार २० से० मी०

४९. वाचस्पत्यम्—दारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्य सुगम संस्कृत शब्दकोष कलकत्ता काव्य प्रकाश प्रेस १८७३—८३, ६ खण्ड २६ से० मी० फोटो कापी; वाराणसी चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो १९६२—६ खण्ड २९से० मी० चौखम्बा संस्कृत सीरीज नं० ९४ मू० ४००—००

५०. अख्यात चन्द्रिका भट्टामाला संपादित द्वारा श्री अखस्तु रंगनाथ स्वामी, बनारस चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो १९०४—४२ पृष्ठ द्वितीय संस्करण हरगोविन्द दास द्वारा १९३६

५१ भावमिश्र—भाव प्रकाशनिघण्टु—भानदत्त, गंगाविष्णु शास्त्री की संक्षिप्त नोट सहित—बाम्बे वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस १९१५—(१६) २२२ पृ० २१ से० मी० मू० १५०-००

५२. चमूपति–वेदार्थ कोष—वैदिक शब्दों का अर्थ सहित संग्रह वेद के ऊपर दयानन्द की व्याख्या सहित, तथा ब्राह्मण उपनिषद् निघण्टु और निरुक्त पर टिप्पणी लाहौर चमूपति साहित्य विभाग १९३४, ४०—३ खण्ड २४ से० मी० ।

५३. देव राधाकान्त राजा—शब्द कलपद्रुम—संशोधित संस्करण कलकत्ता नूतन बंगला प्रेस १८७४–७७—९ खण्ड २६ से०मी० वंगाली लिपि ।

५४. शब्द कलपद्रुम संपादित वरद प्रसाद वसु और हरिचरण वसु कलकत्ता १८८६—९४—५ खण्ड ३१ से०मी० फोटोकापी मोतीलाल बनारसी-दास दिल्ली १९६१ पांच खण्ड ३१ से०मी० मू० १९४—७५ दूसरी फोटो कापी बनारस चौखम्बा बुक डिपो १९६१—५ खण्ड ३१ से० मी० मू० २५०-००

५५. शब्द कलपद्रुम—संपादन काली प्रसाद काव्य विशारद कलकत्ता हितावदी प्रेस १९१४—दो खण्ड २९ से० मी० बंगला लिपि ।

५६. धनन्जय नाममाला—अमरकीर्ति की व्याख्या सहित, साथ में अनेकार्थ निघण्टु और एकाक्षरी कोष टिप्पणी सहित संपादन शंभूनाथ तीर्थ बनारस भारतीय ज्ञानपीठ १९५० (१४) १३८ पृ० २६ से० मी० ज्ञानपीठ देवजैन ग्रन्थमाला संस्कृत ग्रंथ, मू० ३–५०

५७. धन्वन्तरि निघण्टु—संपादित नारायण शर्मा पुरन्दर पूना, आनन्द राम प्रेस १८९६ (७) १६५ पृ० २३.५ से० मी० (आनन्दराम संस्कृत सीरीज) मू० ३३-००

५८. दुबे शिव लाल—सतकोष संग्रह —बनारस १८७३ क्रमशः (१) हला-युध कोष (२) विश्वकोष (३) पंच तत्व प्रकाश (४) उणादि कोष (५) शारदीयाख्य नाममाला (६) हेमचन्द्र कोष ।

५९. दुर्गा प्रसाद—अभिधान संग्रह – प्राच्य संस्कृत शब्दों का संग्रह संपादित दुर्गा प्रसाद काशीनाथ पाण्डु रंग, परव और शिवदत्त बाम्बे निर्णय सागर प्रेस १८८९-९६, २० से० मी० ।

६०. द्वारिकानाथ न्यायभूषण अव्यय कोष में अव्यय शब्दों का संग्रह मात्रिक के आधार पर किया गया है । इसको वृहद एकाक्षर कोष भी कहते हैं । टिप्पणी में लेखक के जीवन परिवार एवं उनके साहित्यिक रचनाओं के बारे में उल्लेख है । कलकत्ता १८९९, २८ पृ० २० से० मी० ।

६१. द्विवेदी सरजू प्रसाद वर्णवीज प्रकाश—तान्त्रिक शब्दों का कोष, बाम्बे श्री वैंकटेश्वर स्टीम प्रेस १९११

६२. गौरीशंकर भिक्षु—सर्वलोग संग्रह हिस्सार १९२१—१५८ पृ० मू० २९ पैसे चतुर्थ संस्करण बनारस हित चिन्तक प्रेस १९३७, जिनमें ३२३१ लक्षण सम्मिलित हैं मूल्य ४-०० । षष्ठ संस्करण हिस्सार मन-भारी देवी १९४९, २३७ पृ० १३ से० मी० मू० ७५ पैसे ।

६३. गुप्ता सिद्धेश्वर—द्रव्यार्थचन्द्रिका कलकत्ता १८७७ (७) ५५८ पृ० २४ से० मी० बंगाली लिपि ।

६४. हंसराज—वैदिक कोष संपादित उद्धरण और टिप्पणी सहित हिन्दी में ब्राह्मण साहित्य पर भागवत दत्त । लाहौर शोध विभाग डी० ए० वी० कालेज १९२६ प्रथम खण्ड ६९९ पृ० २२ से० मी० (दयानन्द महाविद्यालय संस्कृत ग्रन्थमाला नं० ८)

६५. हर्षकीर्ति सूरि—लघुनाममाला अथवा शारदीय—३ खण्डों में शब्द संग्रह संपादन पं० काशीनाथ वेदालंकार अहमदाबाद १९१८, ४४ पृ० २० से० मी० (चन्द्र सिंह सूरि ज्ञान ग्रन्थमाला-२)

६६. हेमचन्द्र—अभिधान चिन्तामणि संपादन ओटो बोर्थलिंग और चार्ल्सरि एस०टी० पीटर्स वर्ग एकैडमी दरबीसैन स्काटेन, १८४७-(१२) ४४३पृ०

६७. अभिधान चिन्तामणि—बंगाली अनुवाद सहित द्वारा नारायण चन्द्र भट्टाचार्य—कलकत्ता बीणापाणि प्रेस १९०७—७४७४ पृ० १८ से० मी० लेखक की संक्षिप्त जीवनी सहित।

६८. अभिधान चिन्तामणि संपादक विजय धर्म सूरि भावनगर नाथूलाल लक्ष्मी चन्द्र वाकिला १९१५-२०

६९. अभिधान चिन्तामणि संस्कृत व्याख्या सहित कालिवर भट्टाचार्य वेदान्त बागीस संपादक रामदास सेन कलकत्ता, सेन वेद ज्ञान रत्नाकर प्रेस १९३४-२२ से० मी०।

७०. अभिधान चिन्तामणि कोष बाम्बे निर्णय सागर प्रेस १९४६

७१. दर अनेकार्थ संग्रह संपादक व्याख्या सहित महेन्द्र सूरि, द्वारा थिओडर जिकैरिअर । बाम्बे एजुकेशनल सोसायटी प्रेस १०९३—२०६ पृ० ७५ से० मी० (क्यूलेन वर्कडर अल्टिन्डिस्चेन लिक्जिकोग्राफी ९१)

७२. अनेकार्थ संग्रह—घनानन्दपाण्डेय और जनार्दन जोशी, संपादक जगन्नाथ शास्त्री होसिंगा—बनारस जय हरीदास कृष्णदास गुप्ता १९२९ १९७ पृ० २३.५ से० मी० (काशी संस्कृत सीरीज हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला ६८ कोष विभाग २)।

७३. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर—शब्द मंजरी कलकत्ता १८६३, ३१२ पृ०

७४. जैन जगमन्दर लाल जैन जिन कोष—जगमन्दर लाल जैन और शीतला प्रसाद आरा १९१८- १५६ पृ०, ३० से० मी० (लायब्रेरी आफ जैन लिटरेचर ९) प्राकृत

७५. झलकीकर भीमाचार्य—न्यायकोष संपादक वासुदेव शास्त्री अभयन्कर तृतीय संस्करण पूना भंडारकर औरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट १९२८, १०८४ पृ०, २१.५ से० मी० (बाम्बे संस्कृत एण्ड प्राकृत सीरीज ४९) प्रथम संस्करण १८७५ न्याय दर्शन का कोष।

७६. जिनदेव मुनि—अभिधान चिन्तामणि शिलोचना—हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणि का १३९ पदों का संग्रह संपादक शिवदत्त और काशीनाथ पाण्डुरंग परवा बाम्बे १८९६।

७७. जोशी लक्ष्मण शास्त्री—धर्मकोष बाई (सतारा) प्रजना पाठशाला मण्डल १९३७, २ खण्ड २७ से० मी० प्रथम खण्ड व्यावहारिक खण्ड दूसरा खण्ड उपनिषद् खण्ड।

७८. जोशी वेंकटेस्वर सरस्वती—भारतीय राजनीति कोष पूना—राजनीति कोष मण्डल १९५४, प्रथम खण्ड—१२० पृ० २४ से० मी०—प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार और सिद्धान्त मू० १०-००

७९. केशव —कल्पतरु कोष संपादक रामावतार शर्मा—बड़ौदा ओरिएन्टल इन्स्टीच्यूट १९२८-३२ दो खण्ड २२.५ से० मी० (गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज ४२) भारतीय कोष के इतिहास और विकास वृहद सर्वेक्षण।

८०. केवलानन्द सरस्वती—ऐतरेय ब्राह्मण आरण्यक कोष बादलपुर आर्य संस्कृत मुद्रणालय १९५२ ११० पृ० २४.५ से० मी० मू० ८-००

८१. मीमांशा कोष (सतारा) प्रजन पाठशाला मण्डल १९५२-५६ चार खण्ड २८ से० मी० जैमिनी के मीमांशा सूत्र ६ खण्डों में पूर्ण।

८२. खण्डेकर के० एस० संस्कृत कोष बाम्बे चन्द्र प्रकास प्रेस १८६६, २३४ पृ०

८३. खण्डेलकर राघव अप्पा-कोशावतंस सम्पादक एस०ए० खण्डेलकर पूना १९४५, खण्ड १ मू० २-००

८४. क्षेमेन्द्र—लोकप्रकाश सम्पादक जगधर जादु श्री नगर महाराज जम्मू और कश्मीर के निर्देशन में १९४७, ८८ पृ० (दि काश्मीर सीरीज आफ टैक्स्ट एण्ड स्टडीज ७५)।

८५. मदनपाल—मदनपाल निघण्टु कलकत्ता १९१४, ५४० पृ०, ३० से०मी०

८६. महेश्वर विश्वप्रकाश अथवा विश्वकोष सम्पादक रत्न गोपाल भट्ट और शिलास्कन्ध महास्थविर बनारस चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो १९११-१९३ पृ० २० से० मी०

८७. महिपाल—अनेकार्थ तिलक आलोचनात्मक व्याख्या मधुकर मंगेस पाटकर पूना डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना १९४७-२१९ पृ० २४.५ से० मी०

८८. मंख—मंखकोष—व्याख्या सहित सम्पादक थिओडर जैचैरिअर बाम्बे एजुकेशन सोसायटी प्रेस १८९७-१६० पृ० २५ से० मी०

८९. मेदिनीकोष—मेदिनीकर नानार्थ शब्दकोष सम्पादक जगन्नाथ शास्त्री होंसिगा बनारस चौखम्बा बुक डिपो १९४०-३२५ पृ० १८.५ से० मी० (हरिजन संस्कृत ग्रन्थ माला ४१ लेक्सिकोग्राफी सेक्शन) १९१६।

९०. मिश्र त्रयंबक—विशेषामृत और आर्थोग्रैफिकल कोष अधार-अधार पुस्तकालय १९४३—१४ पृ० मू० १-००

९१. नरहरि राजनिघण्टु सम्पादक संक्षिप्त टिप्पणी सहित आशुबोध भट्टाचार्य और नित्य बोध भट्टाचार्य कलकत्ता १८६६, ४७६ पृ०, २१ से० मी० चिकित्सा कोष।

९२. राजनिघण्टु सम्पादक नारायण शर्मा पुरन्दर पूना आनन्दाश्रम प्रेस १८९६, ४४१ पृ० २३.५ से० मी० (आनन्दाश्रम सीरीज ३३) मू० ७-००

९३. नाथ सच्चिदानन्द—तान्त्रिक अभिधान कलकत्ता सतीशचन्द्र मुख्योपाध्याय १९१०, १ खण्ड १३२ पृष्ठ १२ से० मी०, मू० १-००।

९४. पांडे शंकरा डाजे ब्राह्मन निघण्टु पूना बई० जी० दीक्षित १९१४-१३३ पृ०

९५. पुरुषोत्तम देव—शब्द भेद प्रकाश—बाम्बे निर्णय सागर प्रेस १९२४—१२ पृ०

९६. त्रिकाण्ड शेष संस्कृत-संस्कृत संज्ञाओं का संग्रह सारार्थ चन्द्रिका व्याख्या सहित—शिलास्कन्ध महास्थाविर बाम्बे वैंकंटेश्वर स्ट्रीम प्रेस १९१६ ३५० पृ० २३.५ से० मी० मू० २-००

९७. राधव—नानार्थ मंजरी—आलोचनात्मक सम्पादित के० वी० कृष्णमूर्ति शर्मा पूना, डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना-६ १९५४-२५३ पृ० २४ से० मी०, मू० १५-००

९८. रामकृष्ण कवि—भारत कोष—टेकनिकल कोष परिभाषा के सहित संगीत नाट्य के शब्दों का संग्रह भारत और अन्य का सम्पादक पी० वी० रामनुजास्वामी तिरुपति, तिरुमलाई तिरुपति देवस्थानानाज १९५१-९८४ पृ० २७ से० मी०, श्री बैंकटेश्वर प्राच्य ग्रन्थ माला ३०, मू० २४-००

९९. राय गोपी मोहन—मुक्तावली—औषधि विज्ञान शब्दों का संग्रह कलकत्ता सम्वाद ज्ञान रत्नाकर प्रेस १८७४, ८९ पृ० २१ से० मी०

१००. राय किशोरीलाल तान्त्रिक अभिधान प्राकृत्य, ६० पृ०

१०१. शब्द रत्नप्रदीप—सम्पादक हरिप्रसाद शास्त्री जैपरा राजस्थान ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट १९५६-८८ पृ० २५ से० मी० राजस्थान पुरातन ग्रन्थ माला, १-००

१०२. साधु सन्दरिगणि—शब्द रत्नाकर संपादक हरिगोविन्द दास और बेचर दास बनारस—हरिश्चन्द्र भूराभाई साहा १६१२, यशोविजय जैन ग्रन्थ माला ३६ पृ० मू० ०–७५ पै०

१०३. साधु सन्दर गणि—उक्तिरत्नाकर सम्पादक जिन विजय मुनि जयपुर राजस्थान ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट १६५७, ११८ पृ० २४ से० मी० अपभ्रंश और संस्कृत शब्दों की सूची सहित।

१०४. सागरनन्दि—नाटक लक्षण रत्नकोष सम्पादक माइलेस डिलन—लन्दन आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस १६३७, भाग–१, २५ से० मी०।

१०५. साहजी किंग आफ तंजौर—शब्द रत्न समन्वय कोष आलोचनात्मक सम्पादक विट्ठलराम लल्लूराम शास्त्री बड़ौदा औरिएन्टल इन्स्टीच्यूट १६३२-६०५ पृ० २४ से० मी०, गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज ५६ मू० ११-००

१०६. शर्मा हनुमान प्रसाद—वेदशास्त्र तिलक मेरठ एन० डी० १५२ पृ०

१०७. शर्मा मन्नालाल—द्वादश कौशानाम् संग्रह बनारस १८६५ (१) मेदिनी कोष (२) एकाक्षर कोष, (३) द्विरूप कोष (४) द्विरुप कोष पुरुषोत्तम देव (५) त्रिकाण्डकोष (६) नानार्थ कोष (७) अनेकार्थ ध्वनि कोष (८) हारावलीकोष (६) धनन्जय कोष (१०) वररुचि कोष (११) नाममाला (१२) मात्रिकाकोष।

१०८. शर्मा ठाकुरदत्त—भुवनेस लौकिक न्याय शहाश्री बाम्बे श्री बैंकटेश्वर स्ट्रीम प्रेस १६०८-३२० पृ०

१०६. शाश्वत-शाश्वत कोष अथवा अनेकार्थ समुच्चय—सम्पादक टिप्पणी सहित नारायण नाथ जी कुलकर्णी पूना ओरिएन्टल बुक एजेन्सी १६२६-११ पृष्ठ इन्डैक्स २१ से० मी० नाममाला के एकाक्षर कोष की टिप्पणी शाश्वत के जन्म के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है।

११०. सेनहरिचरण—पर्याय मुक्तावली सम्पादक तारापद चौधरी पटना १६४७-१४६ पृ०, २४-५ से० मी० मू० ६-००

१११. शिवदत्त मिश्र—शिवकोष सम्पादक आर० जी० हार्षे पूना डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना १६५२-२१० पृ० २४ से० मी०, मूल्य १२-००।

११२. सुखानन्द नाथ—शब्द रत्न चिन्तामणि—आगरा १८६४-८५-४ खण्ड, प्रथम दो खण्ड, आगरा से १८६४ में प्रकाशित हुए थे बाद के दो खण्ड उदयपुर से १८८३-८५ में प्रकाशित हुए।

११३. सरूपनन्दन—आर्षगावली अमृतसर जानकी देवी १९५८, १५९ पृ०

११४. टाम्बे सदाशिव धाण्डो—गीतपदार्थानुशासन कोष, बालकृष्ण सोनसेठ विश्वकार १९१०-२०९ पृ० १८ से० मी० मू० १-०० रु०

११५. टाटाचार्य डी० टी० विशिष्टा द्वैत कोष तिरुपति श्री रंगास्था कोष यतीन्द्र महादेवी कांगसथाकोष १९५१—३७५ पृ० २७ से० मी० मू० २०-०० ।

११६. तिवारी शिवराम—लक्ष्मी निवासाभिधान १८७३ ।

११७. वर्मा रघुनाथ उदासीन—लौकिक न्याय संग्रह गंगाधर शास्त्री बनार ई० जे० लेकरस एन्ड कं० १९०२ ।

११८. बैंकटनाथ वेदान्ताचार्य—दस दीपक निघण्टु शब्दों के दस अर्थ दिए गए हैं । सम्पादक श्री पारवस्तु रंगनाथ स्वामी विशाखापट्टनम् १८९८ ।

११९. विजय राजेन्द अभिधान राजेन्द्र—यह प्राकृत का कोष जिसकी व्याख्या संस्कृत में है सम्पादक मुनि दीप विजय और यतीन्द्र विजय रतलाम श्री जैन प्रभाकर प्रिन्टिग प्रेस १९१३, २५,७ खण्ड, ३० से० मी० प्राकृत संस्कृत टिप्पणी हिन्दी में, हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण सहित ।

१२०. विश्वनाथ कोष कल्पतरु—सम्पादक एम० एस० पाटकर और के० बी० कृष्णमूर्ति शर्मा पूना डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट रिसर्च इन्स्टीच्यूट संस्कृत डिक्शनरी डिपार्टमेंट १९५७, ३१५ पृ०, २४ से० मी० मू० २०-०० ।

१२१. विश्वनाथ शास्त्री—श्रोतपदार्थ निर्वचन—संस्कृत शब्दकोष द्वितीय संस्करण प्रकाशक पी० डी० अग्निहोत्री बनारस ई० जी लैजरस एण्ड कम्पनी ३११ पृ० २१-५ से० मी० मू० ६०-०० ।

१२२. वोपदेव कवि कल्पद्रुम—आलोचनात्मक सम्पादक जे० गजानन बालकृष्ण वालमूले पूना डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट १९५४-१०२ पृष्ठ २४ से० मी० मू० ६४-०० ।

१२३. वूडरोफ सर जॉन—मात्राभिधानम् प्रकारार्थतरन—तान्त्रिक शब्दों का कोष कलकत्ता आगमानुसाधन समिति १९१३-२२ पृ० २० से० मी०

१२४. यादव प्रकाश—जैयन्ती सम्पादक गुस्ताव अप्पेटल मद्रास, मद्रास संस्कृत एण्ड बर्नाकुलर टैक्स्ट पब्लिकेशन सोसायटी १८९३-८२५ पृ०

१२५. यास्क -निरुक्त व्याख्या देवराज यज्वा और दुर्गाचार्य सम्पादक सत्यव्रत सेनाश्रयी—कलकत्ता एसिएटिक सोसायटी १८८२-९१, ४ खण्ड, २२

सें० मी० द्वितीय संस्करण सम्पादक हितव्रत समकान्थ कलकत्ता १६११ २६६ पृ०, २३ से० मी० ।

१२६. निरुक्त दुर्गाचार्य की व्याख्या सहित सम्पादक टिप्पणी सहित शिवदत्त शर्मा बाम्बे बैंकटेश्वर स्ट्रीम प्रेस १६१२—६०२ पृ० १२ से० मी० ।

१२७. निरुक्त--प्रपन्न लोक व्याख्या प्रपन्न लोकशास्त्री लाहौर बाम्बे प्रेस १६१६, ८१ पृ० २७ से० मी० ।

१२८. निरुक्त और निघण्टु दुर्गाचार्य की व्याख्या सहित सम्पादक एच० एम० भडकामकर और आर० जी० भडकामकर पूना भण्डारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना १६१८, २४ से० मी० (बाम्बे संस्कृत और प्राकृत सीरीज ७३)

१२६. निरुक्त—आलोचनात्मक सम्पादक टिप्पणी सहित वैजनाथ काशीनाथ राजवाड़े पूना आनन्दाश्रम प्रेस १६२१, २ खण्ड २४ से० मी० ।

१३०. निघण्टु और निरुक्त—आलोचनात्मक सम्पादक टिप्पणी सहित अंग्रेजी भाषा में लक्ष्मण स्वरूप लाहौर युनिर्वासिटी आफ पंजाब १६२७, २६२ पृ० ।

१३१. निरुक्त—स्कन्द स्वामी और माहेश्वर की व्याख्या सहित—सम्पादक आलोचनात्मक टिप्पणी सहित लक्ष्मण स्वरूप—युनिर्वासिटी आफ पंजाब १६२८,–३४, ३ खण्ड २४ से० मी० ।

१३२. निरुक्त कलकत्ता मनसुखालय मीरा १६५२–५३, ४ खण्ड
(१) प्रथम खण्ड निघण्टु व्याख्या देवराज यज्वा
(२) द्वितीय खण्ड निघण्टु व्याख्या दुर्गाचार्य
(३) तृतीय खण्ड निघण्टु व्याख्या दुर्गाचार्य
(४) चतुर्थ खण्ड निघण्टु व्याख्या दैवत का ।

परिशिष्ट-२

द्विभाषिक कोष

बाई लिंगुअल—बंगाली संस्कृत

१. भट्टाचार्य श्रीकृष्ण नाम कवि शेखर,-शब्द कौमुदी कलकत्ता, जनरल प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स १६५३-१३८ पृ० १८ से० मी० मू० १-५० बंगाली लिपि ।

अंग्रेजी संस्कृत

२. आप्टे वामन शिवराम-दि स्टुडेण्ट् इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी पूना, आर्य भूषण प्रेस, १८८४-५२७ पृ० २४-५ से० मी०

३. द्वितीय संस्करण बाम्बे गोपाल नारायण एण्ड को० १८६३ ४६२ पृ० २४-५ से० मी०

४. आप्टे वासुदेव गोविन्द-दि हैन्डी एण्ड अप टु डेट इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी बाम्बे १६१४-३६० पृ०

५. बरुआ आनन्द राम-प्रेक्टिकल इंगलिश संस्कृत डिक्शनरी बर्दबान १८७७-८१ पृ० ३ खण्ड २२-६ से० मी० ।

६. दत्त उदयचन्द्र-भारतीय वनस्पति और औषधि के शब्दों का संग्रह द्वारा जार्ज किंग कलकत्ता थैका स्पिक एण्ड कम्पनी १८७७-३५४ पृ० २० से० मी० संशोधित संस्करण संपादक जी विनोद लालसेन और आशुतोष सेन १६१०

७. कपेडिया—हीरालाल रसिकप्त्त दि स्टुडेन्ट्स इंगलिश पाइअ डिक्शनरी सूरत करसनन्दास और नालना दास १६४१-१६० पृ० १७ से० मी० इंगलिश प्राकृत

८. मोनिअर विलियम्स सरमोनियर ए डिक्शनरी इंगलिश एण्ड संस्कृत लन्दन विलियम्स एच० एलेन १८५१-८५६ पृ० २८ से० मी० फोटो दूसरी बार प्रकाशित दिल्ली, मोती लाल बनारसीदास १६५६

६. संस्कृत पुस्तक जिसमें इंगलिस और संस्कृत के शब्दों की सूची दी गई है एडवार्ड गफ द्वितीय संस्करण लन्दन सैमसन ला मारस्टन एन्ड को० १८६८-२६७ पृ० १६ से० मी० शब्दसूची पृ० १७६-२७६ ।

१०. राय प्रफुल्लचन्द्र—रासायनिक परिभाषा द्वारा प्रफुल्लचन्द्र राय और प्रबोधचन्द्र चट्टोपाध्याय कलकत्ता बंगीय साहित्य परिषद् मन्दिर १६१२ ३३ पृ० २४-५ से० मी० मू० ३७ पै० भारतीय रसायन कोष बंगाली लिपि ।

११. सेन गणनाथ—शरीर परिभाषा तृतीय संस्करण कलकत्ता, कल्पतरु प्रेस १६५६-६८ पृ० २४ से० मी० ।

१२. विदुरपाल-पाइअ तिस्स महानयाला थेरा इंगलिश पालि डिक्शनरी कोलम्बो, कोलम्बो एपोथेकेरीज कम्पनी १६४६-७४६ पृ० २१५ से० मी० मू० २०-००

हिन्दी संस्कृत

१३. मिश्रा भावनाथ—मैथिल शब्द प्रकाश—भावनाथ मिश्र और गौरीनाथ शर्मा बनारस, प्रथम खण्ड मैंथिल शब्द हिन्दी और संस्कृत के साथ ।

१४. शर्मा रामसुन्दर—संस्कृत कोष सुधा—द्वितीय संस्करण रांची सुबोध ग्रन्थमाला कार्यालय १९३६ इंगलिश नाम हिन्दी संस्कृत और इंगलिश संस्कृत कोष ।

१५. शास्त्री रामलाल—कामकोष लाहौर, पंजाब प्रिंटिंग वर्क्स १९१५-३६७-७२ पृ० २१ से० मी० मू० २-०० व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणी परिशिष्ट में ।

१६. शास्त्री रामस्वरूप —आदर्श हिन्दी संस्कृत कोष—वाराणसी चौखम्बा विद्या सदन १९५७-७५९ पृ० २३ से० मी० (विद्या भवन ग्रन्थ माला ३२) मू० १२-५०

लैटिन संस्कृत

१७. रघुवीर और के० एन० देव नागपुर इन्टरनेशल एकैडमी आफ इन्डियन कल्चर १९४९-५३८ पृ० १८ से० मी० मू० १५-०० लैटिन शब्द भारतीय वैज्ञानिक नाम जो अंग्रेजी में प्रसिद्ध है और प्राचीन संस्कृत हिन्दी इंगलिश नाम । भारतीय वर्मा और सीलोनैक पक्षियों का नाम ।

१८. भारतीय वैज्ञानिक—पशुओं के शब्दों की सूची भारतीय वर्मा और सीलोन के द्वारा रघुवीर के० एन० देव और लोकेश चन्द्र नागपुर इन्टरनेशनल एकेडमी आफ इण्डियन कल्चर १९५३-१८७ पृ० १८ से० मी०

मलयालम संस्कृत

१९. सेवियर टी० पी०—मलयाला संस्कृत निघण्टु—मनानम् एस० टी० जोसेफ्स प्रेस १९५५-४७४ पृ० २१ से० मी० मू० ५-०० ।

मराठी संस्कृत

२०· जोशी महेश्वर—मराठी संस्कृत धातुकोष द्वारा महेश्वर—जोशी विनायक पटवर्धन और सदाशिव रानाडे पूना एस० बी० रानाडे १९३६-१२८ पृ० १२ से० मी०, मू० ३७-००

२१· वाटवे कृष्णनारायण—महाराष्ट्र संस्कृत अमर टिप्पणी का कुरुन्दवाद प्रहौनव छापाखाना १८९१-२११ पृ० २१ से० मी० मू० १-५० मराठी संस्कृत डिक्शनरी अमरकोष पर आधारित ।

मंगोलिअन संस्कृत

२२. रघुबीर—मंगोल संस्कृत डिक्शनरी—संस्कृत मंगोल सूची सहित नई दिल्ली इन्टर नेशनल एकैडमी आफ इण्डियन कल्चर १६५८ लिक्स ६५६ पृ० २७ से० मी० (सतपिटकम)।

२६. कृष्णदास—फारसी प्रकाशन—परसिअन संस्कृत कोष श्लोकों में अकबर बादशाह के निर्देशन में बनारस १८६६-२२ पृ० २० से० मी०

संस्कृत बंगाली

२४. अमरसिंह—अभिधान—अमरकोष के शब्द वर्णानुक्रम से बंगाली लिपि में शब्द सिन्धु संपादक पीताम्बर मुखोपाध्याय कलकत्ता १८१७-४८८ पृ० २१ से० मी० बंगाली लिपि।

२५. संस्कृत और बंगाली कोष—अमरकोष कलकत्ता संस्कृत प्रेस १८५४-१३८ पृ०

२६. अमरकोषाभिधानम्—संपादक पीताम्बर न्याय बागीश कलकत्ता राम भट्टाचार्य १८५७ मू० ५-३७-बंगाली लिपि।

२७. शब्दकल्पलतिका—अनुवादक—जगन्नाथ प्रसाद मलिक सेराम्पुर १८३२-३८७ पृ० ३० से० मी० सातवां संस्करण।

२८. अमरार्थ चन्द्रिका—संपादक बंगाली नोट सहित 'अमरार्थ' चन्द्रिका गोपी नाथ सिला—शब्द सूची संपादक श्री कनाई लाल शिला तृतोय संस्करण कलकत्ता १८६२-६६२ पृ० १७ से० मी० मू० २-०० बंगाली लिपि।

२६. अमरकोषाभिधानम् व्याख्या—'चन्द्रिका' सहित संपादक चन्द्रमोहन भट्टाचार्य तर्करत्न कलकत्ता १६०१-३४१ पृ० २० से० मी० बंगाली लिपि।

३०. अमरार्थ चन्द्रिका द्वारा काली प्रयत्न विद्यारत्न कलकत्ता एस० डेन्स १६०६-४०७-२२४ पृ० शब्दसूची १८ से० मी० बंगाली लिपि।

३१. सानुवाद वृहद् अमरार्थ चन्द्रिका द्वारा प्रसन्न कुमार भट्टाचार्य कोष संग्रह—एकाक्षर कोष, द्विरूपकोष, नक्षत्र कोष, नामार्थ ध्वनि मंजरी, राशि कोष, नवग्रह कोष, सारस्वताभिधान कोष तृतीय संस्करण कलकत्ता शास्त्र प्रचार प्रेस १६११-६२८ पृ० ३० से० मी० बंगाली लिपि।

३२. अमरकोष सम्पादक गुरुनाथ भट्टाचार्य विद्यानिधि—कोष माला कलकत्ता घोष प्रेस १६१३, २४०-४४८ पृ० १८ से० मी०

३३. चट्टोपाध्याय—श्यामचन्द्र शब्दादिधिति ढाका १८६४-७८ पृ०

३४. दास वेनीमाधव—शब्दार्थ मुक्तावली—वेनीमाधव दास और नन्द कुमार कविरत्न कलकत्ता १८६६-१५४६ पृ०

३५. गिरीशचन्द्र विद्यारत्न—शब्दसार कलकत्ता १८६१, २२८ पृ० २० से० मी० चौथा संस्करण १४८४-४४६ पृ० १८ से० मी०।

३६. गोपीराम तर्करत्न—कोषचन्द्रिका—नानार्थ मंजरी सारस्वताभिधान के शब्दों की सूची—एकाक्षर कोष, राशि कोष, नक्षत्र कोष, ग्रह कोष, अंकाभिधान और द्विरूप कोष ढाका १८६३-६० पृ० १८ से० मी० बंगाली लिपि।

३७. गुप्ता हरलाल—आयुर्वेद चन्द्रिका संपादक बसंत कुमार सेन कलकत्ता १६०६-८५३ पृ० २३-५ से० मी० मू० ५-०० बंगाली संस्कृत और संस्कृत बंगाली संस्कृत और संस्कृत बंगाली।

३८. गुप्ता विराजचरण—कविभूषण वनौषधि दर्पण आयुर्वेदिक शब्द के अर्थ—कलकत्ता एस० सी० अध्या एण्ड कम्पनी १६०८-४२१-४१ पृ० २३.५ से० मी० बंगाली लिपि।

३६. हेमचन्द्र अभिधान चिन्तामणि—संपादक नरायण चन्द्र भट्टाचार्य कलकत्ता वीणापाणि प्रेस १६०७-७५१ पृ० १८ से० मी०।

४०. मोग्गलान—अभिधान दीपिका वा पालि सभा कोष संपादक द्वारा ज्ञानन्द स्वामी कलकत्ता १६१३-३३७ पृ० १८ से० मी० बंगाली लिपि।

४१. मुखोपाध्याय विष्णुपदक पाण्डित ज्ञान संस्कृत कोष अमरकोष पर आधारित कलकत्ता १८६४-४० पृ० २० से० मी०।

बंगाली लिपि

४२. रामकृष्ण तर्क तीर्थ—कुसुममंजरी सौरभ परिशिष्ट—त्रिपुरा प्रतापचन्द स्मृति भूषण १६२३-८५ पृ० १८ से० मी० भारतीय नीतिकोष दो खण्ड—प्रथम खण्ड कुसुमंजरी नोट सहित व्याख्या उदयचन्द्र—कुसुमंजरी शौरभ परिशिष्ट राम कृष्ण तर्कतीर्थ १६५

४३. सेन गुप्ता विनोद लाल—आयुर्वेदीय द्रव्याभिधान कलकत्ता १८७६-२४४ पृ० २० से० मी०

४४. तृणकादि स्मृति रत्न—शास्त्रार्थ सार संग्रह—विज्ञान कला ध्वनि और साहित्य का संस्कृत कोष हाबड़ा १६११

संस्कृत बरमीज

४५. चतुरंग बालमच्चा—अभिधानप्पदीपिका सम्भावना अथवा अभिधान टीका—मोग्गलान के अभिधानप्पदीपिका के आधार पर रंगून १६०३-३२६ पृ० । बर्मोज लिपि ।

४६. अभिधान टीका— प्रत्येक शब्दों की बरमी भाषा में व्याख्या, व्याख्याकार मांगडांग हसाया पन्ना सामी रंगून १६०६—दो खण्ड २० से० मी० बरमीज लिपि ।

४७. अभिधान टीका बरमीज व्याख्याकार मांगडांग हसाया पन्ना स्वामी, संपादक मांगलिन रंगून १६१०-१६११, २ खण्ड बरमीज लिपि ।

४८. धम्मपाल बुद्धरक्षित महाथेरा का बरमीज अनुवाद पालिभाषा संगहात सा ओक पालि बरमीज कोष १८६५-७२ पृ० ३० से० मी०

४६. बी० एच० बी० ए०—पालि भाषा का कोष द्वारा एच० बी० ए० एण्ड थैटिन विशेषकर बरमीज विद्यार्थियों के प्रयोग के लिए द्वारा मांग प्रा और मांग था डिन रंगून १६१४-३२६ पृ० ३० से० मी० बरमीज लिपि क्याव यान यु ।

५०. मुन्न होस अभिधान क्यान—पालि और अन्य भारतीय शब्दों की सूची बरमीज लिपि में ।

५१. मोग्गलान—अभिधानप्पदीपिका जो संघ रक्षिता के सुबोधालंकार के नाम से जानी जाती है । साथ के बरमीज निबन्ध रंगून १६०६-१७५ पृ०, २१ से० मी० बरमीज लिपि ।

५२. अभिधानप्पदीपिका—बरमीज इन्टप्रेटन के साथ द्वारा क्या आंग सा एच० टी० बी० हमाया मंडलाद १६१४ जो संघ रक्षिता के शब्दालंकार के नाम से जानी जाती है । रंगून १६२२-८५० पृ० बरमीज लिपि ।

५३. अभिधानप्पदीपिका बरमीज टीका के साथ ग्रन्थ पदामिनिच्छय के समान और प्रत्येक शब्द का विग्रह द्वारा अग्ग धम्मा निवंश रंगून १६२३—५२२ पृ० ।

५४. बागली प्रबोधचन्द्र—डेक्स लेक्सिक्वेस संस्कृत चाइनीज पेरि लायब्रेरी ओरिएन्टलिस्ट पालगीथनर, १६२६, २ खण्ड ।

५५. के 'अंग है इम्पेरर आफ चाइन्स शब्द सूची बुद्धीक, संस्कृत चाइनीज द्वारा हानफान टेस माओ प्रेसिस डी डाक्टरीन बुद्धीक संपादक और अनुवादक पार० सी० डे० हारलेज बाइड १८९७—२० से० मी०

५६. बोगिहर उनराम—संस्कृत चायनीज डिक्शनरी आफ बुद्धिस्ट टेकनिकल टर्म्स महावायुपति के आधार पर—टोक्यो सैंकियो १९५४—२१ से० मी०

संस्कृत डच

५७. केलनर हरमान कैम्बिलो—सावित्री प्रकृति स्चेस—इलीमेन्टर बुच जुर इन्फूयूह रंग इन डाई संस्कृत प्राचे ईन बुच जम सेल्बस्ट्रुन्टेर विचते लिपजिग फाबूर हेनी १८८८—२५४ पृ०

संस्कृत-इंगलिश

५८. अभयंकर काशीनाथ बासुदेव—संस्कृत व्याकरण कोष बड़ौदा ओरिएन्टल इन्स्टीच्यूट १९६१—४१५ पृ० (गायक वाड़ ओरिएण्टल सीरीज १३४)

५९. आचार्य प्रसन्न कुमार—हिन्दू संस्कृत कोष शिल्प शास्त्र टिप्पणी सहित-आर्कोलाजिकल रिकार्ड्स लन्दन आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस १९२७ ८६१ पृ० २० से० मी० भारतीय संस्कृत मम्पसार सिलपसार लन्दन फोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस १९२७—२६८ पृ० २४ से० मी० अर्थसहित शब्दसूची २१५ पृ०

६०. अमरसिंह—अमरकोष अंग्रेजी व्याख्या सहित द्वारा एच० टी० कोलब्रुक से रामपुर प्रेस १८०८—६४१ पृ० द्वितीय संस्करण १८२५—२०३ पृ०

६१. अमरकोष निबन्ध—संस्कृत अंग्रेजी और अंग्रेजी संस्कृत—संपादक टिप्पणी सहित बंगाली, अंग्रेजी और संस्कृत में द्वारा ज्ञानेन्द्र चन्द्र चट्टोपाध्याय कलकत्ता दिन्यि आर्यन किशन प्रेस १९१५—१७५ पृ०१३ से० मी०

६२. अमरसार--संस्कृत इंगलिश और इंगलिश संस्कृत पाकेट डिक्शनरी द्वारा महादेव शिवराम गोला, पुनः संशोधित द्वारा कृष्ण जी गोविन्द ओका तृतीय संस्करण पूना १९१५—५२४ पृ०।

६३. अमरकोष—आलोचनात्मक नोट के सहित प्रत्येक शब्दों की द्वारा एन० जी० सरदेशाई और डी० एस० पाटे पूना ओरिएण्टल बुक एजेन्सी १९४०—१९६ पृ०

६४. एन्डर्सन डिनेस, पालिडिक्शनरी पालि भाषा के शब्द एवं धम्मपद के शब्द की व्याख्या—नारडिश्क फारलेग १९०४—५—२८८ पृ० २४ से० मी० रोमन लिपि।

६५. आपटे वामन शिवराम—प्रेक्टिकल संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पूना आर्य विजय प्रेस १८८९—१०१८ पृ० तृतीय संस्करण बाम्बे गोपाल नारायण एण्ड कम्पनी १९२४—१०४८ पृ० २० से० मी० संपादक परशुराम कृष्ण गोडे और चिन्तामणि गणेश कर्वे पूना प्रसाद प्रकाशन १९५७—५९, ३ खण्ड

६६. दि स्टुडेन्ट संस्कृत गद्य की शब्द सूची के साथ आवश्यक साहित्य और भौगोलिक नाम प्राचीन भारत इतिहास का द्वितीय संस्करण बाम्बे गणेश नारायण और कम्पनी १९२२—६६४ पृ० २५ से० मी०

६७. प्रथम संस्करण १८९० चित्र सहित पुनः प्रकाशित दिल्ली मोतीलाल बनारसी दास १९५९—६६४ पृ० २५ से० मी० मू० २०–००

६८. बेनफे थियोडर—ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी लन्दन लांगूस मैन और कम्पनी १९६६—११४५ पृ०, भगवान दास योग सूत्र भाष्यकोष पतन्जलि के योगभाष्य के शब्दों की अंग्रेजी व्याख्या व्यास के भाष्य की बनारस काशी विद्यापीठ १९३५—२५३ पृ० २४ से० मी०

६९. भागवत हरि रघुनाथ—संस्कृत इंगलिश पाकेट डिक्शनरी पूना आस्तेकरा क० १९१२—४५ पृ० मू० १–७५।

७०. भट्टाचार्य जीवानन्द विद्यासागर—संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी जी एच० एच० एम० विल्सन की संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पर आधारित है। आशुबोध भट्टाचार्य और नित्यबोध भट्टाचार्य १९००—८३९ पृ० ३१ से० मी०

७१. भाइडे विद्याधर वामन संस्कृत इंगलिश डिक्शमरी—बनारस चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो १९२६

७२. कम्पेलर कार्ल—ये संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी लन्दन लुजैक एण्ड कम्पनी १८९१—९७२ पृ० पीटर्स वर्ग डिक्शनरी के आधार पर।

७३. चिल्डेना रावर्ट सीजर—संस्कृत और अंग्रेजी के शब्दों की सूची लन्दन हाल एण्ड कम्पनी, १८८५—९१२ पृ०

७४. चिल्डर्स राबर्ट सीजर संस्कृत के शब्दों की देवनागरी लिपि सूची का अंग्रेजी में व्याख्या लन्दल हाल एण्ड कम्पनी १८८५—९१२ पृ०

७५. ए डिक्शनरी आफ पालि लैंगुएज, लन्दन ट्रबेलर एण्ड कम्पनी १८७५—६२२ पृ०—२७ से० मी०

७६. डिविड्स टी० डब्लू रीज—पालि इंगलिश डिक्शनरी चिप स्टीड पालि टेक्स्ट सोसायटी १९२१—१४, ७६२ पृ० २८ से० मी०।

७७. देवस्थानी जी वी०—स्टुडेन्ट न्यि संस्कृत डिक्शनरी तृतीय संस्करण बाम्बे कर्नाटक हाउस १९३६—१११९ पृ०

७८. दीक्षित वी० आर० रामचन्द्र—दि पुरान इन्डेक्श मद्रास यूनीवर्सिटी आफ मद्रास १९५१—५५, ३ खण्ड, २४ से० मी० मद्रास यूनीवर्सिटी हिस्टोरिकल सिरीज १७ रोमन लिपि।

७९. दीवान जी प्रहलाद चन्द्र—श्रीमद् भगवत गीता विवेचनात्मक शब्दकोष, ओरिएण्टल शब्द कोष टु द भगवत गीता, बाम्बे न्यि बुक कम्पनी, १९४६—३६७ पृ० २४ से० मी०

८०. इड जर्टन फ्रैंकलिन—बुद्धिस्ट हैब्रिड संस्कृत ग्रामर एण्ड डिक्शनरी न्यू हेवेल येल युनिवर्सिटी प्रेस १९५३, २ खण्ड—पालि, अर्धमागधी और अन्य प्राकृत अपभ्रंश और देशी शब्दों का कोष।

८१. संस्कृत शब्द संग्रह—पाण्डिचेरी अरविन्दाश्रम १९५२—४७ पृ० २१ से० मी०।

८२. गोल्ड स्ट्रकर टी०—संस्कृत और अंग्रेजी कोष, जिसको कि संशोधित और परिमार्जित, बर्लिक ए० अशर एण्ड को०, १८५६—३२० पृ०

८३. ग्रीवाल सिंह—हिन्दू योग और वेदान्त की शब्दसूची साता बरबरा कैलिफोर्निया १९३१—३६ पृ०

८४. हलायुध—अभिधान रत्नमाला, संस्कृत शब्दों की व्याख्या अंग्रेजी शब्दों में व्याख्याकार थिओडर आफ्रिच्ट लन्दन विलियम्स एण्ड नाटगेट १८६१ ४०० पृ०—२२.५ से० मी०।

८५. हलायुध कोष—जयशंकर जोशी—बनारस सरस्वती भवन १९५७—७४६ पृ०, २४.५ से० मी० सरस्वती भवन सिरीज १२.

८६. हेमचन्द्र—दि देशी नाममाला, एम० एस० एस० और पिशेल संस्करण १८८० भूमिका के सहित—टेक्स्ट और कमेन्ट्री की सूची अनुवाद मुरलीधर बन्द्योपाध्याय कलकत्ता, युनिवर्सिटी आफ कलकत्ता १९३१—२४८, ७२ पृ०

८७. जेकोब जार्ज एडालफस—लौकिक न्यायान्जली—बाम्बे निर्णय सागर प्रेस १९०२, २१ से० मी० भाग १ द्वितीय संस्करण १९०७

८८. जोशी सी०वी०—मैनुअल आफ पाली, षष्ठ संस्करण पूना ओरिएण्टल बुक एजेन्सी १९४९–१५८ पृ० १८·५ से० मी०।

८९. लालमन चार्ल्स राकवेल—संस्कृत रीडर टेक्स्ट बोका बुलरी एण्ड नोट्स कैम्ब्रिज हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ११५, ४०५ पृ०, २५ से० मी०

मू० ५—०० संस्कृत इंगलिश बोकाबुलरी पृ० १०१—४०५ प्रथम प्रकाशन १८८४।

९०. मैक्डानेल अर्थर एन्थानी—ए प्रैक्टिकल संस्कृत।

९१. इंगलिश डिक्शनरी—लन्दन आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस १९२४, ३८२ पृ०, २८·५ से० मी० प्रथम प्रकाशन १८९३

९२. वैदिक इंडेक्स—द्वारा अर्थर एन्थार्नी मैक्डानेल और बी० डी० कीथ लन्दन जानं मुररे १९३२, दो खण्ड।

९३. मलाल सेकेरा,जी०पी०—डिक्शनरी अप्प पालिप्रप्पर नेम्स, लन्दन जानं मुररे १९३७-३८, २ दो खण्ड, २२ से० मी० (इन्डियन टेक्स्ट सीरीज म० ३१—३७ अंग्रेजी में।

९४. मोनिअर विलियम्स सरमोनियर—ये संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी इटमोलोजिकल और फिलोलाजिकल, ग्रीकलैटिन के विशेष सन्दर्भ में आक्सफोर्ड क्लैरेन्डर प्रेस १८८८—११८६ पृ०

९५. पैरी इडवार्ड डेलवान—ये संस्कृत प्राइमर न्यियार्क कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस १९५७—२३० पृ० २१·५ से० मी० मू० ३—५० संस्कृत ग्लोशरी पृ० १९४—२२४ प्रथम प्रकाशन १८८५।

९६. प्रिसेप—ई०ए०—संस्कृत बोकाबुलरी लन्दन डब्ल्यू एच० एलेन एण्ड कम्पनी १८४७—१०४ पृ० २५ से०मी०।

९७. राम जशन—संस्कृत एण्ड इंगलिश डिक्शनरी—विलियम्स के डिक्शनरी के आधार पर बनारस ई० जी० लालरस एण्ड कम्पनी १८७०-७०७ पृ० २४ से० मी०।

९८. संकर राम सी० वी०—संस्कृत अंग्रेजी कोष—मद्रास तिरुमलाई, तिरूपति देवस्थानम्स प्रेस १९४१—८८ पृ०

९९. सेन गणनाथ—शरीर परिभाषा—तृतीय संस्करण कल्पतरु प्रेस १९३९—९८ पृ०, २४ से०मी०।

१००. शिवानन्द योग वेदान्त डिक्शनरी ऋषि केश योग वेदान्त फारेस्ट युनिवर्सिटी १९५०—१४४ पृ०

१०१. स्टुडेन्ट्स एंग्लो संस्कृत डिक्शनरी ढाका १९१९

१०२. सूर्यकान्त—ए ग्रैमेटिकल डिक्शनरी वैदिक संस्कृत डेलही मूलाकान्द कवैरुतिराम ट्रस्ट १९५३ प्रथम खण्ड २९१ पृ० २६ से०मी०

१०३. ट्रेन्कन वेलहेम—ए क्रिटिकल पालि डिकशनरी द्वारा वेलहेम ट्रेन्कनर और डाइनेस इन्दर्सन—कापेन जैन डैनिस एकैडमी १९२४—४४ दो खण्ड २८ से०मी०।

१०४. वैद्यलक्ष्मण रामचन्द्र—दि स्टैन्डर्ड संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी—संस्कृत शब्दों की अंग्रेजी व्याख्या बाम्बे राधाभाई आतमाराम सगुना १८८९-८८१ पृ०

१०५. वर्मा सिद्धेश्वर—यास्क के शब्दों की सूची द्वारा सिद्धेश्वर वर्मा और भीमदेव होशियारपुर विश्वेश्वर नन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीच्यूट १९५३-२४८ पृ०

१०६. वासुदेव भाष्कर—संस्कृत इंगलिश स्कूल डिक्शनरी बाम्बे १८८३

१०७. विलसन होरेस हेमेन—संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी, द्वितीय संस्करण कलकत्ता एजुकेशन प्रेस १८३२—९८२ पृ० २८ से०मी० प्रथम संस्करण १८१९

१०८. डिक्शनरी संस्कृत एण्ड इंगलिश बरलिन ए० एशर एण्ड कम्पनी १८५६–३२० पृ०

१०९. संस्कृत इंगलिश लेक्जिकन संपादक—जीवनन्द भट्टाचार्य, विद्यासागर कलकत्ता मुखर्जी एण्ड कम्पनी १९००—८०० पृ०।

११०. येटस रे० डब्लू०—ए डिक्शनरी इन संस्कृत एण्ड इंगलिश कलकत्ता बैपटिस्ट मिशन प्रेस १८४६-९२८ पृ० २० से० मी०।

संस्कृत फ्रेंच

१११. अमरसिंह—अमरकोष ओ वोकावुलरी—संस्कृत फ्रेंच—लोइसेल करडेस लांग कैम्प्स पेरिस लिम्प्रीमेरी रोयलथ १८३९—४५ दो खण्ड २३ से० मी०

११२. बर गैंगने अबेल – इटुडेस सर ले लेक्जिको डु दिगवेद पेरिस इम्प्रायमेरी नेशनल १८८४ प्रथम खण्ड २४८ पृ० २० से० मी०

११३. बर्नाफ—इमिला डिकशनरी कैलसिक्ल संस्कृत फ्रेंचिज—डी० विल्सन ली पाल पेरिस मैसन निवे १८६६- ७८१ पृ० २३.५ से० मी०

११४. चक्रवर्ती एन० पी० लेस मोटस भाषाडन्स ली कमन्टेयर डी० सर्वानन्द सूरि—अमरकोष पेरिस इम्प्रेमेरी नेशनल १९२६-८१, १०० पृ० २२ से० मी०

११५. हरबर्ट जान—ग्लोसरी डु राजयोग डु हठयोग पेरिस एड्रीन मैसोने १९४४—४० पृ०

११६. रेनो लोयस—स्टूटेज सर लि वोकावुलरी टु रिगवेद, पाण्डिचेरी इन्स्टीच्यूट फ्रेन्सियल इन्डोलाजी १९५८, खण्ड १, २४.५ से० मी०।

११७. स्टचू पाक० एन०—डिक्शनरीज, संस्कृत फ्रैंचिज पेरिस १९३२, ८९७ पृ०

संस्कृत-जर्मन

११८. बेनफे थिओडर—क्रैस्टोरनेथी औस संस्कृत वर्कैन (ज्वीटर थिअर) ग्लोसर लिपनिग एफ० ए० ब्राकहेस, १८५४- ३७४ पृ०

११६. बोटलिग ओटो —संस्कृत वर्टरवच हिरौसगगेगवेन वान डर केसर लिचेन एकैडमाई डर वासेन्याफटेन, बाई ओटो बोथलिंग एण्ड रुडोल्फ रांथ एस० टी० पीटर्सवर्ग बचडुचेराई डर कैशरविचेन एकैडमी डर विसेन्च आप्टो १८५५-७५, ७ खण्ड ३ से० मी०

१२०. बोटलिंग ओटो—संस्कृत वर्टरवच इन कुरजेरर फैंसंग एस० टी० पीटर्सवर्ग- वचडु केराई डर कैसर लीचेन एकैडमी डर विसेन्सचाफटेन १८७६-८६-७ खण्ड ३१ से० मी० पुनः प्रकाशित १६२३-२५

१२१. कैप्पेलर कार्ल—संस्कृत वर्टर वुच नेक डेन पीटर्स वर्ग वर्टर वुचेन—बलिन वाल्टर डी ग्रायटर एण्ड को० १६५५

१२२. ग्रास मैन एच० वर्टरवुच जम रिगवेद लिपनिक, एफ० ए० ब्राकहस १८७३-१७७५ पृ०

१२३. हिलेब्रांत आल्फ्रेड—वेदाक्रिस्टोमैथी फर डेन इर्सटेन जेब्राहबी बेदावर लिसुंमर ह्लस्ग— डरमिट ईनेन ग्लोसर वर्सहैन बरलिन, वीडमैन सेह बुच्चन्द लंग १८८५-१३० पृ०

१२४. लीमैन—इटोमलोजीस्चेस वर्टरवुच डर संस्कृत स्प्रैची बाई अर्नेस्ट लीमैन एण्ड जूलियस लीमैन लिपजिक १६०७, ११२ पृ०

१२५. नीसर वाल्टर—जम वर्टर वुच डेस रिगवेद—लिपजिक मुचेक १६२४ २३ से० मी०

१२६. स्चमिट किचार्ड—नाच्टरेज जम संस्कृत वुच इन कुर्जेरर फैमस वान आटो बोथलिंग लिपजिग वरलेगबान ओटो हार आर्सोविच १६२८-२६८ पृ० ३५ से० मी० ।

१२७. थम्ब कलबर्ट—हैण्डवुच डेस संस्कृत—इन्डोजर्मनीज विबलोथेक लहरण्ड हैण्ड बुकर कैण्टैनिंग ग्लोसरी पृ० १६३

१२८. अचलेन बेक सी० सी० कुर्जगेफैस्टेरा इटीकोलाजी वर्टर वुच डर एल्टिन डिस्चेन स्प्रेच अम्स्टर्डम जांस मुलर १८८६

१२६. वास्टर गार्ड एन० एल० रैडिसेज लिंगुएज संस्कृत बरलिन बोनो एडरेनम १८४१, ३७६ पृ०

१३०. यास्क निरुक्त सोम्टडेन निघण्ट वास हर्सोंसगेगवेन वान रुलो-ल्फ रांथ गोटिंगन वरलाज डर डिटस्चिस चैन बुच्खंदलंग १८५२-२२८, २३० पृ०

१३१. जैकराय थिओडर—डाई इन्डिस्चेन वर्टर बुचर स्टास वर्ग वर लाग वांन कार्ल जे० ट्रबनर १८६७- ४५ पृ०

संस्कृत-गुजराती

१३२. अमरसिंह—नामलिंगानुशासनम् अमरकोष गुजराती टिप्पणी के सहित द्वारा धर्मचन्द्र केवलचन्द्र खण्डोला बाम्बे गुजराती प्रिंटिंग प्रेस १६११, ३४४, १४८ पृ०

१३३. धनन्जय नाममाला—गुजराती व्याख्या सहित, त्रिभुवन अमरचन्द पालित का सूरत जैन प्रिंटिंग प्रेस १६१२, ६४ पृ० १६ से० मी०

१३४. गणिमुक्ति विजय जी—शब्द रत्न महोदधि अहमदाबाद शरद मुद्रणालय १६३७- दो खण्ड

१३५. जिनविजय—अभिधानप्पदीपिका—१६२४ अर्धमागधी गुजराती डिक्शनरी

१३६. रणजीत बाजीराव तात्या—संस्कृत और गुजराती डिक्शनरी आत्मा-राम सगुन एण्ड कम्पनी, १८७१-१७७६

१३७. शास्त्री गिरिजा शंकर मायाशंकर—संस्कृत गुजराती शब्दादर्श महान शब्दकोश अहमदाबाद दि आथर १६२६-३०, मू० २०-००

१३८. तलबल गणेश सदाशिव—संस्कृत गुजराती लघुकोष १६३२

१३६. वोरा सबाईलाल छोटालाल--शब्द चिन्तामणि बड़ौदा १६००-१४०८ पृ०

संस्कृत-हिंदी

१४०. अमरसिंह—अमरकोष व्याख्याकार महेश्वर टीका सुबोधिनी बनारस १८६७, ३०४ पृ०

१४१. अमरकोष हिन्दी टिप्पणी के साथ, महेश दत्त शुक्ल लखनऊ १८७५ ४५३ पृ० २० से० मी० चतुर्थ संस्करण १८६५- ३७० पृ० २६ से० मी०

१४२. अमरकोष—हिन्दी व्याख्या के साथ—मेरठ १८७७

१४३. देवकोष—अमरकोष के समान टिप्पणी और शब्द सूची सहित देव-दत्त तिवारी—बनारस मेडिकलहाल प्रेस १८७६—८६३ पृ०

१४४. अमर प्रकाश—गोपाल शर्मा बनारस भारत जीवन प्रेस १८८५, ३४४पृ० २२ से० मी० मूल्य २-००

१४५. व्याख्याकार कुलचन्द्र शर्मा गोतम्य, बनारस हित चिन्तक प्रेस १६०४, ३३७—८२ पृ०

१४६. अमरकोष खण्ड प्रथम—संपादक हिन्दी व्याख्या सहित मणिप्रभा टीकाकार श्री पं० हरगोविन्द शास्त्री षष्ठ संस्करण बनारस चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो १६५६—७६ पृ० १८ से० मी० (हरिदास संस्कृत सीरीज ३०) मू० ०-७५ पै०

१४७. भट्ट—ऋषीश्वर नाथ भट्ट आधुनिक संस्कृत हिन्दी कोष आगरा राम प्रसाद एण्ड संस १६५५—५४२—१६ पृ०

१४८. चन्दन रामकवि—अनेकार्थ समान्य संस्कृत हिन्दी कोष वांकीपुर रामदीन सिंह १८८०—४१ पृ० २२ से० मी०—मू० ०-३७ पै० पर्यायवाची—अमरकोष के पद्धति का अनुकरण

१४६. चतुर्वेदी द्वारिका प्रसाद—संस्कृत हिन्दी कोष लखनऊ नवल किशोर प्रेस १६१५, संस्कृत रत्न कौस्तुभ इलाहाबाद रामनारायण लाल १६२८—६८४, १३० पृ०

१५०. धनन्जय—नाममाला संपादक घनश्यामदास जैन ललितपुर बंशीधर जैन १६१६—१०० पृ० १६ से० मी०—द्वितीय संस्करण बाम्बे वैभव प्रेस १६२५, ६८ पृ०

१५१. नाममाला और अनेकार्थ माला आगरा महाबीर प्रेस १६२४ १२३ पृ०,१६ से० मी०

१५२. गणेशदत्त शास्त्री—पद्मचन्द्र कोष लाहौर मेहरचन्द्र लक्ष्मण दास १६२५—५६० पृ० २५ से० मी० ।

१५३. गुरुप्रसाद रत्तावली बानु—धार्मिक और दार्शनिक तत्व जो संस्कृत में प्रयुक्त हुए हैं उनका कोष

१५४. हरिप्रसाद गौड़ आत्मज भागीरथ, हारितक्यादि निघण्टु द्वारा रांगी-लाल और जगन्नाथ शास्त्री—बाम्बे निर्णय सागर प्रेस

१५५. रवनोलकररंग घोंड़ा जी—संस्कृत धात्वर्थ मंजूषा १६३३, खण्ड २

१५६. कोष शब्दार्थ संग्रह—अमरकोष के शब्दों की हिन्दी सूची (२) वैद्यक कोष, (३) शब्द संग्रह लखनऊ १८६६—३६८ पृ० २० से० मी०

१५७. मिश्रा अनिरुद्ध—शब्द भेद प्रकाश संस्कृत और हिन्दी व्याख्या सहित १६३०—५६ पृ० मू० ०—२५ पै०

१५८. नानकचन्द्र—हिन्दी शब्द निधि डेलही १८५८—१४८ पृ०

१५६. शब्द सुखलाल—कोष रत्नाकर इलाहाबाद १८७६—४५६—४६ पृ०

१६०. शालिग्राम वैश्य—शालिग्राम औषधि शब्द संग्रह अथवा आयुर्वेदीय

औषधि कोष बाम्बे खेमराज श्री कृष्णदास १८६६, २०० पृ० । अन्य प्रकाशन १६२५—२१८ पृ० २७ से० मी० मू० २—५०.

१६१. शर्मा हरिदयालु–क्षत्रियवर्ग कोष रीडिंग बुक फार क्षत्रिययाज संस्कृत शब्द सूची के साथ मेरठ १६१५

१६२. शर्मा जीव राम—सारस्वत कोष मुरादाबाद १६१२—१७० पृ०

१६३. शर्मा विश्वम्भर नाथ—संस्कृत हिन्दी कोष मुरादाबाद हरिशंकर शिवशंकर १६२४—२१६ पृ०

१६४. सेन श्रीधर–विश्वलोचन कोष अथवा मुक्तावली कोष एक जैन शब्द-सूची हिन्दी व्याख्या सहित—ननलाल शर्मा बाम्बे १६१२–४२१ पृ० ३० से० मी०

१६५. सेठ हरगोविन्द दास—पाइअ सद्दमहार्णव—प्राकृत हिन्दी डिक्शनरी पूर्णविवरण के साथ कलकत्ता १६२८—१२७४ पृ० ।

१६६. व्यास—जी० पी० युगलकोष इलाहाबाद राम नरायण लाल १६२१-४६६—३० पृ० २४ से० मी०मू० ४–०० । इंगलिश टीका स्टैन्डर्ड संस्कृत हिन्दी कोष ।

१६७. विल्सन एच० एच० संस्कृत हिन्दी कोष संपादक द्वारा राय जसन बनारस ई० जे० लाज रस प्रेस १६१०

१६८. यास्क निरुक्त और निघण्टु संपादक हिन्दी व्याख्या के साथ राजाराम लाहौर, बाम्बे मशीन प्रेस १६१४, ६०४ पृ० २३ से० मी० (आर्षग्रन्थावली) मू० २-००

१६६. हिन्दी निरुक्त, निघण्टु के व्याख्या के साथ हिन्दी में सीताराम शास्त्री कलकत्ता १६१६—१४२ पृ०

संस्कृत जपैनीज

१७०. औगीबरा अनरुद्ध—संस्कृत जैपनीज डिक्शनरी टोकियो संस्कृत इंगलिश पब्लिशिंग सोसायटी, १६४१—६ एण्ड अपूर्ण ।

संस्कृत जवैनीज

१७१. जुयन बोल एच० एच०—कवि वलिनीश्च नेडर लैण्डश्च ग्लोसीयम् ओफेट एण्ड जवैनीश्च रामायण ग्रैवेन्वेज माटीनिस नाइजाफ १६०२ ६४४ पृ०

संस्कृत कन्नड़

१७२. अमरसिंह—अमरकोष मद्रास सरस्वती निलय प्रेस १८६६-८० पृ० २१ से० मी०

१७३. नामलिंगानुशासन, कन्नड़ व्याख्या सहित मद्रास, हिन्द भाषा संजीवनी प्रेस १८६६, ४१८, पृ० २२ से० मी।

१७४. अमरकोष मद्रास हिन्दू भाषा संजीवनी प्रेस १८७०, ८३ पृ० २० से० मी०

१७५. अमरकोष कन्नड़ व्याख्या सहित—मद्रास कविरंजनी प्रेस १८७०-६८पृ० २८ से०मी० तैलम् लिपि।

१७६. अमरकोष द्वितीय संस्करण बंगलोर विचारदर्पण प्रेस १८७०-८५ पृ० २१ से० मी०।

१७७. अमरकोष व्याख्या और टिप्पणी सहित कन्नड़ भाषा बंगलौर १८७५—३७८ पृ० २० से० मी०

१७८. अमरकोष—कन्नड़ीज शब्दार्थों के सहित द्वारा सारस्वत तिरुवेंकटाचार्य मद्रास १८७५

१७९. नामलिंगानुशासनम्—कन्नड़ व्याख्या सहित द्वारा सिद्धान्त सुब्रमन्य शास्त्री बंगलोर १८८१, ४५४ पृ० २२ से० मी०

१८०. अमरकोष प्रकाश—अमरकोष के समान कन्नड़ टिप्पणी और भूमिका के साथ—आर० वासुदेव मूर्ति बंगलोर १९०९-११६-पृ० २०से०मी० सरद सदन पुस्तक मंजरी सीरीज।

१८१. चिन्तामणि पेठकाश—पाण्डुरंग वैंकटेश संस्कृत कन्नड़ शब्द व्युत्पत्ति बाम्बे डिपार्टमेन्ट आफ पब्लिक इन्सट्रक्शन १८८०—४८३२ पृ० १६ से० मी०

१८२. धनन्जय नाममाला—कन्नड़ व्याख्या सहित बंगलोर विचार दर्पण प्रेस १८८४—५० पृ० २१ से० मी०।

१८३. नाममाला कन्नड़ कमेन्ट्री के साथ मद्रास १८८४—४४ पृ०

१८४. हलायुध अभिधान रत्नमाला कन्नड़ व्याख्या सहित नागवर्मा, संपादित द्वारा ए० वेंकटराय और एच० सेसाय्न्गर मद्रास यूनिवर्सिटी आफ मद्रास १९४०, २८४ पृ० २४ से० मी० मद्रास यूनिवर्सिटी कन्नड़ सीरीज ६।

१८५. मदन पाल—सार्थ मदनपाल निघण्टु—द्वारा चन्द्रशेखर गणपति भट्ट उदुपाई ड़ी० ए० हलशिकार १९५२, १७६ पृ० १८ से० मी० मू० ३—००

१८६. सुब्बाराय शास्त्री—टी० शब्दौध कल्प द्रुम बंगलौर वैंकटेश प्रेस १९१९-७९५ पृ० २१ से० मी० मू० ५—००

१८७. वैंकटराय ए० औषधि कोषम् द्वारा वैंकटाचार्य और एच० सेसायन्गर मद्रास, युनिवर्सिटी आफ मद्रास १९४०–१७४ पृ० २५ से० मी० (मद्रास युनिवर्सिटी कन्नड़ सिरीज ७) मू० ३५०-००

संस्कृत लैटिन

१८८. बोघ—फ्रांसिसको–ग्लोसरीयम् संस्कृत बेरोलिनी इक्स आफ फिसिना एकैडमिक १८३०—२१६ से० मी० ।

संस्कृत मलयालम्

१८९. अमरसिंह—अमरकोष मलयालम् व्याख्या सहित अमरकोष मुलानी, कोट्टायम् चर्चमिशन प्रेस

१९०. अमरकोष प्रदीपिका—मलयालम व्याख्या सहित—के० पी० उमान, पी० के० टारमैन एण्ड पी० जे० कुरयान कोचीन एस० टी) थामस प्रेस १८७५—११५ पृ०

१९१. अमरकोष मलयालम टीका के साथ द्वारा राम वैरियर टिचर १८९१ ३३९ पृ०, २० से० मी०

१९२. अमरकोषम्—परमेश्वरी व्याख्या के साथ टी० सी० परमेश्वरम् मुशद् —द्वितीय संस्करण कोट्टायम् साहित्य प्रवर्तिका सहाकरण संघम् १९५९—१००४ पृ० २४ से० मी० मू० ३०–०० दो शब्द द्वारा वताक्कन्कर राजाराम वर्मा राजा प्रथम प्रकाशित १९१४.

१९३. अमर सारम अथवा पर्याय नानार्थ वोधिनी द्वारा टी० करुणकर पानिक्कार, द्वितीय संस्करण कुन्नान कुलम् ए० आर० पी० प्रेस १९४८—३९१—१६० पृ० १८ से० मी० मू० २—५०.

१९४. अमरकोष—बालप्रिय मलयालम टीकाकार के० राम बरियार क्वीलन वी० वी० प्रेस १९५०—४९५ पृ०

१९५. अमरकोष—'बाल मित्रम् मलयालम टीका के साथ द्वारा वी० नारायण कुरूप कुन्नाम कुलम् ए० आर० पी० प्रेस १९५३, ३५१ पृ०२१ से० मी० मू० २—५०

१९६. अमरकोष मलयालम् त्रिवेणी व्याख्या सहित द्वारा टी० सी० परमेश्वरम् मुशद –कोट्टायम् विक्टरी प्रेस एण्ड सेल्स डिपो १९५६— मू० १२—००.

१९७. अमरकोषम् सारार्थ बोधिनी—व्याख्या सहित द्वारा सी० अच्युत वारियर तृतीय संस्करण क्वीलन एस० आर० वी० प्रेस एण्ड बुक डिपो १९५६-४०४ पृ०

१९८. अमरकोषम्—मलयाम् बालबोधिनी टीका के साथ द्वारा के० रामबारियर द्वितीय संस्करण त्रिचुर मंगलोदयम् १९५८—३२०—१७२ पृ० २१ से० मी० मू० ५-००

१९९. संस्करन नाम पुतिरीपाट—कानिप्यायर—संस्कृत मलयालम निघण्टु कुन्नाम कुलम पंचागंम पब्लिसिंग हाउस १९५३-१२०७ पृ० २४ से० मी० मू० २५-०० रू०

संस्कृत मराठी

२००. अमरसिंह—अमरकोष मराठी टीका द्वारा गोविन्द जे० हरलेकरा बेलगाम, ए० आर० सावन्त १८९५, २९६ पृ० २१ से०मी०मू० १-००

२०१. बालबोध अमरकोष—अनुवादक गजानन चिन्तामणि देव बाम्बे १९०२, १७५ पृ०

२०२. सार्थ लघु अमरकोष द्वारा गणेश पाण्डुरंग लोघे पूना १९३२-३२ पृ०

२०३. आप्टे वासुदेव गोविन्दा—संस्कृत मराठी कोष पूना आनन्द प्रेस एन० डी० २४९ पृ० १८ से० मी० मू० १-००

२०४. व्यावहारिक संस्कृत मराठी कोष पूना १९१३, ४१९ पृ०

२०५. अतेरकर—गंगाधर गोपाल—एकाक्षरी कोष बाम्बे १८९६- २४ पृ० १२ से० मी०

२०६. दुकाले—माधव चन्द्रोवा—शब्द रत्नाकर किम्बा संस्कृत प्राकृत शब्द कोष द्वारा माधव चन्द्रोवा दुकाले कृष्ण शास्त्री पेंडार और अवसकार बाम्बे ओरिएण्टल प्रेस १८७०-६९३ पृ० ३० से० मी०

२०७. घाटे गोपाल—सविग्रह संस्कृत अमित मराठी कोष बाम्बे बापू हरसेट देव लेकारा छापाखाना १८६७, ७५९ पृ० २३ से० मी० मू० ५-०० विग्रह कोष के नाम से भी जाना जाता है ।

२०८. गाडवोले—नारो अपाली संस्कृत व प्राकृत कोष पूना ज्ञान प्रकाश १८७२ ५०९ पृ० २४ से० मी० मू० ६-००

२०९. जोग—डी० वी० संस्कृत मराठी लघुकोष पूना आनन्द कार्यालय १९५६, ३११ पृ० २१ से० मी० मू० ६-००

२१०. मल्लिकार्जुन शास्त्री—एकाक्षर कोष येबोको बुलरी आफ मोनो सिलेबल्स पुरुषोत्तम एकाक्षर नामावली के आधार पर—विश्व शंभु का मूलकोष और इरुगपद दंडधि नाथ की मोनोसिलेबल्स—मराठी अनुवाद के साथ शोलापुर १९०८- ७१ पृ०

२११. ओका जनार्दन विनायक गीर्वाण लघुकोष द्वितीय संस्करण जमशेदपुर सारस्वत आप्टे १९५५

२१२. पदमंजरी संस्कृत मराठी कोष—बाम्बे निर्णय सागर प्रेस १८६१-३४० पृ० ११ से० मी०

२१३. प्रभादेशाई राघोवा विश्ना जयराम सेनानी १८१५, ८३ पृ०

२१४. सिन्तरे शिवराम—सार्थ वेदांग निघण्टु बाम्बे १६३७, ७८ पृ० १८ से० मी० वैदिक कोष।

२१५. तलेकरा अनन्त शास्त्री—संकृत प्राकृत शब्दकोष अमरकोष के आधार पर अन्डर दि डायरेक्शन आफ मेजर कैन्डी, संशोधित द्वारा रघुनाथ शास्त्री तेलकरा पूना १८५३, ४८० पृ०

संस्कृत नेपाली

२१६. अमरसिंह—अमरकोष काण्ड प्रथम टिप्पणी सहित संपादक कुरचन्द्र शर्मा बनारस १६०१- ११३ पृ०

संस्कृत उड़िया

२१७. अमरसिंह अमरकोष—कटक १८७८- ११४ पृ० २० से० मी० औड़िया लिपि।

२१८. अमरार्थ रत्नकालिका द्वारा जगमोहन सिंह देव कटक १८८६-४७३ पृ० ३० से० मी० ओड़िया लिपि

२१६. अमरकोष कटक-कटक प्रिंटिंग कं० १६०४- ३२८ पृ० १६ से० मी० मू० १-०० ओड़िय: लिपि।

२२०. अमरकोष ओड़िया टीका के साथ बालबोधिनी कटक अरुणोदय प्रेस १६०८- २६२ पृ० १६ से० मी० ओड़िया लिपि प्रथम संस्करण १८६६

२२१. अमरकोष ओड़िया व्याख्या सहित बालबोधिनी पुरी जगन्नाथ प्रेस १६१०-३६० पृ०

२२२. अमरकोष संपादक माहेश्वर नन्द कटक—चन्द्रोदय प्रेस १६२७- ८६ पृ० १८ से० मी०

२२३. पुरुषोत्तम देव ध्वनि मंजरी—शब्द सूची समानार्थक तृतीय संस्करण कटक १६०८ ओड़िया लिपि।

२२४. अनेकार्थ ध्वनि मंजरी—रथगोविन्द शब्दमाला अभिधान—कटक १८६५

संस्कृत परसियन

२२५. कानपुर कवि—संस्कृत परासिका पद प्रकाश द्वारा नरहरिनाथ बनारस गोरक सतिल्ला योग प्रचारिणी १६३६- १०१ पृ० १८ से० मी०

संस्कृत रसिअन

२२६. कोच्चरजिना—वेरा अलेकचन्द्र बरा न चेल नाइकुस-संस्कृत डोपोस्चेरो व्याकचेस्टिव उचेब्रिन्क डलिया गास—युनिवर्सिटेटर—रेड० पी० एस० कुजनेटसोव मारकव—भू० एस० एस० आर० १९५६

संस्कृत सिंहलीज

२२७. अमरसिंह—अमरकोष व्याख्या टिप्पणी सहित सिंहलीजी में द्वारा डान० ए० डी० एस० रक्षिता बट्टुवन्त देव कोलम्बो १८८०, २०२ पृ० २० से० मी०

२२८. बुद्धदत्त महाथेरा ए० पी० पालि सिंहलीर्ज डिक्शनरी कोलम्बो युना सेन एण्ड कं० १९५०,---५६८ पृ० १८ से० मी० मू० १५-०० सिंहलीज लिपि

२२९ परेरा वी० पी० दण्डुगण कोष पालि शब्दों के अर्थ के साथ कोलम्बो १९०९—९० पृ० ३० से० मी० पालि सिंहलीज, सिंहलीज लिपि।

२३०. सरस्वती निघण्टु—वनस्पति शब्दों का संस्कृत में और सिंहलीज में टिप्पणी कोलम्बो १८६५- ७५ पृ० सिंहलीज लिपि।

संस्कृत तामिल

२३१. अमरसिंह नामलिगानुशासनम्—तंजौर वर्ने प्रेस १८०३—१३८ पृ० २४ से० मी०

२३२. नामलिंगानुशासन—तमिल व्याख्या 'नाम लिंगानुशासन दीपिका' के साथ मद्रास हिन्दू भाषा संजीवनी प्रेस १८७० ग्रंथम और तमिल लिपि

२३३. अमरकोष—तमिल व्याख्या 'अमरपद कल्पतरु' के समान संपादक के० वेंकटराम शास्त्री मद्रास १९१५-४७० पृ०

२३४. पार्थ सारथी आयन्गर टी०—संस्कृत शब्द रत्नाकरण मद्रास २९५ पृ०

२३५. रामस्वामी शिवान पपन साम—संस्कृत भाषा शब्द समुद्र कुम्भा को नाम होनोपथ प्रेस १९५४ दो खण्ड २१.५ से० मी० मू० १२-००

२३६. श्री निवास अरिवर टी० संस्कृत तामिल डिक्शनरी १९२८, १७४ पृ० २२ से० मी० मू० ३-५०

२३७. वैंकटेश शर्मा एन० ई० संस्कृत तामिल डिक्शनरी मद्रास १९३३, ११८ पृ० मू० २-५०

संस्कृत तेलगू

२३८. अमरसिंह—अमरकोषम् मद्रास १८३५-९५ पृ० २० से० मी० तेलगु लिपि।

२३९. अमरकोष अमरपदार्थ चन्द्रिका तेलगू टीका मद्रास १८६१-३९४ पृ० २० से० मी० तेलगू लिपि १८७९, ३५४ पृ०

२४०. नामलिंगानुशामनम्—मद्रास १८६१-८१ पृ० २० से० मी० तेलगू लिपि

२४१. नामलिंगानुशासनम् संस्कृत और तेलगू व्याख्या गुरुबाल प्रबोधिका द्वारा कलानिधि तिरुवेंकटाचार्य, शब्दसूची, अमरकोषादर्थ सरस्वी तिरुवेंकटाचार्य द्वारा वंगीपुरम राम कृष्णाचार्य और मशूरा परशुराम शास्त्री द्वितीय संस्करण मद्रास १८६१, ३ खण्ड,—तेलगू लिपि।

२४२. अमरकोष—संपादक दम्पुरा वेंकट शंभु शास्त्री तेलगू अनुवाद अमरपदरत्न मद्रास १८६३ ३६६ पृ० तेलगू लिपि।

२५३. अमरकोष सरस्वती तिरुवेंकटाचार्य और वेनी पुरम राम कृष्णाचार्य मद्रास १८५३—७४ पृ० २० से० मी० तेलगू लिपि।

२४४. नामलिंगानुशासनम् तेलगू व्याख्या 'अमरपदार्थ चन्द्रिका' मद्रास कलानिधि प्रेस १८६७—३८७ पृ० २१ से० मी०।

२४५. नामलिंगानुशासनम्—तेलगू में व्याख्या, टिप्पणी सहित द्वारा दण्डिगेन्ट सूर्य नारायण शास्त्री मद्रास १८६६, २० से० मी० तेलगू लिपि। अमर प्रथम काण्ड—द्वारा वी० एल० शास्त्री नामदेव मद्रास सी० वी० कृष्ण बुक डिपो १६५५, ३२ पृ० १८ से० मी०

२४६. धन्वन्तरि—धन्वन्तरि निघण्टु, मद्रास वी० रामस्वामी सस्त्रुला एण्ड संस १६५४—३४८ पृ० १८ से० मी० तेलगू लिपि।

२४७. महेश्वर विश्ववर्स—मोदिली अपन्ना तेलगू व्याख्या कोटि रल्ली १६१३ ५१०४ पृ० तेलगू लिपि

२४८. नामार्थ विश्व निघण्टु—वर्णक्रमानुसार पांच सर्गों में शब्दों की सूची तेलगू में व्याख्या द्वारा मल्ला सीताराम स्वामी इच्छापुरम १६०६ ७४ पृ० ३० से० मी० तेलगू लिपि

२४६. पुरुषोत्तम देव हारावली तेलगू व्याख्या—मद्रास कबिल्ला रामस्वामी सस्त्रूला एण्ड सन्स १६२८—७६ पृ० २१ से० मी० मू० १-०० तेलगू लिपि

२५०. त्रिकाण्ड शेषम् तेलगू व्याख्या सहित मद्रास बबिल्लाराम स्वामी सस्त्रुल्ला एण्ड सन्स १६२८-२६१ पृ० तेलगू लिपि सिंगाराचार्यामुलू तासूरु-अव्ययार्थ कौमुदी संस्कृत शब्दों का अर्थ जो तेलगू में प्रयुक्त होते हैं मद्रास १८२८-१३६ पृ०

२५१. श्री निवासाचार्युलू-पारवस्तु सर्व शब्द सम्बोधिनी मद्रास १८७५-१०७६ पृ०

२५२. वेंकट सेसाय्या वेट्स-संस्कृतान्ध्रु निघण्टु मद्रास १८६३-३८७ पृ० तेलगूलिपि।

संस्कृत तिब्बतन

२५३. अमरसिंह-अमरकोष-वर्णानुक्रम शब्दकोष संस्कृत का तिब्बतन में द्वारा सतीशचन्द्र विद्या भूषण कलकत्ता १९११-१२, ३८४ पृ०

२५४. सुभूतिचन्द्र अमरकोष तिब्बती में अनुवाद द्वारा कीर्तिचन्द्र-संपादक सतीशचन्द्र विद्याभूषण कलकत्ता एसिएट सोसायटी १९१२.

संस्कृत उर्दू

२५५. भानुदत्त पण्डित-संस्कृत हिन्दुस्तानी डिक्शनरी लाहौर १८९९-३०६ पृ०मू० ५-००

तेलगू संस्कृत

२५६. व्यास मूर्ति शास्त्री अकोन्डी-शब्द रत्न पनामू राजा मुन्द्री १९३४- ४८८ पृ० २१ से० मी० ।

तिब्बतन संस्कृत

२५७. लोकेशचन्द्र-तिब्बतन संस्कृत डिक्शनरी-न्यू डेलही इन्टरनेशनल एकैडमी आफ इण्डियन कल्चर १९६०-७ खण्ड २७ से० मी० (सतपिटकम्) इन्डोआर्यन लिटरेचर-तिब्बतन लिपि ।

२५८. टी० एस० ई० रिंग औ अंग ग्याल-तिब्बतन संस्कृत डिक्शनरी रिप्रोडेक्शन, फोटो टाईपिकल पब्लिक द्वारा जे० बाकट परी, लिटरेचर ओरिएन्ट लाइज पाल गीथनर १९३०-१०१ पृ० २८ से० मी० ।

उपर्युक्त प्रकाशित कोषों की सूची "A Biblography of Dictionaries and encyclopadius in Indian languages National library calcutta 1964" से लीं गई ।

•

परिशिष्ट ३

सन्दर्भित ग्रन्थों की सूची

१. अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन, कपिलदेव द्विवेदी हिन्दुस्तानी एकेडमी उत्तर प्रदेश इलाहाबाद १९५१

२. अमरकोष मणिप्रभा हिन्दी व्याख्या, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस बाराणसी १९६८

३. अमरकोष महेश्वर की व्याख्या सहित, रघुनाथ शास्त्री तेलकारा द्वारा संपादन, बाम्बे गवर्नमेण्ट सेन्ट्रल बुक डिपो १८८२ षष्ठ संस्करण वामनाचार्य झलकीकर १९०७

४. अमरकोष महेश्वर की परिवर्द्धित व्याख्या, नौमां संस्करण फुटनोट सहित नारायण राम आचार्य बाम्बे निर्णय सागर प्रेस १९५०

५. अमरकोष संस्कृत व्याख्या सहित व्याख्या 'रसाल' शक्तिधर शास्त्री लखनऊ नवल किशोर प्रेस १९१९

६. अनेकार्थ समुच्चय शाश्वत ओरिएन्टल बुक एजेन्सी पूना १९२८

७. अनेकार्थ संग्रह आचार्य हेमचन्द्र चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी २, सन् १९६९

८. अनेकार्थ तिलकमदीप क्रिटिकली इडिटेड बाई एम० एम० पाटकर पूना १९४७

९. अभिधान चिन्तामणि हेमचन्द्र व्याख्याकार श्री हरगोविन्द शास्त्री चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १—१९६४.

१०. उणादि कोष श्री महादेव वेदान्तिन मद्रास विश्वविद्यालय संस्कृत सीरीज नं०—१९५६.

११. उक्ति रत्नाकर, साधु सुन्दरगणि राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर जयपुर राजस्थान १९५७.

१२. कल्पद्रुकोष Vol,I केशव गायकवाड़ ओरिएन्टल सीरीज नम्बर XLH ओरिएन्टल इन्स्टीच्यूट बड़ौदा, इडिटेड विथ क्रिटिकल इन्ट्रडक्शन बाई रामावतार शर्मा १९२८

१३. कवि कल्पद्रम आफ वोपदेव गजानन बालकृष्ण पाल सुले डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना १९६८

१४. कोष कल्पतरु मधुकर मंगेश पाटकर डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट खण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना १९६६

१५. एकाक्षर नाममाला द्वयक्षर नाममाला आफ सौभरि इकनाथ दत्तात्रय कुलकर्णी-डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना १९५५

१६. कोषकला डा० राचचन्द्र वर्मा साहित्य रत्नमाला कार्यालय, २० धर्म-कूप, बनारस १९५२

१७. कादम्बरी बाणभट्ट पण्डित पुस्तकालय काशी १९६४

१८. उत्तर रामचरित भवभूति, रामनारयण लाल बेनी माधव इलाहाबाद १९६८

१९. ऋक सूक्त संग्रह डा० हरिदत्त शास्त्री साहित्य भण्डार सुभाष बाजार मेरठ
२०. धरणि कोष, धरणिधर संपादित द्वारा इकनाथ दत्तात्रय कुलकर्णी डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना ६, १९६८
२१. द्वादश कोशानां संग्रह, ज्ञानवापी के पूर्व फाटक पर श्रीयुत महाराज शिवलाल दुबे के मकान में छपी सन् १८७३
२२. देशीनाममाला हेमचन्द्र संपादित द्वारा, प्रकाशित कलकत्ता विश्व-विद्यालय १९३१
२३. निघण्टु शेष हेमचन्द्र लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृत विद्या मन्दिर अहमदाबाद ६, १९६८
२४. निरुक्तम् निघण्टु पाठ समुपेतम् भगवद दुर्गाचार्य कृत ऋज्वर्थ व्याख्या, श्री खेमराज श्री कृष्णदास श्रेष्ठिता मुम्बय्यां खेतवाड़ी ७वीं गली खम्बाटा लेन १९३६
२५. निरुक्तम श्री वी० के० राजवाड़े आनन्दाश्रम मुद्रणालय प्रकाशितः १९२१
२६. निरुक्तम पं० राजाराम प्रो० टी० ए० बी० कालेज लाहौर विरचित भाषा भाष्य भूषित बाम्बे मशीन प्रेस १९१४
२७. निरुक्त शास्त्रम् व्याख्याकार भगवददत्त श्री रामलाल कपूर निक्षेप निधि (ट्रस्ट) अमृतसर १९६४
२८. निरुक्त दुर्गाचार्य की व्याख्या सहित संपादक टिप्पणी सहित शिवदत्त शर्मा बाम्बे वेंकटेश्वर स्ट्रीम प्रेस १९१२
२९. निरुक्तम् प्रपन्न लोक शास्त्री लाहौर बाम्बे प्रेस १९१६
३०. निरुक्त और निघण्टु दुर्गाचार्य की व्याख्या सहित संपादक एच० एम० भण्डकामकर और आर० जी० भण्डकामकर पूना भंडारकर ओरिएन्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना १९१८
३१. निघण्टु और निरुक्त आलोचनात्मक संपादक, टिप्पणी सहित अंग्रेजी भाषा में लक्ष्मण स्वरूप लाहौर युनिवर्सिटी आफ पंजाब १९२७
३२. निरुक्त स्कन्दस्वामी और माहेश्वर की व्याख्या सहित संपादक आलोचनात्मक टिप्पणी सहित लक्ष्मण स्वरूप युनिवर्सिटी आफ पंजाब १९२८-३४
३३. निरुक्तम् कलकत्ता मन सुखलाल गोरा १९५२-५३, ४ खण्ड
३४. प्रथम खण्ड निघण्टु व्याख्या देवराज यज्वा
३५. द्वितीय खण्ड व्याख्या दुर्गाचार्य

३६. तृतीय खण्ड व्याख्या दुर्गाचार्य
३७. चतुर्थ खण्ड निघण्टु देवतकाण्ड व्याख्या दुर्गाचार्य
३८. निघण्टु तथा निरुक्त (लक्ष्मण स्वरूप) हिन्दी भाषान्तर (सत्यभूषण 'योगी', मोतीलाल बनारसी दास नैपाली खपरा वाराणसी)?
३९. निरुक्तम् आफ यास्क, बाई, प्रोफेसर उमाशंकर ऋषि ।
४०. निरुक्तम संस्कृत हिन्दी टीका द्वयोपेतम् महामहोपाध्याय छज्जूराम शास्त्री, मेंहरचन्द्र लक्ष्मण दास अध्यक्ष, संस्कृत पुस्तकालय, प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता २७३४ कूचाचेला दरियागंज दिल्ली-६, १९६३
४१. हिन्दी निरुक्त विद्यामार्त्तण्ड पंडित सीताराम शास्त्री मिषगरत्न पं० रामरूप शर्मा, मन्त्री श्री हरियाणा सेरवावाटी ब्रह्मचर्याश्रम मिवानी (पंजाब) ।
४२. हिन्दी निरुक्तम डा० कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य भंडार सुभाष्ष बाजार मेरठ १९६९
४३. निरुक्तम आचार्य विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि वाराणसी ज्ञान मण्डल लिमिटेड १९६६
४४. नाममाला, महाकवि धनन्जय विरचिता, अमरकीर्ति विरचित भाष्योवेता अनेकार्थ निघण्टु एकाक्षरी कौशश्च संपादक पं० शंभूनाथ त्रिपाठी व्याकरणाचार्य, सप्ततीर्थ । भारतीय ज्ञानपीठ काशी १९५०
४५. नाम लिंगानुशासनम् श्रीमद्मरसिंह विरचितं वन्द्यघाटीय सर्वानन्द प्रणीतया टीका सर्वस्व व्याख्या समेत, महामहिम श्री मूलकराम वर्म-कुलशेखर महाराज शासनेन राजकीय मुद्रण यन्त्रालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् कोलम्बाद्वा १०८९-१९१४
४६. नाममाला भोज—ई० डी० कुलकर्णी डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना ६, १९५५
४७. नानार्थ संग्रह अजयपाल युनिवर्सिटी आफ मद्रास १९३७
४८. नानार्थ मंजरी राघव डेकन कालेज पो० ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना १९५४
४९. नाटक लक्षण रत्नकोष श्री सागर नन्दिनः आक्सफोड यूनीवर्सिटी प्रेस लन्दन हम्फ्री मिलफोर्ड १९३७
५०. नेषध महाकाव्यम 'जीवातु' मणिप्रभा, टीका द्वयोयेतम् चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी-१
५१. पाइअ-लच्छी नाममाला धनपाल शारदीलाल जी जैन शारदा मुद्रणालय अहमदाबाद १९६०

५२. पाणिनि कालीन भारतवर्ष, डा० वासुदेव शरण अग्रवाल चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी १९६९
५३. पर्याय रत्नमाला धनन्जय भट्ट, इकनाथ दत्तात्रय कुलकर्णी, डेकन कालेज पोस्ट ग्रजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना-६, १९७१
५४. परमानन्दीय नामलाला, मकरन्द दास, इकनाथ दत्तात्रय कुलकर्णी डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना ६, १९६८
५५. पाइअ शद्द महार्णव, प्राकृत टेक्स्ट सीरीज वैलूम ६, प्राकृत टैक्स्ट सोसायटी वाराणसी-५
५६. पदचन्द्रिका व्याख्या अमरकोष, कलकत्ता संस्कृत कालेज रिसर्च सीरीज नं० XLVIII प्रकाशित गवर्नमेण्ट आफ वेस्ट बंगाल १९६६
५७. पालि साहित्य का इतिहास लेखक भरत सिंह उपाध्याय हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग शक १८८५
५८. प्राकृत साहित्य का इतिहास डा० जगदीश चन्द्र जैन, चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी-१, १९६१
५९. बौद्धिक कालीन भारत के विश्वविद्यालय महाबीर प्रसाद द्विवेदी
६०. भाषा विज्ञान सिद्धान्त और प्रयोग डा० अम्बा प्रसाद सुमन सस्ता साहित्य भण्डार जामा मस्जिद डिस्पेंसरी, दिल्ली १९६९
६१. भाषा विज्ञान, मैक्समूलर अनुवादक डा० उदय नारायण तिवारी, मोतीलाल बनारसी दास बंगलो रोड जवाहर नगर दिल्ली-७, १९७०
६२. भाषा विज्ञान भोलानाथ तिवारी किताब महल इलाहाबाद १९५१
६३. भारतीय सामाजिक संस्थाएं लेखक गोपाल कृष्ण अग्रवाल साहित्य भवन आगरा-३
६४. भौगोलिक विचार धारणाएं लेखक डा० आर० बी० सिंह डा० बी० सिंह भूगोल विभाग राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर जैन पुस्तक मन्दिर जयपुर ३, १९६९
६५. भावप्रकाश निघण्टु श्रीभद् भावमिश्र सविमर्श हिन्दी व्याख्यायेतः संशोधित परिर्वाधित संस्करण विमर्शकार श्री कृष्णचन्द्र चुनकर चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी १, १९६९
६६. मेदिनी कोष श्री मेदिनीकर निर्मितः संपादक पं० जगन्नाथ स्वामी होंशिगः चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी-१, १९६८
६७. माधवीया धातुवृत्ति सायण
६८. श्रीमद् भागवत् महापुराणम् (मूल) गीता प्रेस गोरखपुर चतुर्थ संस्करण सं० २०२०

६९. श्रीभद् भगवत गीतामूल गीता प्रेस, गोरखपुर
७०. राज व्यवहार कोष लेखक रघुनाथ पंडित संपादक रा० गो० काटे मराठवाड़ा साहित्य परिषद् हैदराबाद १९५२
७१. रघुवंश महाकाव्य तारिणीश झा, राम नारायण बेनी माधव, इलाहाबाद
७२. लघु सिद्धान्त कौमुदी मैनी व्याख्या द्वितीय भाग प्रकाशक वैद्य भीमसेन शास्त्री ५३७ लाज पतराय मार्केट दीवान हाल के सामने दिल्ली-६, १९७१
७३. व्याकरण शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास श्री रमाकान्त मिश्र एम० ए० चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी १, १९६६
७४. व्याकरण महाभाष्यम् पतन्जलि, हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर रोहतक १९६२
७५. व्याकरण शास्त्रों का इतिहास लघु मंजूषा सभापति युधिष्ठिर मीमांसक
७६. वैयाकरण सिद्धान्त लघु मंजूषा सभापति शर्मा उप्राध्यापक चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी १९६३
७७. वैदिक साहित्य और संस्कृति, बलदेव उपाध्याय श्रद्धा मन्दिर काशी, १९६७
७८. वैदिक साहित्य और संस्कृति वाचस्पति गैरोला, संवर्तिका प्रकाशन ३३।९ करेला बाग कालोनी, इलाहाबाद ३, १९७०
७९. वैजयन्ती आचार्य यादव प्रकाश संस्कृत वर्नाकुलर टैक्स्ट पब्लिकेशन सोसायटी, १८९३
८०. विश्व प्रकाश श्री महेश्वर सूरिप्राणीत चौखम्बा प्रकाशन बनारस १९११
८१. विश्वलोचन कोष श्रीधर सेनाचार्य विरचित बम्बई निर्णय सागर प्रेस १९१२
८२. वांग्मयार्णवः महामहोपाध्याय पान्डेय श्री रामावतार शर्मा द्वारा विरचित वाराणसी ज्ञान मण्डल लिमिटेड कबीर चौरा वाराणसी १९६७
८३. वाचस्पत्यम् वृहत संस्कृताभिधान प्रथम खण्ड श्री तारानाथ तर्क वाचस्पति भट्टाचार्येण तैनैव संस्कृतम् १९२९ संवत्सरे मुद्रितम् काव्य प्रकाश प्रेस
८४. वाचस्पत्यम द्वितीय खण्ड १९२९ संवत्सरे मुद्रितम् काव्य प्रकाश प्रेस
८५. वाचस्पत्यम् तृतीय खण्ड ,, ,,
८६. वाचस्पत्यम् चतुर्थ खण्ड ,, ,,
८७. वाचस्पत्यम् पंचम खण्ड ,, ,,
८८. वाचस्पत्यम् षष्ठ खण्ड ,, ,,
८९. वाचस्पत्यम् सप्तम् खण्ड ,, ,,
९०. वाचस्पत्यम् अष्ठम् खण्ड ,, ,,
९१. वाचस्पत्यम् नवम् खण्ड ,, ,,
९२. शब्द भेद प्रकाश शब्द द्वैध कोष (एकाक्षर कोष) पुरुषोत्तम देव निर्णय सागर मुद्रणालय बम्बई १९५०

९३. शब्द रत्नप्रदीप राजस्थान पुरातत्वान्वेषण मन्दिर जयपुर राजस्थान १९५६
९४. शिवकोष, शिवदत्त मिश्र, डेकन कालेज पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इन्स्टीच्यूट पूना ६, १९५२
९५. षट्कोषानां संग्रह, ज्ञानवापी के पूर्व फाटकपर श्री विश्वनाथ जी के पास
९६. संस्कृत कोष काशीनाथ वासदेव खण्डेकर चन्द्र प्रकाश छापाखाना बम्बई १८६६
९७. सिद्ध शब्दार्णव आफ साह जी कीर्ति, द्वारा एम०जी० पान्से पूना १९६५
९८. शिवराज विजय अम्बिकादत्त व्यास पूना
९९. संस्कृत शास्त्रों का इतिहास आचार्य वल्देव उपाध्याय शारदा मन्दिर वाराणसी ५, १९६९
१००. संस्कृत साहित्य का इतिहास आचार्य बल्देव उपाध्याय शारदा मन्दिर वाराणसी ५, १९६८
१०१. संस्कृत साहित्य की रूप-रेखा चन्द्रशेखर पाण्डेय भानूराम व्यास साहित्य निकेतन कानपुर १९६७
१०२. संस्कृत वांग्मय आचार्य श्री बल्देव उपाध्याय शारदा मन्दिर वाराणसी-५ १९६९
१०३. संस्कृत साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, वाचस्पति गैरोला चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १९६७
१०४. संस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन डा० भोला शंकर व्यास भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन ३६२०।२१ नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली-६, १९७१
१०५. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, संपादक स्वर्गीय चतुर्वेदी द्वारका प्रसाद शर्मा तथा पं० तारिणीश झा व्याकरण वेदान्ताचार्य प्रकाशक राम नारायण लाल प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता इलाहाबाद १९५७
१०६. शब्दार्थ संग्रह अर्थात अमर कोषादर्श, वैद्यक कोष शब्द संग्रह मुंशी नवलकिशोर के छापेखाने में छपा १८९९
१०७. शब्दकल्पद्रुम राजाराधा कान्तदेव। कलिकाता राजधान्यां व्यासिस्तमिसनयन्त्रे मुद्रितः ७१ न० पाथुरियाघाट स्थित भवनात प्रकाशितश्च शकाब्दा १८०८, प्रथम भाग
१०८. ,, ,, ,, द्वितीय भाग
१०९. ,, ,, ,, तृतीय भाग
११०. ,, ,, ,, चतुर्थ भाग
१११. ,, ,, ,, पंचम भाग
११२. हलायुध कोष—अभिधान रत्नमाला संपादक जयशंकर जोशी सरस्वती भवन वाराणसी कृते प्रकाशन व्यूरो, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रकाशितः।
११३. त्रिकाण्ड शेष, मेदिनी, हारावली, एकाक्षरी सदाशिवक बाबा शास्त्री अमरापुरकर ज्ञान दर्पण छापा खन्यात छापिले १८५४

114. The Rigveda Peter PETERSON Bombay 1897.
115. A Bibliography of Dictionaries and Encyclopaedieas in Indian Languages, National Library Calcutta 1964.
116. Prin, V. S. Apte's The Sanskrit English Dictionary Vol. I editors in chief P, K. Gode M. D. Litt Prasad Prakashan Poona, 1957
117. Prin. V, S. Apte's Sanskrit English Dictionary Vol. II editors P. K. Gode and C. G. Karve Prasad Prakashan Poona 1958.
118. Prin. V. S. Apte's Practieal Sanskrlt English Dictionary Part-III editors P. K. Gode and C. G. Karve Prasad Prakashan Poona, 1959.
119. A Concise—Sanskrit English Dictionary Chitrashala Press Poona City 1926.
120. Dictionary English and Sanskrit by Sir M. Moniel Williams Chowkhamba Sanskrit Series Office Varanasi, 1961.
121. Raj Nighantu Sahitya Dhanawantari Nighantu Hari Narain Apte Anandashram Mudranalaya, 1896.
122. Concire—Poli English Dictionary A. P. Buddha datta Mahathera Published by U. Chandra dasa DE Silva of Ahansam. The Colombo Apother caries. Co. Ltd. 'Prince Street, Fort Colombo, 1957.
123. The gentle Art of lexicograhpy, Eric Partridge, First published 1963 by Andre Deutsch limited 105 great Russell street London WCI
124. A Sanskrit English Dictionary by care Cappellel Chowkhamba Publication 1972.
१२५. अमरकोष प्रभा व्याख्या समलंकृत:, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी-१, १९६३
१२६. अनेकार्थ ध्वनि मंजरी, द्विरूप कोशैकाक्षर कौशाभ्यां सहिता प्रकाशक श्री हरिकृष्ण निबन्ध भवनम्, वाराणसी-१, १९६०

१२७. अमरकोष प्रथम काण्डम् श्री पं० काशीनाथ शास्त्री, शास्त्राचार्यः प्रकाशक बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर राजा दरवाजा बनारस सिटी १६५०
१२८. श्रीमद्मर सिंह विरचितः अमरकोष द्वितीय काण्डम् प्रकाशक श्री हरि-कृष्ण निबन्ध भवनम् बनारस सिटी, १६६६
१२६. श्रीमद्मर सिंह विरचितः अमरकोष तृतीय काण्डम् मुद्रक विद्याविलास प्रेस, बनारस सिटी ।
१३०. श्री आर्थक एण्मनी मैक्डोनल द्वारा प्रणीत संस्कृत साहित्य का इतिहास प्रथम भाग वैदिक युग अनुवादक श्री चारू चन्द्र शास्त्री एम० ए० चौखम्बा बिद्याभवन वाराणसी-१, १६६२
१३१. संस्कृत साहित्येतिहास लेखक आचार्य श्री रामचन्द्र मिश्र चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी-१, १६७०
१३२. अनेकार्थ मंजरी और नाममाला गंगा विष्णु श्री कृष्णदास; मालिक लक्ष्मी वैंकटेश्वर स्ट्रीम् प्रेस; कल्याण बम्बई, १६३७
१३३. कालिदास का भारत भाग एक डा० भगवत शरण उपाध्याय भारतीय ज्ञानपीठ काशी, १६६३
१३४. कालिदास का भारत भाग दो डा० भगवत शरण उपाध्याय भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन तृतीय संस्करण १६६६
१३५. उणादि कोषः पाणिनि मुनि प्रणीतायामष्टाध्याम्यॉं द्वादशो भागः श्रीमतस्वामी दयानन्द सरस्वती कृत व्याख्या सहितः अजमेर नगरे वैंदिक मन्त्रालयेमुद्रितः १६६४
१३६. हिन्दू संस्कार सामाजिक तथा धार्मिक अध्ययन डा० राजबली पाण्डेय चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी-१, १६६६
१३७. संस्कृति के चार अध्याय लेखक रामधारी सिंह दिनकर उदयाचल राजेन्द्र नगर पटना-४, चतुर्थ संस्करण १६६६
१३८. संस्कृत वांगमय परिचय चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी-१, १६५५
१३६. आचार्य पाणिनि के समय विद्यमान संस्कृत वांग्मय लेखक युधिष्ठिर मीमांशक प्रकाशक भारतीय प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान २४।३१२, रामगंज अजमेर ।

[illegible]